

दिनकरकृत
गीति नाट्य उर्वशी : काव्य संस्कृति और दर्शन

शोध-प्रबन्ध

निर्देशन :
प्रो० सुरेन्द्रनाथ वर्मा
एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत) वेदालंकार

शोध द्वात्र :
जवाहरलाल कंचन
प्रवक्ता, हिन्दी
बुन्देलखण्ड कॉलिज, झाँसी



बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

१९८७

भूमिका गीति नाट्य :

एक आधुनिक काव्य विधा
परिभाषा एवं तत्व
हिन्दी गीति नाट्यों पर प्रभाव
हिन्दी नाट्य का मूल स्वरूप
रास और रासक
नृत्य, नृत्त, नाटक और नाटिका
गीति नाट्य-काव्य और नाटक का समन्वय
हिन्दी के प्रमुख गीति नाट्य और उर्वशी ।

गीति नाट्य

एक आधुनिक काव्य धिा

.....

पृष्ठ भूमि: -

आदि काल से मानव अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिये नये नये आध्यात्म णीकता रहा है। ये अभिव्यक्ति का माध्यम पा कर बाङ्गमय कहलाती है। इतिहास के कालक्रम में संघटित हन्नीं भाषात्मक मनोवेगों को जब किसी एक रूप और शैली ज्योव का माध्यम प्राप्त होता है, जिस में अधिकतम मानव-अनुभूतियों, जिज्ञासाओं और प्रेणाओं का समन्वय समाविष्ट है और जो वर्तमान एवं भविष्य की सम्भावनाओं में अभिव्यक्त है, साहित्य क्षेत्र में काव्य कहलाती है।

काव्य: -

भारतेन्दु और उनके परवर्ती युग में हिन्दी साहित्य अनेक विधियों में सुन्दर हुआ है। महा काव्य, छन्द काव्य, मुक्तक और गीति काव्य के विविध रूपों में काव्य को अभिव्यक्ति मिली है। काव्य वर्णित कथा - तत्त्व को सारक और प्राण कान अभिव्यक्ति देने के लिये गीति-काव्य विधा का गीति नाट्य शैली में प्रस्तुति-करण आधुनिक युग की देन है। पद्य-छन्द काव्य रचना के अलग हतर नाटक, कहानी तथा उपन्यास में जो कथा-तत्त्व हैं, उसे सर्वाधिक प्रभाव शाली और लोक प्रिय बनाने वाले नाटक ही हैं। आधुनिक सयुग में जहाँ कविता ने गीति शैली में जाया वादी काव्य को स्थायित्व प्रदान किया है वहाँ दूर्य और अन्य तत्त्वों से समन्वित गीति नाट्य के माध्यम से जीवन की कोमल वृत्तियों एवं वैयक्तिक अनुभूतियों को प्रस्तुत कर ऐसे क्षेत्रों का उद्घाटन किया गया है जहाँ अब इसका परिनिष्ठित स्वरूप स्थापित हो चला है। पद्य अथवा काव्य काव्य की ओक्षा आधुन काव्य का प्रभाव सुरम्य एवं स्थाई होता है, इसी को लक्ष्य कर कवि जगत में "काव्येषु नाटक रम्यम्" कहने की वक्ति प्रतिष्ठित हुई है।

जानन्द की उपलब्धि और मनः सुष्टि पाना मानव का स्वभाव है जो वाणी व्यक्त द्वारा ही सर्वाधिक सम्भव है। जगत के कार्य क व्यापारों और मनोविकारों के प्रभाव को जब वाणी व्यक्त करती हैतो उस में जीवन और अर्थ निहित रहते हैं। वाणी की इसी शक्ति को अधिकतम गुरु कालिदास ने वाङ्मय और अर्थ की सम्पत्ति कहा है। वाणी के इसी विधान को महा कवि तुलसी दास जी ने "गिरा अर्थ

1:- वाङ्मयविषय सम्पत्ति वाङ्मय प्रतिपत्तये

जगतः पितरो वन्दे पार्वती परमेश्वरी

----- रघुजी

कल-वीचि सम कहियत विन्य भिन्न न भिन्न" कहकर शब्द और अर्थ को अभिन्न माना है। भारतीय वाङ्मय में लोक परक और लोकोत्तर विध्य काव्य और कायेत्तर साहित्य में समाहित किये जाते रहे हैं। काव्य और नाटक लोक परक भाव जगत की अभिव्यक्ति करते हैं। अतः सूक्त वाङ्मय को काव्य और शास्त्र इन दो स्वरों में विभक्त किया जाता था।

इदं वाङ्मय युगयथा शास्त्रं काव्यं च

शास्त्रं पूर्वकत्वात् काव्यानां पूर्वं शास्त्रेण्य निमित्तकम् । --काव्य की मांसा काव्य ज्ञान के लिये शास्त्र-ज्ञान अपेक्षित है। अतः काव्य समीक्षा के पूर्व शास्त्र ज्ञान आवश्यक प्रतीत होता है।

साहित्य दर्पणकार कविराज विश्व नाथ ने 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' कहकर काव्य की परिभाषा की है। इस परिभाषा में अन्य काव्योपकरण रस को ही एक काव्यात्मा सिद्ध करने के लिये प्रयुक्त हुए हैं। कविराज जगन्नाथ ने काव्य को पद समूह और पद को शब्द का पर्याय माना है। 'रस रंगोदर' में रस की व्याख्या है, जो उपर्युक्त परिभाषा को और अधिक विकसित करती है :-

'रमणीयार्थं प्रति पादकः शब्दः काव्यम्'

यह रमणीय शब्द की व्याख्या पूर्ण है। रमणीयता को अधिक स्पष्ट किया गया है।

एक शब्द शब्द यन्मयता मुनेति तदेव रसं रमणीयतायाः

में रमणीय की सम्य के आधार में प्रति शब्द शब्द शब्द के संदर्भ में देखकर काव्य के लोकोत्तर रूप अर्थात् रस का ही विकास किया जाकर गया है।

ध्वनि वादी आचार्य मम्मट ने दोन रचित, गुण समन्वित एवं अलंकार घोषित और स्वचित अलंकार रचित विशिष्ट पद रचना को काव्य माना है। :९

सकल तदवोच्य शब्दार्थो समुपायनसंयुतो पुनः कृषि' कह कर आचार्य ने काव्य की रूप रचना और कला प्रियता की और संज्ञा किया है, किन्तु लोकोत्तर आनन्द इस वही रचना कोरल में निहित न होकर भाव जगत में ही सम्भव है। आनन्द की प्रतिष्ठा रस सिध्य है। इसी लोकोत्तर आनन्द को काव्य जगत में प्रथम प्रथमानन्द तदोदर की संज्ञा दी गई है।

प्रबन्ध और मुक्त:-

काव्य के दो रूप प्रतिष्ठित हो चुके हैं:- प्रबन्ध और मुक्त। मुक्त रचना प्रबन्ध काव्य से भिन्न ऐसी रचना है जिस में विन्यक्त विचारों का होता है। मुख्य मुख्य एक ही रसोक्त में समतापूर्ण क्षमता रखने वाली रचना है। विन्यक्त रस के अनन्तर भाव, धाम, ध्वनिकार आनन्द वर्ण, राजोदर आदि अन्य आचार्यों ने मुक्त की परिभाषा की है। विश्वनाथ ने एवोदय पद्यों को मुक्त माना है। २

१. मुक्तकं श्लोक श्वेकश्चमत्कारसुमः सताम् - अग्निपुराण ३३०/३६

२. एवोदय पदं पद्यं तेन मुक्तैः मुक्तम् - साहित्यदर्पण ६/३१४

आनन्द दर्शन में मुख्य मुख्य में प्रबंध की शीति किसी तदर्थ से उत्पन्नरताभिव्यक्ति न मानी है।^१ मुक्तों में कोई क्या वस्तु नहीं होती तथापि कल्पना द्वारा किसी ^{व्यक्ती} छविका निर्माण कर लिया जाता है। और इसी की विम्व्वात्मकता में मुक्त का सौंदर्य रताभिव्यक्ति करता है। अमरक के मुक्त, सुर के पद, विद्यापति की पदावलि, बिहारी के नंगार - परक दोहे और अन्य रीति कासीन मुक्तकारों के पद अपने विम्व्वात्मक सौंदर्य के लिये विख्यात हैं। आचार्य श्री राम चन्द्र शुक्ल ने प्रबंध काव्य को यदि विस्तृत समझली कहा है तो मुक्त को एक चुना हुआ मुक्त कहा।

मुक्त के रूढ़ि:-

डा० गोविन्द त्रिगुणाचल ने मुक्तों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है:-
गीति काव्य, नीति काव्य और रीति काव्य। जहाँ गीति काव्य और रीति काव्य में प्रभाः समाज को पतनोन्मुख अवस्था से उद्धार करने की चेष्टा है तथा लोक पक्ष के उन्नयन में काव्य - लक्ष्य लक्ष्यों से सम्बन्धित उपदेश काव्य का सूजन है, जहाँ गीति काव्य में व्यक्ति परक आत्माभिव्यक्ति है और भेष सत्य को प्रमुक्तता देकर उसे मधुर बना दिया गया है। नीति काव्य अन्तः कृतिनित्यक वह निरपेक्ष रचना है जिस में राज्य और समाज का सामंजस्य, मार्तुर्य, प्रसादात्मकता, कोमल भावनाओं का उद्देक तथा प्रभाव प्रेक्ष के साथ साथ कवि का अन्तर्दर्शन भी राज्य चित्रों में संजोया जाता है।^२ इसके अनुसार गीति काव्य में अन्तःकृति, निरपेक्ष भाव, संगीत, रसात्मकता, भावना और चित्रात्मकता जैसे गुणोंकी अभिव्यक्ति होती है। गीति काव्य भावावेग के प्रस्तुतिकरण की एक स्थिति है। अतः इसके द्वारा साधारणीकरण न अथवा रस-निष्पत्ति सम्भव नहीं है। तथापि भाव-प्रवेस के प्रभाव से आनन्द स्थिति बनी रहना सम्भव है। भावना के प्रकट आवेग में कवि अपनी गीति-योजना द्वारा बाधक अथवा मोटा की क्लृप्तिकृतिकार्य में उद्देग उत्पन्न कर उसे विम्व साधारण से कृप्ति कर देता है। यही कृप्ति काव्यानन्द है।

गीति काव्य एक आधुनिक काव्य विधाः

गीति काव्य के अनेक श्रेणियाँ किये गये हैं। भाषा, देश, अवसर, वर्ण विषय और विद्यास अनेक स्वल्प और प्रकारों में इनका अध्ययन किया जा सकता है। किन्तु इनकी संख्या इतनी अधिक हो जायेगी कि इनके लिये एक उपयुक्त वैज्ञानिक वर्गीकरण योजना सम्भव नहीं है। विषय वस्तु को लक्ष्य कर डा० त्रिगुणाचल ने गीति काव्य के ११ भेद किये हैं:-

- | | | | |
|----------------|-------------------|------------------|----|
| १- वीर गीत | २- राज गीत | ३- धर्म गीत | ४- |
| ५- सामाजिक गीत | ६- प्रसास्य गीत | ७- गीति नाट्य | |
| ८- त्यक्त गीत | ९- विचारात्मक गीत | १०- सम्बोधित गीत | |
| ११- अनुपम गीत | १२- अन्य गीत | | |

^१ मुक्तकेषु प्रत्येकैव रसवन्धाभिव्यक्तिः कथं ६०२ - ध्वन्यालोकादौ उक्तं
^२ डा० गोविन्द त्रिगुणाचल - शास्त्रीय संमीक्षा के दिक्कत - पृ. ३०

उपर्युक्त क्रम में गीति - नाट्य इतने स्थान पर निर्दिष्ट है।¹ यह नाटक गीति काव्य और नाटक का मिश्रित रूप है। गीति नाट्य अब साहित्य की एक प्रतिष्ठित विधा है, जिस का प्रादुर्भाव हिन्दी साहित्य में जय शंकर प्रसाद के कल्याणलाल 1912 से माना जाता है और जिस की परिनिष्ठित उपलब्धि राम धारी सिंह "दिनकर" की उर्वरिणी है। वर्तमान रंतावटी के प्रारम्भ से ही गीति नाट्यों, भाव नाट्यों और काव्य नाट्यों की रचना हो रही है।

गीति नाट्य और अन्य विधायें:-

काव्य के अतिरिक्त गद्य की अनेक विधायें में साहित्य सृजन हो रहा है।

कहानी, उपन्यास, संस्मरण, जीवनी

और रिपोर्ताज नाटक-विधा को कहीं न कहीं स्पर्श करते हैं क्योंकि ये सभी विधायें छाना प्रधान हैं। नाटक में प्रभावशीलता और अभिव्यक्ति उन अन्य विधायों की अपेक्षा अधिक है क्योंकि दृश्य-श्रव्य प्रधान होने के साथ साथ मंच पर अभिनय होने के कारण इसका महत्व अधिक है। कहानी उपन्यासादि के लिये मानसिक मंच पर कल्पना प्रसूत छटनायें संघटित होती हैं, नाटक में वे ही प्रत्यक्ष कराई जाती हैं। गीति नाट्य में गीति तत्त्व से कल्पनाजन्य बिम्बात्मक सौन्दर्य और नाट्य की सृष्टि होती है तथा नाटक तत्त्व के सन्मिश्र से अभिनय, नाटकीय कौशल और कला भूषा-सज्जा आदि से वातावरण का निर्माण हिन्दी से उत्पन्न प्रभावशालिनी दूरदर्शक के मनोवेगों को उद्दीप्त कर भावनात्मक तादात्म्य उपस्थित करती है। इस प्रकार गीति नाट्यों से भावनात्मक अभिनय और गीति सम्पादकों से उत्पन्न नाट्य-सौन्दर्य कोमल दृष्टियों को उत्तेजित कर साक्षात्कीकरण और रस की ओर प्रेरित करता है।

गीति नाट्य और नाटकों में भेद करना आवश्यक है। गद्य नाटक यथार्थ का पूर्ण चित्र उपस्थित करता है जिस में सामाजिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक, ऐतिहासिक, राष्ट्रीय, जातीय, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक तथा अन्य समस्याएँ प्रस्तुत की जाती हैं। गद्य नाटक जीवन के यथार्थ के अति निकट है। वर्तमान हिन्दी नाटक कारों पर यूरोपीय नाटक कारों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। पश्चिमी देशों के नाटक कारों, विशेष रूप से ब्रक्सन, क्लार्क सा, गाल्सवर्थी, आदि के यथार्थ वादी दृष्टिकोण ने हिन्दी नाटक कारों को प्रभावित किया है जिसके परिणामस्वरूप हिन्दी में समस्या नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ और ऐतिहासिक एवं पौराणिक नाटकों के साथ साथ इन नाटकों का भी समुचित विकास होता रहा है।

नव्य नाटक:-

प्रथम महा युद्ध के बाद अंग्रेजी नाटकों में यथार्थवाद के चित्रण की माँग बढ़ती गई। दैनिक जीवन की उपलब्धियों के अतिरिक्त भी जीवन के वस्तुनिष्ठ यथार्थ की भी नाटक कार से अपेक्षा की जाती थी।¹ नाटक उनके लिये पलायन की प्रपञ्चति

1:- डा० गोविन्द त्रिगुणाक्षर:- शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त पृ० 32

का सुचक नहीं था। ये आधुनिक नाटक ही समस्या नाटक ~~जैसे~~ जैने जो समाज के परम्परागत प्रतिबंधों को स्वीकार न कर वैयक्तिक संज्ञा को अपने माध्यम से अधिक से अधिक यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने के लिये तैयार रहते थे। इन नाटकों में वैचारिक एवं सामाजिक अन्तर्द्वन्द्व को प्रस्तुत कर स्वतंत्रता, समानता एवं न्याय-प्रियता के सिद्धान्तों को चरीयता दी गई है। शिश्न विज्ञान की दृष्टि से भी इन नाटकों में नवीन सुजन शक्ति, अभिव्यक्ति, शैली और भाषा को विकसित किया गया है। परम्परागत रूप शैली या तो इनके मनोमुक्त न थी ^{या} किन्तु फिर इनमें ने इसे स्वीकार नहीं किया। जीवन की वास्तविकता और यथार्थ के निरन्तर चित्रण से ये नाटक इतरांतरांतर वैचारिक सम्वाद और उपदेश मात्र बनते चले गये। पर यह स्थिति अधिक समय तक नहीं रही। यथार्थ वादी नाटकों से परिचयी साहित्यकार भी अब गये और प्रतिष्ठित स्वस्थ शीघ्र ही नव्य नाटकों की रचना होने लगी। इनके अग्रज अग्रणी थे ~~ही~~ ^{ही} ए० ए० इलियट। उनका विश्वास था कि कविता ही नाट्य रचना के लिये उपयुक्त एवं उचित माध्यम है और पद्यबद्ध नाटक ही सम्पूर्ण वावाचक की अभिव्यक्ति में समर्थ साधन है।^२ इलियट ने सामान्य स्वभावों की प्रमुक्तता देते हुये इसे काव्य - नाटकों से समन्वित किया।^३ उसका यह भी विश्वास है कि जीवन की पलायन क्षति को काव्य-नाटक के माध्यम से ही आनन्द वाचिनी क्षति में परिवर्तित किया जा सकता है। इलियट के ही स्वर में जायरसेंड वासी कवि एवं नाटककार डरब्यू० बी० वीट्स ने अपने काव्य - नाटकों के माध्यम से यथार्थ वादी नाटकों के प्रतिरोध में नीति नाट्य की वैधता स्थापित करने की चेष्टा की है। वीट्स ने विशेष रूप से वैसीय मिथकों को अपने काव्य-नाटकों का विषय बनाया और इस प्रकार नीति नाट्यों का विषय मिथकोंमूढ हो गया। बीसवीं शताब्दी के नाटकों की वीट्स की सब से बड़ी देन उसकी नीतात्मकता एवं प्रतिकात्मकता ही है जो इन नाटकों का ग्राह्य है। अग्रज आलोचक प्रो० डेविड हायसिड ^{ने} इलियट को २० वीं सदी का एक छोटा किन्तु महत्त्व कवि माना है, परन्तु नाटककार के रूप में वह सदा सर्वदा विस्मयित रहेगा। केम्बर के रिक्योन का मत है कि कविता ही नाटक की वाचिनी शक्ति है। केम्बर के अनुसार 'नाटक जब तक नाटक है जब तक कि वह आन्तरिक मनोवैशेषों से निबन्धित है और नाटकी का वाक्य स्वस्थ वाक्यों की स्मृति के लिये एक सामान्य क्रिया मात्र सम का जाये ना'।^४ इस प्रकार यह सिद्ध

१. The post war generation of men and women started the demand for reality, above all things. They demanded that dramatists should show them life as if living itself. The theatre was not escape for them.

- The Drama Tomorrow: Sir Cadrick Hardwickle.

२. A. Nicoll; British Drama: With the treatment of actual life, the drama become more and more a drama of ideas, sometimes veiled in the main action, sometimes didactically set forth.

३. J.N. Pundra; The History of Eng. literature. T.S. Eliot P. 495. Quoted.

४. Ibid. P. 571 Quoted.

५. Ibid. P. 570 Quoted.

कहा गया है कि नाटकों के लिये काव्य-भाषा ही उपयुक्त माध्यम है और यह वक्ष्य-काव्य नाटक की हमारी अनुभूति के सम्बन्ध में सही है।

गीति नाट्य की परिभाषा और सत्य

गीति नाट्य की परिभाषा:-

गीति नाट्य, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, काव्य और अभिनय के सत्वों का समन्वय है। नाट्य के रूप में इसे स्पष्ट भी कहा जाता है। संस्कृत में काव्य नाटकों का अध्ययन काव्य के अन्तर्गत किया गया है। नाटकों को दूरवकाश की संज्ञा दी गई है। वर्तमान युग में गीति की भाषाभिन्नता की प्रमुख साहित्यिक विशेषता है। अतः गीति-प्रधान नाटकों को गीति नाट्यकी संज्ञा दी गई है। वर्तमान हिन्दी साहित्य पर अंग्रेजी साहित्य का बड़ा प्रभाव पड़ा है, विशेष कर गीति नाट्य को अंग्रेजी प्रभाव में ही लिखे गये हैं। अंग्रेजी में गीति नाट्य को *Poetic Drama* कहा गया है और पारंपरागत विचारक गीति नाट्य को ही नाटकों में सर्वोच्च कोटि मानते हैं। काव्य में ही प्रकृत भाषाभिन्नता सम्भव है अतः भाषों और सुवर्णों के अन्तर में काव्य से उत्तर अभिव्यक्ति ही दी नहीं सकती। श्री० एन० इलियट, जो गीति नाट्य के प्रमुख अधिवक्ता हैं, गीति नाट्य को सौष्ठव सौवर्णों की एक मात्र प्रकृत भाषा मानते हैं, जिसमें भाषणाओं के सूक्ष्मत्व स्वरूपों को अभिव्यक्ति मिलती है।^१ वे अनुव्य मात्र में काव्य स्वरूपों की प्रकृति को स्थाई मानते हैं क्योंकि कि जीवन में जो वाच्य है, काव्य स्वरूप उसी को कल्पना के सहारे प्रकट कर आनन्द पूर्ण और सुशुद्ध बनाता है।

उक्त गीतिनाट्य त्रिगुणायतन में अपने समीक्षा-काल में Jones की परिभाषा को उद्धृत करते हुये यह स्पष्टीकार किया है कि नाटक का सर्वोत्कृष्ट रूप काव्य नाटक ही है और जिसने भी नाटक के प्रमुख प्रतिपादक हैं उनमें काव्य-नाटक को ही प्राथमिक नाटकका समझना चाहिये।^२ अंग्रेजी नाटककार, उपन्यासकार, और गीतिकार जॉन गाल्सवर्थी ने कविता के प्रभाव को सही साहित्य की विद्वानों में प्रमुख माना है और ही वक्ष्य-काव्य मध्य-स्वकात्मक ही क्योंकि ऐसा स्वकात्मक-मध्य भी फेन्टाली और प्रतीक के द्वारा मानवीय भाषणाओं, चिन्ताओं, रहस्य और कल्पना को व्यक्त करता है।

उक्त त्रिगुणायतन ने प्रो० चेन्नर की परिभाषा का गीति नाट्य के सम्बन्ध में ^{पक्ष} कि यह से उल्लेख किया है—“गीति नाट्य को हमन ही काव्य नाटक कह सकते हैं और न ही नाट्य-काव्य। यह एक प्रकार का ऐसा स्वरूप है जिस में अभिनेता के साथ साथ वक्ष्य-साक्षता भी होती है। इसमें केवल कविता के सभी गुण होते हैं। तब गीति नाट्य केवल वक्ष्यकाव्य ही नहीं होते, उनमें नाटककार की विचार धारा और भाव-धारा प्रकट करती है। इसमें नाटकीयता भी होना चाहिये।”^३

1. It will only be poetry when a dramatic situation has reached such a point of interest that poetry becomes the natural utterance because then it is the only language in which the emotions can be exposed.
2. The greatest examples of drama are poetic drama and the highest school of drama are and must ever be the school of poetic drama. Jones - *History of English Literature* & *History of English Literature*
3. The poetic play is not merely stuffed with verse, it is one in which the verse is an essential and inevitable overflowing of play with thoughts.

Prof. Chellur H. S. S. S.

आदर्श और नीति नाट्य में वाच्य प्रियाशीलता एवं संघर्ष के स्थान पर मानसिक भाव संघर्ष को ही प्रमुखता दी है। इनमें से वाच्य प्रिया कलाओं को नि नितांत गौड़ स्थिति में रखा है, किन्तु यदि वह वाच्य प्रियाशीलता सूक्ष्म हो गई तो अभिनय के अभाव में नीति नाट्य एक स्वयं का व्यंग्य मात्र रह जायेगा। यह परिणाम अपूर्ण है। नीति नाट्य के सफल प्रयोग कर्ता आचार्य श्री उदय शंकर भट्ट ने नीति नाट्य को भावनाट्य से प्रयुक्त माना है। कविता उद्भव नाटकों की दृष्टिकोण में नीति नाट्य की संज्ञा दी गई है। इन नाटकों में मानव बुद्धि के संघर्षी भावों का अभिव्यक्ति करण होता है। इसमें प्रिया मानसिक है। इसी से भावों का इस्थान पतन होता है। जहां नीति बद्ध में स्वर भावों का संघर्ष होता है उसे नीति नाट्य कहते हैं। नीति नाट्य भाव नाट्यों का ~~व्यंग्य~~ ^{व्यंग्य} है। बहिरंग है १

नीति नाट्य आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति के लिये सर्वथा उपयुक्त है। नीति नाट्य को भाव नाट्य से प्रयुक्त करते हुये भट्ट जी का मत है कि भाव नाट्य मूलतः प्रतीक से व्यंग्य प्रकट करते हैं। एक मनोभाव के अन्तर्द्वारा दूसरे मनोभावों के बीच जो संभावित योग है वह सदा प्रतीकों द्वारा ही स्पष्ट होता है।²

डा० मोहन ने नाट्य को स्वयं का ही भेद माना है जिसमें भावना की प्रधानता है। अन्तर्द्वारा और मन के उद्देश्य को प्रकट करने में यदि अभिनय कील का योग और हो तो वही नीति नाट्य बन जाता है। उनके अनुसार "नीति नाट्य स्वयं का ही भेद वैयक्तिक प्राम तत्त्व है भावना/अथवा मन का संघर्ष और माध्यम है कविता।³ सिधनाथ ने नीति नाट्य की विशेषता इसका काव्यत्व माना है। काव्यत्व से उनका तात्पर्य क्या था से नहीं प्रत्युक्त भावमयता और रसात्मकता से है।

डा० सिध नाथ कुमार के अनुसार नीति नाट्य को काव्य नाट्य कहना अधिक उपयुक्त लगता है और पूर्ण काव्य भाव प्रधान होता है। काव्य नाटक के अन्तर्गत भाव नाट्य स्वयं की समाहित हो जाता है। अंग्रेजी में भी ऐसे नाटकों को *Poetic Drama* कहा जाता है। ध्यान देने की बात है कि ये दोनों ही नाम *Poetic Drama*

काव्यनाटक और नहीं है। नये है ४

डा० मन मोहन मोहन का मत इन सब से भिन्न है। वे नीति नाट्य को मुख्य काव्य मानते हैं। नाटकीय तत्त्व उनके मतानुसार गौण है। नीति नाट्य मुख्य काव्य है। इसका विषय रस है। यह रसा ^{प्रति} काव्य दूर्य है और वाच्य भी। नीति नाट्य नीति तत्त्व ही प्रमुख है। छटना और व्यापार केवल उपादान से ही प्रत्युक्त होते हैं। इनके माध्यम से मात्र ज्यों के अन्तर्गत के तात् प्रतिवातों का सखोर्षेत्तन प्रकाशित होता है। नीति नाट्य में कठोर नाटकीय

१. उदयशंकर भट्ट: विश्वकविता और दो अर्थ नाट्य - (पृथीक)

२. नही

३. मोहन - आधुनिक हिन्दी नाटक पृ. १०३

४. Dr. सिधनाथ कुमार: हिन्दी पत्रों की शिल्पविधि की विवेक पृ. ३५३

उत्कृष्ट अनुशासन नहीं चल पाता, भावावेग का सहजोच्छवास प्रवाहमान रहता है। इसी के भीतर तर्क का योगदान शांत मन्य भित्त से चलता रहता है। यह नाटकीय व्यापार इतना शांत और लिख होता है कि नीति की भाव प्रकृता में किसी प्रकार की अव्यवस्था नहीं आने पाती। इस प्रकार नीति नाट्य में नाटकीय संस्पर्श के साथ उच्च कौटि के काव्य का समन्वय होता है।^१ इसी संदर्भ में डा० नीलम ने भाव नाट्य की नीति नाट्य का अग्रिम चरण भी कहा है।

नीति नाट्य और भाव नाट्य के विषय में पं० उदय शंकर भट्ट तथा डा० सिद्ध नाथ कुमार के परस्पर विरोधी त्वरों को स्पष्ट करते हुये डा० नीलम ने लिखा है, "नीति नाट्य में नीति तत्त्व की प्रधानता होने के कारण भाव तत्त्व प्रधान होता है, कार्य वस्तु नीम होती है। फिर भी कार्य वस्तु और पात्र का चरित्रांकन अपना महत्व रखता ही है। भाव नाट्य में कार्य वस्तु और पात्र किसी प्रतीक के माध्यम मात्र होते हैं। पात्र ऐतिहासिक हो या पौराणिक, यह किसी शास्त्रज्ञ मनोभाव का प्रतीक ही होता है। — भाव नाट्य का अभिप्राय तो होता है, किन्तु इसके लिये अनुपम रंग मंच एवं उच्चतम स्तर के सद्बुद्ध प्रेक्षकों की आवश्यकता है। सारांश यह कि नृत्य नाट्य, नीति नाट्य और भाव नाट्य में काव्य वक्ष उत्तरोत्तर बढ़ता है और दृश्यबल घटता जाता है। नृत्य नाट्य शुद्ध रंग मंचीय और भाव नाट्य शुद्ध पठनीय हो गये हैं। नीति नाट्य की स्थिति मध्यवर्ती है।^२ दूसरी ओर पं० उदय शंकर भट्ट ने जोह कन चन्द्रिनी और अन्य नीति नाट्यों को नृत्य नाटक ही कहा है।

नीति नाट्य में पात्र-प्रमुखता को धृष्टिगत करते हुये यह प्रमत्त होता है कि यह नाटक प्रधान है या नायिका प्रधान। इसका विवेचन करते हुये आचार्य विनय मोहन हंस ने अपना मत व्यक्त करते हुये लिखा है कि "नीति नाट्य में नीतितात्मकता के अतिरिक्त एक पुन और चाहिये—यह है नारी का बाहुल्य। साथ ही उसकी नायिका नारी होती है और रस होता है रसरास संगार। रचना संज्ञ की दृष्टि दृष्टि से यही भाव नाट्य कहलाता है।^३ वस्तुतः शिल्प तो रस की दृष्टि से अभिन्न समन्वित नाट्य की ही नीति नाट्य के अन्तर्गत ही रहना चाहिये। भाव नाट्य एक सूक्ष्मतर स्थिति है, यह पाट्य ही रहती है और पाठक अपनी संवेदन क्षमता के अनुसार देखा ही मानसिक रंगमंच तैयार कर लेता है।

डा० राम चन्द्र मोहन ने नीति नाट्य में संगीत की प्रमुख स्थान दिया है। उनके अनुसार "नीति नाट्य का सार्वभौम है यह रचना जिस में नीति अधिक हो या यह नाटक जो केवल नीतियों पर आधारित हो और जिस में रंग उन्हीं का प्रधान्य हो। नीति नाट्यों में प्रचुर काव्य तो रस तथा रंग तत्त्व रहना चाहिये। कवित्व इसका ग्राम है। वे इसमें संगीत भी रहता है।^४ संगीत की प्रमुखता एवं प्रभावोत्पादकता निःसंशय है। संगीत का मानव मात्र पर ही नहीं पशु-पक्षियों एवं वनस्पति जगत तक इसका प्रभाव व्याप्त है। आचार्य जानकी लालभास्करानी ने काव्य-नाटकों को

१. डॉ. म. मोहन जोषी - उदयशंकर भट्ट का कौटि साहित्यक ५.७६

२. पृ. ८०

३. डॉ. सिद्धनाथ कुमार भट्ट अग्रवाल, ए.पी.ए. की शिक्षाविधि की विवेक

४. डॉ. मोहन - ए.पी.ए. के विद्वानों का नाटक का ५.७५

संगीतिका कहा है: उनके अनुसार "संगीतिका के रस-भावों का साधारणीकरण होता है। काव्य और नाटक का समतुल्य संगीत द्वारा साकार होता है, अधिक सीधे और मौलिक बनता है। और संगीत भी निरी आकृति या स्वर कमजोर नहीं है।" काव्य नाटक और संगीतिका का भी अन्तर स्पष्ट करते हुये शास्त्री जी ने अपने मत को और अधिक स्पष्ट किया है, "काव्य नाटकों में भी मानव-जीवन के राम तत्वों को गूढ़न किया जाता है और भावनाओं तथा अनुभूतियों को बाणी दी जाती है; किन्तु संगीतिका में तो इन्हे माया भी जाता है। अनुभूतियों की सीधता भी इन्हे से व्यक्त होती है, बात प्रतिपादों के आकृष्य - प्रसारण एवं स्वरों के तुल्य से इसे कृत किया जाता है ऐसे उन्मोक्त शब्दों के नाटकीय संताप से सम्भव नहीं है।" यह भी उल्लेखनीय है कि समस्तकी अग्रस्तु शीर्षक भूमिका के प्रसारण में ही शास्त्री जी ने अपनी संगीतिकाओं की गीति नाट्य के अन्तर्गत ही माना है, "हिन्दी की गीति नाट्य क्या को समझा मरी दूसरी भेट है। इसमेंकी वातणी के भाति मेरी बाँध संगीतिकायें सम्मिलित हैं।" उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि संगीतिकाओं का गीति नाट्य से प्रथम अथवा स्वतंत्र कोई अस्तित्व नहीं है। अतः गीति नाट्य को संगीतिकाओं की संज्ञा देना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता।

संगीत गीत का ही अंग है और काव्य दोनों काही एक। काव्य की विशेषताओं पर जब दृष्टिपात करते हैं तो तीन प्रमुख तत्व हमारे सम्म आते हैं— पद्य स्वर, अद्भुत सौंदर्य, और गीतात्मकता। अग्रेजी आलोचक रोनाल्ड पीकोक ने इन्हीं तीन तत्वों की ओर इशारा किया है।^१

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गीति नाट्य काव्य-काव्य के अन्तर्गत एक अभिन्न होती है जिसका प्रयोग यूरोपीय देशों में चलकर भारत में इस परिवर्तित रूप में गीति नाट्य की संज्ञासेक लेकर आया है। हिन्दी साहित्य में गीति नाट्य अपने विभिन्न नाम त्यों में विकसित हो रहा है। रास, रामक, सीता नाटक, लख, चेतन, स्वांग, भक्तिवा, रंग आदि इसके अनेक रूप रहे हैं। राम सीता और रास सीता के रंग मंचीय प्रदर्शन आज भी होते हैं और अनेक नाटक मण्डलियां बाध भी इन्हे पद्य की भाषा में संवाद जोड़कर अभिनीत करती हैं। अतः गीति नाट्य के विविध रूप तो हमारे देश में प्रचलित ही रहे हैं, किन्तु इस नवीन संज्ञा और विशिष्ट शैली में इसका अस्तित्व भी साहित्य की एक प्रथम ^{विधा} स्वीकृत माना जाने लगा है। गीति नाट्य में भाव प्रकृता, अनुभूति की सीधता, विषय वस्तु की प्राचीनता मिथक, संगीतात्मकता आदि ऐसे तत्व हैं जिन से गीति नाट्य को अब सर्वथा अंग से हट कर अंगी की संज्ञा मिलना चाहिये। गीत शब्द से निश्चय ही एक सीमा का जोड़ होता है। अतः इसे काव्य नाटक भी कहा जा सक्ता है, किन्तु काव्य-नाटक शब्द की व्यापकता से गीति नाट्य की सीमाता और भावात्मकता ओझाकूझीन होने लगती है। अतएव इसे काव्यान्तर्गत एक स्वतंत्र साहित्यिक ^{विधा} स्वीकृत माना जाना चाहिये और इसे ही ऐसे उन्मोक्त काव्य महाकाव्य के क्षेत्र में अपना स्वतंत्र अस्तित्व जमाये रहता है। काव्य सङ्ग्रहोंमें नाटकों में गीति नाट्य एक अभिन्न शैली है

१. आचार्य जीन्दी वल्लभ शास्त्री. तस्मा १ ११

२. अष्टी पृ. ७

३. Reynold Peacock: 'The Art of Drama' Page 217

जिसमें रागात्मक सत्य अभिव्यक्त सत्य की ओर अधिक प्रभावित करते हैं।

गीति नाट्य के सत्य

भाव सत्य:-

गीति नाट्य के सत्यों का विश्लेषण करते हुये डा० फुल्ल सिंघल ने इसे अन्तर्जीवन एवं बहिर्जीवन इन दो भागों में विभोजित किया है। अन्तर्जीवन के रूप में मनोभाव, मनोवेग, संवेग, अनुभूति, प्रेरणा, राग और विराग गीति नाट्य रचना के सम्बन्धित साधन हैं। इनकी सहायता अभिव्यक्ति की प्रभावशील होती है। इसके पूर्व कि गीति नाट्य के सत्यों का विश्लेषण किया जाये यह आवश्यक है कि हम इसकी रूप रचना का आधार जान लें। जब ललित कलाओं में वाच्य कला की मानसिक अभिव्यक्ति होती है चाहे वह वास्तु कला, मूर्ति कला, चित्र कला, संगीत अथवा काव्य किसी भी एक कला से या समस्त कलाओं से समग्र सम्बन्धित हो। यथार्थ कला का विमोक्षणक स्वभाव की ललित कलाओं में अभिव्यक्त होता है। अन्तर दृष्टि की है कि विमोक्षणक अभिव्यक्ति में सौंदर्य निर्माण की चेष्टा की जाती है तभी इसे हम कला की संज्ञा देते हैं। कला वह नहीं है जैसी कि कोई वस्तु हमें दिखाई देती है, उसे कलाकार अपने भाव कला से समृद्ध कर सुन्दर और ललित बना देता है। यह सौंदर्य कल्पना द्वारा प्रयुक्त रंग और कल्पना से ही संयुक्त होता है। चरित्र के उपादानों से उत्पन्न अनुभूति भावनाओं से प्राकृत होकर कला में अभिव्यक्त होती है। यह भाव कला और अनुभूति का संगम है। भाव कला की अभिव्यक्ति में के भी जिन उपादानों का प्रयोग हम करते हैं वे सब सूक्ष्म हैं। संगीत का माधुर्य, गीत की लय और शब्दों का अलंकरण मनोभाव-अभिव्यक्ति को गतिशील बनाते हैं। भाव कला का कार्य व्यापार चरित्र के वस्तु लोक से प्रेरित मनोवेगों से नितांत भिन्न होते हुये भी कलाओं में हम से संयुक्त हो जाता है। यही लिये चरित्र के सार्वभौमिक चरित्रात्मक चित्रण, वास्तु प्रतिपादन, संवाद, कटनावें सब मध्य-नाटक में उपयोगी हैं। किन्तु काव्य-नाटक में विशेष कर गीति नाटक में भाव कला की प्रधानता है जिसका सीधा सम्बन्ध अन्तर्जीवन है, मनोवेगों, भावनाओं, प्रेरणाओं और अन्तः, सौंदर्य से ही वह उपजाता है और इसी का आधार भी है। मनोवेगों के तीव्र भावोद्बोधन में साधन-साधक रूप से अलंकृत वाणी में अभिव्यक्त होने लगते हैं। नाटककार स्पष्टीकरण होता है—गीति नाट्य का स्व-साधन। तदनुसार मनोभाव भी भिन्न होते हैं। मनोभावों की अतिशयोक्ति के कारण व्यक्ति की जो भी अनुभूति होती है वह नितांत वैयक्तिक है। अलग अलग व्यक्तियों में अनुभूति की तीव्रता भी अलग अलग होती है। गीति नाट्यकार अपनी व्यक्तिगत अनुभूति को लोक अनुभूति से प्रयुक्त कर जीवन की पुष्ट भूमि में स्थापित करता है और आन्तरिक प्रेरणाओं का निर्वहन एवं नियन्त्रण करती हैं। गीति नाट्यकार न तो पात्रों की ही दृष्टिकोण से और न ही जीवन कला की यथार्थता से इसे प्रभावित करता है। गीति नाट्य में लोक-प्रभाव की स्थिति सर्वत्र गौण अथवा शून्य है।^१ गीति नाट्य के पात्र आन्तरिक प्रेरणा से संभावित होते हैं अतः

१. Priscilla Thowles ; Modern Poetic Drama Page 9

उनमें सदैव हीलता और स्वानुभूति की भावना अधिक होती है, दूसरे के समाज-निर्निष्ठ होने के कारण समाज से दूर और उसकी खटित यथार्थता से उदासीन रहते हैं। जीवन के भौतिक संघर्ष वहाँ प्रभावी नहीं होते। गीति नाट्य में भावनात्मक तादात्म्य स्थापित रहता है अतः मनोवेग प्रेरणार्थक, राम-विह्वल, भावनायें अभिव्यक्ति पाकर गीतादि माध्यम से अभिव्यक्ति होती है।^२ नाटक में जैसे ही पात्र-वर्ग भावों का दृग्भांग होता है जो शुद्ध व्यक्तिगत है जैसे पागलपन के दुरय, प्रणय दुरय, मृत्यु दाह-प्रिया, मदान्धता, कलना-कलक दुरय आदि जिनमें परिवर्तनों के बदलते-बदलते भावों को पुनर्जीवित कर चित्रित किया जाये।^२ गीति नाट्य में ही ऐसी व्यक्ति बरक अभिव्यक्ति सम्भव है।

चित्रात्मकता:-

गीति नाट्य में वाद्य जगत के उपयोद्धान संगीत-ध्वनि द्वारा गतिशील होते हैं। संसार के कार्य व्यापार सत्ता-प्रधान हैं, उन्हें भावना प्रधान रूप में अभिव्यक्ति देने के लिये काव्य और संगीत दोनों को ही विम्वर रचना करना पड़ती है। विम्वर-रचना अतः ही नहीं होती, उसमें कल्पना का योग रहता है। जो व्यक्ति चित्तना सदैव हील है, चित्तना कल्पना हील है उसकी ही उसकी विम्वर रचना-शक्ति प्रकट होगी। आचार्य जानकी बालक शास्त्री का मत है कि काव्य और नाटक का सम्बन्ध संगीत द्वारा ही साकार होता है। प्रत्येक वास्तु की कलात्मक अभिव्यक्ति ही विम्वर है। विम्वर जब प्रकट होने लगते हैं, उनमें गतिशीलता होने लगती है, उनमें जीवन लक्षण दृश्य होने लगते हैं। सभी उनमें नाटकीयता आने लगती है। विम्वर कभी तो वास्तु जगत का प्रतिरूप प्रस्तुत करते हैं जैसे मंद सज्जा आदि, कभी विचार/त्मकता का बोध कराते हैं, किन्तु किसी भी स्थिति में जो वे प्रभावी बने रहते हैं।^३ गीति नाट्य में ^{युग्म अभिव्यक्ति} ~~युग्म अभिव्यक्ति~~ अथवा सदैव हीलता से सम्बन्धित होते हैं। जगत का यथार्थ गीति नाट्य द्वारा ही भावनाओं से साक्षात्सम्बन्ध कर विम्वर रूप प्रकट करता है। ये सब सम्बन्धित विम्वर गीति नाट्य की ही उपलब्धि है। गीति नाट्य ऐन्द्रियिक अनुभूति को मूर्त रूप में प्रस्तुत करने में सर्वोत्तम है अतः ये मूर्त रूप विम्वर आकार से कर प्रभावी बन जाते हैं और नाटक दीप्ति और प्रभा से ललित कोमल और सुन्दर बन जाता है। युग्म अनुभूतियों के चित्रात्मक रूप मूर्त और स्थूल माध्यम से ही अभिव्यक्ति पाते हैं। संसार के प्रभाव से विम्वर में जन्म ललित कलाओं के मूर्त रूप की अवस्था अधिक खटितता प्रत्यक्ष होती है, किन्तु यह भी सत्य है कि मूर्तकलाओं की सदैव हीलता ~~यह युग्म~~ ^{यह युग्म} है जबकि संगीत से प्रत्यक्षमनोभाव भाव्य अथवा अधिक प्रभावी हैं। दूसरी ओर कला का कार्य व्यापार सत्ता विस्तृत है कि जब विम्वर बदलते संक्रमित होते हैं तो गीति नाट्य की सार्थकता केवल कला की प्रतिपादन करती है।

युग्म कला-सम्बन्धित विम्वरों से एक अव्यक्त रूप की रचना होने लगती है। यह विम्वर-रचना युग्म तो प्रकृत वास्तुओं का प्रतीक बनती है और युग्म भावनाओं की अभिव्यक्ति। युग्म प्रतीक और भावनाभिव्यक्ति मिलकर रूप बन जाते हैं। रूप में एक ओर मूर्तता की स्थिरता है दूसरी ओर भावों की कोमलता में निहित लौकिक। इस प्रकार गीति की ही रूप रूप और प्रतीक दोनों की ही संवादिका है।

१. Reynold Peacock: The Art of Drama P 190

अभिप्रेत अभिव्यक्ति व्यापक शब्द है। शब्द भी किसी बिम्ब की प्रतीति है। ध्वनि में भी संगीत निहित है, संगीत तो ध्वनियों की व्यवस्था है। काव्य या गीत का संगीत भी ध्वनियों में समाहित है। भावा वर नहीं जिन से विभिन्न राग-रागिनियाँ जीवनजगत को तरंगित कर देती हैं। राग-रागिनियों के स्वर संसाधन में भी बिम्बात्मकता ही है। उन्हें हम अपने यथार्थ जगत में स्वयं नही देखते, तब तक ही देख सकते हैं। जब हम यथार्थ या यथा सत्य अनुभव करने लगेंगे, अपने मन और मन से उसका विवेक कर भोगेंगे तो उस सत्य में कल्पना का सौंदर्यसमाप्त हो जायेगा और और हम अनियंत्रित, मदान्ध या ओषान्ध हो जायेंगे। अज्ञात सौंदर्य वास्तु-सत्य की ही अनुभूत बिम्बात्मकता है। अज्ञात अनुभवों को स्थापित/समर्थ करता अपितु अनुभवों के बिम्बों को चित्रित करता है। गीति नाट्य में ये बिम्ब ही मुखर होते हैं। बिम्ब योजना का एक कला का ही ध्यान है। गीति नाट्य में बिम्ब रचना का प्रमुख एक साधन सत्य है। इन्द्रोक्त होने के कारण गीत की सत्य एक ओर विषय वास्तु की मूर्त रूप प्रदान कर बिम्बनिर्मित करती है तो दूसरी ओर प्रेक्षकों में भी बिम्ब ग्रहण करने की क्षमता का विकास करती है। सेतिल के सेतिल का मत है यदि पद्य अभी भी बिम्बों (काव्यात्मक चित्र) का सब से प्रबल माध्यम है तो केवल इस लिये कि अपनी स्वयं सेवित सीमाओं और जाकुतिगत विशेषताओं के कारण यह (पद्य) चित्र-समिति में अधिक तीव्रता, अधिक स्पष्ट ध्वनियों और अधिक जटिल सम्बन्धों की सृष्टि कर सकता है। बिम्बात्मक-चित्रों की स्वात्मकता की यह विशेषता उसके एक सतत प्रतीक द्वारा ही सम्पादित होती है।

प्रतीक तत्त्व:-

गीति नाट्य में प्रतीक बिम्ब रचना के संवाहक है। गीति, ऊँचता, पद्य, और काव्य इतने निकट अर्थों में प्रयुक्त होते हैं कि इनका अन्तर हो नहीं सकता। प्रतीक तत्त्व काव्य की सृष्टि है। जब काव्य को गीत को ध्वनि - सत्य के परिवेष्ट में प्रस्तुत किया जाता है तब प्रतीक तत्त्व और भी सूक्ष्म तथा और भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं। गीति नाट्य के बिम्ब, स्वर, सत्य, ध्वनि, तब किसी कथानक के अंग न हो कर स्वयं अंग बन जाते हैं। यह भी विचारणीय है कि प्रतीक सदैव एक सनातन रूप-रचना ही नहीं करते। इनका काव्यात्मक अर्थ सदैवतीन कौटुहल में अभिव्यक्त रहता है:-

1- काव्य के शास्त्रीय युग से पद्यात्मक स्वत्व।

2-अनुभूत - सौंदर्य का रचना संसार और

3-गीत संगीतात्मक स्वर का स्वत्व।

इन्हीं तीनों स्वत्वों के कारण प्रतीक रचना को कला से सम्बन्धित किया जाता है। प्रतीक गीति नाट्य कला का प्रानाधार है। काव्य कला में विभिन्न कल्पना सत्वों की समन्वयता अथवा भावनाओं की उद्घोषण व शक्ति के प्रतीक परिवेष्ट के द्वारा जो अभिव्यक्ति मिलती है वह गीति नाट्य में अभिव्यक्त क्षमता का सूचक भी करती है।

ये प्रतीक नाटकीय अभिव्यक्ति को लो वर्णता ^{प्रदान} करते ही हैं। इसे पूर्व नाटकीय भी कहाते हैं।^१

प्रतीक कला की भावना को सुरक्षित ही सम्मेलित करने में समर्थ है। कला सम्मेलन शीत है, सब प्रभावकारी है और इसे सम्मेलित करने के लिये सब ही प्रतीक भी उपलब्ध रहते हैं। भीति नाट्य कार के इन कला-भाव प्रतीकों की मिल्क, अभिव्यक्ति परक काव्य या उपमा प्रधान काव्य में होजा जा सकता है। भीति नाट्य कार इन प्रतीकों का प्रयोग परम्परागत कथानकों को प्रस्तुत करने में ही नहीं लगाते अपितु इन्हें भावात्मक के दुर्तनों में रह कलात्मक तीव्रता (Poetic Intensification) के लिये भी प्रयोग करते हैं। वस्तु का दूर कठोर तब प्रेक्षक तक पहुँचते पहुँचते कोमल, कल्प और चित्रात्मक रूप ग्रहण कर लेता है।

काव्य में प्रतीक-योजना अनुसृष्टियों के और सम्मेलन शीत विचारों के केन्द्र में रहती है और भावोच्छेदन की क्रिया को काव्यात्मक तीव्रता प्रदान करने में समर्थ रहती है। तेनाउट वीकाउ ने प्रतीकों के नाटकीय महत्व के विषय में लिखा है कि कलात्मक तीव्रता के माध्यम प्रतीक ही हैं। ये मनोभावनाओं के केन्द्र बिन्दु हैं जहाँ भावनात्मक विचार-समूहों का प्रतिनिधित्व करते हैं यद्यपि इनकी प्रतीकात्मक तीव्रता परिवर्तित होती रहती है।^२ इन प्रतीकों की भी सीमाएँ हैं। तब तक ये प्रतीक भीति नाट्य की सीमा परिधि में प्रसारित हैं तब तक ये नाटक में काव्यात्मक सौंदर्य की अभिव्यक्ति करते हैं। अतः यह यह प्रतीक विषय-वस्तु और पात्रों के चरित्र चित्रण में मिल्क और तथ्य सम्बन्धों का समन्वय करते हैं, तब तक नाटक की काव्यात्मकता उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है और उनसे उत्पन्न कीर्ति और प्रभा नाटक की आत्मा बन जाती है।^३ प्रतीक, उपमान और रूपक दोनों ही नहीं होते हैं, ये रूढ़ि चिन्म मात्र न रहकर परिवेशों की सृष्टि करते हैं, स्मृतियों को उभारते हैं और भावनात्मक चेतना को सम्मेलन शीत बनाते हैं। अतः इन्हें स्फाटमक (Metaphoric) कहा गया है।

उत्पत्ति तथ्य:-

चिन्मों एवं प्रतीकों की रचना प्रक्रिया में कल्पना की सर्वाधिक उपयोगिता है। ध्वनि और तथ्य के आधार पर तथीय पूर्व विज्ञान कल्पना के माध्यम से ही सम्भव होता है। भीति नाट्य में काव्य साधन प्रयुक्त होने के कारण भी कल्पना महत्वपूर्ण योगदान करती है। अतः कवि यथार्थ की मूल रूप में प्रस्तुत ही नहीं करता, वह यथार्थ के चिन्म ही प्रस्तुत करता है। अतः कवि यथार्थ में भी कविता की लीनों का ऐसा अन्तः निहित माना है जो काल मानस में प्रकट स्वरूप द्वारा उद्भूत होते हैं अर्थात् कल्पना के द्वारा चिन्म पूर्व विज्ञान जाता है।^४

१. Raynold Peacock : The Art of Drama Page 225

2. Ibid P. 231

3. Ibid P 232

4. Poetry is the spontaneous overflow of powerful emotions recollected in tranquillity.

किसी भी पात्र का सम्बन्ध अन्ततः कवि की ही वाणी^४ जो उसकी सम्पूर्ण रचना में व्याप्त है। कवि का गीतात्मक रचना-कीर्तन कल्पना के परिधान में और अधिक सुन्दर बन जाता है।^१

कल्पना केवल कल्पना के रूप में पर आध्यात्मिक और त्रिव्यात्मक अभिन्न विषयों का ही निर्माण नहीं करता अपितु वह काव्यात्मक सम्भावनाओं की ही जन्म देती है। भावनाओं की गहिराई और अनुभूति की तीव्रता काव्य-प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्त करना कल्पना का ही कार्य है। गीति नाट्य में कल्पना का इसी तथे विशेष महत्त्व है।

चित्रोपमा:-

गीति नाट्य में कल्पना का सबसे बड़ा विशेषण यह है कि ऐन्द्रिक अनुभूतियों का चित्रण किया जाता है। ये ऐन्द्रिक अनुभूतियाँ विभिन्न प्रतीकों की रचना करती हैं, गीति नाट्य में केवल भाषा अथवा शब्द की स्थायित्वता या प्रतीकात्मकता ही महत्त्वपूर्ण नहीं है अपितु इतनी ही महत्त्वपूर्ण है उदात्त प्रतीकों की संरचना जिसका नाट्य में प्रयोग किया गया है। सम्पूर्ण चित्र और प्रतीक विधान किसी न किसी प्रतीकात्मकता के स्वरूप में ही संकुल होता रहता है।^२ गीति की मय में भी एक रचना विधान है, उसमें बाधुर्य है, संगीत है और आरोह अवरोह की संरचना है। प्रत्यक्ष किसी रूप-रचना की सम्प्रेषण करती है और पात्र में प्रेक्षक सङ्ग हमकी प्रविष्टि व्याप्त है। पात्र जो अभिन्न के अन्तर्गत मय पर प्रस्तुत करता है उसी प्रेक्षक के मानस बटन पर अंकित होता बना जाता है। कला की परिभाषा करने वाले बीडांड^३ लिखते हैं कि कला विचारों के माध्यम से पुनःरचित अनुभव है। यही प्रतीकात्मकता का चित्रोपमा है अर्थात् आध्यात्मिक चित्रोपमा है जो पुनः रचना की और अग्रसर होती है।^४ ये आध्यात्मिक में भी यदि गीति नाट्य के माध्यम से ही प्रस्तुत किया जाये तो इसकी पूर्ण प्रविष्टि की प्रतिष्ठा करा है।^५ सर्वोपरि भारतीय के गीति-नाट्य अन्धा-धुन में यही विशेषता पाई जाती है। 'संज्ञा' में कौन से उदाहरण हैं जो अपने चित्र-रसों को पाठकों के मानस-बटन पर अंकित कर लेते हैं। संज्ञा: चित्रोपमा की कठोरता एवं यथार्थवादिता को यदि कलात्मक अभिव्यक्ति मिलती है तो वह चित्र एवं प्रतीकों के माध्यमों से ही सुख है। एलरडॉम्बी^६ कहते हैं कि चित्रोपमा के संघर्ष पूर्ण अर्थ को अन्तर्गत की भावनात्मक अनुभूतियों के साथ एक साथ नहीं धिक्काया जा सकता।^७ इसी तर्क मद्देन गीति-नाट्यों में ऐसे चित्रों की अनुपम स्थायित्वता दृष्टिगत होती है जिसका प्रारम्भ और पर्याप्तान नाटकीय जीवन से हुआ है।

१. Reynold Peacock : The Art of Drama P. 225

२. Ibid 225-217

३. Ibid P. 67

४. J. Essae : The vehicle of drama & verse, its mechanism is imagery. Oxford

५. Abercrombie : 20th Century Eng. Critical Essays. P. 270

उत्तर ४ गीति-नाट्य-संस्कृत

गीति सत्य:-

गीति नाट्य की अभिनय सत्कता घटनाओं के मंचन में नहीं अपितु मंच की संरचना में निहित है। दूरियों को मंच पर प्रस्तुत करने के लिये अभिनय की अवस्था मुद्रा, नृत्य, संगीत, लय, ध्वनि, टोन और भावावेगों की अभिव्यक्ति आदि का ध्यान रखना नाटक कार के लिये विशेष विचारणीय होता है।

गीति नाट्य में गीत ही नाटक के सत्त माध्यम हैं। इनमें ही भावों की लय मिलती है और ध्वनि की गत्यात्मकता के कारण भावों के सम्प्रेषण में सहायता भी। ध्वनि और लय हमारे भौतिक जीवन के अंग हैं। अतः हमारी भावनाओं से भी उनका सीधा सम्बन्ध है जिसकी अभिव्यक्ति नाट्य में गीत भुंजन द्वारा होती है।

गीति नाट्य में काव्य का प्रयोग व्यंग्यात्मकता के संगम के लिये अव्यक्त है। ध्वनि का सम्बन्ध काल-बोध से भी है। नाटक में कुछ घटनायें पूर्वानुमानित होती हैं, कुछ नाटक का मुख्य भाग सूचन करती हैं और कुछ घटनायें अनुभागी होती हैं। नाटकीय स्थिति का पूर्वानुमान कर लिया जाता है और मंच पर प्रस्तुत करते समय पूर्वचिन्तन के काल-बोध को ही गीतारमक ध्वनियाँ ही संयोजित एवं अभिव्यक्त करती हैं।

लय वैविध्य ही गीति नाट्य का प्राण है। अभिनय-योजना में गीत-ध्वनियों का विशेष महत्त्व होता है। भिन्न भिन्न ध्वनियों से पात्र की भावना, मनोस्थिति तथा उसके चरित्र का विकास किया जाता है। ऐसे ऐसे परिवर्तितियों का परिवर्तन दिखाया जाता है ऐसे ऐसे ध्वनि धर्मिन् से पात्रों की मनः स्थिति और मुद्राओं के परिवर्तन को परिवर्तित किया स्पष्ट जाता है।

गीति नाट्य में गीत-प्रयोग दो स्तरों में किया जाता है---छन्द विधान द्वारा अथवा लय-ध्वनि समन्वित भिन्न तुकान्त या अनुकान्त पद्य-वर्तियों में। अनुकान्त या भिन्न तुकान्त वर्तियों में लय का आरोह अवरोह गितान्त आकाङ्क्षक है। कभी कभी नाटक में स्वतन्त्र गीतों की रचना कर दी जाती है। इन स्वतन्त्र गीतों का भी विशेष महत्त्व है। ऐसे गीत (नाटक में भुज्जित घटना और पात्र की स्थिति) एक मानसिक विचार प्रक्रिया का दृष्टिकोण करते हैं। सम्यक्त मान (कोरस) का प्रयोग ही गीति नाट्य के सौन्दर्य को बढ़ा प्रयत्न है। सम्यक्त मान में जिसने

अधिक मात्र मात्र लेगी उसका पद्य उतना ही सरल, सीधा, और संगीतबद्ध होगा।
विनोद की उर्वरी में ऐसे समस्त मान अंक के प्रारम्भ, मध्य और अन्त में दिये
गये हैं।

गीति नाट्य में तन्मये तन्मये काव्य-सम्भाषण भी संयोजित हो जाती है।
'उर्वरी' में दूसरा और उर्वरी के दो दो पृष्ठ के सम्भाषण कदापि नटकीय कोशक
में अभिनय की दृष्टि से व्यवधान के तथापि मनोवैज्ञानिक उत्तेजना के क्षणों में
काव्यात्मक अभिव्यक्ति इतनी स्वाभाविक और गहन हो उठती है कि इन तन्मये
सम्भाषणों को हटाया जाना सम्भव नहीं, ^१इसकी तब मंग नहीं होना चाहिये।
रेनोल्ड पीकेल् ने भी यही मत व्यक्त किया है। ^२भाषावेगों की तीव्रता एक ओर
कवि के मनस झोक में होती है और दूसरी ओर मंच पर पात्र के जीवनानुभवों के
कारण उत्तेजना उत्पन्न करती है। तब ओर भावनायें पृथक नहीं की जा सकती।
कविता की तब ही भावना का प्रसार वेग बढन करती है और गीति नाट्य की
सफलता ही उसके सर्वथा काव्यात्मक होने में है।

गीति नाट्य का विधान दृष्टोक्त होता है। छन्द के प्रयोग से ही
गीति नाट्य की विषय-वस्तु की तीव्रता प्राप्त होती है किन्तु तब से अधिक म
महत्त्वपूर्ण बात है छन्द के निर्वाचन की। संस्कृत साहित्य में भाषाभिव्यक्ति की
तीव्रता, शिथिलता, गतिशीलता आदि के आधार पर ही छन्द विधान किया गया
है था। आज भी उसका महत्त्व है। किन्तु पारश्चात्य प्रजाती की अज्ञानता गीत-
ध्वनियों ने प्राचीन छन्दों के महत्त्व को जाह्नव कर लिया है। दूसरी ओर वर्तमान
युग की स्थितियों के अनुसार नें जन मानस में भी सामयिक परिवर्तन गौचर हो रहा
है। उसी के अनुसार काव्य के छन्द विधान में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक है।
अंग्रेजी में ब्लैंक वर्स *Blank verse* का प्रयोग स्वाभाविक वाक्प्राप्ति के अत्यन्त
निकट था, आः नाटक में भी इसकी उपयोगिता सर्वत्र थी-। ध्वनि के उत्तार-चढ़ाव
से भाषाभिव्यक्ति सहज थी किन्तु गम्भीर दार्शनिक चिन्तन के लिये भी कवियों ने
इसका प्रयोग कर इसे नाटक से लगभग ^{२५}जका दिया था। वर्तमान युग में युगः इसकी
प्रतिष्ठा एक ज्ञानित है।

छन्द के प्रयोग से गीतिनाट्य मनोहर और ललित बन जाता है। मुक्त छन्द
के ऐसे प्रयोग जंगला के अधिस्ताधर छन्द में हुये हैं। प्रसाद, मैत्री सरण गुप्त के प्रयोग
भी प्रशस्तनीय हैं। छन्दमें ध्वनि का प्रसारण और संकोचन बड़े तत्त्व होंगे से रंत जी
के गीत नाट्यों या रेडियो स्पर्कों में हुआ है। सुकृत और अज्ञात दोनों ही
प्रकार के छन्दों में तब की अवस्था रहती है। मुक्त छन्द की रचना मध्य और पद्य
दोनों के समीप रहती है। वाक्य की दृष्टि से विराम किन्तु तब की दृष्टि से

१. Reynold Peaseck: The Art of Drama P. 223.

The power of verse is connected with the fact that intense emotions seek an outlet
in the heightened speech and in this both rhythm and the figurative language
appropriate in verse show greater intensity.

कैलिक की गतिशीलता दोनों का निर्वाह मुक्त हृदय में देखे ही सम्भव है। मुक्त हृदयों की सरसता उपर्युक्त शब्द-कल्पन पर आधारित है। कथाकर्म, मुहावरे, अमिथा, लज्जा, व्यन्जना-शब्द शक्तियाँ, मधुरा, वक्ता, कोमला-वृत्तियाँ, देशी-विदेशी शब्दों का प्रयोग, विरायादि चिन्हों की विविधताएँ, सभी मुक्त हृदय की स्व रचना और ध्वनि-माधुरी के लिये महत्व ही अर्पित हैं और मुक्त हृदय ने ही हमके लिये पर्याप्त स्थान है। भाषा की दृष्टि से गीति नाट्य में प्रयुक्त भाषा सरस होना चाहिये। विलम्ब कभी को 'तद्वत्' संज्ञा देता है। गीति नाट्य की भाषा न तो इतनी दुरुह हो कि बोधगम्य हो न हो और न ही कतनी सरल कि वह भाषा समझी जा सके। साधारणतः गीति नाट्य की भाषा का व्यापकता तो हो किन्तु अलंकरण के भार से मुक्त रहे। मुक्त हृदय में भाषा की तद्वत्ता कभी रहती है क्योंकि जब सरल और सहज होती है।

नाटक सरस:-

रंगमंच राज्या की दृष्टि से गीति नाट्य का मूल सुलभपूर्ण एवं ^{कलात्मक} ~~सामान्य~~ होना चाहिये। इसके लिये मंच सज्जा में उपकरणों का ही कम कलात्मकता की अधिक आवश्यकता होती है। कल्पना और राग से सम्बन्धित जो भी दृश्य मंच पर ~~उपस्थित~~ उपस्थित होंगे उनके गीति नाट्य की विषय वस्तु और अधिक प्रभावी लगती है। गीति नाट्य में अस्वभाविक सौंदर्य नहीं होता और न ही घटनाओं का वास्तविक प्रतिपादन निर्वोह होता है, अपितु अलंकरण के चित्रण को प्रधानता मिलती है जिसमें अभिनय और संवाद को कम स्थान है। ऐसी स्थिति में मंच सज्जा जोरदार और सुलभपूर्ण होना चाहिये। गीति नाट्य प्रायः भारी बहुरंग होते हैं जिनमें कोमला, सौन्दर्य प्रियता, मीठा-तमक संवृद्धा-प्रकारण, तथा की विविधता आदि अनेक ऐसे भाषात्मक उपकरण प्रिया शीत होते हैं जिनका कोई मौलिक आधार नहीं होता है।

वही प्रकार नाटक के पात्र हैं। भारी बहुलता के कारण पात्र सज्जा भी अपना विशेष महत्त्व रखती है। अलंकारों और वस्त्रावरणों का भावनामय संयोजन नाट्य निर्देशक की कुशलता पर निर्भर है। प्रकृति के परिवेश के अनुकूल ही पात्रों का वस्त्र परिवेश होना चाहिये। गीति नाट्य की विषय वस्तु प्रायः पौराणिक आख्यानों अथवा प्रेमकथानों से सम्बन्धित होती है। अतएव पुनः अनौचित्य परिवेश गीति नाट्यों का प्राण बन जाता है। सौन्दर्य, राधा, मत्स्य मंथा, मेनका, उर्वशी, उमा, तारा, सीता आदि नायिकाओं ने इतिहास के विभिन्न कालों में जन्म लिया है अतः मंच सज्जा और पात्र परिवेश इस काल विशेष विवेक के दृष्टांत बन जाते हैं।

विषय-वस्तु के अनुषंग ही संवाद - रचना होती है। गेय होने के कारण समस्त नाटक में कार्य व्यापार की अभिव्यक्ति गेय वदों, उद्यों, मुक्त गीतों में होना ही गीति नाट्य की सफलता है। संवाद तब अच्छा हो जाते हैं। उर्वशी के तीसरे अंक के संवाद संवाद नहीं सम्पादन हो गये हैं। तब संवाद कुनाकुस और अन्तर्व्यंग्य के समस्त चित्रण के लिये समर्थ होते हैं। नाट्यिक अभिनय के लिये गीति नाट्य में अधिक स्थान नहीं है किन्तु वाचिक के लिये पर्याप्त स्थान है। गीति की

लय, स्वर, लीन, आदि से वातावरण का निर्माण होता है। मेषध्व से भी ध्वनियाँ की जाती हैं।

गीति नाट्य में प्रकाश का विशेष महत्व है। मंच पर विभिन्न रंगों की ज्योति और आधुनिक युग में पाद प्रकाश किरणों (Foot Lights) से जगदम्बी भादवी रातों जैसा दृश्य पाओं के लौहर्ष की ओर अधिक सुन्दर रूप में प्रस्तुत करने का अवसर मिलता है। अंतर्करण के निहार में इस प्रकाश विद्याम का विशेष महत्व है।

गीति नाट्य में अंत और दृश्य परिवर्तन भी गद्य नाटकों की अपेक्षा विन्य होना चाहिये। गद्य नाटकों में भ्रमिका पात ही दृश्य परिवर्तन को प्रस्तुत करता है किन्तु गीति नाट्य में यही कार्य ध्वनियों, व्यंजन और प्रकाश के साधनों से कर लिया जाता है तो नाटक में अत्यधिक दृश्या जा जाती है। इस प्रकार गीति नाट्य का समग्र प्रभावजीवन की चटिलता को भी कोमलता अथवा कल्या से सिद्ध कर प्रेक्षक को भावपूर्ण करने में समर्थ होता है।

गीति नाट्य में निम्नलिखित तत्त्व:-

गीति नाट्य की कथा धातु का व्यापक होती है जो अन्तः प्रसंगों होने के कारण मन पर गहरा ही सौगारमक तीव्रता उत्पन्न करती है। यत्नायुता आनीत की गौरव गाथाओं और धार्मिक संस्कारों के कारण मन को आन्दोलित करने में अधिक समर्थ होती है। निम्न का व्यापक होते हैं अन्तः जो भी नाट्य रचना इन पौराणिक आख्यानों पर होनी लक्ष्य का व्यापक होगी अथवा का व्यापक नाटकों का धिक्क पौराणिक - धार्मिक कथाओं के स्तर न होगा। समस्त आरम्भिक नाटक साहित्य इन्हीं पौराणिक कथाओं पर आधारित है। इसी लिये अधिकतर गीति नाट्य इन पुराने कथाओं की निम्न-धातु से ही सम्बन्धित हैं। जायक ने तो पुराने - कथाओं को ही गीति नाट्य का आधार माना है।^१ पौराणिक साहित्य मुख्यतः प्रतीकारमक है। इन कथाओं का कुछ न कुछ निहित उद्देश्य है। ये प्रतीकारमकता को स्वयं तथा कथा से सम्बन्धित किया गया है। ये निम्न प्रतीकारमक स्थितियों को स्पष्ट करते हैं तथा भय और कांक्षाओं के तिरोह में सहायक हैं।^२

वर्तमान युग में भी नाटककारों ने इन निम्नों को नये परिवेश में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है + आज नवीन निम्नों की रचना की है किन्तु दोनों ही स्थितियों में यह स्पष्ट है वे काव्य-प्रतीकों की ही स्व-रचना कर रहे हैं। निम्न की केन्द्र में रह कर काव्य रचना की होती है किन्तु प्रत्येक कवि एक ही निम्न को अपने दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है अन्तः उसमें सदा नवीनता बनी रहती है।

१. J. Isaac: The texture of poetic drama is verse, its substance is myth.
२. Rapnald Peacock: The Art of Drama. p 235. ^{अनुवाद - इससे मिले गीति नाट्य. २२}
Myths are a form of symbolism akin to dreams and art. They show symbolic situations, they express lessons and precepts. They are a mode of Catharsis.

मिथ्या का मिथ्या केवि कातीन है किन्तु पुराण का, कालिदास का, अथवा रवीन्द्र-अरविन्द का नै उनकी विषय वस्तु के एक रहने पर भी अभिव्यक्ति प्रकट प्रकट रही है। इसका मूल कारण यह है कि प्रत्येक युग में कवि के मन पर मानव समाज की मातृका व्यवहार के भिन्न भिन्न पक्ष प्रभावी रहे हैं।

पुराण कथाएँ हमारी संस्कृतिके अभिन्न अंग हैं। इनसे ही मानव के संस्कारों की रचना होती है। संस्कारों का एक मनोवैज्ञानिक पक्ष भी है। नाटकीय कौशल के तीन आधार मूलतत्त्व संयोजित किये जाते हैं—मिथ्या कथा, पात्रों का समूह तथा मनोवैज्ञानिक यथार्थ और सम्पूर्ण प्रतिमा संयोजन। मिथ्या कथा सम्पूर्ण नाटक का केन्द्र होती है जो अपने में जीत के रहस्य को गुंजन किया करती है। मानव मन इस गुंजन को अपने अनुभवों और भावनाओं की प्रतीति से प्रति-उत्तरित करता रहा है जिसे हम भावनात्मक अनुकूलता (Emotional Response) कह सकते हैं। पात्रों के मनोवैज्ञानिक यथार्थ तात्पर्य उन परिस्थितियों से है जिनसे सत्य, विरक्तनीय एवं सत्य माना जाय है। प्रतिमा संयोजन सम्पूर्ण कलाकर्म में भावनात्मक एकता का उन्मुखीकृत विकास है। जिसे द्वारा भाव समूहकीकृत सत्य होती है। इस प्रकार कथा-स्रोत और भावस्रोत परस्पर गुंथित होकर एक मज्जीम आधार की पूर्णता कलात्मक कौशल का उद्भव करती हैं।^१ जहाँ यह उपलब्ध होती है जहाँ-वही पर केवल ^{सिद्ध} रचना होती है। इसका कदापि यह तात्पर्य नहीं कि नाटकीयकौली केवल मिथ्या केन्द्रित होती है किन्तु मिथ्या नाटकीय होती जो सत्य और प्राक्ख्यान बनाते हैं। हिन्दी के गीति नाट्यों में उल्लेख होकर भव्य भट्ट के मत्स्य गंधा, राधा, विजयगिरि, जैसे नाटकों में पौराणिक कथानकों में पात्रों की मनःस्थिति का सुन्दर संयोजन कर भावनात्मक-व्यंजना की शक्ति है।

यह आवश्यक है कि हम केवल पौराणिक कथाओं को ही गीति नाट्य का विषय न बनायें। मज्जीम सफ़ाई में मानव मन का भीम निराशा, जनास्था, संशय और कुठारों आदि ऐसे केन्द्र मनोभाव हैं जिनसे मानव प्रेरित है। परमाणु आत्यों से उत्पन्न विषय व्यापी सत्ता और भयावह कल्पना ने मानव को संजित कर रखा है। मृत्यु का भय प्रत्येकदारी आत्मा की प्रीति सर्व व्याप्त है। इस से आण बाने के लिये शान्ति ब्रह्म जैसे नये मिथ्यों की रचना की जा सकती है। मृत्यों का विघटन, सांस्कृतिक संकट और धर्म-नीति आधर्य की अज्ञात आदि से उत्पन्न जीवन की अनिश्चित एवं वैचित्र्यपूर्ण तथ्य (Strange and Irregular Pattern of Life—Henry James) को पकड़ने का जो प्रयास हो रहा है वह गीति नाट्य का वास्तविक विषय कहा जा सकता है। सर्वप्रकार भारतीय ने अपने अन्धकार में छली को प्रतिबोधित किया है। परंतु ही के गीति नाट्यों में रक्त शिखर, शिल्पी और लौकी में हृदय संघर्षीत मानव - मृत्यों के प्रति (२५५)

P. Revold Pearce: The Art of Drama p. 235

कवि ऐली ने प्रामेयिकता अनबाउंड *Bornelthous Unbound* नीति नाट्य ऐली में लिखकर एक नई रचना - प्रश्रित्या को जन्म दिया। इस नीति नाट्य का विषय भी पौराणिक है। ऐली (Cenci) उसका अन्य नीति नाट्य है जो पहिले की अवस्था उसनी कथाति अर्पित नहीं कर सका। ऐली के बाद अंग्रेजी में सुन्दर ने नीति नाट्यों की रचना की है। यह युग ही रोमांटिक युग कहलाता है। अतः प्रभु त कल्पना और नीतिरम्यता के कारण सार्ज्ड ब्राउनिंग के नीति नाट्य, नाटकीय नीति, नाटकीय रोमांस बहुत प्रचलित हुये जिनमें *Elvyn Hope*, *Porphyrias Lover*, *My Last Butcher*, *The Last Ride Together* 1912.

बहुत प्रसिद्ध हैं। सच कवि टेनीसन *Tennyson* का नाट *Maud* स्त्रीय मैरी *Queen Mary* और द फाल्कन *The Falcon* का भी विकास है। नीतियों तयों के सच कवि जॉन मैस्फील्ड *John Massfield* ने अनेक नीति नाट्य लिखे हैं जिन में द द्राक्ल आक चीत्स *The Trial of Jesus*, द किंग ऑफर *A King's Daughter* तथा ईस्टर और गुड फ्रायडे *Easter and Good Friday* विख्यात हैं। जॉन डॉन्कवाटर *John Donkwater* ने भारतीय पौराणिक भाषाओं को अंग्रेजी काव्य - नाटकों में स्थापना किया है।

अंग्रेजी नीति नाट्य रचना में जिसने एक कार्य किया वह टर्नेर 1880 दसियट है। उसने अपने नीति नाट्य *Murder in the Cathedral* में शुद्ध नीति नाट्य को स्वर दिया है। यह नीति नाट्य देश-विदेशों में नई नाट्य-रचना का प्रेरक बना और देश-देशान्तरों में नीति नाट्य रचना के नये अन्तारों को उद्भासित करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त कर सका। दसियट ने कथिता और खिंचे रूप से नीति स्वर को ही माधुर्य की दृष्टि से नाटक में सबसे अधिक उपयुक्त और प्रभावशाली माना है। क्योंकि भाव सज्जित न में प्रत्यक्ष ज्ञान समर्थ है उसका मूल्य नहीं। वैयक्तिक रिश्तेयन *Family Remunion* काट डेड टेल पार्टी *Cocktail Party* तथा कॉन्फीडेन्सल क्लर्क *Confidential Clerk* उसके अन्य प्रसिद्ध नीति नाट्य हैं। दसियट की परम्परा में स्टीवेन, फिशिन, डेविडसन, जॉन डॉन्कवाटर, योदस, एडो यडो सिनि, स्त्रीवेन सैंडर, फ्रिटोकर प्रसिद्ध हैं अन्य नीति नाट्य कार हैं। इन सब में भी योदस ने सब से अधिक उन्नति अर्पित की है। योदस ने ग्रामीण वर्गों की लोक कथाओं, मिथों और पुराणों के परिपुष्ट रूप में अपने नीति नाट्यों की रचना की है अतः उनका लोक प्रभाव भी अधिक है।

यह कल्पना की अवस्था नहीं है कि दसियट और योदस ने भारतीय नीति नाट्य ऐली को भी अपने प्रभाव से बहुत नहीं छोड़ा है।

गीति नाट्य की भारतीय नाट्य परम्परा

भारतीय नाट्य परम्परा के उद्भव के विषय में भगवद् भारत मुनि के नाट्य कला शास्त्र में कुछ साक्ष्य प्राप्त है। देवताओं के आग्रह पर ब्रह्मा ने सार्वजनिक देव की रचना की और ब्रह्मदेव से पठ्य, साम से गान, यजुः से अभिन्न और अर्थ से रसपूर्ण संग्रह कर नाट्य देव का निर्माण करके उसे प्रचार करने हेतु देवताओं को सौंप दिया। देवता बृन्द नाट्य-धर्म के प्रवर्ण, प्रारण, गान और प्रयोग करने में असमर्थ रहे अतः ब्रह्मा ने भारत मुनि को बुलाकर उन्हें अपने सभी पुत्रों सहित प्रसीत बनने का आदेश दिया। ब्रह्मदेव में लगभग ऐसी ही स्थिति थी जो निर्विवाद रूप से सम्बोध है। यम-यमी, पुष्पा-पुष्पी, अमृत्य-सोषामुता आदि के आश्रयान्ता की विषय-साहित्य में अपनी नाटकीयता के लिये विख्यात हैं। प्रा० सिलवां लेवी ने वैदिक काल में गायन प्रथा का उल्लेख किया है। ब्रह्मदेव काल की लिखा/उत्तम वाक् पठित कर नाचती और छेन्नी की आकृष्ट डाली थी। वाद्य की प्रतीकार्थक रूप में नृत्य द्वारा प्रस्तुत किया जाता था। सामवेद से गायन लिया गया। वह ही साम की योनि कहा जाता है। आर्चिक और उत्तरार्चिक (अर्थात् पचासों का संग्रह—सुर, तय, आदि) समन्वित साम वेद के दो भाग हैं जिन में भारतीय संगीत परम्परा का पूर्ण परिचय आज भी सुरक्षित है। यजुर्वेद में सोम-विष्णु प्रकरण अभिन्न तन्त्र की ओर संकेत करता है। वाद्य, गान और रस के अतिरिक्त जो भी कार्य नाटक के लिये आवश्यक है वह सब अभिन्न के अन्तर्गत लिया जाता है। अतः अभिन्न शब्द अपना व्यापक अर्थ भी रहता है। अर्थ वेद में मारण, मोहन, कातिकरण आदि अभिचारों से उत्पन्न सिद्धरण, कम्पन जैसे अनुभाव और धृति-प्रसीद जैसे संवारी भी उल्लिखित हैं जिन से रस निष्पन्न होती है। अतः अर्थ वेद से रसों के प्रवर्ण करने का सध्य भी सत्य और संगत प्रतीत होता है। नाट्य शास्त्र के प्रारम्भ में ही व्यवसाय के अभिनीत होने के अवसर पर सुरासुर वेमनस्य, अन्ध मध्य के अवसर पर सुरासुर सोमनस्य तथा भगवान् शिव के सम्मत् त्रिपुर दाह के अभिन्न का उल्लेख है। भगवान् शिव ने प्रसन्न होकर भारत मुनि को उपदेश भी दिया है कि नाट्य में नृत्य की भी सम्मिश्रित किया जाये। अतः गीति नाट्य का मूल रूप भी वैदिक काल में ही जा सकता है।

संस्कृत नाट्य का प्रभाव —

वैदिक ग्रंथों से ही संस्कृत नाटकों की प्रारंभिक अवस्था मानी जाती है। अथर्व वेद काल का स्वल्प व्यवसाय और सुर-असुर मैत्री के भाव अन्ध मध्य में प्रस्तुत हुए हैं। त्रिपुरदाह के अवसर गायन-नृत्य समन्वित नाट्य कर्म नई श्रृंखला में अवसर हुआ और भारत मुनि ने अपने एक ही पुत्रों सहित नाट्य-प्रचार का कार्य किया है। कालान्तर में भारत-सन्तानों को अपने नाट्य-कीर्तन पर गर्व होने लगा और उन्होंने ने अपने दुःशील से नाटकों द्वारा शत्रुओं का अपमान किया। इस स्वल्प शत्रु-शोध के कारण उन्हें इसी पर कुछ अन्तर रहना पड़ा। राधा मधुसूदन

के संरक्षण में हम भारत सन्तानों ने नाट्य-कला का प्रचार-प्रसार किया है।^१

और इसी कारण राजा नहुष को हनु का कोष भाष्य करना पड़ा।^२ प्रौ० जागीरदार ने नाट्य ^{उद्देश्य} उद्देश्य की सुधार-कल्पना की अवहेलना करते हुये नाट्य वृत्तियों के आधार पर सुनो द्वारा नायक की प्रथा का समर्थन किया है। महाकाव्य और पुराणों के नायक से भारतीय वृत्ति, कृतीत्व जैसे संगीतज्ञों के साथ नायक सेतारवली वृत्ति, नर-नारी के चरित्रों से नायक के साथ कौशिकी वृत्ति और नृत्य-गीतादि समन्वित नायक से आरम्भ की वृत्ति से गीति नाट्य की रूप रचना को सम्बन्धित किया गया है। सुत वक्ता नाट्य वृत्तियों से भेद होते हैं और नाटक में सुधार आदि की कल्पना इसी का परिणाम है। प्रस्तावना और भारत ^{वाक्य} वक्ता जैसे प्रसंग केवल महाकाव्य की गौरव शाली परम्परा को नाटक से जोड़ने का प्रयत्न भर है नाटक के अंग रूप में उन्हें स्वीकार नहीं किया जाना चाहिये। भारत मुनि ने रत्ननाटक के ^{नायक} देवता या राजा माना है, सुतगण के वक्ता हनु की प्रशंसा करते हैं। संस्कृत नाटकों का धर्म या धर्मिक संस्कारों से कार्य सम्बन्ध ^{सम्बन्ध} नहीं है। अतः यह स्पष्ट है कि महाकाव्य के उत्तर युग में सुनो ^{कृति} की प्रचलित नाटकों का प्रारम्भ हुआ है। प्रचलित सुनो धारों के पुरस्कर्ता नृत्य द्वारा नहीं।^३

संस्कृत के नाटक काव्य बहुत हैं किन्तु अधोन्त पद्य कुछ नहीं। ^{२५२६ ज्योष.} अथर्व-और मात के नाटक संस्कृत नाटकों की धूमिका का निर्वाह भर करते हैं। संस्कृत में नाटकों की साप्ताहिक प्रतिष्ठा कातिदास के नाटकों के कारण हुई है। मातवका-त्रिमित्र, विक्रमोर्वशीयम और अभिज्ञान शाकुन्तलम ये तीन नाटक ही नाटकों के चर्चेकर्ष को उद्भासित करते हैं। मातवकात्रिमित्र में नृत्य की प्रधानता है तो विक्रमोर्वशीयम में नवीन-गीतिकाओं की। शाकुन्तलम नाटकों में एक श्रेष्ठ वृत्ति है। कातिदास के उपरांत सुक का मुक्त कटि एक श्रेष्ठ रचना है। इन दो नाटक धारों के उपरान्त की नाट्य-रचनाओं केवल नाटकीय अनुकरण करी जा सकती हैं। उन्हें मौलिक कहना संभव नहीं है। पूर्व वर्ण रचित/रचनावली में नाट्य-शास्त्र में वर्णित मान्यों का समावेश है। अथर्वी और विज्ञान दत्त के बाद संस्कृत नाटक मात्र विष्टर्षों का बन गये थे। अथर्वी के अनुसार घर मुरारीकृत 'अंग रासव' और जयदेव कृत 'प्रसन्न रासव' मिले हैं। कृष्ण मिश्र द्वारा रचित प्रवीण उन्नीसव एक दार्शनिक संवाद है। उपर्युक्त प्रायः प्राकृत भाषा में मिले गये हैं जिन के अभिप्राय से संस्कृत नाट्य धर्म धर्म रूप होता गया। संस्कृत नाटकों से हिन्दी गीति नाट्य की भाषात्मक संगीत, नृत्य कौशल तथा भाव-मुद्राएँ उपलब्ध हुई हैं जो गीति नाट्य का प्रारम्भ हैं।

1- नाट्य-शास्त्र । 36

2-रत्नदेव 10 । 99 - 7

3- Indian Drama Page 18

4- Ibid

भारतीय गीति नाट्य

उत्तर भारतीय गीति नाट्य परम्परा

काश्मीरी नाट्य कला:-

भारतीय नाट्य परम्परा की विकास सम्प्रदाय काश्मीर से केरल तक तथा गुजरात - महाराष्ट्र से बंगाल - आसाम तक सभी प्रदेशों में प्राप्त है। जिसके विकास युग में काव्य-नाटक या गीति नाट्यों का अभूतपूर्व योगदान है। काश्मीर में बौद्ध और हिन्दू काल से नाट्य कला का विकास माना जा सकता है। हिन्दू कट्टर शैव हैं जो: वे गीत नृत्य और अभिनय में रूचि रखते थे। 2000 वर्ष पूर्व राजा जालक ने अपने दरबारकी 10022 नर्तकियों में से 100 नर्तकियों को गुफा के ज्येष्ठ मन्दिर को अर्पित किया। 10 वीं शताब्दी में महाराज चन्द्र वर्मन ने हंसने नाम्नी अमल्य नर्तकी से विवाह किया था।¹ विष विहार के आन्तरीकाल पर हसिनास वेस्ता योग राज एवं बीरर मुक्तान केकुल आन्दोलन के बख्त राजदत्त काल में संगीत नाटक और नृत्य की रंग शालाकी स्थापना और द्वारा तथा जेठु नाग्री नर्तकियों के अभिनय का उल्लेख प्राप्त है।² बीरर ने बार बार नाटक शब्द का प्रयोग कर 49 नाटकों के अभिनय का उल्लेख किया है। ये नाटक संगीत-नृत्य सम्मिश्र होते थे और किसी न किसी किंवदन्ती के चरित्रों की वस्ती कथा वस्तु रखती थी। 'बम्बुर धम्बर' का वर्तमान काल की सर्वाधिक प्रसिद्ध गीति नाटिका है।³

पंजाबी गीति नाट्य:-

पंजाब प्रदेश में नाटकों का आरम्भ देवी त्यक के रूप में हुआ है। परम्परागत नट्यरस है, संसार रंगमाला है। नट्यरस संसार में स्वयं अभिनय करता है। जहाँ पर नाटक के विविध रूप --- चेतक, रास, लीला, डेल, स्वयं, भाँड़, भगन्निदा, राई, डड़ी, मीरासी, बाबी, समीका, मल, आदि---प्रचलित हैं। नाटक की कथा वस्तु प्रथम में प्रहस्य की जस्तोधी, पत्र केवल प्रथम ही नहीं गाते थे अथवा अभिनय ही करते थे। इसकी उन्मूलनी के राजा विक्रमादित्य की पराजित कर शासिवाहन राजा के ज्येष्ठपुत्र पूरण के चरित्र पर 7 वीं 8 वीं शताब्दी में सब से पहला काव्य नाटक मिलता है। पूरण गीतक मल केकनटे सम्प्रदाय के जोगी बन गये थे। पूरण की गाथा के अनुसार ही मूर्ति हरि और गोपी-चन्द के चरित्र पर भी काव्य नाटक रहे गये।⁴ पूरण के भाई रत्नसू के चरित्र का वीर गीतकनाटक नाटक में भी प्रस्तुत किया गया है। (किंग बाथ, रकी भाँति) 1723 में वारिस ने वीर-वीर नाट्य गीति नाट्य प्रस्तुत कर दिया। वीर - राँक 7 की प्रथम कथा आज भी जेठ गीति नाट्यों का कथानक कभी हुई है। गुजरात वाला के कालिदासने पूरण गीति नाट्य की प्रस्तुत किया है। 1680 में प्रथम रत्न के पंजाबी ने गुजरात-मलक और र मुकु गोविन्द सिंह 1666-1700 में आत्म चरित्र रूप में विविध नाटक का प्रणयन किया है। ये गीति नाट्य हैं। नाटक का उद्भव सूर्य संहर में ऐतिहासिक, पौराणिक तथा काल्पनिक आधार लेकर गीत-कथानकों के नाट्य से प्रारम्भ हुआ है।⁵

¹ Indian Drama Page 68

² Ibid.

³ Ibid 72

⁴ Ibid 93

⁵ Ibid 92

भारतमण्डल और महानंद नाथ के नीति विषयक सम्भाषण को गुरु गोविन्द सिंह ने नीति नाट्य में प्रस्तुत किया है। गुलाब सिंह ने 1789 में प्रवेश चतुर्दश नाटक काव्य में ही लिखा है।

अभिनया नाटक:-

अभिनया नीति नाट्यों को अबीना कहा जाता है। जिसमें 3 मुख्य चरित्रों का नीति का रक्षात्मक पक्षों पर अन्य चरित्रों को ले कर आसु नीति उपचारण करता हुआ अभिनय करता था। अभिनया नाटक बहुत प्राचीन नहीं हैं। श्री शंकर देव और उन के शिष्य शिष्य माधव देव ने वैष्णव धर्माधारित अभिनया नाटक प्रस्तुत किये हैं। श्री राम चन्द्र राव ने अठिया नाटक लिखे हैं। इन में नीति-नृत्य-संगीत के साथ साथ अभिनय ^{का} है, अभिनय की प्रमुखता इन नाटकों की विशेषता है। इन में वृज चरित्र काचित्रण किया जाता था।

बंगाली नीति नाट्य:-

बंगाल में यह शब्द अति प्रचलित है। 12 वीं शताब्दी में राजा लक्ष्मण सेन के दरबार में महा-कवि जयदेव ने संस्कृत में नीति गोविन्द नाम नीतिनाट्य प्रस्तुत किया। यह नाटिका काव्य स्वयं परिवेष्ट में स्वयं स्व से संघातित की जासकती है। नृत्य संगीत से नीति - प्रीति इस नीति नाट्य की सुशोभा है। अभिनया इसे विश्व साहित्य की निधि बनाये हुये हैं।

मुसलमान आक्रान्ताओं के कारण 19 वीं शताब्दी तक बंगाल में नाटक का विकास अवलोक्य रहा है। सुन्दायन दास ने 16 वीं शताब्दी के अभिनया चरण नीति नाट्य का उल्लेख किया है। जिस में ममता केतव्य ने स्वयं अभिनया की भूमिका की थी। बंगाल का नाट्य सदैव मात्रा नाटकों से विकसित हुआ है। ये नाटक वस्तुतः संगीतकारों के ही विभिन्न पक्षों पर अभिनीत की जाती थीं। डोल-पान, राध-पान, कडी-पान आदि मात्रा -संगीतकारों बहुत प्रचलित थीं। 1555 में महा प्रभु केतव्य के शिष्य स्व गोस्वामी ने जय देव के नीति-गोविन्द के ^{विश्व} माधव शीर्षक से नीति नाट्य के रूप में ^{प्रस्तुत} किया है। इसी क्रम में 1557 में तल्लि माधव और 1555 में राम केतव की रचना की गई। इनमें से ^{विश्व} माधव सुन्दायन ने अभिनीत की किया गया। 17 वीं शताब्दी में विद्वान् माधव और दामोदर कोमुदी का संयुक्त से बंगाल में सुन्दर प्रभु प्रस्तुत किया। सुन्दर नन्दन दास ने और तल्लि माधव की स्वयं चरण ने बंगाल में अनुचित कर नीति नाट्य की महत्ता स्थापित कर दी। 16 वीं सदी में गोविन्द दास कवि ^{राज} प्रभ ने संगीत माधव नामक नीति नाट्य का प्रथम रचना और यह नीति नाट्य नाट्य नाट्य सार्वभौम प्रसिद्ध हुआ। इन मात्रा-नाटकों तथा नीति नाट्यों के प्रभावों नाटक का

1. The Theatre of Hindus p. 142, H. H. Wilson - Short Account of Sanskrit Drama

अभिनेता गिरिजा चन्द्र शौज 1844-1912 ने बंगला भाषा में अनेक गीति नाट्य लिखे हैं। यह परम्परा रवीन्द्र नाथ ठाकुर तक अपना प्रभाव बनाते रही। ठाकुर ने अध्यात्म चित्रांगदा, चित्रा आदि सस्स गीति नाट्य लिखे हैं। 18 वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में होरासेन लेबोफ (Horace Leboeff) नामक रूस वासी ने कलकत्ता में बंगाली नाट्य ग्रंथ की स्थापना की थी। 27 नवम्बर, 1793 व 21 मार्च, 1796 में द डिस्गैज (The Disguise) नाटक का बंगला स्थान्तर गीति नाट्य एवं वाद्य से समन्वित कर अभिनीत किया गया था। लेबोफ के रूस वापिस लौटने पर यह संस्था भी समाप्त हो गई। 1835 में "विद्या सुन्दर" अभिनीत किया गया। 1836-37 के फ्रान्स-काल में राम नारायण द्वारा अनुवादित "केली लंकार" काली प्रसन्न सिन्हा द्वारा अनुवादित "सिद्धमोक्षी" के बंगला अनुवाद अभिनीत किये गये। गिरिजी चन्द्र शौज से शिरिश कुमार भादुरी तक, जसू लाल बसु, जगन् मुखर्जी, दामो शौज, जमोन्द दत्त, निमोन्द लहरी, और दुर्गा दास जैसे अभिनेता नाटक कर तथा चारु गीता, कृष्ण भास्मिनी, नीहार बाला, लारा सुन्दरी, तथा प्रभा जैसी विदुषी अभिनेत्रियाँ अपने अभिनय के लिये विख्यात रही हैं। बंगाल की गीति-नाट्य परम्परा का अब भी सङ्कट है। वर्तमान काल में ज्योतिन्द्र नाथ का बालमीकि - प्रतिमा भाष नाट्य (1881) और बलाग नृत्य - नाट्य (1939) सुविख्यात हैं।

महाराष्ट्रीय नाट्यः^१

भारत में महाराष्ट्र प्रदेश नाट्य - कला के क्षेत्र में अत्यधिक उन्नत माना जाता है। आज भी यह प्रदेश मरीच नाटकों के लिये प्रसिद्ध है। विज्ञान शीत भी है। अनेक सि संगीतकारों और गीति नाट्य मराठी नाटकों का प्रान्त बने हुये हैं। बाल गंधर्व और भाऊ राव जोरदत्तकर जैसे गीत कारों ने नाटकों में गीति सत्य के द्वारा रस - सिद्धि प्राप्त की है। जन्मा साहब धिलोंकर ने 1880 में "संगीत सुम्हा" और "संगीत सङ्गुत्तमा" द्वारा गीति नाट्यों के की प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित किया। बी बाद के कोरदत्तकर ने राम-रागिनियों से समन्वित "वीर - तनया" संगीति नाट्य की उर्ध्व निमित्त भाषा में प्रस्तुत किया। मराठी भाषा में शैलपिचर के अनेक नाटकों का अनुवाद किया गया। जिन में से "हेमोद" 4 "बोधो", और "देविग आफ द थ्रू" बहुत प्रसिद्ध हुये। नामरा मोरकर, बाका साहब सादितकर, साधन राव तिवरिस आदि अनेक विख्यात नाटक कर और ज्योतिष्मना भोले जेठे जैसी विदुषी ने मराठी नाट्य सम्प्रदा की विकसित किया है। आज भी महाराष्ट्र में अनेक नाट्य - मंच हैं तथा गीतिक और अनुवाद नाटकों की मंच पर अभिनीत भी किया गया है जा रहा है।

१. D. Nadkarni - The Marathi Theatre P. 80

उक्त के अनुसार मंत्र के कारण ही महाराष्ट्र-सिने जगत के लिये प्रसिद्ध है।

उड़ीया नाटक:-

उत्तर भारत की नाट्य परम्परा में उड़ीया नाटक संस्कृत की उत्तरादि-कारिणी के रूप में लिखी गई गीति-नाटिकाओं में सुरक्षित है। ^{संस्कृत} सुवंशी राजाओं कपिलेश्वर देव, प्रताप रुद्र देव, और पुल्लोत्तम देव --- के राज्यकाल में संस्कृत और प्राकृत भाषाओं में, जगन्नाथ जी के मंदिर में, गीति नाट्य अभिनीत किये जाते थे। 18 वीं शताब्दी के मध्य में 'गौरी चरण' पुरी में अभिनीत किया गया। उस समय काल कृष्ण देव प्रथम उड़ीसा के राजा थे। ^{वर्तमान} अस्तमंग युग में राम शंकर ने दो गीति नाट्यों का प्रथम किया है। म. 300 वर्षों में उड़ीसा में गीति नाट्य यात्रा नाटक, लीला और ^{स्वांग} अष्टक लोक प्रिय रहे हैं। आज भी नाट्याचार्य काली चरण बटनायक के निर्देशन में रास-दल द्वारा गीति नाट्य लिये एवं अभिनीत किये जा रहे हैं।

भारतीय गीति नाट्य

2- दक्षिण भारतीय गीति नाट्य परम्परा

तामिल-तेलगु और कन्नड:-

तामिल और तेलगु नाटक उत्तर भारतीय परम्परा में ही विकसित हुए हैं। डा० कृष्ण सिंह ने 1891 में लिखित मनोन्मील्यम और कोसम्वली गीति नाट्यों का उल्लेख किया है।¹ तेलगु नाट्य साहित्य के अंकुर देशी कविका और लोक गीतों में देखे जा सकते हैं। प्राचीन मनोरंजन के साधनों में पुराण कला तेलगु और भजन थे जिनका स्वल्प गीत-नृत्य में अभिव्यक्त था। तब और मेघ काव्य के उदयान्त में कृष्ण के जीवन्मूर्ति पर भागवतम और भागवतचरित गीति नाट्य लिखे गये जिन में नृत्य और संगीत की बहुलता रही। 10 वीं शताब्दी में उत्तर भारत की नाट्य कला का दक्षिण में प्रसार हुआ है किन्तु बलवर्ध 13 वीं और 14 वीं शती तक यह कला क्षीय होती गई। 19 वीं शताब्दी में पुनः तेलगु लिटिचर पिथि-र द्वारा यह ^{रक्षा} छोड़ दुर्य गरिमा प्राप्त कर रहा है। कृष्णदेव के राजा के शासन काल में अय्याय कवि द्वारा तेलगु में रचित कविराज मनोरंजन या ^{पुरस्ता} चरितम् एक उत्कृष्ट गीति नाट्य है। जिसका आधार बहुत पुराण माना जाता है।²

कन्नड नाट्य-साहित्य संस्कृत नाट्य - साहित्य की अधिष्ठित परम्परा से युक्त है। सिंघारार्य द्वारा रचित भिन्नविध गोविन्द 6 वीं शताब्दी का गीति नाट्य माना जाता है। यह नाटक श्री धर्म के रत्नावली नाटिका का त्वांस्तर

1- गीति नाट्य --- कृष्ण सिंह पृ०

2- The Theatre of Hindia, H.H. Wilson P. 59 Footnote

प्रतीत होता है। हिम्मैला चारुच गायक समूह द्वारा नृत्य और संगीत युक्त ये गीति नाट्य ड्राय: रामायण और महाभारत के कथानक तथा वैदिक मिथकों पर आधारित होते थे। 17 वीं शताब्दी के शताब्दी काव्य में मंच सज्जा और अभिनय के पर्याप्त तत्व मिलते हैं। जिन्हें कुछ वर्ष पूर्व ही मंच पर प्रस्तुत किया गया है।¹ छारवाडू के तुरमेरी शेवगिरि राव के सङ्गनका गीति नाट्य के मंचन से प्रभावित होकर मराठी नाटक के प्रतिभावान नाटक कार अन्ना साहब किर्लोस्कर ने इसे मराठी मंच पर अभिनीत करने का सफल प्रयत्न किया है।² वर्तमान में श्री के० शिव राम कारन्त कन्नड में गीति नाट्यों की रचना कर रहे हैं। श्री आदुवा रंगाचार्य ने श्री कारन्त के अतिरिक्त श्री गायिन्द्र पार्थ, के० बी० घुट्टा, चान्दे, ए० इन० कृष्णा राव, श्री सी० के० मैकल मैक्लरमेया, श्री संत आदि गीति नाट्य कारों के योग की प्रशंसा की है।³

मलयाली गीति नाट्य:-

मलयाली गीति नाट्यों में कथकली नृत्य नाटिका सर्वाधिक प्रसिद्ध होती है। यूनान की भाँति युद्ध कला चारुच नाटक कार अपने नाटकों में सैनिक मूर्ति और चेतना भर देते थे। केरल के नृत्य-नाटकों-कथकली - पर भी यही प्रभाव पड़ा है। यह सैनिक - अनुशासन की भाँति कथकली नर्तक को यह नृत्य कला वाग्यायस्थी से ही सीखना पड़ती थी। कथकली के स्वल्प चिन्तन में नृत्य, संगीत, गायन, बादन, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, गति, अभिनय, सभी कुछ सम्मिलित था। हिन्दू मिथक और महा काव्यों के प्राप्त कथानक में देवी-देवताओं के स्वामी कार्य व्यापारों को प्रतीक से मंच पर अभिनीत किया जाता था। दूसरी शताब्दी के समित महा काव्य रितावाविहम में सन्दर्भित चरित्रधार जाति के अकिनायकल में कुदीयत्तम में गीति नाट्य कला का उल्लेख मिलता है। 9 वां शताब्दी में केरल के राजा वैष्णव और कविराज सांजन में मिल कर कुदीयत्तम और कथकली की नाट्य-कला का विकास किया। सांजन ने कालिदास की कृति सङ्गनक के आधार पर सुमद्राक्षनंय शीर्षक से नये रूप में काव्य नाटक को प्रस्तुत किया। विक्ताई बम्बुजों - किंकर एम० पद्मनाभ विक्ताई तथा एम० कुमार विक्ताई --- ये माहकम् मुत्तियम में प्रतीकार्मक गीति नाट्य के रचयिता के रूप में विशेष उपाति पाई है।⁴

गुजराती और उर्दू नाट्य-कला:-

गुजराती और उर्दू नाट्य-कला अवैधाकृत नये प्रयोग हैं। जिनका इतिहास लो-सवा लो वर्ष का ही है। गुजराती नाट्य मंच पर अनेक छोटे बड़े नाटक अनेक छोटी बड़ी नाट्य मण्डलियों द्वारा प्रस्तुत होते रहे हैं जो बाद में उर्दू नाटकों की ओर उन्मुख हो गये। पंजाबी भाषा में नाटकों का अभाव होने के कारण उर्दू में नाटकों का विकास अमानक की चन्दर-कला 1855 से माना जाता है। यह एक प्रकार का रास कला का सज्जा वैचित में समुचित कथानक का अभाव है। किन्तु राजा चन्द्र और अपसराओं के रास रंग की धरवार है। गीति-नाट्य से

1. Godean Drama 1962 The Karnad Stage - Adya Ramacharya

2. Ibid P. 63

3. Ibid P. 66

4. Ibid P. 74. The Kalyali Drama Samodaran Pillai

परिपूर्ण इस नाटक को रास या संगीत-नृत्य-नाटिका (opera) कहना अधिक संगत होगा। ऐसा माना जाता है कि अष्टक के मन्वाद्य वाचिद अली शाह ने अपने दरबारी कवि अमानत को इस नाटक को लिखने का आदेश दिया था। और जब यह नाटक लखनऊ के कैसर बाग में अभिनीति किया गया तो स्वयं वाचिद अली शाह बन्दू और हरम की डेगनों ने बन्दू की अवताराजों की भूमिका निष्ठा की थी। अमानत की 'बन्दू सभा' से प्रभावित होकर अनेक लेखकों ने 'बन्दू सभा' की रचनायें कर डालीं। मुरारी लाल ने अमानत के तुरन्त बाद अपनी अलग बन्दू सभा की नीति मादिक लिखी। तदुपरान्त 1870 में वेस्टन जी, एल्फ्रेड, न्यू एल्फ्रेड आदि अनेक पारसी नाटककम्पनियों ने उर्दू नाटकों का विकास किया। 'बन्दू सभा' के पूर्व के नाटक लखनऊ के परो० मासुद हता रिजवी के पास सुरक्षित बताये जाते हैं। रोमक बनारसी, करीफ़ विनायक प्रसाद, तालिब, एहसान लखनवी, नारायण प्रसाद जैना, जामा ख़ुदमोरी आदि उर्दू नाटकों के क्षेत्र में क्वालिटी प्राप्त कर चुके हैं। तालिब का मोदी चन्द और हरिश्चन्द्र तथा जैना के रामायण और महाभारत आदि नाटकों ने पर्याप्त क्वालिटी अर्जित की है। ये सभी नाटक हिन्दी नीति या पद्व में लिखे गये हैं। शनैः शनैः उर्दू के गीत मञ्जरी में ने इनका स्थान ले लिया।

हिन्दी नीति नाट्य का मूल स्वरूप

नाट्य, नृत्य और नृत्त:-

इसका कारण अनन्तर ने नाटक की अवस्थानुवृत्तिमादिक अन्यत्र भावक्य (नृत्य) और तात् स्यात्तमय (नृत्त) कहा है। अर्थात् नाट्य तत्त्वोद्देश्य, नृत्य भावोद्देश्य और नृत्त अंगविशेषोद्देश्य माना गया है। साथ ही साथ नृत्य और नृत्त नाटक के उपकरण हैं। देश विशेष के अभिनय को आश्रय करके होने वाले नृत्य को भार्य तथा नृत्त की देशी कहते हैं।³³⁴⁷ नृत्य और नृत्त दोनों ही माधुर्य युक्त होने से सास्य तथा उद्बल होने से ताण्ड्य कहलाते हैं। नृत्य का उपयोग दूसरे पदार्थों के अभिनय एवं नृत्त का प्रयोग हीभा बढ़ाने के लिये होता है।² इस प्रकार भाव और नृत्य के योग से नाटक में उत्तममक सौन्दर्य और प्रेक्षणीयता का संवर्धन हुआ। भारतीय मनीषियों ने नाटक में वस्तु, ज्ञान और रस तीन प्रमुख तत्त्व माने हैं। रसानुवृत्ति को ही नाटक का मूल उद्देश्य माना गया है। केवल नृत्य से भाव, यथा

1- का रूपक - । । 7-9 शक्ति की टीका

2- मुरारीलालभेन्ना सुदुर्ग विद्याविद्या पुनः

सास्य ताण्ड्य स्वयं नाटकादुद्धारकम् -- का रूपक ।। 10

और केवल नृत्य से अंग विशेष आदि उत्पन्न हो सकते हैं, रस-वस्तु नहीं/उत्पन्न होती। रस वस्तु की उपलब्धि, के लिये अवस्थानुकृति, अर्थात् कथा वस्तु और उस कथा वस्तु के अनुकरणकारी नेता को एवं तदनुसंधान भावों की काव्यिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं आचार्यत्व में अभिव्यक्ति कर अभिनय करना पड़ता है। अभिनय में साहित्यिक भाव में ही आनन्द स्थिति है जिसे साधारणीकृत रस में जाना जाता है। भद्र मायक ने मौलिकतः शक्ति के अधीन विभावों और स्थायी भावों के साधारणीकरण होने में ही रसानुभूति की अवधारणा की है। इसी साधारणीकरण की अभिनय गुणाचार्य ने और आगे बढ़ाया। अतः ने अपने विवेकात्मक विवेचन में इसी साहित्यिक दृष्टि तक पहुँचने के लिये कला और भव के भावों के सिरोहर्ष की कल्पना की है अर्थात् कला और भव के भाव, जो निराला व्यक्तित्व होते हैं, उन से ऊपर उठ कर नेता और सामाजिक के साहित्यिक साधारण में ही आनन्द या रस स्थिति है। सातत्य यह कि भारतीय नाट्य-कला में गीत, संगीत, नृत्य, रस आदि का प्रमुख योग है। गीति और संगीत ही हमें भाव लोक में साहित्यिक स्थिति तक पहुँचाते हैं। इसी समय के लिये स्व - घर का भाव सिरोहर्ष कर सर्व सामान्य धरातल पर रह कर हम नाटक का आनन्द भोग करते हैं। गीति नाट्य के आनन्दातिरेक और अवैशक्य स्थायी प्रभाव का ही यही रहस्य है।

अतः यह सुस्पष्ट है कि काव्य-नाटक ही नाटकों का मूल है। संस्कृत साहित्य के अधिकांश नाटकों में काव्य-भाषा का ही प्रयोग किया है। तुलसी नाटक तो केवल काव्य-भाषा में ही लिखे गये हैं। अतः नाटकीय भावों की अभिव्यक्ति काव्य-भाषा में ही समीचीन है। नाट्य में नहीं। कालिदास, भवभूति और विशाख दत्त की धारणा तक नाटकों में काव्य-भाषा की प्रधानता एवं रस निष्पत्ति ही मूल उद्देश्य रहा है।

रास और रासक:-

उक्त डॉ० हरप्रसाद जीका के अनुसार हिन्दी में गीति नाट्य का प्रारम्भ 15 वीं शताब्दी में माना गया है। जीका जी ने गीति नाट्यों का प्रारम्भिक स्वरूप रास और रासकों के निर्धारित किया है। यह रास और रासक जहाँ एक ओर राजस्थानी संस्कृति को उद्भासित कर रहे थे वहाँ दूसरी ओर जनाचार्यों की रास और रासकों में अपने मत प्रतिपादन का अच्छा साधन मिल रहा था। 12 वीं शताब्दी में रास, ^{उद्भास} के रूप में राजस्थानी का सर्वप्रथम प्रचार हो गया था। अंग्रेज और राजस्थानी भाषा का संयोगात्मक रूप राजस्थानी गीति नाट्यों की रचना-भूमि बनता जा रहा था। इन आचार्यों ने अपने विचारों की प्रतिपादन करने के लिये नाटकीय रंग बना ली थी वही चीजें नहीं रहे। सत्राद उक्त के समय में गीति नाट्य रचना प्रचलित हो गया था कि सत्राद की विचारधारा ही मूल धारणा के कारण कालिदास की रचना का प्रचार नाट्य-व्यवस्था पर ही करना पड़ा।

कलाचार्यों ने धर्म प्रचार की इस साधन शक्ति को पहचाना और अपने मत को ऊँचा तक पहुँचाने के लिये रास नाटकों की रचना की।^१ कालान्तर में बंगाल परब रास परम्परा को भी बलभाचार्य, ब्रिज हरिवंश आदि कृष्ण भक्त कवियों ने अपना दिया, धर्म परब रास-परम्परा भी इस में मिलती गई किन्तु इस साखा पर केन-मुनिवर्गों का ही अधिकार रहा। नृत्य संगीत बंगाल-रास परम्परा के अधिक निकट रही। इस मिश्रण पर यह कहा जा सकता है कि राजस्थान में ही हिन्दी गीति नाट्यों का विकास उसके मूल स्वल्प रास-रासकों की परम्परा में निहित है।

रास शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में अनेक मत हैं। रास शब्द का उद्गम रस से हुआ है जिस से उत्पन्न हो---रस उत्पद्यते परमात् सरासः---यह भी एक मत है। रास में नृत्य-संगीत द्वारा रस वर्ण होता है। रास सर्वग्य में रास का लक्षण देते हुये लिखा है:-

स्त्रीमिरस पुस्तकैरेव कृतकस्ते प्रमथिथीः ।

सर्वे हि प्रकृते नृत्यं स रासः प्रोच्यते ॥

अपि यह स्वीकार करें कि रास में नृत्य संगीत का भी पूर्ण योग है तो रास शब्द का मूल रस शब्द में खोज सकते हैं जिसका अर्थ है चिन्तना। पशु चारण जालमें लोग नृत्यादि करते हुये चिन्ता पड़ते हैं-मे जो उनके आनन्द की परम स्थिति हो गयी। अतः रास का अर्थ चिन्ताने से बड़ा होगा। कालान्तर में यह अरण्य प्रकृति कलाओं के संसर्ग में परिष्कृत होकर एक नृत्य-विशेष का जोड़ कराने लगी होगी। रास का अर्थ रहस्य मानने वाले इसे लीला से जोड़ते हैं। सारांशतः उक्त उपर्युक्त सभी मत रास में नृत्य, संगीत, आनन्द, रस, आदि की स्थिति को स्वीकार करते हैं। पौराणिक, ऐतिहासिक पात्रों और कथानकों से बने जोड़ कर राधा कृष्ण लीला, गोपी लीला, वनरास लीला आदि के प्रदर्शन में अथवा धर्म प्रचार के लिये रास का प्रयोग पर्याप्त किया गया है।

डा० दशरथ ओझा ने उपर्युक्त परिलेख्य में रास शब्द को देशीय माना है जो राजस्थान में रासों और रासक शब्दों के रूप में भी प्रचलित है। ये रास भारतीय संस्कृति और उसकी परम्परा को चिन अंशलों में विकसित कर रहे हैं वह ग्रामीण होगी जो बाद में परिष्कृत होकर संस्कृत से जुड़ गई। उनका कथन है कि यदि यह अनुमान सत्य है तो गीति नाट्यों की द्वारा हिन्दी की अपनी वैतुक सम्पत्ति है। रास हिन्दी नाटकों की स्वतंत्र शैली है जिसके प्रभाव से आगे चलकर हिन्दी नाटकों की सृष्टि हुई।^२

साहित्य दर्पण द्वार ने नाट्य रासक को उप रूपकों में पाँचवाँ स्थान दिया है। रूपकों और उप रूपकों का भेद काल्पनिक न हो कर वास्तविक है। रूपक

१- दशरथ ओझा: १ हिन्दी नाटक: उद्भव और विकास पृ० १० ।

२- डा० दशरथ ओझा:- हिन्दी नाटक: उद्भव और विकास पृ० ११ ।

नाट्य क्षेत्र उपर्युक्त नृत्य। इसे लक्ष्य कर आचार्य शनिक ने उप रूपों की नृत्य
भेद माना है। रासक भी नृत्य भेद ही है।:-

औन्ही श्रीमदित् माणी प्रधान रास काः ।

काव्य च सप्त नृत्यस्य वेदाः स्युस्ते विभाजकम् ॥

--- दर्शक, ध्वजिक, नृति 14

रासक में आंगिक अभिनय का प्रधान्य है, चतुर्विध अभिनय का अवभाकृत अभाव।
अतः रासक नृत्य भेद के अन्तर्गत हरिमणित किया जाता है। साहित्य दर्पण कार
ने भी नाट्य रासक की उप रूप ही माना है:-

नाट्य रासक वैकुण्ठं वसुधातलस्य रिपति

उदारस्त नायकं तच्छरीरं मर्दो-पनायकम्

हास्योद्धृष्ट-अयम् मूढ सङ्गारो, नारीवासक सज्जका

मुसुमिर्बहने सन्धि नारीवासक-जानि दर्शयिष्य

द्वैधतुतिर्मुहं सन्धिनिर्दयैः नृति केवलम्

--- साहित्य दर्पणः ६:२७७-२७८

अर्थात् एकांकी तात् तय आश्रित, उदारस्त नायक एवं वासक सज्जका नायिका समन्वित
मह नायक शरीर मर्द, संगार के साथ हास्य का घुट, मुह और निर्वहण सन्धि, और
नायक के दस भेद नाट्य रासक में अवस्थित हैं। ३० कीछे ने भी नाट्य रासक का
को केले Bullet कहा है।^१ इसी क्रम में मुनि जिन विषय ने सन्देह रासक की
छोड़ की है जो उपर्युक्त राजधानी भाषा में १३ की छताली की रचना है।
राजधानी भाषा में रासकों की भरमार है जिसकी गवेषणा आवश्यक है।

इस भाषा में राधा कृष्णोपासक कवियों में जितहरिलाल जी का नाम अग्रणी
है जो स्वयं राधा के धारण कर रास में भाग लेते थे। गुजरात के मरती मैला का
मौलिक रास लीला का प्रत्यक्ष दर्शन प्रसिद्ध ही है। वृन्दावन में प्रति दिन
नौ लोक रास लीला का अभिनय देवालयों में था जमुना पुलिनो पर घुमा करता है
है। इन रास-रासकों से इस में अनेक लीला नाटक उद्भूत हुये जिन में भंगला अर्द्ध
आ चरण, नांदी पाठक आदि भी होता था। मन्द दास इन लीला नाटक का
में अग्रणी में और स्थान सगर्भ उनका सर्व-विख्यात लीला नाटक है। इस दास ४
चाचा वृन्दावन दास और इस चाची दास के लीला ग्रंथ अवधिक प्रसिद्ध हुये
जिन में इस चाची दास का इस विस्तार आज भी बड़े चाव से पढ़ा जाता है।
अनेक लीला मण्डलियां आज भी इस विस्तार की लीलाओं का अभिनय करती हुई
पार्श्व जाती हैं। इस ग्रंथ में कुल विषय १२ लीलायें हैं।

1. Dr. Kailash. The Sanskrit Drama p. 351

ईद प्रतीकात्मक नाट्य साहित्य का हिन्दी गीति नाट्य पर प्रभाव

एक और बारसी नाट्य - मण्डलियाँ हिन्दी-उर्दू मिश्रित गद्य-पद्य

मिश्रित नाटकों का प्रचार-प्रसार कर रही थीं तो दूसरी ओर संस्कृत के पद्य नाटकों का हिन्दी पद्य स्वान्तर हो रहा था। महाराज व्यासनाथ सिंह ने 3 फी। गद्य पद्य का भाषा में संस्कृत 1700 के लगभग हिन्दी में अनुवाद किया था। इस का पूर्ण पद्यानुवाद संस्कृत 1727 में अनाथ दास ने प्रस्तुत किया जिस में मन की वृत्तियों - काम, क्रोध, मोह, अहंकार, आदि--- की पात्रों के रूप में चित्रित किया गया है। ईद और जिस का प्रभाव परिकल्पित हिन्दी गीति नाट्यों में देखने को मिलता है। श्री दास हरित, धर्म विजय, विद्या परिजय, जीवनान्द, लक्ष्मीदय, शैलमन्मथोदय आदि अनेक प्रतीक नाटक इस युग में रहे गये।

अन्य नाटकों में नैलायक शकुन्तला-नाटक, हनुमाननामक समासार नाटक लक्ष्मी रामकृत कल्या भरण सभी गीति नाट्य हैं। डा० दास गुप्ता ने अपने ग्रंथ संस्कृत साहित्य का इतिहास में लिखा है कि गद्य और व्यंग्यात्मकों ने काले काले नाटकीय कोशल को रंगमंच दिया क्योंकि मुख्य अभिनय का भाषात्मक सम्बन्धों का एक भाग में ही सम्मिलित था।

अंग्रेजी कवि आल्फ्रेड और गीति नाट्य का रटी० एस० इतिहास ने भी मान्यता वृत्तियों के विश्लेषण का पद्य को ही नाटक के लिये सर्वोत्कृष्ट भाषा माना है। इस से समस्त काव्य काव्य नाटकीय और नाटक काव्योन्मुख हो जाता है।^१

हिन्दी का गीति नाट्य साहित्य

हिन्दी की आधुनात्मक चिन्ताओं में गीति नाट्य प्रमुख चिन्ता है। यह सत्य ही है कि हिन्दी नाट्य रचना के लक्ष्यों की हम प्राचीन संस्कृत साहित्य में छीजने का प्रयास करें किन्तु यह भी स्पष्ट है कि संस्कृत नाटकों में, लगभग सभी नाटकों में काव्य का प्रचुरता से प्रयोग किया गया है तथापि कोई भी नाटक आधुनात्मक काव्य में नहीं है। हिन्दी गीति नाट्य का जो भी रूप रहा है/ हो---रास, रासक, अथवा नृत्य नाट्य, किन्तु वर्तमान हिन्दी गीति नाट्य पर अंग्रेजी और बंगाल का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। गीति नाट्य की दिक्षा गद्य नाटक से तो भिन्न है ही, किन्तु नाट्य-कविता अथवा काव्य नाटक से उत्पन्न प्रश्न के कारण गीति नाट्य को काव्य नाटक का पर्याय मान लिया गया है। जो वास्तवः एक दूसरे के निकट होते हुए भी भिन्न है।

एक काव्य और काव्य नाट्य:-

आज के युग में गीति नाट्य की प्रायः नाट्य कविता के पर्याय है वह में प्रयोग किया है। यहाँ सूक्तः गीति नाट्य अपने गहन में नाटक होने के कारण अभिनेय है और दूसरी ओर नाट्य कविता सूक्तः काव्य है। नाट्य-कविता में वह सब सब संवाद आ जाने से अथवा कथा प्रश्न से उत्पन्न नाटकीयता के कारण इसे गीति नाट्य नहीं कहा जा सकता। महाकवि निराला की पंखड़ी और राम की कति पूजा मात्र नाटकीय प्रसंगों के आधार पर गीति नाट्य नहीं मानी

जा सकती। 'प्रलय की छाया' और 'वैशाली की प्रति ध्वनि' ^{का गीत} 'महाराजा' आदि कितनी ही ऐसी काव्य रचनाएँ हैं जिन में नाटकीय ध्वनि तो है पर वे गीति नाट्य नहीं करी जा सकती। गीति नाट्य के लिये मंच सज्जा, ध्वनि-लय आदि नाटक का नियंत्रण, चरित्र-चित्रण, भाव प्रधान कथानक, अन्तर्व्यञ्ज, शब्दोच्चर कथोपकथन और रस सिद्ध आवश्यक तत्त्व है। नाट्य-कविता या काव्य-नाटक में इनका अभाव रहता है। रंगमंच के लिये उपयुक्त रंग निर्देश गीति नाट्य में आवश्यक है। काव्य-नाटक में या नाट्य कविता में इनकी आवश्यकता ही नहीं है। इस प्रकार गीति नाट्य में जिस खैरीखैर गीतात्मकता, भाव प्रकण्ठता तथा मानसिक व्यङ्ग्य की अवधारणा होती है उसे नाट्य कविता में नहीं छोड़ा जा सकता। काव्यतत्त्व के योग से गीति नाट्य के तत्त्व प्रभावान्वित करने में समर्थ होते हैं जब कि नाट्य कविता में चरित्र विकास के अभाव में प्रभावान्वित नगण्य होती है।

गीति नाट्य: कविता और नाटक का सम्बन्ध :-

गीति नाट्य में कविता और नाटक का सम्बन्ध इस प्रकार योजित किया जाता है कि कविता और नाटक की सत्ता एक दूसरे में मिलीन हो जाती है और एक ऐसी सत्ता का जन्म मिलता है जो कविता और नाटक के सम्मिलित प्रभाव से आनन्द की सृष्टि करती है। हैनरी जैमिजिस चार्जर गीति नाट्य को समान रूप से कविता और नाटक दोनों ही मानते हैं। ^{गीति} चिन्वी नाट्य डार सिद्ध नाथ कुमार का कथन है काव्य नाटक गीति नाट्य काव्यत्व और स्पर्श का संगमस्थल है। काव्य तत्त्व और नाटक तत्त्व इस में आकर एक ऐसे स्वल्प विधान की सृष्टि कर देते हैं, जिस में काव्यत्व के कारण मानव जीवन के राग तत्त्व कुछेक बड़ी गम्भीरता से उभर कर आते हैं, भावनाएँ और अनुभूतियों अपनी तीव्र और प्रेक्ष्य वेग लगी धारा में हमें अपने साथ बहा ले जाती हैं। नाटक तत्त्व इसका वाह्य स्वल्प निर्मित करता है, काव्य तत्त्व इसमें आत्मा की स्थापना करता है। नाटक तत्त्व, कथानक का निर्माण करता है, कुछ अन्तर्भाव देता है, संतर्भाव देता है, पात्रों की सृष्टि करता है, काव्या तत्त्व इस में अनुभूतियों का दान देता है। गीति नाट्य में मंच रचना के लिये संगीत, चित्र रचना, नृत्य-अभिनय आदि के प्रयोग से आतिथ्य और कलात्मकता उत्पन्न की जाती है तथा ध्वनियों के द्वारा भाव और लय के द्वारा वस्तु व्यापार व्यक्त होता है। सात ही वर्षों से चली आ रही परम्परा में काव्य-नाटक एक और गीति-प्रभाव से भावानुभूति को जाग्रत करते हैं और दूसरी ओर नाटकीय कौशल से उन भावों को प्रक्षुब्ध तक अभिव्यक्त करने में सफल होते हैं।

1. What we may justifiably call a new poetic drama freed from mere formula equally and integrally valid both as drama and poetry. H. G. Barker
on Poetry in Drama Page 13

2- शुद्धि मान-सृष्टि की शक्ति, सिद्ध नाथ कुमार

हिन्दी के प्रमुख प्रमुख गीति नाट्य

-: कल्याणतय:-

हिन्दी साहित्य में गीति - नाट्य का प्रारम्भ 1912 में कल्याणतय से होता है। कल्याणतय प्रसाद जी की सर्व प्रथम नाट्य कृति है अतः विषय वस्तु और शिल्प विधान की दृष्टि से इसे ही निर्बल हो किन्तु सर्व प्रथम नवीन नाट्य लिखा के प्रयोग से इस में जो दुर्लभा भी है वह मार्जनीय है। इस गीति नाट्य के प्रणयन में प्रसाद जी ने, संस्कृत के मूलक, अंग्रेजी के लोक वर्ग अथवा जंगला अभिनेताओं का प्रयोग किया है।

कथानक की दृष्टि से इस गीति नाट्य का वस्तु गहन अत्यधिक शिथिल कहा जा सकता है। वैदिक युक्त होते के कारण इसमें अन्तर्वन्द, भाव संघर्ष, स्वर, लय, ध्वनि से वस्तु उत्कर्ष की पर्याप्त योजना की जा सकती थी किन्तु कथा - केवल शिथिल से उसकी वस्तु संयोजना को ध्वन्य - आधार ही प्राप्त न हो सका। राजा हरिश्चन्द्र यांत्रिक से प्रतीत होते हैं। पृथ्वी-मोह अपने भाष में अन्तर्वन्द के आधार को विकसित कर सकता था। अजीतर्त भी बिना विचार के किसे अथवा बिना ~~संयोजना~~ मोह के भावना शुन्य प्रलय से अपने मध्यम-युग ध्वन्य-मोह से शुन्य हो गीति के बदले सर्व क्षति देने के लिये तत्पर हो जाता है, उसे अर्द्ध पृथ्वी से प्रेम है और उसकी वस्ती की कनिष्ठ से। शुन्य शेष उनका पृथ्वी है ही नहीं अतः उन में ^{अन्तर्वन्द} ~~अन्तर्वन्द~~ ^{अन्तर्वन्द} ~~अन्तर्वन्द~~ है किन्तु दासी स्व विवर्धामित्र की स्त्री साधवी वस्ती सुखता में जब शुन्य शेष के विवर्धामित्र के पृथ्वी होने का रहस्योद्घाटन किया तो उसका मातृत्व ही प्रकट हो जाता है विवर्धामित्र जैसे क्षति हो भी वस्ति सिद्ध कर दिया किन्तु यह सब एक क्षण में यांत्रिक गति से हो गया और गीति नाट्य का अन्तः संघर्ष फिर क्षीण हो गया। कनिष्ठ जैसे तर्पणमिष्ट क्षति भी शुन्य शेष की रोहित के स्थान पर क्षति देने की आज्ञा तुरन्त प्रसारित कर देते हैं जो उनके उपरान्त प्रतीत नहीं होती। अजीतर्त सांसारिक, स्वार्थी एवं भ्रष्ट व्यक्ति है जो धन के लोभ में शुन्य शेष की क्षति के लिये तो देता ही है स्वयं उसकी क्षति बढ़ाने का चाण्डाल कर्म भी करने को उद्यत है। रोहित ही ऐसा पात्र है जिस में एक और जीवन को लासता है और दूसरी ओर पिता की आज्ञा का अनुपालन। दोनों भावों में एक तीव्र संघर्ष हो सकता था किन्तु किन्तु वह क्षीण क्षति के कारण अधिक स्पष्ट चित्रित न हो सका। कथानक की शिथिलता के कारण नाट्य शिल्प भी अधिक स्पष्ट नहीं हो सका।

डा० नरेन्द्र के अनुसार इस नाटक में गीति नाट्य के प्राण तत्त्व मानसिक संघर्ष का बड़ा दुर्लभ प्रयोग है। हरिश्चन्द्र की स्वयं-भावना और पृथ्वी-प्रेम के बीच संघर्ष बड़ा शिथिल है --- करीब करीब नहीं के बराबर है।

1- डा० नरेन्द्र: आधुनिक हिन्दी नाटक पृ० 97

प्रसाद जी की यह प्रारम्भिक रचना है। कवि हृदय से निकली प्रकृति ऐसी तीखाडा स्वल्प निरुद्ध ही बहुत सुखी वातावरण का निमग्न करता है किन्तु रंग मंच की दृष्टि से उसका महत्व नगण्य है, - उसके नाटकीय आभाभाविकता का माध्यात्म कथित्य अंतर्गतियों से कहीं कहीं पर नाटक के विकास में बाधा पड़ती है। इसे लेखक की प्रारम्भिक रचना मान कर मार्जनीय कहना असंभव न होना।

गीति-नाट्य रचना के प्रारम्भिक काल की दूसरी प्रयोगात्मक रचना मैथिली शरण गुप्त द्वारा रचित अनघ है। गुप्त जी का साहित्यिक युग गांधीवाद के प्रभाव में अहिंसावादी अलौकिक आन्दोलन है, स्वयं गुप्त जी गांधीवादी हैं। इसी गांधीवाद की तत्कालीन समस्याओं और ^{अनेक समस्याओं} को गुप्त जी ने खुद-गुम और खुद के जीवन - चरित्र में देखने की चेष्टा की है। अनघ का रचना काल 1925 है। इस समय गांधी जी का असहयोग आंदोलन प्रारम्भ हो चुका था। सामाजिक नृसिद्धियों, घर-पुहार, अलौकिक, अहिंसा/और न्यायकी माँग उस युग का विशेषण धर्म था। यह धर्म तो खुद युग में भी था। गुप्त जी ने मर के जीवन चरित्र में खुद की व्यक्तारणा की है। यह लोक सेवा, श्रम, त्याग, अहिंसा और मान्यता के पवित्र सिद्धान्तों का व्यवहार में लाता है। इसे स्वार्थ परक ग्रामभोजक और उसके साथियों के मिथ्या-दोषारोपण का विचार करना पड़ता है, कारावास का दर्ज भी वह भोगता है, किन्तु अन्याय के सखा वह मत नहीं होता।

डा० नगेन्द्र ने ऊर्ध्व अनघ पर टिप्पणी करते हुये लिखा है कि अनघ वास्तव में एक सैद्धांतिक नाटक है। उस में युग धर्म के प्रतीक की सर्जना की मुख्य है। मर निरिक्त ही गांधीवादी नीति का प्रतीक है।

अनघ की समालोचना करते हुये यह स्पष्ट हो जाता है कि इस नाटक में गीति तत्त्व, काव्य तत्त्व और अभिनय तत्त्व का अभाव है। इस गीति नाट्य में मंगला चरण के अतिरिक्त 17 दूरय है जिनमें मंच निर्देश है ही नहीं और पात्रों के केवल संवाद हैं। उनमें अभिनय शैली का अभाव अत्यन्त उच्चता का मिथ्या अभाव पाया जाता है। मंच निर्देश सूक्ष्म और नाटकीय दृष्टि से अव्यक्त है। मंच के दूरय प्रस्तुत करते हुये कथित्य ^{अर्थों} का वातावरण प्राणहीन है। सम्पूर्ण नाटक में मात्र ज्ञान प्रस्तुत कर नाटक को गीतात्मक उत्पन्न करने की चेष्टा अव्यक्त की है किन्तु अनुगामी संवादों से वह वातावरण स्पष्ट नहीं रह सका है।

1- डा० नगेन्द्र: आधुनिक हिन्दी नाटक पृ० 98

उत्पत्ति के प्रारंभ की प्रकृति निश्चित की गयी है। तो कहती है-

तारा
भगवती-चरणवर्मा

मुझे चाह है रस की, पावन प्रेम की
उस विस्मृति की उस अनन्त संगीत की
जिस में निज ममत्व को सहसा भूल कर
हो जाऊँ मैं भक्त, कर दे मुझे
प्रवल प्रेमा प्रथम प्रेम की प्रकाशित
मादकता के विस्तृत सौन्दर्य प्रवाह में ।

किन्तु तबोनिष्ठ बृहत्कृति उसे शिक्षा देते हैं कि विरक्ति की, निवृत्ति की,
संसार की असारता की। संसार में सुखोंकी प्रकृता, पाप की वास्तविक हमनीय है।
सदात्तर बृहत्कृति ने सांसारिक स्वार्थ और भोग वृत्तियों को अस्वार्थ और अधोमति
का कारण बनाने की चेष्टा की है किन्तु वही स्वार्थ निरिच्छ नहीं कर पाते कि प्र
पाप है क्या? क्या वह मनुष्य की भूल है कि एक प्राकृतिक भूल

पाप? पाप क्या है? मनुष्य की भूल है,
है समाज के नियमों की अवहेलना

यह परम्परागत प्राप्त नैतिक आदर्श जिन से व्यक्तित्व का निर्माण होता है।
दूसरी ओर है व्यक्ति का अहम् Ego जिस के आवेग से ही मनुष्य की सम्पूर्णता है।
चित्र लेखा का प्रारम्भ ही पाप की परिभाषा से हुआ है। रविवारिक ने पूछा और
पाप यही बात चन्द्र ने बृहत्कृति से पूछी:-

गुस्सर क्या है पुण्य और क्या पाप है ?

बृहत्कृति ने जवाब दिया:- वह बहिर्बलित है अहंकारवर्धक उसे बल दे,

एक परिधि है आकांक्षा, की, चाह की,
उसके भीतर रह कर चलना पुण्य है
उसके बाहर गये और बन पाप है।

अर्थात् आकांक्षा की परिधि में सुटन कुठा और तत्त जीवन पुण्य है और
आकांक्षा की अभिव्यक्ति, तत्त स्वाभाविकता, प्रेम और प्रकृति के अनुत्पन्न जीवन
पाप? स्वार्थ अपनी ही परिभाषा से उत्पन्न बृहत्कृति कह उठे:-

प्रकृति स्वार्थ है पाप पुण्य कुछ भी नहीं,

यह एक वाक्य ही बार बार चन्द्र के मन में ^{बसता} घूमता रहता है। मानो चित्र लेखा
की परिभाषा ही गई है। पाप और पुण्य कुछ नहीं है केवल दृष्टि भेद हैं।
चन्द्रमा ही योगी कुमार गिरि हैं। तारा भी चन्द्रमा के प्रस्ताव की अवहेलना न
कर उस से मिलती है और मानती है कि सुख की लीज में पाप भी करना पड़े तो
वह पुण्य से बेकरार है:-

अगर पाप में ही सुख है तो पाप ही
हम दोनों बन जायें एक ही कर लें ।

पाप भी पाप-पुण्य की मनोवैज्ञानिक विवेचना में यही सुख की लीज परिलक्षित हो रही है।

जीवनावेग और नैतिक आदर्श सदा से ही खम्बू मूलक रहे हैं---आज भी हैं। एक उकारा ^{परम्परावादी} ~~परम्परावादी~~ दृष्टि कोण भले ही इसे अलामाजित कहे --- भारतीय चरित्र में --- किन्तु यह दृष्टि कोण सर्वथा सही है। संगत नहीं क्योंकि ऐसे अनेक देश हैं जहाँ हम ही सामाजिक जीवन का आधार हैं और पौराणिक युग की अनेकानेक कथाओं में हमें कोह देव नहीं माना गया है।

इस निहाल कर सारा नीति नाटक में आध्यात्म अर्थात् खम्बू का चित्रण है और अन्तः संघर्ष इस नाटक की सज्जता है। मनोविराम और शुद्ध दार्शनिक नैतिक सिद्धान्तों के संघर्ष का खम्बू सारा और कुवत्ति के चरित्र में चित्रित हुआ है।

मंच की दृष्टि से सारा एक सामान्य नीति नाट्य कहा जाय गा। इसमें काव्यात्मकता तो प्रायःवान है पर उसकी अनुपमता में गत्यात्मकता नहीं है। पात्रों में सर्व अन्य विवाद से दार्शनिक पक्ष अधिक सुदृढ़ हुआ है अतः विचार प्रभावशाली है --- भावनाओं का उत्कर्ष प्रत्यक्ष नहीं हो पाता।

नीति नाट्यों का सज्ज प्रयत्न हुआ है उदय शंकर भट्ट के नीति नाट्यों में। 'अशोक वन बन्दिनी', 'संत सुखी दास', 'गुरु द्रोण का अन्तः निरीक्षण', 'अवतारमाधु' एवं 'महर्षि निराश' भट्ट जी के नीति नाट्य हैं और नाट्य का वर्गीकरण करते हुये डा० मन मोहन मोहन ने यह प्रतिपादित किया है कि नृत्य नाट्य, नीति नाट्य और भाव नाट्य में काव्य पक्ष उत्तराग्रेतर बढ़ता है और दूर्य पक्ष घटता जाता है। नृत्य-नाट्य शुद्ध रंग मंचीय और भाव नाट्य शुद्ध पठनीय हो गये हैं।^१ नीति नाट्य की स्थिति मध्यवर्ती है।

अशोक वन बन्दिनी:-

अशोक वन बन्दिनी नीति नाट्य सीता के अशोक वन में बन्दिनी जीवन का अन्तः संघर्ष पूर्ण कथानक है। राम-चरित्र-मानस में निजटा सीता की चित्रित सीमानी है। यह निजटा राम के भी राम चरित्र रति नि पुन विवेका भट्ट जी की निजटा रावण का पक्ष समर्थन कर अपने अन्तः संघर्ष की अनुभव करती है। यह सीता से कहती है:-

जब दो ही हैं मार्ग तुम्हारे ---

रावण को स्वीकार करो या प्रान दो ---

जानकी को प्रान देना स्वीकार है। सीता के दुर्ल संकल्प से चित्रित निजटा सीमानी है --- क्या ऐसी भी नारी होती है कहीं, ज्ञान, कल्पना और ध्यान गति से परे यह सत्य न्याय का पक्ष प्रकट कर सीता की अनुचरी बन जाती है। रावण और सीता का संवाद अभिनय की दृष्टि से सज्ज हैं। प्रतीक, गति, - प्रक प्रदर्शन, भवाङ्गनाम करना आदि नाटकाय प्रक्रियाएँ हैं। उद्गम उठाते ही

१. डॉ. मनमोहन मोहन - उदयशंकर भट्ट: व्यक्तित्व और कृत्रिम, पृ. ८०

मन्दोदरी का प्रवेश और यह कथन कि अकाल अकाल है रावण को हतोत्साहित कर देता है। पुनः मन्दोदरी स्वयं सीता के दुःख चरित्र को से सीखती है:-

वति चरित्र की दुःखता वरनी में निहित

कमलोदरी वरनी की वति का अहित है।

यह केवल मन्दोदरी के लिये ही नहीं वर्तमान समाज में नित्य प्रति होने वाली पारिवारिक जीवन में सामान्य दुर्गतिओं के लिये भी उपदेश है।

अभीष्ट मन अन्दिनी गीति नाट्य में जानकी के अन्तर्मन के संघर्ष, दुःखता, सहन शीलता, याचना पूर्ण जीवन में भी सतीत्य और शौर्य की परीक्षा तथा सम्पन्नित द्वेष-प्रभावसे रावण मान मर्दन ट्राहि का चित्रण इतना सजीव और नाटकीय है कि हम गीति नाट्य की चरम सफलता कह सकते हैं।

संत तुलसी दास :-

संत तुलसी दास में तुलसी (राम जोला) के अनुमादी यौवनावेग एवं तदुपरान्त उनके अन्तर्मन के परिवर्तन का अद्भुत चित्रण है। प्रेमोन्मत्त राम जोला अपनी वरनी रत्ना के पीछे पीछे सधुरास जा पहुँचे जहाँ उनके साथ सधुर जैसे उन्मत्त मन युवक की उद्वेगता की देह कर चिन्तित होते हैं:-

क्या न जानती जानाता भी ---

एक सिक्क ग्रह के समान है

नही निमग्नोत्पन्ना है वह

नही उगलते कन्ता है वह

जिना कहे जिना जोते उस ने

रत्ना को आकाश कर लिया ।

राम जोला इस से भी एक बग जाने का दुर्दिनीत आचरण का वैधता है और उसकी वरनी रत्ना अपनी लज्जा में आत्ममत्तानि और अपमान से पीड़ित है --- तुलसीन इसे अपने आह्लास में आकाश कर लिया और वह जैसे परिवर्तनों की अवस्थिति में इस दुःशील आचरण से साथ हीन निर्दोषता अनुभव करने लगती है --- उसके माता अ और पिता विन्न मत और दुष्टी हो गये। जोक जन भी इस मर्यादा-हीन आचरण पर छिडकारें ने ही इस विषय स्थिति में रत्ना क्या करे वह मारी के लौकिक-सीत का अपमान नहीं सह सकती। प्रतापी राम जोला को एक संक्षिप्त किन्तु कटकार भी यह देती है --- यद्यपि तुम को साथ नहीं है, पर मैं तो निर्विघ्न

नहीं । १४

1- डा० मन मोहन गोस्वामि --- अद्वय जी के गीति नाट्य और भाव नाट्य ---

उदय शंकर शर्मा: व्यक्ति और साहित्य का रू० ४०

किस वृत्ति वृत्ती का वाङ्-मुह। पति प्रेम की दुहाई देता है, वही सर्वोपरि है, वृत्ती लोक और समाज के शील सदाचरण की ही मेष्ठ समझती है। प्रेम ही करना है तो ---

प्रेम क्यों न करते हो उस लोक जो अविनाशरसुन्दरतम है

अथ जिस का प्रेम स्व है, अथ जिस का सौन्दर्य है

यह अविनाशरस राम जगत् का, मनोनीति अभिराम अमर है।

सुलसी की कानों में एक ही स्वर गूँझता है, वही उसका हृदय परिवर्तन करने में समर्थ है---वर्माश्रित यह उत्तम तन है, नखर उसकी सुन्दरता है

यह अविनाशी राम जगत् के, मनोनीति अभिराम अमर हैं।

सुलसी कैरागी हो गये। रत्ना नहीं जानती थी कि परिणाम कठिन हो।

यह संशुक्ति हुई, सहमी और परचाताप करने लगी किन्तु सुलसी एक पल भी नहीं उठे। रत्ना की यह दशा ही तो इस नाटक का प्रारम्भ कभी हुई है---

यह कर ही क्या सकती थी----

-----रोई माई,

चिल्लाई मनुहार किया पर

कुररी के सम तड़पी, दोड़ी

पर से क्या सुनने वाले थे?

उस का अनुनय-विनय व्यर्थ सब

किस पछाड़ का गिरा भूमि पर

सुख कुछ भूल गई रत्ना भी

रखाम दिया है अन्न और जल

उसी समय से उस नारी ने।

सम्पत् सुलसी दास में नाटकीयता का आग्रह है किन्तु सम्पूर्ण कथा सूच्य बन गई। अन्तर्वन्दू, अन्तः संघर्ष, अन्तर्दशन की स्थितियों की कमी है। सूच धारों और संधियों द्वारा बहुत कुछ साहित्यिक है, किन्तु रंग मंच की दृष्टि से यह नीति त्रा नाट्य बहुत सफल है।

गुरु ड्रॉम का आरम्भ निरीक्षण

पर्व

अवतरणा

:- ये दोनों नीति नाट्य महाभारत के प्रसंगों से सम्बन्धित हैं। एक में गुरु ड्रॉम और दुर्योधन का संवाद है। दुर्योधन अपने आर्षाण पर्व गुरु ड्रॉम पर दोषारोपण करता है कि

वे युद्ध में मन से भाग नहीं ले रहे सभी उसे बार बार पराजय का मुँह देकरा प्रत्यक्ष पड़ता है। गुरुड्रॉम ने औरों का समक काया है अतः उन के पक्ष पर हैं किन्तु पाण्डव सत्य के लिये संघर्ष कर रहे हैं अतः वे न्याय-प्रिय हैं। इसी पक्ष में गुरु

ड्रॉप को आत्म-ज्ञान-अनुभव होती है। अवस्थामानाटक में प्रोपदी के पुत्रों को ^{पुत्र} ~~पुत्र~~ घट्या का समाचार लेकर ड्रॉप पुत्र अवस्थामा दुर्योधन की यह समाचार देने जाता है। इस से भीम का सब ज्ञान कर यह प्रसन्न है किन्तु जैसे ही दुर्योधन को उन बाण्डव-पुत्रों के सब का सत्य-ज्ञान हुआ वह उस दुःख की सतन न कर सके और उनके ज्ञान पड़ेर डूब गये।

^{पुत्र} दोनों नाटकों का कुछ सम्देश है। गुरु ड्रॉप का आत्म निरीक्षण राजनीति - दुर्योधन नेताओं का सही चित्रण प्रतीत होता है। अवस्थामा कार्य अकार्य की चिन्ता किये बिना अपने स्वामी की प्रसन्नता का विवरण है। दोनों ही नीति नाट्य अपनी नीति, भाव, चरित्र और अन्तरमन की विशेषताओं के लिये समर्थ हैं।

नहुष नियत नीति नाट्य की अवस्था बहुत नाटिका अधिक है। नहुष बहुत यह प्राप्त करके कामान्ध हो गये है। यही कामान्धता एवं गर्व उनके पतन का कारण है और यही सर्व योनि में जन्म लेते हैं। नहुष-उत्पत्ति सम्वाद नीतिक है।

भट्ट जी के भाव नाट्य

भाव नाट्य नीति नाट्य का ही उत्तर विकसित है। नीति नाट्य अग्रिम के भाव नाट्य पठ्य है। भट्ट जी की उपाति इन भाव नाट्यों के कारण अधिक है। उनके तीन भाव नाट्य हैं—मत्स्य गन्धा, विजयामित्र, और राधा। उन्हें स्वयं मत्स्य गन्धा प्रिय है जो उन्होंने ने हरिद्वार में लिखी थी। विजयामित्र हवि न होकर एक अहंकारी मानव की तरह प्रस्तुत किये गये हैं और राधा में नारी का परम सांत्विक रूप है।

महाभारत से लिये गये अध्याय में केवल नाम का आधार ही मत्स्य गन्धा:- लेखक को काम्य था। नारी जीवन का आश्रय है, उस में, यौन कामना प्रकट होती ही है। जीवन के साथ सहज, काम, काम के साथ सुख और सुख का अभावजीवन की निरर्थकता, यही इस भाव नाट्य का त्रिकोणीय स्वल्प है। यह भाव नाट्य एक प्रतीक रूप है—मत्स्य गन्धा फिर जीवन की प्रतीक है, काम जीवन का संगीत है, शान्तनु संतार है, पाराशर मानव के जीवन की दुर्लभता है। व्यापकस्वभाव की छोड़ जीवन में पदार्थन करते ही मत्स्य गन्धा को सर्वत्र सेंदर्य ही मौखर होता है। उद्दाम-जीवन में आत्म विभीर यह सीखती है:- कौन जानता है, कौन सोता है खड़े मेरे पास छिप, जान सकना कठिन है।—किन्तु अर्मन का प्रेक्षा और दोनों का यातायात। अर्मन हमारे भीतर छिपता है:

लेकड़ों व्यक्त बास

सत सत उदमार सत सत हावाकार

प्रणयों में पीड़ित, दुःख का अकार्य रूप

सूत्र 1:- डा० मन मोहन मोहन: उदय शंकर बहुत भट्ट—व्यक्ति और साहित्यकार

मत्स्य गंधा एक ओर काम पीजित है, दूसरी ओर अधिभाव प्रस्त मारी का अस्तित्व भी उसे ज्ञात है। वह कहती है:- 'मैंदरिद्र केवट की डेटी, उपाय हीन' किन्तु अर्नग यौवन दान से उसे वासनाभिभूत कर चला गया। अर्नग गया और पाराशर डूबट दूधे। रवि सा देव किन्तु दीप्त मुहमण्डल, पुरुषत्व का आकर्षण वह वासनाउद्दीप्त नारी कार्य न कर सकती। पाराशर रति दान मांगते हैं और मत्स्य गंधा समाज के मूल्यों, आचरणों, नीति और अर्थ सभी की संका उपस्थित करती है:---- पाराशर तर्क से उसका समाधान कर देते हैं। उनका कथन है:-

जैव नीच कोई नहीं, पाप पुण्य कहीं नहीं

कर्माकर्म कुछ नहीं, जा अर्नग रजिते ।

मत्स्य गंधा कम्पा है। कौमार्य का सामाजिक मूल्य है। पाराशर उसे भी कर्तक हीन बनाते हैं। मत्स्य गंधा की घिर यौवन की अगिलावा है ---पाराशर उसे घरदान देते हैं--- अमन्त मद राशि होने का। किन्तु नारी, 'प्रिय भी सदा न प्रिय लगता है' के उत्तर में वह कहती है:- 'नाथ, वह डूबट मुझे।' फिर मर नारी ६धनियों में बदल जाते हैं। विचार, अविचार, सब ६धनियाँ हैं---संवाद युक्त, फिर छोटी ६धनियाँ। नारी का यौवन-वेग पुरुष के पुरुष पुरुष को समर्पित। एक ही ६धनि उठती ख रस्ती है---

नीध, वह डूबट मुझे। पवनस्तु पवनस्तु ।

यौवन-स्वार के बाद देखा। यौवन अगिलाव बन गया। फिर वही अर्नग। घरदान मोटाने की वाचना, उद्दाम-यौवन घर घरचाताप। यौवन, रसम कम्पा गया। मत्स्य गंधा पैना शून्य हो गई। चारों ओर अधकार है उदासी प्रक और दुःख पूर्व अज्ञात---

उसी मन, उसी रवि, उसी शशि, तारिकाजी

उसी छोटे खेदना में मेरी ही युगान्तर की ।

यह गीति नादय (१) या भाव नादय काव्य प्रसिद्धा और गीतात्मकता से परिपूर्ण है। किन्तु यौवना और प्रतीक भाव के ऊँचे धन से यह काव्य के अधिक निष्कट है। अभिनेयता अपेक्षाकृत कम है। पहली-दूसरी आवाज अन्तर्मन का संघर्ष है। अर्नग भी मन की संकल्प विचलनात्मक स्थिति है।

विश्लेषणमित्र:-

भाव नादयों के क्रम में विश्लेषणमित्र का स्थान मत्स्य गंधा के पश्चिमे है, किन्तु काव्यनात्मक चित्रण की दृष्टि से मत्स्य गंधा है। प्रथम होना चाहिये।

विश्लेषणमित्र भी प्रतीकनात्मक गीति नादय है। विश्लेषणमित्र पुरुष है, पैना नारी, और कथन उल्टी दोनों का संघर्ष है। विश्लेषणमित्र अवधार है, पल है, रति का प्रतीक है, अभिमान है और है नर। पैना प्रेम है, कोमलता है, पाप प्रकृता है, नरता है, स्मृति है, जीवन है और है नारी।^{१९}

इस गीति नादय का प्रयोजन है नारी-सौन्दर्य की विषय, पुरुष अर्थ की पराजय। विश्लेषणमित्र सांसारिक जीवन से विच्छेद उपस्था रत, पश्चिम यौवन मूल्यों का निवेदन करते हैं, पैना अपने दिव्य रूप और नारी-यौवन के प्रभाव से उन

के जीवन मूल्यों को कदम कदम छूट छूट कर देती है। उस नारी सौन्दर्य पर ही विश्वामित्र समर्पित है---

सब प्रपंच/आश्वासन/ एक तुम सत्य हो

यह सौन्दर्य समग्र धृष्टि का मूल है।

मेनका के सौन्दर्य पर मुग्ध विश्वामित्र दिगभ्रमि हो रहे हैं। अनेक संकल्प चिकन्सों में उतराते हुये उनका अन्तर्ध्वंस चौथे दूरव में साकार हो गया है। मेनका को न बाकर भावावेग में विश्वामित्र सिला छूट से कूद कर आत्म हत्याको प्रयास करते हैं कि मेनका ने उन्हें राक लिया। दोनों एक दूसरे का सामिध्य पाकर:-

दुदय, प्रेम कादम्ब बियो आकण्ठ तक

नारी सुधा, पिशाता कुल नर की सुखद

शुभ प्रेम की मंदिर दुदय की जेता ।

(जो प्रिय ओ प्रिय' कह कर मेनका विश्वामित्र को आलिंगन प्राप्त में बाँध लेती है। बारह वर्ष के बाद मेनका मातृत्व का सांत्विक अनुभव कर स्वर्ग का सुख भेदे की म्योछावर करने के लिये तैयार है किन्तु विश्वामित्र अपने मन की क्षणिक दुर्लभाता में अभीसूधी होने पर परचाताप करते हैं। वे स्वर्ग का राज्य पाने चले थे स्वयं बतिलाओ गये। उन्हें अपने कृत्य पर आत्म आनि है। दूसरी ओर मेनका-मुन्नी सौन्दर्यता का मोह भी है। मोह का उसे उठाकर प्यार करते हैं और फिर स्वयं का लक्ष्य पुनः साध कर उसका परिवर्तन कर चले जाते हैं।

विश्वामित्र मय नादय में अन्तः संघर्ष का चित्रण सुन्दर दृंग से किया गया है। पुरुष का अर्ध है विश्वामित्र, नारी का अर्ध है उर्वशी और मेनका सुख नारी का रूप है। पुरुष के अर्ध को नारी के प्रेम - सौन्दर्य द्वारा पराभूत करना ही इस नीति नादय का मूलधार है।

राधा:-

राधा नारी की सार्विक प्रतिमूर्ति है। मत्स्य गंधा जीवनसूत्रम आयेग है। मेनका केवल नारी और राधा नारी की सांत्विकता।

स मत्स्य गंधा और मेनका काम संघालित हैं, राधा स्वयं अनुराग करी है। उसे न तो पुरुष का सामिध्य दृष्ट है और न ही सौन्दर्य समर्पण द्वारा किसी अर्ध को पराभूत करने की कामना। यह प्रेम का प्रति धाम नहीं चाहती:-

मैं न कुछ भी चाहती हूँ, चाहती हूँ केवल यही

मूर्ति उनकी दुदय में रख प्राण की आकण्ठ पीड़ा

उलझती पीती रहूँ, प्रीती रहूँ, युग प्रलय तक ।

राधा प्रेम की प्रतिधान विहीन प्रतीकात्मक मूर्ति है। कुण्ज मोह राम मुक्त है, श्री नीला के चिह्नेकी महा मान्य है और है राधा के आरम्भ्य। निष्काम प्रेम की

प्रति स्थापना के लिये इस गीति नाट्य में विवेक को प्रेम का अनुयायी बनना पड़ा। गीता के कृष्ण धर्म से स्थापनार्थीय सम्प्रदायि युगे है किन्तु नाटक में राधा चुन चुके मानो न मानो, वे सदा ही चुम्बारी हुए हैं और कृष्ण कहते हैं (३) चुम्बारा फिर लहाई।

पंत जी के गीति नाट्य

शिल्पी, रक्त शिखर और लोखन, पंत जी के गीति नाट्यों के संकलन हैं। कुल मिला कर इन में बारह गीति नाट्य हैं। इनमें पंत जी ने काव्य स्वरूप संज्ञा दी है और ये गीति नाट्य रेडियो प्रसारण केन्द्र से प्रसारित भी हो चुके हैं। 'अपसरा' पंत जी के शब्दों में सौन्दर्य चेतना का स्वरूप है। इस गीति नाट्य में पंत जी ने वर्तमान की जटिलताओं से बाहर स्वर्ण भविष्य की उल्लेखना की है। उनकी दृष्टि मुक्तः सौन्दर्य, प्रेम, प्रकृति और चिन्तन-प्रधान है अतः इस नाट्य में वे वर्तमान की भविष्य से संगति नहीं ढूँढ सकते। इस संकल्प के अन्य गीति नाट्यों में सर्वत्र एक-स्वभाव होते हुए भी काल-संगति का सादरम्भ नहीं होता।

शिल्पी गीति नाट्य में शिल्प कार का अन्तः संघर्ष चित्रित है। सौन्दर्य सुष्ठु कलाकार भीतिक्ता के संघर्ष में जितना उद्वेगित हो उतनी ही भावना है इस का यथार्थ छादी तबल चित्रण शिल्पी की विशेषता है। ध्वनि शेष विज्ञान-प्रीतिस्तोक को प्राचीन संस्कृति की ओर उन्मुख करने का प्रयास है। अर्थ-राजनैतिक विज्ञान आदि विषयों के दार्शनिक चिन्तन से यह नाटक गम्भीर हो गया है। यहाँ पंत जी ने आध्यात्म की प्रतिष्ठा करने का प्रयास किया है।

रक्त शिखर में संकलित गीति नाट्य अवैश्वक अन्तराष्ट्रियता छादी है। इस में कवि ने अपने ही शब्दों में जीवन के ऊर्ध्व तथा समस्त संघर्षों का चित्रण प्रदर्शित किया है। पुरुषों के देश, उत्तर शती, युद्ध, पुरुष, विद्वत्पुरुष वासना और शरद चेतना सभी नाटक आध्यात्म्य छादी लेंते करते हैं। पुरुषों का देशात्मक सांस्कृतिक चेतना का धरातल है, उत्तर शती में बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के संघर्ष और उत्तरार्धकी कल्याण कामना की गई है। युद्ध पुरुष गांधी जी के वाक्य चरित्र का चित्रण है, विद्वत्पुरुष कला स्वाधीनता के विकास का चरित्र है जिस में आत्म निर्भरता एवं एकता का संदेश है और शरद चेतना प्रकृति के सौन्दर्य का बहुत परक निरूपण है।

लोखन संकलन भारतीय मानव-वृत्तों के विकास का प्रतीक है। लोखन भविष्य युद्ध का रूप है, स्वप्न और सत्य, आदर्श और यथार्थ का चुन संघर्ष-बोझ है, विविध जीवन-सत्य की परिपूर्ण विषय का प्रतीक है।

पंत जी के गीति नाट्य शिल्प की दृष्टि से खड़े ही दर्ज हैं। इनमें अन्तः संघर्ष

स्वार्थरन्धता, एवं अनेतिकता का काल रहा है, रामायण काल से भी अधिक आचार विहीन और नैतिक मूल्यों के लक्ष से नीचे। नाटक कार ने इसी पक्ष के नीचे आदर्श-न्योति, कर्म बाध और आस्था के तन्त्रों को छोड़ने का निरन्तर प्रयास किया है।

अन्धा युग की कथा वस्तु विख्यात है, कुछ अंत उत्पाद्य है भी हैं। प्रख्यात कथानक महाभारत युद्ध के बाद की वृष्ट भूमि में स्थित है। इस्तावना में कवि ने केवल कृष्ण की समस्त समस्याओं के निराकरण का साधन माना है क्योंकि अनासक्ति यद्विद्योगीश्वर से ही हैं। शेष पात्र चाहे कौरव हों या पाण्डव उनमें से अधिक तर अच्छे हैं, यथ प्रष्ट हैं, आत्महारा, धिक्कृत और अन्तर की अन्ध युगलों के वासी हैं, यह कथा उन्हीं की है, या कथा न्योति की है अन्धों के माध्यम से।¹ यही सम सामयिक सम्भावित सुतीय विषय युद्ध की समस्याओं का प्राचीन परिवेश में प्रस्तुत करने का प्रयास है। प्रभावान्विति की दृष्टि से 'कुष्म-गान्धारी घात' अधिक स्पष्ट है। गांधारी, संजय, अवस्थापना, विदुर, दुर्जोधन आदि की भूमिकायें भी चरित्र निर्माण में पूर्ण समर्थ, मनोवैज्ञानिक एवं कथा जोष्ठव को आधान बनाये रखती है। कथा वस्तु की वैदिक मति शक्ति² बनाये रखने में कौरव और तब महत्वपूर्ण रहे हैं।

कथा-गायन (कौरव) की योजना का प्रयोजन दूर्य अन्धा अंत परिवर्तन को घटनाक्रम में प्रस्तुत करना है। कौरव युगानी नाटकों का अनिवार्य अंग थी। नाटक कार ने इस वादति को लोक-नाटक परम्परा से अपनाया है। कथा गायन का अभिप्राय मुख्य घटनाओं का उल्लेख करना, वातावरण का निर्माण कर उसे महम बनाना और कथा के प्रतीकारमक अर्थ को स्पष्ट करना है।² नाटक में कुल मिला कर चौदह कथा गायन हैं जो अंत के प्रारम्भ, दूर्य परिवर्तन अन्धा अंत के अन्त में दिये गये हैं। यही स्पष्ट मुख्य विधान के लिये अधिक उपयुक्त है और इसके कारण ही नाटक की मति शक्ति को बनाये रखती है।

"अन्धे राजा की प्रजा कहाँ ब्रतक देखे" प्रतीक वादी योजना है। अन्ध-कट टोन और तब सम्पूर्ण नाटक में व्याप्त है। शब्दों की समझ कर बोलने से उत्पन्न ध्वनि नाटकीय एवं प्रभावोत्पादक है। कुछ उन्ध और वृत्त-मैत्री मध्य के प्रयोग से यह प्रभावान्विति और बढ़ गई है। नाटक कार का मत है "कुल उन्ध में कोई लिखिक प्रवृत्ति की कविता अलग से लिखी जाय तो उन्ध की मूल योजना यही बनी रह सकती है⁴, किन्तु नाटकीय कथन में इसे मैं बहुत आवश्यक नहीं मानता।"³

1:- अन्धा युग --- उद्घोषणा पृ० 10

2:- यही---निर्देश पृष्ठ 4

3:- यही --- निर्देश पृष्ठ 9

युक्त छन्द के प्रयोग से भाषा में स्वाभाविक सरलता आ गई है। पात्रों की दृष्टि से अस्वभाविकता और माँझारी के चरित्र चित्रण मानव स्वभाव के अति निकट है। इन में कुण्डा, निराशा, आत्म हत्या, बीमरसता आदि भाव जितने दूर हैं उतने ही सामयिक।

वर्तमान के स्वर को इस नाटक ने प्रस्तुत किया है:-

शासक अच्छे,
स्थितियाँ दिवद्वि विस्तृत होती हैं
इस से जो पछिसे ही के शासक अच्छे थे
अच्छे थे-----

लेकिन वे शासन तो करते थे।

यह व्यंजना अपने आप में शासन-प्रक्रिया की कड़ी आलोचना है।

लेखक ने इसे ब्रह्म नाट्य मंड के उपयुक्त भी माना है।

जानकी बल्लभ शास्त्री के गीति नाट्य

जानकी बल्लभ शास्त्री ने अनेक काव्य नाटक लिखे हैं। शास्त्री जी ने अपने गीति नाटकों को संगीतिका कहा है जिसे अंग्रेजी बैंड में यदि चाहें तो आँधेरा बह सकते हैं। क्यों कि इन में संगीत की प्रधानता रहती है। गंगा घाट, कर्कसी, मान मंग, बाघाजी, रामदास, गोपा, मदनमं दहन, बराकती, आदि गीति नाट्य पौराणिक या ऐतिहासिक हैं। आदमी, सामयिक, रचना है। ये सभी संगीतिकाएँ भाव प्रधान अधिक हैं।

इन गीति नाट्यों में अन्धबान्धुतातिक छन्द हैं। लेखक का मत है कि उसने अभी तक की नाट्य रचनाओं में संगीतिका की साहित्यिक सार्थकता को लक्ष्य करते हुये केले, "मेव बर्षों ही क्यों", परिसम्भावों के लिये भी अन्धबान्धुताओं की अनिवारिता - ही स्वेच्छया स्वीकृति की है।^१ गेयता और अभिनय में सर्वत्र संगति नहीं रहती अतः छन्द और अन्धबान्धुता का आग्रह नाटकीयता को भंग करता सा प्रतीत होता है। वे संगीतिकाएँ रेडियो के लिये लिखी गई थीं। फिर भी इन के अभिनय को किञ्चित् परिवर्तन से मंच पर अभिनय करने की भी गुंजायश लेखक ने यह छोड़ी है।

अन्य गीति नाट्य कार

अन्य गीति नाट्य कारों में गिरिजा कुमार माथुर का इन्दुमती, निराला जी का पंचवटी प्रसंग और मेकली राय गुप्त का तीला तथा सिया राम राय का इन्दु और कुण्डा महर्षि पूर्ण हैं। नव्य युग के रचना कारों में राम धारी सिंह

दिनकर का 'मगध महिमा', 'हिमालय का सदेश', और परिवर्तन रचना 'उर्वशी' इसके विशेष प्रामाण्य हैं, आर० सी० प्रसाद सिंह का मदनिका उत्तम गीति नाट्य है। इस कुमार तिवारी के पुनरावृत्ति में पाँच संगीतकारों संकलित हैं। इन पर कालिदास का प्रभाव है। नरक मल्ल का अग्नि देवता और प्रभाकर नाथ के विन्ध्यवासि और राम गिरि अत्यंत सुन्दर गीति नाट्य हैं। अन्य नाटकों में सुष्टि का आखिरी आवनी रेजियो उन्म नाट्य है। केदार मिश्र के काल दहन और संकृत इतिहास काव्य एकांकी हैं।

दिनकर के गीति नाट्य

दिनकर के तीन गीति नाट्य हैं --- मगध महिमा, हिमालय का सदेश, और उर्वशी। मगध महिमा उनकी प्रारम्भिक रचना है जिस की परिवर्तनता हमें उर्वशी में मिलती है। मगध महिमा का परिवर्तन ऐतिहासिक है--- इतिहास की पात्र के रूप में मगध का परिचय देता है। हिमालय का सदेश विश्व शांति का सदेश देता है। उर्वशी उनकी प्रौढ़तम सर्वाधिक देव्य रचना है।

उर्वशी का कथानक हनुमन्त से लिया गया है। वैदिक-ब्राह्मण-पुराण साहित्य से उर्वशी कथानक का प्रसार काल तक व्याप्त है। दिनकर ने उर्वशी कथा को कालिदास के विक्रमोर्वशीयम नाटक के प्रभाव, वैदिक संदर्भों और पद्म पुराण की कल्पना कथा से लिया कर तथा रवीन्द्र-अरविन्द के दार्शनिक आदर्शों की भूमिका में प्रस्तुत किया है।

उर्वशी में कथानक वर्णित भी है चरित भी। उर्वशी की देव्य कैशी से सुरसा, उर्वशी का आकर्षण, उर्वशी की भारत का अभिभावक आदि वर्णित हैं। उर्वशी-पुस्तका मिलन, माता उर्वशी और आयु, राज्यारोहण एवं सन्धान आदि घटनाएँ वर्णित हैं। अथर्व और सुकन्या के आदर्श प्रेम और विवाह निर्वाह की कथा प्राचीन है। उर्वशी का कथानक नट-नटों की धारों से सुन्दर हो कर परिवर्तनों की धारा से वर्णित है। नैनका, रम्भा, चित्र लेखा और सहजान्या अवतरणों स्वर्ण मृत्यु मौकों के अन्तर की आताती हैं हर्ष प्रसंगका उर्वशी की उपमा दे कर उसके कथानक की प्रारम्भ करती हैं। सहजान्या ने ही उर्वशी - पुस्तका मिलन कथा के प्रसंग को प्रारम्भ किया है कि देव्य कैशी से पुस्तका ने उर्वशी की रक्षा की, उर्वशी अर्ध पुस्तका पर मोहित हुई और उसकी मार्ग्य बन कर रहने लगी। राजा पुस्तका भी उसके प्रेम बाध में आकाश मन्त्रमादन पर्यन्त पर सुख ऐश्वर्य भोगते रहे। दूसरे अंक में महारानी जीसीनारी यह जान कर कि राजा उर्वशी के मोह-बाध में आकाश हैं नारी-जीवन की निस्तार स्थिति पर चिन्तित होती है किन्तु आदर्श पत्नी की भाँति कुछ प्रतिरोध करने में असमर्थ। राजा ने एक वर्ष मन्त्रमादन पर व्यतीत

करने का सन्देश भेजा है। औशीनरी की कंठधर की स स्मृति दिनाते कैवर्ह्ये र्श-
 आराधना की ओर डेरित किया है। तीसरे अंक में उर्वशी-पुरुषा के प्रेम-दर्शन
 सम्बन्धी सम्वाद हैं। काम-दर्शन, आश्वासन-दर्शन आदि की चर्चा इस अंक का
 प्रमुख आधार है। चौथे अंक में महर्षि च्यवन और सुकन्या का प्रेम प्रसंग वर्णित
 है। पाचवें अंक में पुरुषा - उर्वशी राज भवन में निवास करते हैं, राजा स्वप्न
 देखता है, स्वप्न की व्याख्या होती है। सुकन्या द्वारा वारित उर्वशी-पुरुष
 वायु दरबार में उपस्थित होता है, उर्वशी शपथ ग्रहण करती है, अतः अन्तर्धान होती
 है और औशीनरी वायु की तीसरी गङ्गा का स्थान पा कर क्षम्य करती है। राजा
 सम्वासी बन जाते हैं। यहीं पर उर्वशी कथा समाप्त हो जाती है।

 T.....

अध्याय एक उर्वशी : प्रेरणा और पृष्ठभूमि

दिनकर का जीवनवृत्त और व्यक्तित्व
दिनकर साहित्य में युग संघर्ष और साहित्यिक उन्मेष
दिनकर पर कालिदास, टैगोर, अरविन्द और प्रसाद का प्रभाव
दिनकर : अन्तर्द्वन्द्व और मानसिक चिन्तन के कवि
दिनकर का काव्यात्मक विकास

स्फुट कवितायें
अनूदित कवितायें
प्रबन्ध काव्य

गीत नाट्य
—मगध महिमा
—हिमालय का सन्देश
—उर्वशी

दिनकर का जीवन कृत

राम धारी सिंह दिनकर का जन्मग्राम सिमरिया जिला मुंगेर में एक सामान्य कुष्ठ परिवारमें हुआ था। यह गांव गंगा और सन्त नदियों के दोबोरी में स्थित है। उद्युति सम्प्रदा से सम्बन्ध, नदियों के बावन जल से सिंचित और वाद से भी अभिरक्षित यह गांव एक साहित्यिक ग्राम है। महा कवि विद्या-धर भी इसी गांव के समीप अपने अन्तिम दिनों में जा लगे थे।

दिनकर के पिता का नाम रघु सिंह था। इनके ही नाम पर कवि ने अपना उपनाम दिनकर रखवा है। विदुषी-परिणीत मां श्रीमती मनसा देवी ने दिनकर का निर्मल मन और भीखीय रूप संभारने में कोई क कभी नहीं की। उनके पिता को का देशावसान घनी हो गया था तब दिनकर दो वर्ष के थे। सैहम्ब मां उन्हें नुनू कहती थीं। दिनकर के दो भाई और थे, जगज्ज भी जल सिंह और अनुज भी तत्प नारायण सिंह। स्नेह, संघर्ष, संकट, और साधना के बीच से मार्ग निकाल कर मां ने अपने बच्चों का पालन किया और दिनकर पर जल जल का पर्याप्त प्रभाव है।

दिनकर की जन्म तिथि विवादास्पद है। डा० सावित्री सिंहा ने दिनकर की जन्म तिथि पत्नी जन् 1316 आश्विन सुक्ल दुधवार की रात को मान कर 30 सितम्बर 1908 लिखी है।² डा० प्रताप चन्द्र जायसवाल ने भी 30 सितम्बर 1908 ही मानी है।³ अन्य विद्वानों में डा० लखर चन्द्र जैन और डा० टीक राम शर्मा ने भी 30 सितम्बर ही स्वीकार की है जब कि स्वयं दिनकर ने उसे स्वीकार नहीं किया है। डा० विमल कुमार जैन ने उनकी जन्म तिथि 23 सितम्बर 1908 को ही मान्यता दी है।⁴ स्वयं दिनकर ने अपनी जन्म तिथि के विषय में अपने भित्त स्व० ब्रज बिहोर नारायण को 4 अक्टूबर 1966 के पत्र में दिल्ली से लिखा है:-

पहले ज्योतिषी ने गलती कर के मेरी जन्म तिथि
30 सितम्बर, 1908 बतायी थी। फिर भी राग
लोचन जी बाण्डेय जी ने मेरी माता बही से पूछ ली

- 1:- दिनमान: वर्ष 74, पृष्ठ 23
- 2:- युग धारण दिनकर, पृष्ठ 91
- 3:- राष्ट्र कवि दिनकर व उनकी काव्य साधना, पृ०
- 4:- दिनकर: उर्वशी तथा उनकी कृतियाँ, पृ० 91

और मेरी जन्म तिथि 30 के बदले 23 कर दी।

अब यही तिथि में भी स्वीकार करता हूँ।

--- दिनकर के पत्र कुलकर्ण: पृ० 224

23 सितम्बर 1908 से अंक-ज्योतिष के अनुसार दिनकर जी को निरन्तर स्थान बदलते रहना चाहिये। मित्र भाव, उत्तेजना, क्रोध, भावुक, क्षिप्त निर्वासन स्थिति और किसी भी कार्य में हानि-नाश का विचार किये बिना जोखिम उठाना उनके स्वभाव के लक्षण है। अतः दिनकर की जन्म तिथि को 23 सितम्बर की मान लेना उचित है किन्तु जिसे स्वयं कवि भी स्वीकारता है तो हमारे नकारने का कोई औचित्य भी नहीं है।

दिनकर का सामान्य जीवन साधना और तपस्या से परिपूर्ण है। उनकी पत्नी रमाया ने ही दिनकर के जीवन की रचना की और जीवन भर कविता की जेदी पर अपने स्वार्थों को बलिदान किया है। स्वयं कवि के अपनी मानवता कविता में पत्नी के भावों को उदा-बोध एवं आक्रोश को चित्रित किया है:-

गहनों से शोभा बढ़ती है, उपर दृष्टि है जन्मों से
तुम्हें न जाने क्या मिलता लिवटे रहन में पत्नी से
कुत्तों को बंदी व बाँध करे, यह भी जाकी जरमान मुझे
देसी है रखी है, चाँदी-सोने की छान मुझे

--- रसवती - पृ० 45

और कवि यह आक्रोश को निरन्तर उपेक्षा भाव से देखता रहा है। कवि का आत्म विश्लेषण भी रमाया के भोलेपन, निरलस करिब और साधना पर मानों पं एक मुहर लगा देता है:-

अन्तर्हीन स्व निज प्रिय का,
ग्राम कष्ट कैसे सहचामें
साजी भी भिक्षुणी जगत् में
यह सीती भोली क्यों माने

जीवन की रसदृष्टि पंडित कविवर की क्यों चाँदी न दुर्घ ?

कवि जाया कहती, लक्ष्मी क्यों कविता की चाँदी न दुर्घ ?

दिनकर जी रस दृष्टि और चाँदी कमाने के क्षेत्र में ही जीवन सर्वज्ञ संघर्ष करते रहे। अपने अलंकार और आभूषणों को भी जो नारी का सज से बहुत मँड होता है। दिनकर के विकास और निर्माण कार्यों में उनकी पत्नी ने न्योहावर कर दिया---आ० सावित्री सिंहा ने एक स्तक के माध्यम से यही बात कही है:-

जब उनका सिद्धार्थ सरस्वती की साधना में दिन-रात एक कर
रहा था, यशोधरा रागिनी होकर भी विरागिनी हो रही थी।

----- दुर्ग चारण दिनकर: पृ० 2

1:- कीरी: एक आक नमस्त

दिनकर के व्यक्तिगत निर्माण में उनके गांव की जलवायु, नदी, डेल, कठार और अन्य भौगोलिक स्थितियों का जितना हाथ रहा है उससे ही उसका को व्यक्तिगत परिस्थितियाँ भी उन्हें बना रही थी। गांधी बाप का जो देश व्यापी प्रभाव था उस से दिनकर बच न सके थे। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा राष्ट्रीय विद्यालय में हुई थी। सार्वजनिक सभाओं में राष्ट्रीय गीत बन्दे मातरम् का गायन मानों दिनकर में राष्ट्रीय भावों की प्रान प्रतिष्ठा कर रहा था। मोकामावाट के स्कूल से मैट्रिक परीक्षा पास कर दिनकर पटना चले गये और वी० ए० आनर्स परीक्षा उत्तीर्ण की। डेनी पुरी जी के आलोक के स्थान पर अब युवक निकलने लगा था। दिनकर की कवितार्यें मेजर के हण्ड भय से अभिभावक के नाम से उक्त पत्रों में प्रकाशित होती थीं।

व्यक्तित्व:-

दिनकर व्यक्तित्व के धनी थे। गौरा चिट्ठा रंग, लम्बाई पाँच फुट ग्यारह इंच, भारी भरोसा शरीर, बड़ी बड़ी आँखें जो रचना के दिनों में चिन्तन चिल्लट लगती थीं, घर बात करते समय या कविता पाठ करते समय प्रदीप्त हो उठती थीं ललकार भरी कुर्ब आवाज़, तेज़ चाल और शिष्ट बुद्धि---ये हैं वे खरिद विवेकतायें जिन से दिनकर का व्यक्तित्व बना था।^१ उनके व्यक्तित्व से प्रभुत्व की आभाषित होती थी, स्वाभिमान और आत्म विश्वास की प्रकृति भी व्यक्त होती थी। स्वाभाविक ही था कि ऐसे व्यक्तित्व वाला पुरुष झोझोहों, बिन्दु उसके झोझ में भी एक निष्कलुषता थी। जिसपर झोझ हो जाता है उस से मन्ता भी उसनी ही होती है।

दिनकर अपने परिवार के सिधे सरह व्यक्ति थे। माइयों का दायित्व, कन्याओं के विवाह, पुत्रों के विवाह, प्रकाशन-योजना/आदि ऐसे कार्य थे जिन में दिनकर जीवन भर खटते रहे। डेहियों और पोटियों के विवाह का कुछ प्रभाव: वे अपने मित्रों को सिधे गले पत्रों में करते थे। जातीय से अन्तर्जातीय विवाह तक उनका यह विवशता पूर्ण सब कार्य था। दिनकर ने एच० ई० स्कूल छात्राया में दो वर्ष 1933-34 तक प्रधान अध्यापक का कार्य किया फिर 1934 से 1942 तक सब-रिजिस्ट्रार के पद पर कार्य करते रहे। राष्ट्रीय मातृनाई वाले कवि वृद्ध दिनकर अपने विविध अन्तर्व्यन्ध में फँसे थे। मन राष्ट्र भाव से प्रेरित हो कर देश प्रेम की कवितार्यें लिखता रहा। और बुद्धि नोकरी से छिड़ी रही। आः एक संतर्ष जन्म से उठा। 9वर्ष के सेवा काल में 22 बार तबादला होना उसका परिणाम था। अन्ततः उन्हें खुद-बुहार विमान में भेज दिया गया।

१:- राम शारी सिंह पृ० १ : : मन्मथ नाथ गुप्त

दो वर्ष तक वहाँ कार्य किया और फिर स्वतंत्रता के साठी साध जन-सम्पर्क विभाग में तीन वर्ष तक अधिकारी बने रहे। 1952 तक वे विहार विद्य-विद्यालय के प्रोक्टर बन कर हिन्दी विभाग की सेवा करते रहे। 1964 में वे भोगपुर विद्या विद्यालय के कुलपति बने किन्तु गी० जी० उन्हीं ने इसे बंद का त्याग कर दिया। 1965 में भारत सरकार ने उन्हें हिन्दी सलाहकार पद पर नियुक्त किया। इसके पूर्व वे 1952 से 1964 तक राज्य सभा के मनोनीत सदस्य रह चुके हैं।

कवि दिनकर ने सन् 1871 तक यूरोपीय एवं पश्चिमी देशों का भ्रमण किया जिन में चीन, रूस, मिस्र, मारोक्को, पेरिस, जर्मनी, और इंग्लैंड सन्निहित अनेक देश थे।

दिनकर पर भारतीय मनीषियों का, चिन्तक और साधकों का, संत और कवियों का प्रभाव था। संत तुलसी दास रचित राम चरित मानस उनका सर्व प्रिय ग्रंथ रहा है। कबीर का उनपर प्रभाव भी तो वर्तमान युग के महर्षि एवं योगी अरविन्द का भी प्रभाव रहा है। काव्य के क्षेत्र में वे मैथिली शायन गुप्त की काव्य प्रतिभा से कायल थे, उर्दू के बङ्गाल ने उन्हें प्रभावित किया, टैगोर की काव्य-समृद्धता उनकी प्रेरणा बनी और अंग्रेजी के लार्सेन, रिल्के, नीत्शे, तथा अन्य अनेक यूरोपीय कवि उनके अध्ययन के प्रिय साहित्यकार थे। दिनकर के काव्य में संस्कृत साहित्य से ले कर वर्तमान के लार्सेन जैसे कवियों की छाप पड़ी है।

साहित्यकार दिनकर:-

साहित्यकार दिनकर का व्यक्तित्व अन्तराष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्धि का था। उन पर मार्क्सवादी और माछीवादी दोनों की राजनीतिक विचार धाराओं का प्रभाव था।

कलना लोक का वाच्यी भाषावाद व और सामाजिक धरातल का धर्म-विलोप प्रगतिवादो धर्म उनकी रचनाओं में व्याप्त है। अपनी बङ्गाल की भूमिका में उन्होंने ने यत्र-तत्र इसकी आत्म स्वीकृति दी है। पंत निराला (प्रसाद नहीं) मैथिली शायन गुप्त, राम नरेशत्रिपाठी का काव्य, अश्व मेमाली, भवानी प्रसाद मिश्र तक की कविता और अंग्रेजी के रिलियट, लार्सेन और एकरा पाइण्ड का भी उनपर प्रभाव है। कवि भारतीय व्यामोह का सर्वथा त्याग नहीं कर सका है—ग्रेट के फाट काफ़लूक भारतीय नाटकों के नाम्दी प्रसंग से जना था, केन्द्रे शीतल और हाकने पर कालिदास का प्रभाव था और रिलियट के विकास का एक मुख्य कारण उन पर उपनिषदों और बौद्ध चिन्तन का प्रभाव भी है। साहित्य सुख की दृष्टि से दिनकर की सर्व श्रेष्ठ कृति उर्वशी है।

प्रद- 1:- बङ्गाल, पृ० ५५

दिनकर भी ही स्वीकार न करें और प्रसाद की कितना ही मझारें पर कामायनी ही उर्वशी की चम्प पावनी है। भूमिका भाग में दिनकर का सुदृढ़ मन-सर्पार्थ विहीन^२ - मुख्य मन स्पष्ट है:- मनु और इजातया पुरुषा और उर्वशी, ये दोनों कागर्भ एक ही विषय को वक्ष्य व्यंजित करती हैं। सृष्टि विकास की प्रक्रिया के कर्तव्य पक्ष का प्रतीक मनु और इजा का वाक्यान्वय; उसी का भावना पक्ष पुरुषा और उर्वशी की कथा में कहा गया है।^१ उक्त कथन से स्पष्ट है कि दिनकर कामायनी जैसी ही मन्मथी काव्य रचना कर अपने को प्रसाद के सम-सं स्तर पर स्थापित करने की सातता रखते थे। यद्यपि उर्वशी उस स्तर तक नहीं ही पहुँच सकी। "इन्होंने तो खन्वद गीत को भी कामायनी की तरह Arrange करना हो गा" को कामना की थी।^२

रचना कार दिनकर कविसम्मेलनों के कवि से कविक जैसा अपूर्ण ग्रंथ के कवि के रूप में स्थापित हो कर मंच की कविता से तिरस्क्त हो गये थे। मंच की कविता का व्यवसाय बन गई तो दिनकर सब से मही कवि थे। यह भी विक्रमन पब्लिश पर। दिनांक 3-2-73 को पटना से श्री जनार्दन राम नागर उदयपुर को लिखे गये पत्र से स्पष्ट है कि पटना से दिल्ली का A.C.C.U का किराया 422 रुपये तदुपरांत दिल्ली से हवाई जहाज की उदयपुर तक की व्यवस्था और हवाई जहाज से ही दिल्ली वापसी। इसके साथ एक वाक्य और भी है "यथा मातृज और काव्य-वाच निःशुल्क की करना होगा। नैरा एक सप्ताह का समय बताई होगा, समझा भी ध्यान दिलाई रखिये-गा।"

लोग देखती का किराया देना गलत जाते हैं। वह आप न कीजिएगा।^२ इस से प्रतीत होता है कि दिनकर धन विषास बन गये थे।

दिनकर की साहित्य यात्रा मौलिकता से आध्यात्मिकता की ओर रही है। उनकी दृष्टि से उर्वशी तक की यात्रा क्या अभिधा से लक्ष्मी की ओर प्रस्थान नहीं है। लोक प्रियता और साहित्यिकता का उनमें अद्भुत संगम था। दिनकर जी लोक प्रियता की ली माता बहन करद कर प्रयोग की बेत राध में लिये शुद्ध कविता की छोब में निकल पड़े, सीपी और रंज दृष्टावे।^३ व्यास विजय के साथ उनकी लोक प्रियता के ही जुड़ गई थी जैसे बच्चन के साथ मधुसूता। मैं ने स्वयं उनकी यह कविता पूज्य वददा श्री भिक्षु शरण गुप्त जी के निवास पर चिरगाँव में सन् 1951 में स्वयं दिनकर जी के मधुर कण्ठ से सुनी थी---स्वर आ:-

सुखभूत उदर चरण के मोदे, मैं उर्वशी से गार्ज

तान तान कम व्यास कि दुःख पर मैं काँसरी जलार्ज

1:- उर्वशी भूमिका: ४

2:- दिनकर पत्र: पृ० 11 कुलफाट

3:- हिन्दुस्तान: 19 मई, पञ्चक 1974

दिनकर पर पारंपार्य प्रभाव के विषय में भी चर्चा करना समीचीन है। शिव दूध शर्मा ने अपनी पुस्तक 'दिनकर और उनकी काव्य प्रवृत्तियाँ' में प्रतिष्ठा और पारंपार्य प्रभाव शीर्षक निबन्ध में मिल्टन, शेक्सपियर, शैली, कोट्स, और बकुबाल के प्रभाव की पर्याप्त चर्चा की है। रेणुका की पारदर्शी कविता शैली के *ode to the west wind* से प्रभावित कहाई गई है। मेरा विश्वास इस में भिन्न है। मात्र एक वीक पर सम्पूर्ण कविता को आरोपित नहीं किया जा सकता। शैली ने लिखा है:-

*I lift me as a leaf, a wave, a cloud.
I fall upon the thorns of life I bleed.*

दिनकर ने इस से प्रभावित केवल एक वीक ही लिखी है--'वायु उठा कर ले चल मुझ को, जहाँ कहीं इस जग के बाहर।' सम्पूर्ण कविता इस एक वीक के आधार पर आरोपित नहीं की जा सकती। जब शंकर प्रसाद के के गीत ले चल मुझे भुलावा दे कर मेरी नाविक छोरे छोरे की श्रवण भी इस में श्रवित है। दोनों कवियों के कथन में केवल धारणा और वक्ता का ही अन्तर है। इस के अतिरिक्त यह भी उतना ही सत्य है कि शेक्सपियर के कथा काव्य --- 'Venus and Adonis' का प्रभाव कवि शब्द व्याख्यान उनकी उर्वशी में स्पष्टतः अभिव्यक्त है। दिनकर ने शेक्सपियर के नाटकों का तो उल्लेख किया है किन्तु इस काव्य को है इतनी समीक्षा से कहा गये कि इस पर अभ्येताओं की दृष्टि ही न पड़े। 'Venus और Adonis' की काव्य-उपा भी उही उर्वशी के अनुसृत है जहाँ रक्त की भाषा बहती गई है। आर्तिगन, चरित्रधर्म, दुस्मन, आदि का चित्रण शेक्सपियर में निरर्थक ही व्यंजना समझ है उसे ज्ञात साहित्यिक है, किन्तु दिनकर तो ऐसे प्रसंगों पर अभिधा के धरातल पर उतर जाये हैं। मेरा मत है कि शेक्सपियर का चीनस और पडौनस दिनकर पर प्रभाव जारी रहा है। रक्त की भाषा जितनी सुंदर और उत्तेजक शेक्सपियर के उक्त ग्रंथ में है अन्यत्र नहीं, वही कुछ उर्वशी में भी वृष्ट है:-

*And yet not cloy thy lips with loathed satiety
But rather furnish them amid their plenty.
Making them Red and pale with fresh variety
Ten Kisses short as one and one as long as twenty.*

x

x

x

*My flesh is soft and plump, my marrow burning
My smooth moist hand, were it with thy hand felt
would in thy palms dissolve or seem to melt
Shakespeare - Venus & Adonis.*

और दिनकर एक अभिधा में ही वर्णन करते हैं:-

देती मुक्त उठेन अक्षरमय साय सप्त अक्षरों में
सुख से देती जोड़ु कनक-कलशों को उज्ज्वल करों में।

----- उर्दूगी: ५०५० पृ० १५

इसी प्रकार सर्व विषय के लिये तो दिनकर विख्यात ही हैं। डा० दिव्य विजयेन्द्र नारायण सिंह ने ऐसे एक ही चारदस सर्व विषयों की चर्चा की है। यह सर्व विषय भी सेक्सपीयर के योनस और एडोल्फ की वीक्षित में जीकित है:-

*Here come and sit where never bespant kisses
And being set I will smother thee with kisses.*

दिनकर ने अनुवाद के माध्यम से अपनी कविताओं के स्वयं किये हुये अंग्रेजी अनुवाद और अन्य यूरोपीय तथा एशियायी कवियों के हिन्दी काव्यानुवाद भी प्रस्तुत किये हैं जो तीसरी और चौथी, आत्मा की आँखें तथा वास्तव जाफ दिमागलिया के रूप में हैं।

दिनकर पर अरविन्द का भी बड़ा प्रभाव है विशेष रूप से उनके वर्णन का और उनकी कविताओं का। उर्दूगी के लेखन में कवि दिनकर ने महर्षि अरविन्द की चोरी छुप्टी की निम्न की अवस्था बढ़ा है और उनकी उत्तम कल्पना में अरविन्द की उदात्तता समाई हुई है।

दिनकर के उर्दूगी पर मान्यता पुरस्कार मिला है। यह ग्रंथ १९६० से १९६५ तक की साहित्यिक रचनाओं में सर्वोत्कृष्ट घोषित किया गया है। उर्दूगी का अंतरंग अर्थ विचार और बहिरंग अर्थ काव्य रूप दोनों में एकान्वित दृष्टि का प्रयास बना रहित पाठक के लिये बड़ा स्वाभाविक है डा० नमोन्द्र इस युग के बेष्ठ काव्यों की सुलना का सारांश उर्दूगी के संदर्भ में प्रस्तुत करते हुये करते हैं:-

इसी लिये सामयिक हिन्दी काव्य की यह बेष्ठ उपलब्धि
जहाँ रूप में अक्षेयक अधिक समृद्ध एवं प्रबल होने पर भी
अपने समग्र रूप में न कामायनी की केनी में आती है और
न प्रियव्रता तथा साकेत की केनी में।

-----दिनकर की प्रमुख प्रबन्ध कृतियाँ: उर्दूगी

दिनकर एक आलोचक के रूप में भी साहित्य जगत में आये किन्तु उनकी आलोचना आचार्य ए० राम चन्द्र शुक्ल की कौटि में नहीं आई और न ही वर्तमान काल के जागरूक आलोचक डा० नमोन्द्र अथवा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के समक्ष। वास्तव: दिनकर आलोचक है ही नहीं। वे तो केवल अंग्रेजी रोमांटिक कवियों की भाँति अपने काव्य के पक्ष में प्रशंसा लिख कर अपने काव्य के औचित्य की सिद्ध करने का प्रयत्न करते रहे हैं। आचार्य बर्नार्ड शॉ की भाँति भी दिनकर की काव्य प्रशंसा नहीं है---उनका प्रयास तो केवल बताने तक ही सीमित रहा है-१९५९

निम्न कविता के उर्दूगी नाम न नीका ।

यह इतिहासकार कहेंगे होने के कारण प्रयास में उन्होंने ने संयुक्त संसृति के चार अध्याय ग्रंथ लिखे जो न तो साहित्य ही बन सका न और न इतिहास ही ।

यद्यपि जापानी भाषा में कवि दोई ने इस का अनुवाद किया है और भारतीय साहित्य संस्थानों में भी पुरस्कार आदि से उसकी सम्मान किया है तथापि यह बलिदान या साहित्य का ग्रंथ नहीं बन सका है।

दिनकर की सांसद होने का सम्मान मिला है। वे 1952 से सांसद मनोनीत हुये थे और बारह वर्षों तक राज्य सभा के सदस्य बने रहे। इस अवधि में उन्होंने हिन्दी की पर्याप्त कक्षाओं की—शासन के प्रति हिन्दी शोध की व्यवस्था किया किन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि दिनकर स्वयं अपने दैनिक पत्र व्यवहार में भी अंग्रेजी की का प्रयोग करते थे¹ और वे थे पत्र हैं जो उन्होंने हिन्दी के मुख्य एवं जनप्रिय दास ज्योति, बन्धु दुग्गड, शिव मंगल सिंह सुमन और कुलशानी की को लिखे हैं। एक पत्र जापानी प्रोफेसर के 0 दोई के नाम अंग्रेजी में है पृ० 18। और दूसरा पत्र हिन्दी में ---अर्थात् प्रो० दोई हिन्दी के ज्ञाता थे और वे दिनकर की ही संस्कृति के चार अध्याय ऐसी सांस्कृतिक पुस्तक हिन्दी से जापानी में अनुवाद कर रहे थे। प्रो० दोई हिन्दी और जापानी के विज्ञान हैं और फिर ऐसी क्या आवश्यकता प्रतीत हुई कि दिनकर ने एक तीसरे देश इंग्लैंड की अंग्रेजी भाषा का प्रयोग अपने पत्र व्यवहार में किया जब कि प्रो० दोई हिन्दी भाषी के भी भाषी समझे थे। इसे दिनकर का हिन्दी प्रेम कहें या अंग्रेजी का मोह। दिनकर की तो केन्द्रीय शासन में हिन्दी सलाहकार के पद पर को सुशोभित कर रहे थे। यह दोहरा स्वल्प कवि का क्यों कर हुआ ---एक विचारणीय प्रश्न है।

सांसद श्री दिनकर बारह वर्ष राज्य सभा के सदस्य रहे। उनकी एक महत् अभिलाषा पूर्ण हुई--- वे शासन के मंत्री होने की भी महत्वाकांक्षा संजोये हुये थे।² सांसद बनने के लिये भी उन्होंने 1950 जनप्रिय दास ज्योति की से 1950 जवाहर लाल नेहरू और राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद के लिये लिखविला करवाई की मंत्री न बन पाने पर उन्हें छेद भी हुआ हो गा। उन की विदेश यात्रा भी उनकी अवैली रही। पूज्य ब्रह्मा मेधोती सरण गुप्त अपने संस्कारों का समस्त संस्करण नहीं करना चाहते थे, उन्होंने ने विदेश जाने से बन्कार कर दिया, यद्यपि दिनकर के ने इसका कारण उनकी अवस्था बताई है।³ इस से दिनकर

1:- दिनकर के पत्र: पृष्ठ: 55, 97, 63, 103, 117, 155, 162, 1704
181, 250, 292

2:- दिनकर पत्र: आगुम खे शिक्ष मंगल सिंह सुमन

3:- दिनकर पत्र पृ० 62

का मार्ग प्रशस्त हो गया। वे विदेश यात्रा पर यूरोप और अमेरिका के देशों का भ्रमण करते रहे। एक बात दिनकर के लिये महत्वपूर्ण हो सकती थी---यह थी उनके उनके पर्यटन से विदेशों की तुलना में भारतीय साहित्य एवं राष्ट्र भाषा हिन्दी की महत्ता की विवेचना---जो उन जैसे राष्ट्रीय कवि के लिये अत्यंत महत्वपूर्ण राष्ट्र सेवा था कि विदेशी साहित्य सेवाशोभी पर हुआ इसके विरुद्ध। दिनकर जी अपने साधन रक्त की भाँसा के स्याक्त अक्षयता की० पद्य० तारें की अक्षयता कविताओं का व्योमि योन और मांसकता के कवि तारें, तमानी अक्षयता की यूरोप वाली भी स्वीकार न कर सके थे। एक ऐसा संकल्पन से आये जिस का अनुवाद कर उन्होंने आत्मा की आँखें खोलीं। भारतीय मनीषा ने प्रोनाचार की आत्मा की आँखें खोली थी कभी कहा नहीं।

दिनकर ने इन और या दोनों ही पाया और छोड़ा तो परिवार, छोटा, कीर्ति छोड़, शान्ति छोड़, और फिर सब ओर से दार गये। उनके छोटे पुत्र राम लख सिंह ने घर परिवार के खर्चारे के धरम को अहम बनाया। पिता की इच्छा के विरुद्ध खर्चारा किया, अपने संयुक्त परिवार को छिन्न-भिन्न कर दिया, उदयाचल प्रकाशन पर अधिकार माँगा, मकान के लिये जिस का रोना कि दिनकर ने अपने अविभक्त मित्रों को घरों में बसाकर रोया है। दुःखी दिनकर ने उदयाचल प्रकाशन समाप्त कर दीवद चक्रवात नाम से प्रकाशन योजना बनाई और उनके दुर्दैव ग्रंथ चक्रवात प्रकाशन से प्रकाशित भी हुये।² निराश दिनकर की निराशा तब और भी बढ़ गई जब कृतज्ञ ज्येष्ठ पुत्र अनाथ्य रोग से ग्रसित हो गया। पिता दिनकर ने हर प्रकार के सम्बंध निदान कराये किन्तु अंत में निराशा ही बचावतमी। इस समय दिनकर की प्रसोच हो रहा था। यह सब उनके कामिनी, कंधन और कीर्ति के प्रीति का परिणाम था। दिव्य मंगल सिंह सुनन की लिये गये घर में बसता लखट उल्लेख है। निराश दिनकर लिखते हैं:-

1:- दिनकर के पत्र: पृ० 1- 69

2- 62

3- 92, 92c

2:- ग्रंथ:- 1- ६८ लि लिपिका
2- दिव्य की अक्षयता
3- आत्मा की आँखें
4- उदय

सरीर का जो भोग है उसे भोगे बिना छुटकारा नहीं
है। कामिनी, कंज और कीर्ति का जो कुछ मोना
था, उस की कीमत बंजवा कर रहा हूँ ।

---दिनकर के पत्र पृ० 122

पं० बनारसी दास चतुर्वेदी का दिनकर ने 1967 की 19 मई की जो पत्र लिखा है
उस में उन का अपना आत्म लोचन है। अपने पुत्र की मृत्यु की विवशता से वे उन्हें
यह नाम दिया---

किन्तु बड़े पुण्य के बड़ोटे पापों से मैरी रखा नहीं की।
अब भली भाँति समझ रहा हूँ कि ^{विपक्ष} ~~विपक्ष~~ किसे कहते हैं।
लौन, काम और कीर्ति छुटने का क्या दर्ज है।

---दिनकर के पत्र: पृ० 72

21-8-65 को आचार्य बिहारी दास बाजपेई को लिखे गये पत्र में उन्होंने स्वीकार
किया है---आप ने जो बातें बताई हैं, उन में से अधिकांश पर मैं आश्चर्य हूँ।
यहाँ तक कि अब ब्रह्मचर्य में भी दोष नहीं है। (दिनकर के पत्र पृ० 212) तो क्या
यह समझ जाये कि दिनकर ब्रह्मचर्य शिथिल है? तो क्या मंगलती बाबू का संस्मरण
अतीत के माँ से दृष्ट सं० २० सही है? क्या दिनकर की अपनी ही उक्ति सही
है ---

मातायें क्यों उठाती हैं

उर्वरिणां मौन उठाती हैं

हृत्ति तिलक-

और अन्त में कवि ने कीर्ति कीर्त, कंज छोड़ा और कामिनी भी छोड़---सब से बड़ा
छोड़ा छोड़ा अपना जमाना डेटा ---पिता हारता है तो अपने ही डेटों से?

दिनकर हारे। दिनकर धके। दिनकर दूटे।।। भी माँ की तरफ में गये,
लिखति गये। भगवान के जाने बिना ही गये। वे उनके निर्बल के बल राव थे।

हारे की हरि नाम उनकी बराबर, उनकी निराशा, उनके दूटे दूटे व्यक्तिगत
का परिणाम है। आ० गोपाल राय को उन्होंने ने एक कविता अवलोकनार्थ भेजी
थी। उस की अन्तिम छः पंक्तियाँ हारे की हरि नाम की भूमिका में है-----
उत्कृष्ट उत्कृष्ट है-----

मैं ने अपने को धमा कर दिया है

कन्धु सुन भी मुझे धमा करी

सुनकिन है यह ताकूमी ही,

जिसे सुन धमाम मानते ही।

धरहर की धम्का की

मैं में जानता हूँ, मैं सुन जानते ही।

11- दिनकर के पत्र: पृष्ठ १०६ - शिव मंगल सिंह स्मृत

निराशा और वज्र मन का यही एक उपाय है----- भगवान् ²¹²⁰⁷ ~~दुःख~~ ।

सर्वधर्माभिरुचिरान्य नामैकं शरणं ब्रुव ।

लौकिक जगत् से क्षमा प्रार्थी और क्षमा जान्ने होकर वे भगवान् शरण में चले गये।

अन्तिम वर्ष:-

दिनकर के जीवन का अन्तिम भाग और निराशा और चिन्ताओं से युक्त रहा है। परिवार ने उनका साध नहीं दिया, ज्येष्ठ पुत्र की मृत्यु, शासकीय कार्यों से मुक्ति और

साहित्य में भी यकाकी बन सब से ने मिल कर उन्हें बुरी तरह तौड़ दिया था।

दिनकर दक्षिण भारत की यात्रा पर निकल पड़े। श्रौतिमय, प्रसन्न चदन और उत्साह से भरे हुये। दक्षिणायन, सूर्य का प्रकाशनी प्रभाव होता है और अमंगल प्रभा अक्षीय सौन्दर्य शालिनी होती है, यही सच दिनकर के कुछ मन्त्र पर था। 23 अगस्त 1974 को भगवान् तिरुमति बालाजी के दर्शन तीन मई कछिलाओं के गायन से किये और 24 अगस्त को मद्रास में राष्ट्र नायक जय प्रकाश नारायण को उन्होंने-ने उन्होंने पर लिखी एक लम्बी कविता सुनाई। पूरी दिन समुद्र तट से लोटे तो सीने में दर्द उठा। छोटी उपचार कारगर न होने पर फिर ^{पुनः} माध गोयंका और गंगा शरण सिंह उन्हें सुरम्त अवतार से गये। पर तब तक जाड़े ऊपटे का ही जीवन केवल सेव रह गया थी। मद्रास से उनका र्वं दिल्ली हो कर पटना पहुंचा। साहित्यकार, परिजन, पुरजन, मित्र, शासकीय अधिकारी सभी यहाँ उपस्थित थे। गांधी से भाई, पत्नी, और 99 वर्षीया माँ भी रावेन्द्र नगर वाले मकान में पहुंच गये। 99 वर्ष की माँ ने अपने नू नू को देखा। 2 वह कितना कार्त्तिक दृश्य रहा हो मा जहाँ केवल वीरुत तीन तीन मडिलारें थीं---मा, पत्नी और पुत्र सधु। डेढ़े डेवार ने कुआँन दी और फिर सब सेव हो गया।

दिनकर का जाना साधारण ठहना नहीं है। उसकेवलकम मन कम से कम बचाव खर्चों से दिनकर देश के सुदय की बाणी को गुंजाते रहे हैं। ऐसे ठीक वर्ष और रीठ के साथ कि प्रितानी सरकार भी उन व पर लम्बी और ज्यादा साल केवल ने भी चीन के इन्ते के साथ दिनकर को परशु राम की प्रतीक्षा शायद लिखने पर माफ नहीं किया। दिनकर ने कनैया जाल मन्दन से कहा थी--- जब परशुराम की प्रतीक्षा का

1:- दिनमान 9 मई, 1974 पृष्ठ 22 अक्षर

2:9 दिनमान 5-9-74 पृष्ठ 23

दिल्ली में प्रचार हुआ लोग बाग अक्षर मेरे कान मे
यह बात जान देते थे कि पीअर जी आज मे मारा
हैं। लेकिन पीअर जी ने मुझ से कभी कोई केपिपल
नहीं पूछी। चीनी आक्रमण के समय वे तो मुझ से यही
पूछते थे कि तुम रेडियो पर गरजते क्यों नहीं।

— साप्ताहिक हिन्दुस्तान पुठ
15 जुलाई, 1973 पृष्ठ 21

दिनकर हिन्दी समाद कर नहीं रहे। उनके बाद
सरकार ने उन्हें किसी प्रकार का कोई सम्मान
नहीं दिया। ११

दिनकर को अपनी आत्मन मृत्यु का आभास हो गया था। अपने अन्तिम
काव्य संग्रह रश्मि लोह की प्रेमिका में उन्होंने 6 जनवरी, 1974 को लिखा
था वारे को हरि नाम लिख कर मैं ने जाता की थी कि मेरी विनय पत्रिका
पूरी हो गई, हिन्दु सत्ता है अभी मेरी रामायण की अधूरी है और इसका उत्तर
काण्ड अब प्रारम्भ हुआ है। उत्तर काण्ड एक का मूल्या-दीर्घ, उत्तर काण्ड
यानि सीता का वातात प्रवेश, उत्तर काण्ड यानि एक का प्रान वितर्जन।

दिनकर आज हुआ हिन्दु जातन और रश्मि नाम इन पत्रिकाओं में व्याप्त है: -

सब सौकों का एक नाम है क्षमा,

हृदय आकुल मत होना

दरक उठे जो अंगारे बन गये

कुल्लुन कौशल सपने थे,

अन्तर में जो गाँव मार कर गये

अधिक सब से अपने थे

अब चल उसके प्यार, सब विसर्जनी करना है

और कहाँ किसीका जाँवु अब जना

हृदय आकुल मत होना

.....
लोहिका दिक्कतुसुके-के भीष्म में, रश्मि लोह के लोह में, परशुराम की प्रतीका के परशुराम में अजमीजीकित है
उपेक्षी का पुरेका उनके शब्दों में- उपेक्षी अपने समय का (रफ़ हूँ में), और सर्व कभी कभी मता

!:- भवानी प्रसाद निव: दिनमान प्रवर्ध, 1974 पृष्ठ 24

दिनकर के काव्य में युग संघर्ष एवं काव्योन्मेष

दिनकर का कविता काल भारत के स्वतंत्रता संग्राम की वह रण-स्थली है जहाँ एक ओर गांधी जी का सत्याग्रह आन्दोलन, दूसरी ओर ब्रिटिश कारियों का खूबनाम और तीसरी ओर सुभाष चन्द्र बोस का भारत के बाहर देशों से स्वतंत्रता प्राप्त का अटूट प्रयास रहा है। अंग्रेजों के अधिपत्य से जब भारत मुक्त हुआ तो दिनकर के काव्य में देश में व्याप्त अस्तौष वर्ग-संघर्ष के आर्थिक एवं वैचारिक उन्मेषन जैसी दृष्टि - अभिव्यक्ति होती रही। अतः दिनकर के काव्य को भारत की स्वतंत्रता के पूर्व और स्वतंत्रता के बाद दो भागों में विभाजित कर देखा जा सकता है। यह भी स्पष्ट है कि दिनकर का काव्य स्वतंत्रता-पूर्व के काव्य में केवल संघर्ष की ही अभिव्यक्ति नहीं करता उस में कवि का रोमांटिक मन भी काव्य रचना में संलग्न है और वैयक्तिक होने के कारण अधिक प्रायः आत्मक और सौन्दर्य प्रिय रचना कर सका है। यही बात स्वतंत्रता प्राप्त के बाद के काव्य में कहीं जा सकती है। उम्मीद यदि उनकी वैयक्तिक भावना की दृष्टिकोण है तो वस्तु राम की प्रतीक्षा उनकी समष्टिगत चिन्तना का परिणाम है। अर्थात् कवि की रचनाओं में व्यक्तिगत और समष्टिगत रचनाएँ साथ साथ चलती हैं। देश की परिस्थितियों और राजनीतिक उथल-पुथल का प्रभाव यदि कवि पर वास्तविकता के संघर्ष से बढ़ा है तो आन्तरिक मन में उठने वाले कोमल भाव, कल्पना की प्रिया-शीलता चिन्तना, भावना आदि कीटनें रोमांटिक अभिव्यक्ति की ओर प्रेरित करती हैं रही हैं। वास्तव संघर्ष या राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जिज्ञा का तथैव सम्बन्ध धारणाओं से। उस संघर्ष की जिन कविताओं में जायी दी दिनकर उनके कवि हैं।

स्वतंत्रता पूर्व युग संघर्ष और दिनकर का काव्य-विकास:-

भारतीय स्वतंत्रता
आन्दोलन एक
जन-जागृति --- ---

- रेनॉसो -

रोमांस----था। देश के स्फुटिक एक ही स्वर गुंजाता था---देश की जागृती के मार्ग किन्ना किन्ना थे अतः आपस में उनके में समझौता भी था, टकराव भी था, सहयोग भी था भिन्नता भी थी। गांधी जी अहिंसावादी नीति, जलदयोग क और सत्याग्रह के पक्ष पर थे। मेहर, रावेन्द्र बाबू और अन्य परम्परावादी नेता मन उनके अनुयायी थे। सुभाष चन्द्र बोस का नारा था 'यदि तुम अपना धन मुझे दो मैं तुम्हें जागृती'।

तीसरा धर्म था महा सिंह, जागृतीवादी उनके सहयोगी ब्रिटिशकारियों का जो

अवनी सभासद में विस्तार और आगामी, इन्ति के प्रयोग और दम्पत्य -
 विन्यास से मजदूर और किसान आन्दोलन से प्रेरित हो कर आजादी के लिये
 संघर्ष कर रहे थे। और अंग्रेजी सरकार निर्दयता से जलियाँ वाला बाग़ काण्ड कर
 रही थी, एम्बेड जार्ज में आजाद का प्राण ले रही थी, भगत सिंह को
 फाँसी दे रही थी, गाँधी को जेल में डाल रही थी, मौली साल नैरु वर
 उन्हे बरसा रही थी अर्थात् अपने दमन चक्र में कोई कम नहीं छोड़ती थी।
 नैरु उसी समाजवादी रचना से प्रभावित हो कर उस से लौटे तो उनके मन
 में ऐसे ही समाजवादी देश की कल्पना प्रकट हो रही थी और सुभाष चन्द्र बोस
 को पराधीनता से स्वतंत्रता एक ही मंत्र याद था। इन्ति कारियों की जो
 उन्ड दिया जाता था उस से भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन और उत्तेजित हो चक
 गया था। सार्वभौम यह कि देश की स्वाधीनता ही एक बड़ा प्रश्न थी।

1927 का मजदूर - किसान आन्दोलन पूर्ण रूप से संगठित आन्दोलन था।
 उसी समय ब्रिटिश पार्लियामेंट में अंग्रेजों की विवेका और भारत की विविक्त-
 देश का कर मुक्त ज्ञाया गया था। 1928 में ब्रह्म समाज उमीशन का
 सम्पूर्ण देश में एक स्वर से विविक्त किया। अंग्रेजों के दमन चक्र में लाला लाजपत
 राय जैसे राष्ट्र प्रेमी को हम ने छोड़ा। 26 जनवरी 1930 को भारत ने पूर्ण
 स्वराज्य की घोषणा कर दी। गाँधी जी की दण्डी यात्रा और नमक कानून
 भंग करना देश की राजनीति में एक नया मोड़ था। सारे देश में इन्ति की
 सत्याग्रही लहर दौड़ती गई और मार्क्स सा, साठी चार्ज, मौली कारीकली
 मुक्त दमनारमक कार्यवाही ब्रिटिश सरकार करती गई। गाँधी ने असहयोग,
 सविनय अवज्ञा आन्दोलन कायम किया, काँग्रेस में दो वर्ग बने। 1935 में
 औपनिवेशिक स्वराज्य को स्वीकार कर लिया। सुभाष बाबू सचिव और युवा
 नेता उस से असहमत थे।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति विचलित गई और
 भारतीय राजनीति पर भी उसका उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा। भारत में सुभाष बाबू
 काँग्रेस के अध्यक्ष बने किन्तु गाँधी जी से असहमत होने पर उन्होंने ने त्याग पत्र
 दे कर पुर्युष ज्ञात की स्थापना की। 1938 से 1942 तक इंग्लैंड की राजनीतिक
 स्थिति अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कमजोर पड़ती गई। भारत में सुभाष बाबू अपनी
 मजदूर बन्दी से निकल बाने और गाँधी ने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन छेड़ दिया।

1:- सावित्री सिंहा --- युग चारम विनाई पू० 46 संवत् 1963:

India is our prized possession, we in England have to live on it.

'करो या नरो' देश प्रेमियों का नारा था। सुभाष बाबू की आज़ाद हिन्द का लीज पूर्वी देशों से भारत की आज़ादी का झंडा कर रहे रही थी। ताल ठिके में मुरार बन्द आज़ाद हिन्द सेना के कैप्टन सक्का, दिल्ली, हाव नवाज़ आदि पर चल रहे मुकदमों की बेरबरी वॉ नेहरू ने की। सुभाष बाबू एक तयार्थ दुर्दमना में विरंगत हुये और 1947 में भारत की आज़ादी मिली।

उपर्युक्त राष्ट्रीय सामाजिक पुण्य भूमि में दिनकर की काव्य रचना रेणुका से सामझेनी और दुखेन दुखेन तक विस्तृत है। एक ओर यह राष्ट्र-भाव प्रेरित काव्यभारत की सामाजिक योजना का प्रतीक है। दूसरी ओर रसिकी काव्य उनके व्यक्तिगत हौमानिटिक भाव को प्रतिपादित करता है।

दिनकर पर प्रारम्भिक राष्ट्रीय कवियों का प्रभाव:-

दिनकर की राष्ट्रीयता माँही चुन को खिड़ोही केसुद आत्मा है। (उन्नी

की यही खिड़ोही आत्मा रेणुका से दुखेन तक व्याप्त है। रेणुका के राष्ट्रीय गीत इतिहास और संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में लिखे गये हैं। कविता लिखने की प्रेरणा कवि को नाटक और राम लीला देख कर उत्पन्न हुई थी।² रत्न रत्न रत्न सामाजिक ग्रंथ एवं पत्र पत्रिकाओं को पढ़ कर दिनकर पर प्रेरित शरण पुष्प के 'भारत भारती' 'जय ग्रंथ' 'किस्तान' आदि, राम नरेश त्रिपाठी के अधिक तथा माछन माल चतुर्वेदी, सुमित्रा सुमारी चौहान, आनंद कृष्ण शर्मा बख्शीय नवीन, कवीन्द्र रवीन्द्र, नवल्ल चम्पान आदि कवियों का प्रभाव पड़ा है। उर्व के कवि वकुमान उनके बहुत प्रिय रहे हैं।

रेणुका की कवितायें, और व्यंग्य गीत के साथ साथ लिखे गये हैं। रेणुका में गर्म तर्ज अशिक था। ये कवितायें समाज सावैश थीं। राष्ट्रीय कविताओं ने दिनकर की कीर्ति दी। "ज्यों ज्यों मेरी कवितायें जन समुदाय को आन्दोलित करती गईं, मेरा यह आरम्भ विश्वास और बकलता गया कि मैं समय का दूत हूँ और मेरा सब से बड़ा कार्य यह है कि मैं अपने दूत के झोड़ और आह्वान के अधीनता और बेधनियों को सक्ता के साथ उन्हीं में जाँच कर सब के सामने उपस्थित कर दूँ।"³ किन्तु यह सब इतिहास पर रीदन, था, उत्तेजना का आह्वान और आम समाने की मूर्ति थी — ताज्ज कविता के पद "जैसे आन, बड़े

— १९५५५५५५ —

1:- सावित्री सिंहा: पृष्ठ ३३

2:- चक्रवर्त मुनि: पृष्ठ २३

3:- चक्रवर्त मुनि: पृष्ठ ३१

संश्लेषित, लगे आग वल आउम्बर में, विमलता की पंक्ति 'रे ज्वालाओं' में
 'दुग्ध विमल' कल्पदेवाय में 'जाति' काटने कटि की 'जमि' आउम्बर में आग लगा है।
 आदि कल्पनाओं भगवती चरण वर्ण की, 'जल उठ जल उठ करी छटक उठ, महा नास ली
 मेरी आग', ऐसी भावना को ही प्रस्तुत करती है। कल्पेय देवाय में माना
 प्रकार के ज्ञान, विज्ञान, युद्ध विग्रह, शीतल, आर्थिक साम्राज्यवाद, सर्वद्वारा
 और सर्व प्राप्ति, लेनिनवाद आदि अनेक भावनाविषयक हुये हैं। साँझ
 कविता की पंक्ति, 'आह! सम्झता आग कर रही, अलवारों का शीतल
 शीतल' कल्पे देवाय में ज्यों की रयों रखी है। अर्थात् कवि शीतल के विरुद्ध
 एक आवाज उठा रहा है, लेनिनवादी स्वर।

हुंकार के प्रकाशन के बाद कवि की राष्ट्रीय और जाति कारी होने का
 सुझाव मिला। रेणुका की चिंगारी हुंकार की ज्वाला में तीव्रतर होती गई।
 दिनकर की लेखन यह गर्व है कि रेणुका, हुंकार, सामन्तेनी, दुर्ध्वज, अन्ध कवि
 गीत और बापू, इन में मैं मे जो कुछ भी गाया है आत्मा के जोर से गाया है,
 कण्ठ काड़ कर गाया है, हृदय चीर कर गाया है।

दिनकर पर प्रभाव

दिनकर के काव्य और व्यक्तित्व पर अनेक प्रभाव हैं। उन के लघु काव्य
 में सदा ही भारतीय इतिहास, संस्कृति और राष्ट्रीयता का प्रभाव झलकता
 प्रतीत होता है। महा पुरुषों के जीवन चरित्रों के गुणों का सांस्कृतिक उद्घाटन
 विज्ञाना दिनकर ने किया है उसना किसी अन्य कवि ने नहीं। प्रकृति का
 मानवीय कारण कर दिनकर ने प्रकृति चमत् को संजीवन प्रदान किया है। बदलते
 हुये समाज, वैचारिक एवं राजनैतिक स्तर से दिनकर के काव्य को आगे बढ़ने
 की क्षमता प्राप्त हुई है। दिनकर युग-बोध से परिचित एक जागरूक कवि हैं।
 अतः उनके काव्य में सर्वत्र युग-बोध का स्वल्प सजीव चित्रणके रूप में उपलब्ध
 होता है।

वैदिक प्रभाव:-

यसु वेद के वंशज ऋषि की उर्वशी-पुरुषा प्रेम प्रसंग को
 दिनकर ने उर्वशी में चित्रित किया है। इस प्रणय-प्रसंग
 को पुराणों के आख्यानों के द्वारा समर्थित कर दिनकरने
 उर्वशी को इस युग की लक्ष्मी के रूप में प्रस्तुत किया है। उर्वशी पुरुषा के
 प्रणय के प्रसंग को ले कर अनेक काव्य कार्यों में रचना की हैं। महा कवि
 कालिदास ने भी विद्युमतीर्कनीयम् की रचना इसी प्रसंग में की है।

सौक्य संस्कृति का प्रभाव:-

उर्दू पर कालिदास का विष्णुमूर्च्छनीय का प्रभाव बहुत अधिक है। मुक्ति मिलने की उर्दू समस्त विषयक कविता में दिखकर

ने स्पष्टतः कालिदास का उल्लेख कर उनके महत्व को स्वीकार किया है। उर्दू के सुतीय अंक को छोट कर प्रत्येक अंक के प्रारम्भ में कालिदास के विष्णुमूर्च्छनीय का श्लोक लिख कर दिखकर ने इसे परीक्षक रूप में ही सभी स्वीकार किया है कि उर्दू लिखते समय कालिदास का अध्यात्म निरन्तर उनके मन-मस्तिष्क पर छाया हुआ था।

प्रथम अंक:-

श्लोक:-

साधारणोऽयमुक्तोः प्रणवः स्मरत्य,
तप्तेन तप्तयसा उटनाय योऽन्यम् ।

द्वितीय अंक:-

प्रियवचनस्तोऽपि योऽपि तां
कथित वनाम्बुधौ रसास्ते
प्रकृतिरिति हृदयम् न्तविदां
मभिरिह कुत्रिमराम योऽपि:

तृतीय अंक:-

एव दीर्घाचिराद्युक्ति मात्र एव
उर्दूया किमपि निमित्तमस्ते ६५
मम हस्ते न्यासीकृतः

चतुर्थ अंक:-

अहमपि तव सुना यद्यपि विन्यस्य राज्ञम्
विचरित मुन्युधा न्या मयिष्य वनामि

वर्तमान शैली का प्रभाव:-

महर्षि अरविन्द

:- कालिदास के विष्णुमूर्च्छनीय का महर्षि अरविन्द जी ने उर्दू काव्य में स्वाम्भार किया है। उसका शीर्षक भी उन्होंने 'द हीरो एंड दि मिम' दिया है।

1900 ई. के इस काव्य को दिखकर जी ने पूरा पठा है और इस का पर्याप्त प्रभाव दिखकर जी पर पड़ा है। अपने निबन्ध संग्रह अर्धशतिका के महर्षि अरविन्द की साहित्य की चर्चा भी की है। वे अरविन्द के जीवन काल को काव्य में चित्रित करने का निरन्तर प्रयास करते रहे। अन्ततः उन्होंने कालिदास के अध्यात्म और अरविन्द के जीवन-दर्शन को उर्दू में अभिव्यक्त कर दिया है। वे महर्षि के वैष्णव और गोपीतया के सम्बन्ध के पोषक रहे हैं। महर्षि के कवनों को उल्लेख करते हुये उन्होंने 'आर्य के सम्बन्ध में लिखा है:-

उद्धृत

3:- मुक्ति मिलने:- पृष्ठ 94

समस्त ज्ञान को एक विज्ञान मिश्रित रूप देना तथा
पूर्व और परिवर्तन में अनुस्यूता की विभिन्न शक्ति
प्रवृत्तियों के बीच सामंजस्य और एकत्व लाना यह
कार्य का उद्देश्य था। यह साधन एक ऐसी
वास्तविकता पर आधारित हो गा जिस में हेतुवाद
(Rationalism) तथा गौतमीयवाद
(Transcendentalism) का सम्यक् समन्वय हो गा एवं
इस वास्तविकता में बौद्धिक एवं वैज्ञानिक
अनुशासनों का सहजानुभूति (Intuitive expression)
से पूरा मेल रखा जाये गा। १

उर्वशी के तीसरे अंक में यह प्रकियाजन्त तक चली रहती है---बौद्धिक ---
वैचारिक-संदर्भ समाप्त भी नहीं होने पाता कि बहिर्मुख जन्त ज्ञानप्रियता
प्रारम्भ केजोर नियति के आशय से चलने लगता है। जुलाई १९१० के कार्य
अंक में महर्षि ने लिखा था:-

अनुस्यूता की अपनी मानवीय सीमाओं को पार करके
ईश्वरीय दिव्यता को प्राप्त करना पड़े गा। उसे
एक प्रकार की पार्थिव जन्तता की ओर है। उसके
भौतिक जीवन को भी ईश्वरीय दिव्यता से संघालित
होना पड़े गा। २

उर्वशी का कामाजन्त भी इसी प्रभाव की परिणति है। इस संदर्भ में महर्षि
अरविन्द ने 'उर्वशी' और 'प्रेम और मृत्यु' दो काव्य लिखे। महाभारत के अनुसार
पुरुषा-उर्वशी वियोग का कारण था आयु का वर्तन। महर्षि ने इस स्थल पर
काव्य जन्त करने का काम किया है कि स्वर्ग की विभूति का भोग अनुस्यूता सभी तक
कर सकता है जब तक वह अपनी मन्ता पर आश्रय दिये रहे। उर्वशी वियोग का
कारण वैदिक ग्रंथों में पुरुषा के निर्धन अंग पर उर्वशी की दृष्टि का पड़ना है।
महर्षि ने इस काव्य को काम-कामा की दिव्यता प्रदान की है।--- यही प्रवास
दिनकर का भी रहा है। काम का त्याग ही आनन्दानुभूति है। महर्षि अरविन्द
के काम ने अनुस्यूता मन्ता को स्वीकार किया है:-

They who abandon me shall to all time
Clasp and possess; they who pursue, shall lose

काम से आध्यात्म की ओर प्रयाण करने का सुखकर दिनकर न हो सके। यही

१. दिनकर - अक्टूबरी १९१२ पृ. २१२

२. वही पृ. २४१

कारण दिनकर की यह कृति उर्वशी व काम से प्रारम्भ हो कर विचार और तर्क के अनवरत संचार में अंतः आध्यात्म घाटी हो उठी है। यह प्रभाव केवल अरविन्द का ही था।

कवीन्द्र रवीन्द्र:-

दिनकर पर कवि कुल भूत के अतिरिक्त कवीन्द्र रवीन्द्र का भी पर्याप्त प्रभाव है। उनकी उर्वशी पार्थिव जगत की है ही नहीं वह शुद्ध पराभौतिक

आध्यात्मिक स्वर्णी स्वर्णी है जो जीव जगत की होते हुये भी इस लौकिक जगत के ही नहीं है। वह लालसा से ऊपर उठी हुई कामना है। एक आध्यात्मिक अनुभूति मात्र---न वह माता है, न कन्या, न बंधु। वह केवल नन्द सात्त्विकी अर्थात् देवलीकीय है उर्वशी है। अनन्त सौंदर्यमयी अवगुणितता है। रवीन्द्र गीतों के गायक थे। गीति तत्त्व उन्हें आध्यात्म-संगीत से परिपूर्ण रहता था। उनकी मेयता ने दिनकर को प्रभावित किया तभी वे गीतों में आध्यात्म भर सके। रवीन्द्र ने लिखा है:-

*God knows me when I work
He loves me when I sing*

रवीन्द्र ही मानों दिनकर में दिव्यता, कोमलता एवं सांस्कृतिक पवित्रता भरी थी। यह कहना भी असंभव नहीं हो गा कि दिनकर पर अंग्रेजी व यूरोपीय काव्यों का बहुत प्रभाव पड़ा है। परन्तु दिनकर ने इसे समग्रता में स्वीकार नहीं किया बल्कि उसे अपना बना कर प्रस्तुत किया है तथा भारतीय संस्कृति के अनुसंधान का ठर अभिन्न सौन्दर्य प्रदान किया है।

अंग्रेजी प्रभाव:-

कवि दिनकर व ने अंग्रेजी नाट्य साहित्य, काव्य साहित्य और उपन्यास साहित्य का अधिक अध्ययन किया है। विशेष रूप से शेक्सपीयर, हलियट और कर्मान कवि

तथा ३२० एवं ३३० शतक के साहित्य का। शेक्सपीयर के नाटकों पर दिनकर की अपने निबन्धों में यदा कदा चर्चा करते रहे हैं किन्तु शेक्सपीयर के महा काव्यों का भी उन्होंने ने अध्ययन किया था, ऐसा प्रतीत होता है। शेक्सपीयर का एक प्रेम आख्यान है---वीनस और एडोनिज (Venus and Adonis)। यह एक ऐसा काव्य है जिस का कथा-आधार ठीक ऐसा ही है जैसे उर्वशी का। वीनस एडोनिज के स्व-सौन्दर्य पर मोहित है ठीक जैसे ही जैसे उर्वशी पुरुष का सौन्दर्य और तन सौन्दर्य पर कामना करती है। दिनकर की व्यास-सम्पादन से प्रभाव हैं---इन्हीं काव्य में स्थान स्थान पर व्यास, सर्व आदि पर्याय काही रूपों ने अनेक शब्द

उत्कृष्टतम उपजन्त हैं। प्रो० विवेकानन्द नारायण सिंह ने दिनकर के सर्व विषयों पर दूर 15 पृष्ठों का एक निबन्ध लिख डाला है। सर्व सृष्टि का प्रदर्शन करने वाली शक्ति का प्रतीक है। अन्तः काम-भावना का भी प्रतीक बन गया है। स्वप्न और सत्य शीर्षक कविता के पूर्व दिनकर ने साथ ही काम वाक्य नहीं माना है। उक्तों में दिनकर करते हैं:-

ऐंसे लगे सदासों साथ सोने के लहर में

कैसा रस की लहर में डूब जाती है। उक्तों पृ० 92

शेखरीयार की चीन्हा उठती है:-

Here Come and Sit where never Serpant kisses
And being Set I'll smother thee with kisses.
(-Venus & Adonis verses 17-18)

दिनकर में अन्तर्व्यञ्ज

डा० मोग्ग ने दिनकर को व्यञ्ज का कवि माना है---समाहित का नहीं? वह समस्याओं के उत्प्रेरण को अनुभव की अभिव्यक्ति प्रदान कर सकता है, समस्याओं का समाधान नहीं। अतः दिनकर में स्थानुभूति है। व्यञ्ज उनका अनुभूत सत्य है, अन्तर्मध्यम उनकी अद्भुत शक्ति, किन्तु चित्त समाहित उनके व्यञ्ज सम्मेलन नहीं होती। यही कारण है, उनका कोई भी कविता लीजिये, उसमें प्रेम वाक्य पर अन्तर्व्यञ्ज ही है या फिर कुनौसी ही गीता किसी कार्य को करने की स्वीकृति का उत्साह।

व्यञ्ज नीति में सत्तम मानव के कुलक जागतिक हृदय में उठने वाले अन्तर्व्यञ्ज का दार्शनिक दृष्ट के साथ, का व्यापक चित्रण है। सुख की प्राप्ति में मानव का अर्ध और भावना तथा अन्तर्व्यञ्ज वाक्य - अन्तर्व्यञ्ज से सम्बन्ध नहीं बिठा पाता। अर्ध और वाक्य-अन्तर्व्यञ्ज का व्यञ्ज्यात्मक संघर्ष ही कवि की वाणी है जिसमें अर्ध और अन्तर्व्यञ्ज, सुख और दुःख, सन्निवृत्ति और निर्विद्यता का व्यञ्ज भाव और वाक्य पर तथा प्रेम - प्रण एवं जीवन-मरण की सम्भावनाओं का समावेश है।

प्रेम का में संप्रतिष्ठ संघर्षीत 'ओत्थिवाग्रत आर्दल बीन' शीर्षक कविता भी ही गांधी वादी विचार द्वारा की एक कारणी प्राप्ति से सम्बन्धित करने का प्रयास है, परन्तु अनेक दिव विद्वानों के चित्रण करने में समर्थ हैं---यह कवि का ही अन्तर्व्यञ्ज है। यह एक संघर्ष कैसा सुख की कविता है। बोधितस्तव कविता में कवि अविद्या का प्रतिपादन करता है। प्रतीति यह है कि कवि

1:- दिनकर:- एक पुनर्मुखादिन---विवेकानन्द नारायण सिंह पृष्ठ 62

2:- दिनकर: सावित्री सिंहा---पृष्ठ 201

दिनकर स्वयं ही अन्तर्ध्वंस में लगे हुए हैं।

'हुंकार' ने दिनकर को हयाति प्रदान की। आत्म और उन्माद का छान प्रतिघात सहन कर ही दिनकर ने अहम् और उहम् दोनों को ही समान सम्मान दिया है। दिनकर का व्यक्तित्व दो विराट्ठी धाराओं का संगम है---संस्कार और सौन्दर्य - प्रति ने सन्मन है और उन का दैनिक जीवन एक नम्र-वर्ण। साहित्य के उस युग में हाया वादी काव्य का संस्कार एवं प्रभाव दिनकर के सौन्दर्य के साथ ही उगा सका है, किन्तु उन का वर्णन उन के सौन्दर्य-हीनी अवि^{मे}र्णना है, हुंकार है।

जलन हूँ, दर्द हूँ, दिल की कतक वृ
किसी का हाथ लीया प्यार हूँ मैं
गिरा हूँ भूमि पर नन्दन-विधिन से
उमर तरु का सुमन सुकुमार हूँ मैं।

'सामझेनी' में दिनकर युग दृष्टा कवि हैं तथा युग दृष्टा भी। समन में निमार्ग - स्वर और धौतन में आस्था वादी तथा शक्ति वादी स्वरों का संगम पाया जाता है। अतः उनके सामझेनी युग के काव्य में उद्बोधन जीवन वेग यदि है तो युग के साथ ही भी उसकी ही सशक्त अभिव्यक्ति मिली है।

दिनकर के अन्य कालों में कभी आपधर्म का उद्बोध है तो कभी विचार और भाव का, कभी जित चिन्तन की अभिव्यक्ति है, कभी व्यक्तित्व भावनाओं के कोमल स्वरों की, कभी कविता में जीवन दर्शन का कुछ नूतन सांकेतिक चिन्तन है तो कभी सरल मन की सौन्दर्य वृत्ति।

'कुरु क्षेत्र' में धर्म और चिन्तन - दर्शन का अन्तर्ध्वंस है, 'रश्मि रथी' में तो कर्मा का करिब ही अन्तः संघर्षों से निर्मित कर्मा व्यक्तित्व है, उर्वशी में कबी का नाट्यवादन है।

'उर्वशी' में दिनकर द्वारा प्रतिपादित पुरुषवा - 'उर्वशी' प्रथम आध्यात्म पौराणिक नाम की कर्मा मात्र धारण किये हुए है। यहाँ तो बीसवीं शताब्दी के पुरुषवा पुरुषवा और उर्वशी हैं जो एक 'पदान्तर सिद्धान्त' साधने का 'धर्म' है आप अन्तर्ध्वंस और 'साधेयता वाद' के द्वारा ^{निर्दिष्ट} सिद्धांत का के चर्चा आध्यात्मिक सत्य पर भी जोर रहे हैं। हुंकार कवि ने तो यहाँ तक स्वीकार किया है कि पौराणिक आध्यात्म ने दिनकर की उर्वशी के काव्य रस को सुरक्षित रखने के लिये अंगूर के रसले किले का काम किया है।² स्वयं दिनकर ने उसके प्रतीक स्वरूप को

1:- दिनकर: सावित्री सिंहा: पृ० 204

2:- ----- कबी ----- पृ० 204

उत्पत्ति की प्रक्रिया में स्वीकार किया है कि मुख्यतः दूसरा समात्म नर का प्रतीक है और उत्पत्ति समात्म नारी का। दिनकर की उत्पत्ति तो रवीन्द्र नाथ टैगोर की उत्पत्ति है --- न किन्ती की उत्पत्ति, केटी या लक्ष्मी तोर न की माया, "वह तो अनामिका, अक्षरी की उत्पत्ति है, जिस के अंग पर उल्लेख के दान नहीं लगे, जो स्वयं से बने लड़ी हमारे सपनों पर राज करती है। पुष्टि वह कोई एक नारी नहीं है वह तिते वह सभी नारियों का प्रतिनिधित्व करती है।"१

कालक्रम की दृष्टि से यदि दिनकर काव्य का अध्ययन किया जाये तो विदित हो जा कि सशक्तता प्राप्ति के पूर्व कविताओं में कवि का मन अन्तर्मुख प्रता है। इन कविताओं में अतीत की गौरव-गाथा है, व्यार्थ का सजीव चित्रण है, शीशियों के प्रति सशक्तता है और शीशियों के प्रति आश्रय, सौन्दर्य के प्रति आकर्षण है तो नारी के प्रति सम्मान। दिनकर की रचनाओं की विशेषता है उनका प्रति पल सकारण मन का प्ररन करना, एक नहीं अनेक प्ररन। प्ररन में के समाधान नहीं हैं, अभिव्यक्ति है उस में भी आश्रय-मात्र। दिनकर मूल रूप से विचारों के कवि हैं। दिनकर स्वयं कहाँ तारतम्य की छेटी है वहाँ कविता का शिल्प भी विभक्त हो जाता है। विचारक कवि प्रबन्ध-प्रतिभा सम्पन्न होता है, किन्तु दिनकर के विचार अन्तर्मुख हैं अतएव प्रबन्ध-प्रतिभा में अभिव्यक्ति का अभाव उत्पन्न होने लगता है। दिनकर जी इसे जानते हैं और आत्म-सन्तुष्ट में ही पल कर रह जाते हैं। दिनकर के पात्र वस्तुतः उनकी अपनी मानसिकता का प्रतीक बन जाते हैं। उत्पत्ति का दूसरा न जाने कितनी आवाजों पर अपने विचार व्यक्त करता है और अपने विचार एक साथ उत्पन्न हो जाते हैं कि दूसरा का व्यक्तिगत विचारों से दृष्ट जाता है। दिनकर अपनी कविताओं में विचारों का पात्र करते हैं।² उनकी कविताओं चित्र प्रस्तुत नहीं करती बल्कि के छन्द विचारों का संग्रह बन कर रह जाती है।

दिनकर की मानसिकता:-

दिनकर जीव के कवि कहे जाते हैं, वे माधुर्य के कवि हैं-३ जीवन जीव रूप पूर्ण होता है।

राष्ट्रीयता के युग में युवा कवि में जीव की

अभिव्यक्ति स्वाभाविक होती है। व्यवसाय से वे जीव शक्ति के युवा विभाग में कार्य रत थे किन्तु उनका मन केवली राष्ट्रीय- विचार-धारा से सम्पन्न था।

1:- धर्म, नैतिकता और विज्ञान : दिनकर: पृ० 32, 33

2:- दिनकर: एक पुनर्जागरण: पृ० 119

हुंकार और खन्खड़ गीत ने भी ही उन्हें राष्ट्रीय वादी कवि घोषित कर दिया हो किन्तु दिनकर जी राष्ट्र वादी का हिन्दी काव्य समग्र चित्र प्रस्तुत न कर सके। उनकी कविता में जोष था, बाणी में आश था और सुन्दरों के मन की जीतने की अद्भुत क्षमता थी। उनकी यह राष्ट्रीयता उनके भीतर से नहीं खन्खी थी, उस ने तों बाहर से आकर उन्हें आक्रान्त किया था। उनके कानों में हम के धमाकों की आवाज आती थी, कानों पर झूठे वाले किसी मौखिक की निर्विक पुकार आती थी और दर्द बरी खून की यह आवाज सुनाई देती थी जो गर्भी जी के पुदय में उड़ रही थी। अर्थात् दिनकर की मानसिकता संघातित थी स्वभावित नहीं थी।

दिनकर काया वाद युग में काव्य सृजन कर रहे थे। उनकी कविता काव्य काव्य बदावली से प्रभावित रही जिस के लिये वे पंथ जी के समीप हैं। प्रसाद जी की प्रबन्ध पद्धति की ओर वे कदम धार धार आकृष्ट हुए हैं। किन्तु विचारों की भीड़ ने उन्हें किसी प्रबन्ध विम्व तक नहीं पहुँचने दिया। प्रगतिवाद ने समाज की चिन्मता पर पैर रखी, दिनकर उसी मार्ग पर चल पड़े, राष्ट्रीय आन्दोलन ने जोर पकड़ा, दिनकर उत्साही से भर गये। देश तत्काल हुआ दिनकर ने तब-तत्पर्यार का वह त्याग किया, अध्यापक बने। कविता भूत गई। साहित्य बने, कविता अनेक द्वाराजों में सब निवृत्ती। चरित्र का उद्धार, युद्ध और शांति, स्वतंत्रोत्तर कात है बहुत छुटाचार के प्रति आक्रोश, नारी के प्रति प्रेम, अंगार और सौन्दर्य की नीति-प्रतिष्ठा आदि की ओर उन्मुख दिनकर ने उत्पत्ती में अपना चरमोत्कर्ष दिखाया है। इसी बीच 'सीपी और रंग' तथा 'आत्मा की आँख' काव्य संकलनों में उनकी सौन्दर्य धृति और काम-भाव विषयक मान्यताएँ भी प्रकाश में आईं जिन पर 100 एक 10 तारों की कविताओं और उबन्धनों का प्रभाव है। तारों ने काम की भाँसत रूप में व्यक्त किया है। दिनकर ने भी मानसता में छिँकत सौन्दर्य देखान और कर दिया है।

साँसद दिनकर ने सांस्कृतिक पक्ष का उद्घाटन कर अपने व्यक्तित्व को स्थापित करने की चेष्टा की थी पर उस काम की उनकी दार्शनिक कविताओं में उनका मानस अभिव्यक्त नहीं था अतः उनके विचार भी कविता के नर्म ही व्यक्त नहीं करते।

दिनकर ने कविता से बहुत काम लेना चाहा जिस के लिये यह उपयुक्त नहीं थी। दिनकर ने कविता को प्रत्येक समस्या का समाधान मानने का

अवसर प्रयत्न किया है। " कविता दुःख में आई, सुख में हंसी और समय में तनवार बन कर मनुष्यों के साथ रही है। मनुष्य की सेना की अर्धमुड़ी रहने में कविता का बहुत प्रयत्न हाथ देव रहा है। स्वयं कवि की पारिवारिक का वह दुष्प्र है जो स्वयं का सदैव लेकर दुःखी घर उतरा है। कवि बहु-विध की अपने स्वप्न के रंग से रंगने वाला चित्रकार है, संसार उसकी कल्पना में अनीकितता प्राप्त करता है। तबल कवि धृष्ट और उद्देश्य के बीच वह लेव है जो मानवता की देव देवता की ओर से जाता है।¹ मैथिली शरण युक्त की ने भी साकेत में राम के उदात्त चरित्र में देवत्व नहीं मनुष्यत्व की कल्पना की है---समस्त युग-दीव शक्ति, व वे धरती पर स्वयं के सन्देश वाचक के रूप में चित्रित नहीं किये गये हैं अतः वे भूतल की ही स्वयं बनाने कर के अग्रदूत हैं।² यह कवित्व का ही प्रभाव है। हाँ, यह सत्य है कि इस प्रकार का काव्य उपदेशात्मक बन गया है---दिनकर भी इसके अववाद न रह सके। उपदेश का सम्बन्ध नैतिकता से है और नैतिकता सदैव काव्यात्मक सौन्दर्य को स्थिर नहीं रह सकती। नीति और उपदेशात्मकता से काव्य को ²⁵⁰⁰ मुक्त नहीं होना चाहिये।

विचार और अनुभूति का सामन्त काव्य को देव बनाता है। विचार प्रज्ञा की सुसम्पन्नता उसे प्रबन्ध सौष्ठव की ओर प्रवृत्त करती है। और संवेदना में ही कवित्व की आत्मा है। एक अच्छे प्रबन्ध के लिये संवेदन-शक्ति और विचार सौष्ठव की आवश्यकता निरन्तर बनी रहती है। उर्वशी काव्य में दिनकर कहीं व पर संवेदन हीन हैं जलः वहाँ पर काव्य में विचार और तर्क की बहुलता है। लेकिन शीलता का निरान्त अभाव काव्यात्मकता से उन्हें दूर कर देता है। से संवेदना दिम्बारात्मक सौन्दर्य का मानसिक प्रति 19 उपाय करती है। उर्वशी में ऐसे अनेक बिम्ब हैं, किन्तु जहाँ तक अल्प संवेदना अथवा प्राथमिक संवेदना का प्रयत्न है/उन में उच्च जादवी कवियों की भाँति प्रवृत्त नहीं है। सब तो यह है कि दिनकर युग के परिवर्तन के साथ परिवर्तित होते गये हैं। काव्य काव्य काल के अवसान पर उन्होंने ने काव्य रचना में अपनी स्थापना की थी। वे भाषा के कुशल स्थिति में अतएव उनकी कविता में युवा पीढ़ी की उत्तेजना थी और वे लौट कर प्रिय कवि बन गये। नौकरी, साहित्य रचना और राजनीति उनके जीवन-आवास रहे हैं, तदनुसार उनकी सामसिकता भी बदलती रही। नौकरी ने जिझोही स्तर को जन्म दिया, साहित्य रचना उन्हें प्रगति जाद और प्रयोग की ओर आकर्षित करती रही---यद्यपि काव्य जादवी संवेदना उन के अन्तर्मन में निरन्तर प्रवाहित रही है और जिस का चरम उत्कर्ष रसवन्ती और

1: 1 दिव्यी साहित्य सम्मेलन 1935 विचार प्रवेश में दिया गया दिनकर का अभिप्राय ।

2:- साकेत:- सन्देश यहाँ पर नहीं स्वयं का साधा
में भूतल की ही स्वयं बनाने आया ।

और उर्ध्वी में दर्शनीय है--- राजनीति में लगभग 10 वर्ष रहने पर भी वे राजनीतिज्ञ नहीं बन सके। उन्हें अपने अंग्रे, टेलीफोन, कार आदि की सुविधाओं के समाप्त हो जाने पर बड़ा दुःख था वहाँ राजनीति के ही प्रभाव से वे देश-विदेश की यात्रा और साहित्य से परिचित होने का काम भी उठा सके थे। अन्त में सब व्यवस्था भीम लेने के बाद भी कवि की आत्मिक शांति न मिल सकी। पारिवारिक विचिन्ता और राजनीतिक उत्तार पर वे हार गये थे, 'हारे को हरि नाम' उनकी आत्म व्यथा का सूचक है।

अन्य प्रभाव:-

दिनकर पर विभिन्न प्रभाव स्पष्ट दिखाई देते हैं। उन पर सर्वाधिक प्रभाव सुमतीजी 'राम जीत मानस' का है। मानस से ही उन में काव्य प्रीतियों का प्रदम्ब और विकास हुआ। सुमती की रामायण के प्रति दिनकर में केवल अनुराग ही उठ नहीं आ अपितु ग्राम बालियों के मध्य से उसका सखर बाढ भी करते थे।

दिनकर विद्यार्थी जीवन से ही कविता के प्रति आकर्षित थे। माटकों और राम जीता के मंच-द्वारा उनके लिये प्रेरणा बने। मंच पर गाये जाने वाले गीतों की धुनों को अनुकरण करके महीन मौलिक गीतों की रचना करने लगते थे। मैथिली शरण भुषा की 'भारत भारती', 'जयश्रुत मधु', 'दिलान' और 'रघुनाथ' की उन्हीं ने बढ़ा था, राम नरेश त्रिपाठी के 'वधिव' काव्य में वे आभास-वस्तुतः कुछ गये थे। इन दोनों कवियों से दिनकर इतने प्रभावित हुये कि उन्हीं ने 'मैत्र नाथ मधु' और 'वीर बाल्य' काव्यों की रचना कर आलोचक-धन काव्यों की प्रशंसा न मिल सका।

दिनकर की सब से पहिली कविता 1924 में छात्र लड़ाकर---जलपुर में लगी धड़ से केवल पंद्रह 16 वर्ष के थे। 1929 में उन की पारवती-सदित काव्य - संकलन निकला। इसी वर्ष मैट्रिक उत्तीर्ण करने के बाद गुण-भुंग रचना प्रकाश में आरंभित का उसके आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में किया है।² दिनकर की छात्रा वाद के उत्तर काल में पंत, निराला, प्रसाद और केसरी मैथिली शरण भुषा से अधिक प्रभावित रहे हैं। यद्यपि दिनकर की ने निराला की ओक्षा पंत के प्रति और प्रसाद की अनुधा भुषा की के प्रति अपनी निकटता की स्वीकार किया है,³ किन्तु प्रसाद के प्रभाव की वे नकार नहीं कर सकते। उस युग के सभी कवि देश के राष्ट्रीय वादी और मानवता वादी कवि रहे हैं। स्वाभाविक था कि दिनकर पर यह मानवता वादी और राष्ट्रीय वादी कवियों का प्रभाव पड़ता और सवन्तुहार के राष्ट्रीय कवि कहलायें।

1:- अध्याय: भूमिका पृ० 29

2:- राम चन्द्र शुक्ल: हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० 386

3:- अध्याय पृ० 28

उपर्युक्त राष्ट्रीयता वादी कवियों और उन की कविताओं की है साथ ही उन पर उस युग के जन ह मानस एवं तदनुकूल प्रकाशित साहित्य का भी प्रभाव पड़ा है। श्री विद्योती हरि की खीर सतसर्व का भी प्रकाशन उसी युग में हुआ है, प्रेम चन्द्र की अपनी कहानियों और उपन्यासों द्वारा समाज में प्रगति वादी रुख बूझ रहे थे। प्रगति शील सैद्धांतिक संघ की स्थापना अक्टूबर 1935 में हुई तथापि प्रगति वादी साहित्य का स्वर सुन्न हो जाता था, यहाँ तक कि छाया वादी कवि कल्पना लोह वासी होकर भी यथार्थ के प्रभाव से न बचकर प्रगति शील रचनाएँ कर रहे थे। जब संकर प्रसाद के नाटकों में स्पष्टतः राष्ट्र वादी स्वर उभर कर आया है। इस सब का सम्मिलित प्रभाव यह हुआ कि दिनकर की छाया वादी की अवस्था प्रगति वादी, जन वादी या समाज-निष्ठ कवि अधिक दृढ़ है, कल्पना-गमन विचारी कम या बिल्कुल ही नहीं।

पति की कल्पना लोह के कवि हैं, किन्तु उनके प्रगति शील विचारों को अभिव्यक्ति करने वाले काव्य ग्रंथों --- युग बंध, युग वाणी, ग्राम्या आदि --- का ही प्रभाव दिनकर पर अधिक पड़ा है।

भारत से चत्तर देशों में श्री जो राष्ट्रीय उत्थान-चलन हो रहे थे उनको दिनकर ने निकट से देखा और जहना है। दिनकर युद्ध विभाग में कार्य करते थे। जिस समय विश्व महा युद्ध समाप्त हो रहा था उन्होंने दिनों रूस में चार के निर्वाण शासन की समाप्ति कर एक नये समाज की राजनीतिक व्यवस्था हो रही थी। बोलशेविक क्रान्ति, समाजवाद की स्थापना की ओर अग्रसर हो रही थी, यूरोप युद्ध-प्रभावित इस क्रान्ति पर, अंग्रेजी भारत में उद्वेगपूर्ण राजनीतिक स्थिति घुल रही थी, देश में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध और स्वायत्तता प्राप्ति के लिये आन्दोलनों का जन्म हो चुका था। दिनकर की कविता में देश की भौव माथा के आयाम दृष्टि मोचर होना नितांत स्वाभाविक ही था। इस हे परिप्रेक्ष्य में दिनकर के काव्य का परिचय एवं विकास मानी अध्ययन समीचीन जान पड़ता है।

दिनकर का काव्यारूढ विकास

दिनकर के काव्य विकास को हम चार स्वतंत्र विभागों में विभाजित कर सकते हैं । मूल कविताएँ एवं उन के प्रकाशित संग्रह 2 प्रबन्ध काव्य 3 नीति नाट्य 4 अनुवाद । मूल कविताओं से ही कवि जीवन का दिनकर ने प्रारम्भ किया है और अनुवाद की मौलिक रचनाएँ नहीं, प्रभावित रचनाएँ हैं। लोह की प्रबन्ध काव्य और नीति नाट्य उनकी प्रौढ़ और परिवर्धन रचनाएँ हैं। कवि ने 38 वर्ष की अवस्था में दूरस्थ (1946) 46 वर्ष की अवस्था में दक्षिण-पश्चिम (1953) और 54 वर्ष की अवस्था में उत्तरी (1961) का प्रणयन किया है, अर्थात् हम प्रबन्ध काव्यों में आठ आठ वर्ष का समय लगा है। दूरस्थ 1946 कवि की अंतिम रचना 1941 कविता की प्रेम प्रेरणा का प्रतिफल है।

सूक्त काव्य--- पुनः भंग:-

दिनकर का काव्य-प्रवेश 1929 से माना जाता
चाहिये जब पुनः भंग पुकारा में आई। पुनः भंग का
का आधार मुक्त जी का जगद्वय यह काव्य था।

उसी के अनुकरण पर यह रचना अपना स्वल्प प्रवेश कर सकी है। इस का प्रथम प्रकाशन 1929 में हुआ था। कालान्तर में यह 1976 तक प्रकाशित नहीं हो सकी थी। अब 1976 में लगभग 46 वर्ष बाद यह रचना प्रकाशित हो गई है। इस काव्य संग्रह में 61 कविताओं का संग्रह है जिस में पुनः भंग शीर्षक से दो कवितायें संकलित की गई हैं --- एक तो इमार्क । पर ही है, महाभारत से लिया गया अध्याय। इस कविता में कुल छः छन्द हैं:- दूर्वाभास, रण मिर्मल, सुन्द से पहले, दुस्तेज में, पुनः भंग, और उपसंहार। कवि ने इसे सद् छन्द काव्य की संज्ञा दी है। इसमें कुल 93 छन्द हैं। दूसरी कविता पुनः-भंग है इमार्क 22 पर है। यह भी कृष्ण का सौंदर्य पूर्ण कथन है। अर्जुन की दीप्ति (पुनः-भंग इमार्क 1) के बाद उसी के 22 वें छन्द के बाद इसे रक्त कर भी बढ़ा जाये तो कविता का न तो मूल ही भंग होना और न छन्द का भंग ही। हाँ, छन्द के परिवर्तन से अवश्य ही रसाधारण पड़ सकता है। शेष कवितायें कुछ लघुति संगार और सौन्दर्य की कवितायें हैं।

रेणुका:-

रेणुका का सर्व प्रथम प्रकाशन 1933 में हुआ। इस संग्रह में 1929 से 1933 तक की कवितायें ऐतिहासिक से संग्रहीत हैं। रेणुका में जो मंगल आशय दिया गया है, वह कवि को समझा प्रिय है कि परिवर्तों प्रकाशन ऐतिहासिक के आरंभ 1951 में भी दिया गया है। इसके अतिरिक्त भी कवि ने रेणुका की चार अन्य कवितायें भी ऐतिहासिक के आरंभ में प्रकाशित की हैं। व्योम कुंजों की परी कवि कल्प ने, पाटलिपुत्र की मंगा, मिथिला और वैश्व केमव की समाधि पर --- अतः ये कवितायें कवि की अपनी अधिक प्रिय प्रतीत होती हैं, जो वेमव की गरिमा का चित्रण प्रस्तुत करती हैं। कवि दिनकर इस युग में उदीयमान कवि समझे जाते थे। उन पर कवि गुरु रवीन्द्र का प्रभाव स्पष्ट था। रेणुका में कुल 33 कविताओं का संग्रह है। जिस में रवि बाबू से प्रभावित कविता विमासय 1933 में रची गई थी। केमव की समाधियाँ 1934 में लिखी गई जिस पर प्रभाव जी, के आरंभ छन्द का प्रभाव है। जोधिसरय, मिथिला, पाटलिपुत्र का मंगा से ऐतिहासिक गीत है, शेष कुछ ^{पुनः} पुनः भंग सम्बन्धी व्यंग्य प्रधान अथवा सौन्दर्य प्रधान रचनायें हैं। विमासय कविता तो अपनी प्रतीति पूर्व कि दिवाधी

1:- पुनः भंग तथा अन्य कवितायें: राय बाबू छन्द संग, दिल्ली, 1976.
मुद्रिका: पृष्ठ 7

समाज में इसे बड़े मोरच से माना जाता था:-

रे रोक डेडिपिठर को न यहाँ
जान दे उन को स्वर्ग और
पर फिर हमें गाँडीय नदा
सौटा दे अर्जुन भीम वीर

यह उनका वह स्वर था जहाँ वे सत्य ज्ञान का आवाहन करते प्रतीत होते हैं।

हुंकार:-

ज्ञानि कारी यदं राष्ट्रीय स्वर प्रधान 29 कविताओं का यह संग्रह 1938 में प्रकाशित हुआ। इस में 1935 से 1938 तक के काल की रचनाएँ संग्रहीत हैं। कवि की लोक-प्रचलित रचना इस संग्रह में भी इस संख्या 19 पर संकलित है। इसी से इस कविता की लोक प्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है। नई राम कृष्ण केनीपुरी जी ने इस काव्य की शुमिका लिखा है कि मैं उन्होंने ने भारतीय कवि-मनीषा के राष्ट्र जयवादी स्वर को आस्तेन्दु वायु धरिभानु, मेधिलि ज्ञान गुप्त और एक भारतीय आत्मा के राष्ट्रीय स्वरों में अहित भारत में संचरित किया था यही स्वर दिनकर में पूर्ण आस्था के साथ आया है। दिनकर मरल उमल सलने में समर्थ हैं, चुनकों का साथी सलने में समर्थ है, और देश की मरीची, देव्य, मन्त्रा का स्वष्ट चिह्न करने में भी समर्थ है। उनकी 'हाहाकार' कविता तो धर्म के धर्म की यथार्थ की प्रतीति है:-

इसो ज्योम के मेड सुम्हारा स्वर्ग बूटने हम आते हैं
सुध-सुध को बरस, सुम्हारा सुध लौकने हम आते हैं।

(इस कविता को सुन कर राष्ट्रपति रावेन्द प्रसाद भी रो पड़े थे।)

विजय-साहित्य में ज्ञानि पर जितनी कविताएँ हैं, दिनकर की विधमा उन में किसी के भी समकक्ष आकर का स्थान पाने की योग्यता रखती है। कवि ने जन-जन-जन उल्लसक जन जन जन जन जैसी ध्वन्यात्मकता उत्पन्न कर काव्य की स्वाभाविकता को बढ़ा दिया है।

रसवन्शी:-

'रसवन्शी' दिनकर की मन्त्रा आया है। इस काव्य संग्रह में तो ज्ञानि कारी स्वर का प्रहल मित्रन है और न ही राष्ट्रवादी विचार धारा का आहोस। इस संग्रह की कविताओं में कवि का व्यक्तिगत भाव लोक चिन्तित हुआ है। रेणुका और हुंकार की ओजसवी बाणी इस में नहीं। इस में गुरुरों की क्रमशः वट है, उड़ुनों की उड़ुनों वट नहीं।² इस काव्य संग्रह में 31 कविताएँ संग्रहीत हैं और इस का प्रकाशन 1939 में हुआ है यह विजयीय विजय सुद प्रारम्भ हो रहा था। इस संग्रह की कविताओं में कवि अपने हाथों से बूट- सा गया है।

रसवन्शी से पूर्व कवि अपनी कौशल बंगार -मायना की दक्षि दिने कहा था। पहिले ही की भाँति दिनकर की की इस कविताओं में सरस कामल भावों की-मायना है, प्रतीक के सौन्दर्य की व्याख्या है, रसवन्शी की कविताएँ हैं।

1:- हुंकार --- शुमिका पृ 7

2- विजय हुंकार और - 30.11.1939 25.11.1939 25-26

और किम किम विषयों पर कविता का काव्यमय जगत निर्मित हुआ है।

कवि दिनकर के मन पर होमल भावों का सविनात्मक प्रवाह चलना न्यायात्मक है कि उन्होंने ने बंगाल भाषणा से भर कर नारी विषय पर ही अनेक कवितायें लिख दी हैं --- आत्मिका से बंधु, नारी १ & मानवता, नारी २ पुरुष-प्रिया & अन्तर्वासिनी ऐसी ही कवितायें हैं। मानवता कविता आत्म परिवर्तन का बोध कराती है:-

प्रसादों से तिरने लुटी में चिन्का नम्र लुटी कवि-बाया
कोस रही बाणी के सुत को, टकातल है जो सब माया
सुगंधर हो दो वसि करें, यह भी बाकी अरमान मुझे
ऐसी क्या कुछ दे रखी, साँदी सोने की छान मुझे 12+

कवि दिनकर---काव्य-बाया को उत्तर भी देते हैं:-

अन्तर्दोष त्व निज प्रिय का, ग्राम बंधु कैसे परिचयाने
बाणी भी निश्चिन्त जगत में तब सीधी भीली क्यों माने
जावन की रस कृष्टि रीति कवि घर की क्यों साँदी न पुरुष
कवि-बाया बखी, तू भी क्यों कविता की साँदी न पुरुष 32

नारी कविता में कवि मातृत्व को ही नारी जीवन की संपन्नता मानता है:-

जाग पड़ी है जो कि देख नन्दे सान्नाथी को
माँ बनते ही श्वेय जगम का उस को खलक गया है। 8

उर्वशी काव्य की उर्वशी की रचना भी नारी कविता में ही हुई है:-

ऊपर ही ऊपर तिरने वाली निर्दल बरी के
पहले- पहले चाम दोनों मिट्टी से जग लगे हैं 5

और कवि की परिवार नियोजन जैसे कलात्मक निरोध पर रोक भी है:-

काश, समझती जन्म निरोधानुर कृत्रिम बन्धन
पुनः कामना बन्धा है अपने को ही पाने की 2

इसी तरह से कवि काम-वाध्यात्म को अपने अवलोकन में छोड़ रहा था।

1:- उर्वशी तथा अन्य कृतियाँ: विमल कुमार जैन पृ 26

2:- रसवन्शी पृ 43-46

3:- ---बखी--- पृ 47

4:- ---बखी--- पृ 52

5:- ---बखी--- पृ 52

६- -वही- पृ- 53

'पुरुष प्रिया' कविता में कवि दिनकर की ऐसी प्रभाव पूर्व है। 'प्रियतम' और 'प्रिया' शब्दों की पुनरावृत्ति ने कविता के रस को अत्यधिक बढ़ा दिया है। इसी से भावना का उद्रेक करना कवि का जोरत है—युद्ध से निकले दो वर्ग प्रिया और प्रिया यह मधुर नाम 'बड़ी सशक्त' कविता है।

कवि दिनकर की अन्य रचनाएँ:-

दास की जीवत, अन्धकारिणी आदि उनके व्यक्तिगत जीवन की सुख स्मृतियों की परिचायक हैं।

सम्प्रदाय और वाक्य गीत प्रकृति परक है तो अगस्त्य और रास की मुलती केगीर से प्रभावित रहस्यारमक रचनाएँ हैं। इन कविताओं में कहीं कहीं पर उर्ध्वी काव्य की पूर्वाभा की प्रतीत होने लगती है। कवि अपने अवस्थान में कहीं उर्ध्वी काव्य-रचना के लिये तैयार हो रहा था।

ज्वन्ध गीत:-

ज्वन्ध - गीत में 115 छन्द हैं—उमर रसपुष्पान की स्मार्ह से मिले हुये ज्वन्धो छन्द। ऐश्याम की स्मार्हियों का हिन्दी में अनुवाद तो हो ही चुका था। मुस जी ने चार शीतियों के छन्द में उसी गति-यति-वीर्य में हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया था जो कानपुर से प्रकाशित हुआ है। दिनकर पर भी ऐश्याम के इसी छन्द का प्रभाव पड़ा है। इस संकलन के ये छन्द 1932 से 1940 तक के दीर्घ काल में लिखे हैं। जिन्हें ज्वन्ध गीत में संकलित कर दिया गया है—इन में रहस्य भी है और सुख-दुःखारमक अनुभूति भी, लोक चित्त चिन्तना भी है और ज्वन्धारमक संदर्भ भी। इस काव्य में दिनकर की परमश्रद्धा कलकलकल परमात्मा के प्रति ज्योत्स्न रूप से आकृष्ट हुये हैं—लोक विचार तो पूर्वार्थ काव्यों में यत्र-तत्र विकीर्ण हैं।

सामकेनी:-

इस काव्य संग्रह में 21 कविताएँ हैं जिन का रचना-काल 1941 से 1946 तक फैला है। विद्वतीय महा युद्ध की 3 तिमीथिका ने कवि के अन्तर्गत में एक बार पुनः राष्ट्रियता की लहर दौड़ा दी। 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन मानवीय दासता से युक्ति का आधीनता था। राष्ट्रनीतिक पुष्टि से यही भारतीय स्वतंत्रता की रण केरी थी। कवि ने इस स्वातंत्र्य संघर्ष को एक यज्ञ माना है। इसकी समिधाये ही इसे 'सामकेनी' नाम दे ली। कवि पुरोधा है और ज्ञानि यज्ञमें कविता की आग है। 'कलिंग विजय' दुखेय का अग्रिम चरण है, यह अपेक्षाकृत सम्यगी कविता है। 'अतीत के स चार पर' मात्र गौरव भाषा यही है जो धर्म और शौर्य विहीन समाज की वैनीय स्थिति को प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष करता है। 'कलिंग विजय' में सहाट अतीत की परिचयना है। दिल्ली और मास्को में भारत के उद्धार की कामना है।

अन्ततः सामंती दिनकर के पुनः राष्ट्रवादी स्वर्ण काव्य भाव है।

धूप छाँव:-

1946 में ही धूप छाँव निकली --- 16 कविताओं की का संग्रह जिस में से 10 कविताएँ तो भारतीय एवं भारतीय कवियों की कविताओं के अनुवाद हैं। तन्मू नाम श्रीमती सरोजनी नायडू के *The weavers* शीर्षक संग्रही कविता का अनुवाद है। 'दो बिछा हुआ / और / पुरातन-भूय' कवि गुरु रवीन्द्र नाथ की कविताओं के अनुवाद हैं। शेष कविताएँ बालकों की रचने के लिये उपयुक्त हैं जिन में 'राज्य सदै' और 'जाँच के लिये' की कविताओं की भी आधार बनाया गया है। 'रोहन के लिये खराब / कविता पद्म सिंह शर्मा' समेत के निबन्ध 'मुझे मेरे मित्रों से खराब' के आधार पर है। सब निम्ना कर यह संग्रह बहुत प्रेरणादायक नहीं प्रतीत होता, इस से यह अनुमान अवश्य सिद्ध होता है कि कवि अनुवाद की ओर भी रुचि रखा है जिन में भारतीय देशों के कवि भी सम्मिलित हैं।

जायू:-

यह एक छोटी पुस्तिका है जिस का प्रकाशन 1947 में हुआ है। दिनकर की माँ की जी के अनन्य भक्त रहे हैं अतः यह कविता उनकी स्मृति कविता है। नौआकली के लिये विशेष एवं वैसाचिक कृत्यों में जायू की जीवन वाता को ले। जायू की मृत्यु पर प्रभावित कविता दिनकर की का बाल्य ग्रन्थ है:- बालीस कोटि के पिला को
बालीस कोटि के प्रान को
बालीस कोटि के स्तभों की
आली मुखक अभिमान को ।

इतिहास के जायू:-

यह कविता संग्रह 1951 में प्रकाशित हुआ और इस में कुल 10 कविताएँ संग्रहीत हैं। इस संग्रह में मगध मणिमा पद्य-नाटिका है। इसे दिनकर जी का पहला गीति नाट्य कहा जाता है किन्तु दिनकर जी स्वयं इसे पद्य-नाटिका कहते हैं। इसकी रचना तो 1948 में हुई थी, प्रकाशन 1951 में ही पहली बार हुआ है। रेणुका के संग्रह की रचना आहुवान, बोधिसत्त्व, पाटलिपुत्र की रक्षा से, मिथिला और विभव की समाधि, पूज्य संग्रह से अन्त के नाम पर और सामंती से अतीत के बदल पर तथा कर्मिण विभव कविताओं की लेकर इतिहास के जायू का कोवर बनाया गया है। इसकी इस संग्रह की नवीन एवं स्वतन्त्र रचना है। 'ज्योम कुंजों की परी'--- बाली कविता की भी कवि ने रेणुका के शीर्षक से इस संग्रह में उतार दिया है। इन समस्त कविताओं में कवि ने भारतीय इतिहास के गौरव वाली घटनाओं को पकट कर रखा है।

धूल और धुआँ:-

यह कविता संग्रह 1947 में प्रकाशित हुआ। इस में स्वतंत्रता, राष्ट्र हित, राष्ट्र पिता, महाजति आदि भावों की दृष्टिकोण कविताएँ संकलित हैं। सवनों का धुआँ स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कल्पनाओं का उर्वर है। भगवान की विष्णु, अमृत मंथन स्वर्ग के दीपक वर्णन पूर्ण रचनाएँ हैं।

नील कुसुम:-

1955 में प्रकाशित इस कविता संग्रह में 40 कविताएँ संग्रहित हैं जिन में विमानतय का सन्देश एक नीति नाट्य पद्य नाटिका भी सम्मिलित है। ये कविताएँ प्रयोगवादी हैं किन्तु दिनकर जी इस वाद के प्रवर्तक नहीं हैं। इस संग्रह में उत्तर की कविताएँ हैं। दिनकर ने नील कुसुम की छानवी की पूर्वो के पूरा कहा है।---
अतः नये प्रयोग बाद में इन का भी महत्व है। नई आवाज़ बच्चा चरण
सुन क क्यों लिखते हो, जन्म का जन्म, स्वर्ग के दीपक, संस्कार और लोहे के डेढ़ डरे हों मे तथा स्वप्न की ज्वार पहिले के कविता संग्रह धूल और धुआँ में प्रकाशित हो चुकी हैं। व्यास त्रिपथ के साथ ही दिनकर की व्यास-संस्कृति कविता में प्रवेश करने लगी। स्थल स्थल पर नई उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं में सर्व प्रतीक बन कर उभरा है।

इसी संज्ञान में विमानतय का सन्देश एक संगीतात्मक स्वर है जिस में विंसा, धूल और कुसुम के विषय में ट्रेन, रौंदी और शान्ति का सन्देश दिया गया है। इस कविता का अंग्रेजी अनुवाद भी *voice of the Himalaya* कीर्तिक से श्री श्री 000 नौकाक जारी किया जा चुका है जो एशिया पब्लिशिंग हाउस से 1966 में प्रकाशित हुआ है। इस अंग्रेजी अनुवाद संग्रह का नाम भी दिनकर जी ने *voice of the Himalaya* रखा है।

दिल्ली:-

इस कविता संग्रह में दिल्ली ---विषयक चार कविताओं का संकलन है---दिल्ली, दिल्ली और मात्की, हड़ की पुकार और भारत का ऐसी नगर। दिल्ली की रचना 1955 में हुई थी। नई दिल्ली का प्रेक्षीरसव 1929 में ही बनाया गया था। 2 हड़ की पुकार और भारत का ऐसी नगर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की रचनाएँ हैं। दिल्ली और मात्की 1945 में रची गई और साप्तेकी संकलन में संग्रहीत की गई थी। हड़ की पुकार 1952 और भारत का ऐसी नगर 1954 में लिखी गई है।

नील के वस्त्र:-

1956 में प्रकाशित इस संग्रह की कविताएँ व्यंग और व्यंगिण प्रधान हैं। इस की 10 कविताएँ धूल और धुआँ में भी संग्रहीत हैं। इस संकलन की कविताओं में पूर्व का सा रोह और शान्ति स्वर है अन्तर केवल इतना है कि तब यह रोह अंग्रेजी शासन के विरुद्ध था और अब यह

1:- नील कलम: श्री शंकर

2:- दिल्ली: धूमिका

देशी शासन के विरुद्ध है।

नये सुभाषित:-

1957 में प्रकाशित यह संकलन लगभग 200 छन्द विचारों
अर्थात् सुक्तिपूर्ण का है। जो संस्कृत काव्य में सुक्तिपूर्ण एवं
नीति वचनों में है। ³⁰ ऐसी ही कवि ने नये परिदेश में प्रकाशित किया है। विशेष
महत्त्व न होते हुए भी इस का सुदीर्घावन इसे दिनकर की अपनी शैली के विकास
में एक कड़ी का स्थान देता है।

बसु राम की प्रतीक्षा:-

भारत पर चीनी आक्रमण एक अदृश्याशित घटना है
थी, एक बड़ोसी देश द्वारा किया गया कब
आघात। इस काव्य-संकलन में केवल 15 कवितायें ही हैं जब हैं, तीन कवितायें
जो इन में सम्मिलित की गई हैं वे सामनेनी में बहने ही प्रकाशित हो चुकी हैं।
हिम्मा की होशनी शीर्षक कविता साप्ती शीर्षक से 1946 में लिखी गई थी।
ज्वानियाँ और ज्वानी का झंडा इसे का रचना काल 1944 है। इस संकलन
की सर्वाधिक प्रतिनिधि वद्विगत रचना बसु राम की प्रतीक्षा है जिस में कवि
ने पुनः एक बार प्रति विंता और प्रतिसाँध का शीर्षक भ्रमकाया है। कवि ने
पौराणिक आख्यान से बसु राम की साधना, ब्रह्म कुण्ड में स्नान, लीकित
कुण्ड में बसु भक्ति --- बाघ मुक्त होना और फिर इसे वर्तमान चीनी आक्रमण से
सम्बन्धित कर सौति प्रवेश --- ^{लोहित} ^{जुग} त्रेव प्रवेश --- में जन जागरण की दुबार गर्जना के
की है। यह कविता पाँच छन्दों में विभक्त है---चीनी आक्रमण, मैतृत्व का
दायित्व, संघर्ष में भारतीय संस्कृति की स्तार्थ सत्र-ग्रहण, उत्साह और आवेग
और युद्ध की सत्राध्वता का वर्णन ही इस में किया गया है। अन्य कविताओं में
भी जन-जागरण, क्रान्ति और सठे शास्त्र समाचोत का पाठ बढ़ाया गया है।

जीवता और कविता:-

मुक्तक कविताओं का यह संग्रह 1954 में प्रकाशित हुआ
है। व्यंग्य प्रधान रचनाओं का यह संकलन आत्म परक
शैक्षणिक एवं विरचित का सूचक है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह कवि का सर्वोत्कृष्ट
उत्तराध्वी जिस में विस्तृत दर्शन के स्थान पर निराशा और दीर्घकाल प्रतीत होता
है। जो नदी कविता में कवि का अपना उर है जिसे वह नदी को सम्बोधित
कर प्रकट करता है--- वास्तुतः कवि भी नदी की भाँति माना प्रकार के संघर्ष
में कर अपनी ही पारिवारिक कलह का केन्द्र बन गया है:-

जो नदी ।

सुखे किनारों के छटीले वाहनों से उर गर्व तु ।

किन्तु वायी कौन ?

अब कवि में प्राचीन इतिहास एवं क गौरव के प्रति रचना करने की जिज्ञासा की नयी लहर रही है। यह एक पीढ़ी का छायादार युग की भाँति मौन-व्यक्ति मात्र हो गया है। कवि के अपने गृह में ही सपन लुपे चल रही हैं, धूल भर रही है और इतने ही कोना सुन्य हो रहा है। यह अत्यधिक बरक रचना कृष्णायना का उतार है जिस से दिनकर जी स्वयं प्रता हैं। अतिथि, काल, सम्मान आदि कविताओं उनके सादृश्य की ही प्रतीक हैं। सिंह कविता आरम्भ चरित-बरक है।

सिंह राम धारी सिंह का ही वाक्य है। दिनकर ने सिंह की भासमानु, कविता अधि दिनकर सम्बोधित किया है। प्रस्ता यदि कोई न करे तो आरम्भ प्रस्ता क्या बुरी है? जैसे दिनकर की ही प्रस्ता सभी ने मुक्त कण्ठ से की है। उत्तरायना में अन्तर्गत अपने ही तर में सम्मान न मिला। यह अलग बात है।

मृति तिलक:-

मृति तिलक की 1964 में ही प्रकाशित हुई। इस काव्य संकलन में 27 कविताएँ हैं जिन में आठ कविताएँ अनुवाद का सम्पुकार कविता ध्रुवार्ध में पहिले की ही गई थी। जब ध्रुवार्ध का कवि ने छारिष कर दिया तब इस कविता को मृति तिलक में स्थान मिला। मोहन का धुम्कन जो टैनीसन की कविता का अनुवाद है उस के मो-दोहन की याद दिलाती है। अन्तर जाना है कि सुर का नाटक नायक दुहेले दुये दूर छोटी नायिका के मुख पर एक छोर पहुँचा रहा है --- टैनीसन की नायिका दूध दूध रही है और धुम्कन ने उसका मुख धुम्कन कर लिया। सुर का नायक सरासरी तो है दुःशील नहीं किन्तु टैनीसन का नायक तो दुःशीलता भी उल्ला है जब कि नायिका विवश है। फिर भी, विम्व कड़ा सुख है:-

पीछे जाकर छड़ा हुआ, मैं ने न दिया कुछ ध्यान
तभी तबि मृति पर, सहसा मन भना ठठे मन प्राण
जिन बाधों से उसे रोहती, मैं तो थी निस्वाय
औरक पुन लिया मुझे जब मैं दूर रही थी नाय।

इस संकलन की उर्वशी काव्य की समाप्ति व शीर्षक कविता कवि की आरम्भ स्वीकृति है। ईमानदारी के साथ। यह एक बात है जो कवि ने अपने अस्मिन् निम्न कविता की सुमित्रा कलक नन्दन पति की लिखा था। व नव वर्ष 1961 का अभिवादन - अभिमान करने वाले दिनकर जी ने पति की के सम्म यह स्वीकार किया है कि उर्वशी काव्य कालिदास, अरविन्द रवीन्द्र की उर्वशी की भाँति पौराणिक आधार

1:- मृति तिलक: मोहन का धुम्कन पृष्ठ 49

आध्यात्मिक आत्म परक कव्य नहीं है। वह केवल कहने भर को प्राचीन कथा है, वस्तुतः इस युग के विकास युद्ध की मर्म व्याप्ता है। । या फिर उनकी आत्म स्वीकृति - अपने जीवन के सुख - दुःख अनुभवों की काम-देवी कथा है।²

संस्करण:-

1958 में प्रकाशित इस काव्य संग्रह में 100 कविताएँ संग्रहीत हैं जो रेणुका, कुंहर, रत्नमती, चन्द्रिका नील, सामवेनी, दुर्लभ, वायू, एव जग, एव औरंगा, रविमरथी, नील के परते, दिव्यनी तथा नील कुसुम से ली गई हैं। इस काव्य संग्रह में हिमालय का सन्देश शीर्षक एक एक पद्य नाटिका है जो नील कुसुम संग्रह में पहिले ही प्रकाशित हो चुकी है। इस संग्रह में कवि ने अपनी काव्य यात्रा एवं काव्य मान्यताओं पर एक 76 पृष्ठ की भूमिका लिखी है, किन्तु इसे संस्करण अध्याय इतिहास की दृष्टि से विस्तार सम्मान मिला है। यह कहा जा सकता है कि इस से कवि की सीमाओं का अन्वेषण होता लग जाता है।

अनुवाद काव्य

दिनकर ने एक सफल अनुवादक के रूप में उपाधि अर्जित की है। उन्होंने ने चेष्टा की है कि अनुवाद करते समय मूल कविता के भाव की हानि न हो, यदि भावोरक के लिये कवि को अपनी उदात्त कल्पना का आश्रय लेना पड़ा हो तो कवि दिनकर ने पूर्ण स्वाभिमानी के साथ अपनी मौलिकता को भी अनुवाद में डाल देने में कोई संकोच नहीं किया है। इस प्रकार के अनुवाद दिनकर में दो प्रकार के उपलब्ध हैं। एक तो वे जिन्हें कवि ने यूरोपीय और अंग्रेजी भाषा के कवियों की कविताओं की अंग्रेजी भाषा के माध्यम से हिन्दी में अनुवाद किया है। दूसरे वे अनुवाद हैं जिन्हें स्वयं दिनकर ने अपनी ही हिन्दी कविताओं के अंग्रेजी स्यान्सर के रूप में प्रस्तुत किया है।

हिन्दी में अनुवादित कविताएँ:-

पहिले वर्ग से अंग्रेजी और यूरोपीय - स्त्री कवियों की कविताएँ हैं जिन्हें दिनकर ने अंग्रेजी भाषा के माध्यम से हिन्दी में अनुवादित किया है। अंग्रेजी भाषा के कवि डॉ० एच० सार्सेन की अनुवादित कविताओं की आरम्भ की जहाँ शीर्षक काव्य

1:- मुक्ति सिलक: उर्वरी काव्य पृष्ठ 98

2:- 99- सही - - - - पृष्ठ 94-95

संकलन में के संग्रहीत किया गया है तो सीधी और रूढ़ की कविताओं में युरोपीय कवियों और दक्षिण भारतीय भाषाओं की गीति भय कविताओं के अनुवाद है। प्रति सिलक में मुख्यतः कुल 8 कवितक्यों के अनुवाद हैं।

हिन्दी से अंग्रेजी में अनुदित कवितायें:-

दिनकर के काव्य सैकड़ों में से एक वृषभ आनंद शिलपा

वर्ष 1966 में प्रसिद्धा रचितिंग डाइल नई दिल्ली से प्रकाशित हुई है जिस की 35 कविताओं में से 4 का अंग्रेजी अनुवाद स्वयं दिनकर की का किया हुआ है। शेष 31 कविताओं का सीमली कमला रत्नम, श्री दामोदर ठाकुर, श्री आर० के० कूर, श्री मधुसूदन ठाकुर और श्री बी० के० गोकाक ने अनुदित किया है। अक्षेय ने उनकी कुछ कविताओं को अनुवाद मोक्ष भी नहीं सका है।

अनुवादक दिनकर की विशेषता यही है कि जब उन्होंने ने विदेशी भाषाओं के हिन्दी काव्यानुवाद प्रस्तुत किये हैं उन में भारतीय मर्यादा और भावानुसंगता का सर्वत्र ध्यान रखा है। तारेंत की कविता दि एकीकृतन आर ग्लो टू मे की योनोन्मुख भावनाका कवि ने वाणी रीत में बहुत धैर्य करते हैं वह कर धैर्य के गुण की विस्तृत कर दिया है। स्त्री महिला साहित्यकार रवेतलाना ने सीधी और रूढ़ की कविताओं को स्त्री भाषा में अनुदित किया है। उन्होंने ने इन हिन्दी में अनुदित कविताओं को स्त्री भाषा में अनुदित कर आता है। ऐसा नहीं है कि इनके इन कविताओं के अंग्रेजी या युरोपीय मूल न तात हों किन्तु वे कवितायें अपने अनुवाद रूप में इतनी भारतीय क हो गई हैं कि उन्हें इनके अनुवाद स्त्री भाषा में करना ही पड़े। दिनकर एक सफल अनुवादक उचित रहे हैं। उन्होंने ने अंग्रेजी के विपुल साहित्य का अध्ययन किया है था। तारेंत के साहित्य से वे प्रभावित हुए थे और सम्भवतः तारेंत के कामवाद की दिनकर ने आध्यात्म की आर उन्मुख किया है जिस की चरम परिणति उर्वशी काव्य में हुई है और इसी लिये उर्वशी में वह कामाध्यन की संगम सज्जिता हो कर निकली है।

सीधी और रूढ़:-

1957 में प्रकाशित 44 अनुदित कविताओं का संकलन है।

कवि दिनकर ने इन सभी रचनाओं के भाषा सम्बन्ध पृस्तक के अन्त में दे दिये हैं। इन कविताओं में से केवल एक रचना भारतीय मर्यादात्मक कवि कृत्य की है शेष सीधी, स्त्री, युरोपीय एवं अमरीकी कवियों की हैं। ये कवितायें या तो मूलतः अनुवाद हैं या दिनकर की ने अपनी वाणी के सम्बोधन से इनका भारतीय करण कर दिया है। जिस की उ० पृ० २७० तारेंत की कविता *Elephants are slow to mate* का भावानुवाद वह की भाषा के अनुवाद नहीं हो सका है। इसी प्रकार पुरा पाइल की *A Girl* सीधे

कविता का माध्यान्तर उस की आत्मा तक भी पहुँच सका है इस में सन्देह है। किन्तु, हमना अवश्य सिद्ध हो जाता है कि कवि दिनकर किये साहित्य के महाम रचना कारों के साथ होने की साम्यता कर रहे हैं। तर्की, सात कवच, मागली, बायी रति में बहुत धैर्य करते हैं, जादि कविताओं में कवि काम धरातल पर निरान्त समस्त संभरण करता सा प्रतीत होता है। सात कवच कविता का सही धरातल केवल काम है। प्रेरित है।

आत्मा की आँखें:-

यह अंग्रेजी कवि डी० एच० सार्वेन की 70 कविताओं का भाषानुवाद है जो 1964 में प्रकाशित हुआ। दिनकर का स्वयं कथन है कि आत्मा की आँखें भी मेरी मौलिक कृतियों का संकलन नहीं है इन में से प्रत्येक कविता अंग्रेजी के कवि एच० डी० एच० सार्वेन की किसी कविता को देख कर गढ़ी गई है।^१ ये कविताएँ अधिकतर ऐसी हैं जो अपने मूल रूप में यूरोप और अमरीका में लोक प्रिय नहीं हो सकीं थीं। किन्तु, ये भारतीय परिस्थित के अधिक निकट भी हैं। अतः दिनकर ने इनका अनुवाद किया है। ऐसी कवि की मान्यता है।

दोठ पिढाय के खुल पिटक में अर्चित कैकम्बली ने भी "चातुमत्ता धुडिओं अर्ध धुरितो यदा काम करौति। पठवी - पठवी कार्य, आपो बहव आपो कार्य, सेजो सेजो कार्य, बायो बायो कार्य, अनुमेति" कह कर केवल चार तत्वों से प्राणी-जन्त की रचना मानी है। सार्वेन कविता के दिनकर का अनुवाद "चार तत्व" में भी इन्हीं का बखान है। अतएव, इस आधार पर सार्वेन की अनुचित कविताएँ भारतीय परिस्थित के अनुकूल हैं। दिनकर अनुवाद करते हैं--- ये चार तत्व धूधवी, अग्नि, वायु, और जल हैं।^२ इस संकलन की अन्तिम दस कविताएँ प्रेम और नारी के बन्धे - कुन्हे स्वल्प को ले कर लिखी गई हैं। पहिली सात कविताओं में प्राप्ति, रहस्यवाद, और काम सम्बन्धी - विविध विचाराव कविताएँ हैं। दुर्भाग्य तो समाज कादी दृष्टि से पूँजीवादी पद्धति के प्रति प्रति हुआ है।

१:- आत्मा की आँखें: पृष्ठ 4

२:- आत्मा की आँखें: पृष्ठ 39

प्रबन्ध काव्य

दिनकर ने दो प्रबन्ध काव्य लिखे हैं। कुल्लोत्र काव्य स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व लिखा गया था और रश्मिरेणी स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद। इन दोनों ही प्रबन्ध काव्यों में दिनकर ने महाभारत से आश्रय लिया है। कुल्लोत्र कुरु क्षेत्र में महाभारत का प्रसंग तो अवश्य है किन्तु कवि की आत्म स्वीकृति है कि 'इसकी रचना भगवान् व्यास के अनुकरण पर नहीं हुई है और न महाभारत का दोहराना ही मेरा उद्देश्य था। मुझे जो कुछ कहना था वह युधिष्ठिर और भीष्म का प्रसंग उठाये बिना भी कहा जा सकता था, किन्तु तब यह रचना, शायद, प्रबन्ध के रूप में नहीं उतर कर, मुक्तक बन कर रह गई होती। तो भी यह सच है कि हमें प्रबन्ध के रूप में लाने की बेरबरीदेर मेरी कोई निश्चित योजना नहीं थी। कुरु क्षेत्र के प्रबन्ध की एकतरह हम में वर्णित विचारों को ले कर है।^१ यही कवि का नीति - मूलक विवेचन है।

कुरु क्षेत्र:-

स्वयं कवि की स्वीकृति है कि कुरु क्षेत्र एक विचार प्रधान, महाभारत के कथानक की व्यवस्था से रहित केस काव्य है जिस में कवि-कथ्य ही प्रतिपादित है। शास्त्रीय दृष्टि से आचार्य विजय नाथ प्रताप मिश्र ने इसे एकदम काव्य माना है।^२ डा० नगेन्द्र ने इसे व्यंजनात्मक काव्य से प्रेरित ठहराया मानते हैं।^३ कुछ अन्य आलोचक इसे लघु काव्य और कुछ इसे प्रबन्धाभास मानते हैं। कान्ति मोहन शर्मा कुरु क्षेत्र पर आधुनिक चिन्तन के मनीषी बर्ट्रेण्ड रसल का प्रभाव मानते हैं और उन्होंने ने रसल की पुस्तक *Authority and Individual* से एकाधिक उद्धरण दिये हैं।^४ दूसरी ओर दिनकर के ऊपर बाल गंगाधर तिलक के गीता-रहस्य का भी प्रभाव है।^५ दिनकर ने उदय उदय पर गीता के धर्म-योग का उपयोग किया है।

१:- कुरु क्षेत्र:- निवेदन: पृ० १-२

२:- दिनकर: विजय नाथ प्रताप मिश्र:- दिनकर और उनकी काव्य कृतियाँ
---पृ० कीमत

३:- विचार और व्यंजनात्मक: डा० नगेन्द्र पृ० १२८

४:- दिनकर: सम्पादिका: सावित्री सिंहा पृ० १३५-१४८

५:- १९९९ यही ----- पृ० १४९

वस्तुतः कवि को कुछ कहना है --- युद्ध और शान्ति सम्बन्धी अपने विचारों का द्योतक ही कवि का उद्देश्य अभीष्ट है। महाभारत के शान्ति और अनुशासन पर्व उनकी विज्ञाना के आधार बन गये। कवि विजय नाट्यी कविता सामग्रियों में संकलित में भी कवि को युद्ध और शान्ति का ऐतिहासिक आधार मिलता था, कुरु क्षेत्र में दली वीराभिक आधार था गया है। आचार्य नरसिंह तिलकजी शर्मा ने दिनकर के कुरु क्षेत्र का परीक्षण किया है---काव्यालोचन की दृष्टि से नहीं, कवि के आत्म कथा के आधार पर ही। वे हमें दयालुपुरुषकाव्य के चारों ओर, यदि दिनकर द्वारा पुनः परिचित कराया जाये, तो, क्षत्रिय विस्तारक यंत्र के स्थानावस्थानात्मे है। ये तो गद्यांश कहते हैं कि उपन्यासों अपने आप में जोष पूर्ण हैं, इस में दो स्त नहीं हो सकते, किन्तु गजराज, गुरु या पद्मनगराज के लिए हमें अवश्य ही उस वाग्विज्ञा पुरुष अनुशासन के त्रिदेव तैयार नहीं कर पाते जो अग्नि प्रीत्य के मूढ से बड़ा है:-

तेरों की नौक पर बैठे हुये गजराज जैसे

धके दूटे मरु से सीते ^{गुरु} पद्मनगराज जैसे

कुरु क्षेत्र जैसी जगह वाले काव्य का यह अन्तर्निहित अवस्थित दोष है।

रश्मि रथी:-

स्वातंत्र्योत्तर काल में रचा गया रश्मि रथी (1951) का कथानक भी महाभारत के कर्ण प्रसंग ही ही प्रकाशित करता है। रश्मि रथी कुरु क्षेत्र की अन्धेरा ऐक्यव्यक्ति प्रबन्ध रचना है जिस में कथानक को प्रबन्ध की दृष्टि से अधिक संयोजित किया गया है। इस प्रबन्ध काव्य में कर्ण की कथानाथा है, कर्ण का चरित्र ही इस का मूल बिन्दु है। कर्ण के रश्मि रथी नाम पर ही इस काव्य का नाम रश्मि रथी रखा गया है।

रश्मि रथी सात सर्गों का काव्य है जिस का नायक कर्ण है। कर्ण के चरित्र की घटनाओं की योजना होने से और केवल उस के ही चरित्र विकास के कारण यह काव्य कुछ काव्य की श्राना से नहीं बह सकता। प्रधान सर्ग में कर्ण के रण कौशल से गुरु द्रोण आदि में कर्ण के अज्ञात कुल शीत होने पर प्रसंग है। दुर्योधन उस की प्रशंसा करता है और उसे अंग राज्यदे कर उसे राजा बना देता है। द्वितीय सर्ग में अपने को ब्राह्मण कह कर कर्ण परशुराम से शास्त्र विद्या सीखता है। यहाँ पर द्वितीय-कौट प्रसंग में उसका भेद सुन जाता है। महाभारत विरमण का क्षण और कीर्ति का वरदान दोनों ऐसे प्रदेय हैं कि कर्ण का स्वयं भी रोष हो जाता है। तृतीय सर्ग में पाण्डव-पक्ष में मिलने के प्रस्ताव की अस्वीकृति, चौथे सर्ग में

1:- दिनकर: सम्पादिका:- सावित्री सिंहा पृष्ठ 160

छन्दों में बन्दु द्वारा कवच कुञ्ज नांग लाना, पंचम सर्ग में कुन्ती द्वारा कर्म-
रत्न के प्रसंग का कथन, छठे सर्ग में कर्म का खुद के लिये प्रस्थान और सातवें सर्ग
में अभिषेक सिद्धि और कर्म का लक्ष्य वर्णित है। इस में एक अच्छे काव्य की प्रबन्ध-
पद्धति और चतुर्ध्रुव पूर्ण व्यवस्था है। फिर भी इसे छन्द काव्य के वर्गों नहीं
ले जा सकते।

हरिम रथी की भूमिका के कवि ने स्वयं इस काव्य के लिखने का प्रयोजन
स्पष्ट किया है। यह ऐसा काव्य लिखना चाहता है जिस में केवल दिव्यरीतिवाद की
ही नहीं, बल्कि कथा-संवाद और कर्म का भी गवाह हो। "स्पष्ट ही यह उस
मोह का उद्गार था जो मेरे भीतर उस परम्परा के प्रति मौजूद रहा है, जिस के
सर्व वैकल्य प्रतिनिधि रावद कवि की अधिपति इंसान की दुष्ट है।" अतः हरिम रथी
में कर्म का कथानक गुम्फित है। दिनकर जी ने अपने इस काव्य के लेख में
जोनों में हाथों का प्रयोग किया है—"कभी दाहिने हाथ से कथा रोचक ढंग से
लिखी गई और कभी बायें से नीरस हो गई।" उन की यह आरम्भ स्थिति ही
सत्य है— भले ही उन की भूमिका में कोई सत्यता न हो—"कि कर्म के खड्गों
में अपने समय और समाज के चिन्ता में जो कुछ कहनी चाहता था, उसके जवाब भी
मुझे क्या स्थान मिल गये है।" १ हाँ तो यह भी सदैव नहीं रह जाता कि कवि
अतिशय बोधिव्यक्त को रोक नहीं पाया है। पहले दो सर्गों में के छन्द की यह
एक स्वता के बाव कवि ने गीतात्मक छन्दों का आशय दिया है—सौम्य, शांतिपूर्ण
छन्दों और सातवें छन्द में गीतात्मकता की प्रधानता है। सप्तम सर्ग के बदले
दुसरे छन्दों से प्रतीत होता है कि कवि में अनिश्चयता अधिक है। कवि ने अपनी
भूमिका में राम चरित मानस, भावैत और कामायनी में जिस दुर्लभता का उदाहरण
दिया है, वह दुर्लभता इन प्रबन्ध काव्यों में भले ही न हो किन्तु दिनकर के इस
काव्य में यह शैथिल्य अवश्य नजर आ जाता है।

.....

१:- हरिम रथी: भूमिका --- ३

२:- हरिम रथी: भूमिका --- ४

दिनकर के नीति नाट्य

दिनकर ने तीन नीति नाट्य लिखे हैं। (क) मण्ड मणिमा (ख) हिमालय की पुकार (ग) उर्वशी। मण्ड मणिमा एक बहुत नाटिका है यह नाम भी दिनकर जी का ही दिया हुआ है जो इतिहास के आधु संकलन में प्रकाशित हुई है। इस का रचना काल वृ 1948 है। इस बहुत नाटिका में नीति भी है और कविता भी---रंग निर्देश भी उ और भाव मात्र भी। इतिहास इतिहास राज कंठी चन्द्र मुक्त और भीमेश्वर चामक्य भी हैंतो कल्पना और इतिहास मान्योक्त मात्र है। कुल मिला कर यह नाट्य कृति अपने आकार में बहुत छोटी है और इन आठ दृश्यों के अभिनय में चन्द्र मिश्र से अधिक समय नहीं लगाना चाहिये रंग मंच की सज्जा और अभिनय निर्देश हैं अभाव में यह केवल बहुत कुछ सम्पाद से अधिक रक्षण बनाने में सामर्थ्य धाम नहीं है।

हिमालय का सम्बन्ध शीर्षक संपाद कविता नीति कल्प और बहुत बाल संकलन में प्रकाशित हुई है। इसे न तो बहुत नाटिका कहा जा सकता है और न ही नीति नाट्य। नाट्य का धर्म है अभिनय। इस कविता में अभिनय धुन्ध है कल्पि प्रमुख है। भाव सौन्दर्य के धामि इस कविता में होते हैं और पाठक को अपने मानसिक मंच पर अनेक कल्पियों की कल्पना करना पड़ती है। यह संपाद-कविता भी आठ दृश्यों में प्रस्तुत है। अन्तिम भाग तो मात्र एक दृश्य ही है। इसे भी नीति नाट्य की परिभाषा के दृष्टिकोण में नहीं धारित जा सकता। इस कविता का अंग्रेजी स्वाम्तर भी वी० के० गोडार्ड ने किया है जो *voice of the Himalaya* शीर्षक काव्य संकलन में इसी शीर्षक ने लगी है। इसे इन एक उ समीची कविता कह सकते हैं।

उर्वशी:-

उर्वशी पर दिनकर को ज्ञान पीठ पुरस्कार मिला है।

सन् 1961 में प्रकाशित यह इस युग की एक सर्व केष्ठ कृति है किन्तु पुरस्कार तो किसी कृति की केष्ठता सिद्ध नहीं कर

करता। अपितु कवि की प्रतिभा उसे पुरस्कृत कराती है। उल्टा न ही या कि कवि के अन्तर्निहित ^{मे कामायनी} नीति की एक महा काव्य लिखने की प्रेरणा जानी हो। मरवाकाशी कवि के मन में यह भाव उठना अस्वाभाविक भी नहीं था। यह भी अनैवशित नहीं रहा है कि कवि पर कामायनी का प्रभाव न बहुत हो। मनु-कदा-भट्टा-मानस को ही संगति तो पुराणा - औसीनरी-उर्वशी - आयु में दीख पड़ती है। मनु का वैराग्य-भाव ही पुरुषार्थ का सम्पादन है और मानस के इतिहास में ही आयु प्रस्तुत किया गया है। यहाँ तक कि उर्वशी के पाँचवें दृश्य में दिनकर की भाषा में कामायनी का ही भाषा से एक स्पष्टा पार्श्व जाती है।

उर्दू की फिर भी एक सविन्यात्मक विचार प्रणाली काव्य का नाटकीय प्रस्तुति-करण है जिस में एक राज्य-परिवार की व्यक्तिगत, भावनात्मक एवं विचारोत्प्रेषक बोधिका का परिचय दिया गया है। इस में धर्म शास्त्र की इह-दीवानुराग की गुरिधियां सुनवाई गयी हैं और नवी विज्ञान के अरातल पर काम-कैतना की व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। यह काम-कैतना भी परिचयी नवी विज्ञान शास्त्र पर व्याख्यात्मक की गई है। इसी व्याख्यात्मक और काम का स्वस्थ उर्दू में वर्णित है।

आलोचकों ने उर्दू की महा काव्य और नीति नाट्य दोनों रूपों में अध्ययन करने की चेष्टा की है। उर्दू का कहानक अथवा विषय वस्तु महा-काव्य के अधिक निकट है। किन्तु उस के शिक्ष-विज्ञान में जो नाटकीय स्वस्थ दिया गया है उसके कारण इसे नीति-नाट्य में ही परिगणित किया गया है।

उर्दू की विषयक विज्ञानी भी रचनायें पूर्व में प्रकाशित हो चुकी हैं दिनकर पर इन सभी का परिदृष्टित प्रभाव पड़ा है। इस लेख, इस पथ ब्राह्मण, गीता, विष्णुसंस्कृतियम्, अरविन्द और रवीन्द्र का उर्दू के अतिरिक्त शेक्सपीयर के वीनस और एडोल्फ काव्य, डी० एच० आरेंस के काम-सम्बन्धी इषम्याम और कर्कशायें, जगज्ज का काम नवी विज्ञान शास्त्र धौस्वीय लम्बे कथनों ने दिनकर को उर्दू - लेखन में प्रभावित किया है। उर्दू में वर्णित विचारों की सम्मीरता पर लीयद् भाग्यता गीता का भी प्रभाव है।

दिनकर का काव्योत्तर साहित्य

इसके अतिरिक्त भी दिनकर ने निम्न साहित्य, आजीवन साहित्य, काम साहित्य, धार्मिक-सम्बन्ध साहित्य आदि की रचना की है। ये भाषा, भाव और विचारों के धनी थे, बुद्धि और भावना के अद्भुत संगम थे।

उपर्युक्त विवेचन का मूल निष्कर्ष यह है कि दिनकर की काव्य-कैतना का विकास अभाव और संघर्ष से भाव और विज्ञान की ओर, निष्पक्ष से स्वीकृतिपत्र की ओर तथा निष्कुरित से प्रकृति की ओर हुआ है। इन सभी अवस्थाओं को दिनकर ने अपनी प्रौढ़ कृति उर्दू में अभिव्यक्त किया है। कहा जा सकता है कि दिनकर की समस्त काव्य-कैतना का ^{प्रतिफल} उर्दू है। प्रारम्भ में जो

दिया स्वप्न रहे हैं वही दिनकर के श्रौढ़ जीवन में चिन्तन करने और जो कोशिश -
 छोड़ कर उल्टा चले रही हैं कर्म का व्यापक - क्षेत्र कमी। दिनकर का अपना चिह्न
 स्वर जो प्रारम्भ काल की रचनाओं में मिलता है श्रौढ़ रचनाओं में मानों वही
 समझीला कर उबर गया सा प्रतीत होता है। सावित्री सिंह ने तो दिनकर की
 रचनाओं को में कहीं चित्तर और सुनीलनी के व्यक्तित्वों की ही राक्षसी में
 का आभास पाया है और पाया है कि उन्होंने ने सदा शक्ति के वाक्य के ही
 में देव, कला और धर्म शब्द बकड़ा कर उसे मनुष्य बनाने का सर्वत्र प्रयास
 किया है। दिनकर का मान्यता पायी मुष्टि हीन उनके काव्य में सर्वत्र व्यक्त
 व्याप्त है।

000000000000

अध्याय दो

उर्वशी

वस्तु और नाट्य गठन

वस्तु

संक्षिप्त कथा

वस्तु का स्रोत और विकास

- वैदिक वाङ्मय में उर्वशी आख्यान
- पौराणिक वाङ्मय में उर्वशी आख्यान
- लौकिक संस्कृत में उर्वशी आख्यान
- रवि बाबू की उर्वशी
- अरविन्द की उर्वशी
- ‘प्रसाद’ की उर्वशी

अधिकारिक कथा

प्रासंगिक कथायें

सन्दर्भ कथायें

वैदिककाल से उर्वशी काल तक वस्तु के रूपान्तर

दिनकर द्वारा उर्वशी के कथानक में परिवर्तन

नाट्य गठन

उर्वशी में नाट्य-शैली : भारतीय एवं पाश्चात्य

अर्थ प्रकृतियाँ, अवस्थाएँ एवं सन्धियाँ

अंक विभाजन

नाट्य-गठन

एक वियोगन्त गीति नाट्य

.0000.

-:: वस्तु और नादय मन्त्र ::-

.0000.

अ:- वस्तु:

उर्वशी की लीला का कथा:-

उर्वशी की कथा वस्तु बांध अंकों में व्याप्त है। नाटकीय निधि होने से इस नीति नादय का स्वल्प अवधारणा अन्य कृतियों के अधिक विचारमय एवं सुंदर है। अतः इस के नाटकीय परिवर्त में ही कथा वस्तु प्रस्तुत करना अधिक संगत है।

अंक - ३

अंक - १। नाटकीय विधान:-

प्रथम अंक का नाटकीय - रंगमंच श्रृंखला - विधान बहुत लंबा है। प्रतिष्ठानपुर की एकान्त वातावरण, रात की मन्त्र और उस निम्न वातावरण में सुप्त-धार और मन्त्री प्रकृति शोभा के आनन्द में मीन मन्त्र वातावरण कर रहे हैं। रात की मन्त्र का मातृ वर्णन और उस में ही मन्त्र-रसिकों मानो ध्वनी की अपनी भावों में लम्बे आनन्द आनन्द करने के लिये व्याकुल हैं, यही तो वह उर्वशी का वर्णन है यहाँ पुरुषता और उर्वशी की प्रेम-अथा का बीधा-कुर दूना है।

उर्वशी रजत-लगा रात में उर्वशी रसिक ध्वनियों और मन्त्रों की वाक्यियों में अनेक अवसरों आकाश मार्ग से दू पर उतरतीं। रसिकों के कोमल वाक्यों वस्तु, सुष्ठु पर पराग-मन्त्र का मन्त्र, जिस की प्रेमियों भी से अवसरों अथवा प्रेम की कोमल प्रतिभायें हैं और ये आभासता मन की कामनायें। अवसरों में प्रकृत है र-मा, सखन्ना, और मन्त्र। लम्बे नायक करती पूर्व जब से दू पर उतरतीं तो सुष्ठु और मन्त्री दूना की ओर में उतरावस्तु ही जाती हैं।

परियों का वातावरण प्रारम्भ हुआ औरक अति के मूल आधारिक तब वस्तुओं में का वर्णन। वाता का विषय है मुर लोक और दू लोक का अन्तर ---- एक दृष्टिकोण दार्शनिक विषय, किन्तुकिता महा प्रति उत्तर है----मुर लोक अन्तर के अन्तर्गत लोक मन्त्र शीत। मुर लोक वाता मन्त्र मन्त्र वाता हैं -- दू लोक पर अनेक वाता, हैं, उर्वशी का सुष्ठु-वेदार्थ किता ही शीत क्यों न ही पर मन्त्र अन्त - अन्त कर जाती हैं। सभी उर्वशी का प्रेम आ गया कि वह आज विहार करने क्यों नहीं आई। उत्तर दिया सखन्ना ने ---- एक दिन जब इन विहार करने निम्न तब सखन्ना एक वैद्य उर्वशी की वाता में के वस्तु में है कर प्रकृत मन्त्र उर्वशी आरम्भ वाता दूना करने लगी। उसके वस्तु प्रेम की सुना एक और

मुक्ति में और और दौड़ कर देश की मजदूरी के लिये आगे बढ़ा दिया। इस युद्ध में राक्षस का बुरा काम उलझा हो गया। उर्वशी देश - पाश से तो मुक्त हो गई, किन्तु उस मनुष्य के ड्रेम - पाश में आबाद हो गई। दोनों के ड्रेम प्रगाढ़ हो ही रहा था, किन्तु उर्वशी स्वर्ग लोक की चाली थी और राजा हरणि लोक के। दोनों ही परस्पर समर्पण के लिये आहुतियाँ देकर। और सभी हमारा अप्सराओं के जीवन की सार्थकता तथा जीवन भोग सुख की कामना को धुँ लोक की रानी के मातृत्व लोक से विगत जीवन की कीर्तना कर उर्वशी के प्रति कामना करती है कि वह अप्सरा की जगह रहे तथा मानवी का साम्राज्य न करे। उसके भाव की रीति लोक, संताप-वरा मरण दुःखी चाली भोगों की रहते हैं, विषाद पाते ही रहते हैं। यह चार्ता समाप्त भी न हुई थी कि चित्र लेखा ने सुचना दी कि उर्वशी राजा पुरावा के लिये कितनी विवश हो उठती है:-

यदि आप जानते हो कि नहीं पाते भी

तो शरीर को छोड़ पवन में निश्चय ही मिल जाऊँगी।

एक अपनी आन्तरिक पीड़ा से विवश है। अतः मनः शांति और अन्तर्गत की शांति के लिये चित्र लेखा उर्वशी को दूर दूर से बाहर राजा पुरावा के उपवन में छोड़ आ गई है। राजा पुरावा की एक पत्नी भी है, तो वह है क्या?

राजाओं के का चित्त बंजल होता है, उनका ड्रेम किसी एक छोट पर रूँ कर नहीं रहता, वे नित्य नई नई सुन्दरताओं पर प्रीति प्रयोजन करते रहते हैं। यह ड्रेम भी एकजोड़ी नहीं है। उर्वशी राजा पुरावा उर्वशी के लोभवर्धक पर लोक सुखे हैं, वे भी उतने ही व्याकुल हैं। वे यही कामना करते हैं कि या तो उर्वशी नए दम कामना के धुँ पर जाये या फिर वे स्वयं ही धुँ लोक से उलझ उठ उसके पास पहुँचें। महाराजनी औशीनरी बने जानती हैं --- से भी चन्द्र-आराधना कर रही हैं कि प्रिय की मुक्ति इस पर जनी रहे और उर्वशी को मुक्ति हो।

रात केवल भार सही शेष लकी के थी। चन्द्रमा क्षीण हो रहा था, चन्द्रमा उलझाने लगी थी और अप्सराओं समेत भाग करती हुई आकाश मार्ग में विह्वल हो उठे थी। गई।

अंक - २ नाटकीय विधानः खण्डः-

प्रतिष्ठापन का राज भवन। पुरावा की रानी महाराजनी औशीनरी अपनी ही सहिष्णु के साथ संघ पर विचार्य गई हैं। प्रत्यक्ष अंक में केवल तीन रानी पाते हैं। वे सुख पाश भी नहीं हैं किन्तु पथा विवास में उनका अत्यधिक महत्व है। औशीनरी अपनी ही अप्सरा सहिष्णु --- निवृत्ति और मदमत्त

के साथ वातावरण कर रही है। निम्नलिखित ही सूचना देती है कि जब महाराणी चन्द्रमाला का वृत्तन कर लीट रही थी तभी उर्वरी चन्द्र-रश्मियों ने भित्तिकावाली पूर्व भूख की छाया से निकल कर प्रकट हुई थी। उसकी नाम काष्मिक को चरमा-संकार भी दिया न सके, वह सर्व-भक्ति के समान प्रभावशाली और सुसम्पन्न कोमल अधर शास्त्रिक शीघ्र में ज्वाला जमाने में लगन थी। वह दिन कर्णों से सुगीकृत बहिष्करी नारी थी। उसे देख कर राजा पुलस्त्य की आकृति - व्याकुल उस की ओर दौड़े और उसे अपने अंक में उठा लिया। और उर्वरी भी उनके ससक्त बाहु का सहकर्म में निरिभक्तिका - जता समान हो कर समा गई। आठमास के ऋषिक वरीति ॥ भी वातावरण में वह उस उर्वरी प्राणेश्वरी के संग आजीवन विवरण करने की कामना करने लगे। वेवारी जीसी मरी उनके आजीवन साहचर्य की कामना मात्र से सिहर उठती हैं। उसका निराशा पूर्व कथन किताब बतला जनक है:-

आजीवन के साथ रहें मे? तो अब क्या करना है ?

जीसे भी यह मरण भेलने से अलग नरमा है।

उर्वरी: अ० २, पृ० ३

किन्तु उस नारी के लिये तो मरण भी सम्भव नहीं। महाराज पुलस्त्य तो आभास्यों ने कह गये हैं कि धर्म धर्म के दंड गम्भीर मादन पर विवरण करे मे और फिर भविष्येय यत्र सम्भव करें मे। कहा यत्र मे कृष्ण वसिष्ठा परिणीतामहाराणी जीशानरी का जीना अनिवार्य है फिर मरण की यह कामना क्यों कतयव हम छन यत्र कीर्णार्थ जीशानरी केजीकृत व रचना ही है। जीशानरी उर्वरी यत्र पर पूर्व मानदो महापुरुषि की प्राप्त कर लेती है। उर्वरी वह को पूरी जाहें भी नहीं सुहाती किन्तु विवर्त है --- वह प्रत्येक भारतीय नारी की सफल और सामान्य अनुकृति है। वह संस्कार उच्च है कि हम में सचरनी जेह रहता है। वह उर्वरी की लज्जिका कहती है, अक्षय वाचनी, प्रवीणता, स्वगतिनियां आदि अप शब्द भी की प्रयोग करती है, परन्तु क्या महाराज इतने से विमुक्त हूये ? नहीं, किन्तु उस भजिका और अक्षय अक्षय पर प्रीति कर्ण करते हैं लगे।

मदनिका प्रीति के प्रथम उचार की अनुकृति की शब्दों में बड़े प्रभावशाली दृष्टि से प्रस्तुत करती है। पूर्व प्रीति में नारी पुरुष को दुर्लभ स्वप्न अनु प्रतीत होती है। वह किताब गौरवमय अंग हो भा वह पुरुष अपना सज्जन पौन्य और अजेय अक्षरत्व नारी के लक्ष्मी में न्योछावर कर उस के गुण लीन्दव्य को यत्र निहार करता है। उस के जीवन में वह अनिर्वचनीय गुण है। यही तो वह अंग

होता है वह नारी जो कामना को पुरुष से प्राप्त कर सकती है, यहाँ तक
 कुर्बानों की मेरुका, भोसुदी का मुकुट, उषा का चावक, पियू के चावक की आरती
 भी उस के कामना को प्राप्त है। वह नारी प्रमदा है और पुरुष अपना तप, ज्ञान,
 संयम, मान, अभिमान, गर्व, गौरव सब उसके चरणों पर गिर कर सकता है। औशीनरी
 जानती है कि पुरुष का प्रेम स्वर हीन ही उत्तर जाता है वह कि नारी उस समय
 प्रेम सेतु पर खड़ी रहती है। तब है --- "जो अलभ्य, जो दूर उगी को खिंच
 खिंचता मने।" दूसरी ओर यमनिका यह धिक्कात करती है कि जो सबसे उपलब्ध
 है वह रस हीन है, अमृत का रस चाखिये पुरुष को जलीभूत रहने के लिये। उसी
 लिये मुहणी औशीनरी अपना उर्ध्वी से घन कोट में तार गर्व--- एक परिणाम में
 मुहूर्त है दूसरी प्रणय में अवधारित।

निधुनिका ने महाराजा पुरुषा को अनेक कुर्बानों की छान खाता कर अनेक
 देवताओं से भी उसकी तुलना कर छाती और फिर ऐसे अनुमोदक वराधनी शूर वीर
 लक्ष्मण कामना पुरुष का निम्न मान पुरुष के लिये कौन खेती रही है जो समर्थ स
 न हो। किन्तु क्या औशीनरी ने अपना समर्पण नहीं किया? वह तो तन-मन-जीव
 जीव्य समर्पित है। उसकी कामना है कि महाराज पुरुषा भी उसे मधु-मत्त मयम
 से भरें, उसके तान-मधु को हलफूल करें और वह मधु-मत्त दुष्टि ही किसी भी
 प्रीति को उसारी से दुखती बनाने के लिये बर्बाद है। यमनिका औशीनरी की
 मनोदशा को भी प्रति धांकी है। भारी में रस-दुष्टि, जालिन्ग-पुरुष,
 सिंहास, लज्जित-कुम्भ की मासलाएँ हैं और पुरुष के मन की बांधना भी कठिन है।

पुरुष उपलब्ध होने पर जन्मी के का में मुँह छिपाना चाहता है और संकट की
 स्थिति में मुँह के छिपे देखा जा में होना चाहता है। संकटों की ध्वनि वह
 नारी के पल पर फिर खड़ा का बिटा जाता है और स्थितियों में रक्खी के कर्मों
 का धारिण्य कर। वह तो पुरुष की शक्ति के चित्र में जितनी शक्ति है उसका भी
 प्रथम से उद्घाटन जायेन उसकी रंगों में अन्त जगल धन कर छुटता है और ऐसे
 पुरुष की भी यदि विपत्ति अपना सम्मल है तो त्यगी नारी उसे भी अपने लक्ष्य-
 भूत कर लेती है पर छुटा प्रसन्न औशीनरी नहीं करता है:- "वसि के सिखा
 योनिर्वा का और आधार नहीं है।"

उसने ही में कुँकुकी ने कुँकुकी कर यह सूचना दी कि परम महारथ महाराज
 पुरुषा ने यह लक्ष्य देखा है कि वह सब से मज्ज मादन की स्वयं-मुक्ताव वराधनी
 का लेखन करते हैं। वह सब सब महारानी पुरुष कामना सेतु आराधना करती रहे और
 है भी मज्ज मादन पर ईश्वर की आराधना कर रहे हैं। (पुरुषा वराधनी में
 लीन हैं या कि उर्ध्वी के लक्ष्य सब साक्ष्य की आराधना में ?) यह प्रश्न है ---

औशीनरी सम्मान हीन है। मासुरवा का मान्य उसे नहीं मिला, पुरुरवा ने
हत्ती एक दुर्लभता पर चोट की है साथ ही उसे भी पुन-कामना है। यह
दुर्लभता सम्मान है उर्वशी ने पूर्ण की। औशीनरी एक विषय व्यंग्य करती हुई पूछ
ती जाती है:-

--- --- --- --- हाँ उर्वशी साधना है
अपारा कं संग रचना, रस की आराधना है
पुन वामे के लिये विरहा करें ये दुःख सम में
और मैं आराधना करती रहूँ मुने भवन में ।

नारी बहुत असाधारण है, उसके मनमें जो एक ठोके उसे प्यार पर न लायें, और
केवल यही मंगल कामना करे प्रियतम सदा की हो उस के पथ में सर्वत्र प्रसन्न हो, क
हूँ है?

अंक ३:-

जब मादम वर्कस की विचार रक्ती। केवल कतनी मंद मन्त्रा में पुरुरवा-
उर्वशी की प्रणय मन्त्रि और विचार विभिन्न तथा संसार में समस्त मान-विज्ञान
की कदा महाकवि विमल ने इस अंक में प्रस्तुत की है यदि यह कहा जाये कि
यह अंक ही उर्वशी का प्रणय है तो अत्युक्ति न हो गी।

पुरुरवा-उर्वशी का वाचस्पतिक मन्त्र मादम के वातावरण में मूक रहा है।
जब से यह प्रणय-पुन यहाँ विचार कर रहा है न जाने किना समय प्यारी ही
गया जिस का आभास न तो पुरुरवा की ही है और न उर्वशी की ही। इस विचार
के पूर्व सभी समय काहे नहीं करता था और सब काम लीन ही नहीं रहा। उर्वशी
की रचना की मर्यादा छोड़ कर पूरी काम-जोड़ विचारण और प्रणय-कारण के
लिये पुरुरवा की प्रेयसी उस कल्पे में अपने की धन्य समझ रही है। पुरुरवा उसे
स्मरण कराता है कि जे-ए केरी से उस का विमोक्षण करने के बाद वह कतना स्वतन्त्र-
स्वतन्त्र रूप आनन्द हो गया था कि जब बार पन्द्र से उसे माँग जाने की भी जा
ने कामना की किन्तु उस का अहं उस के मार्ग में आ गया। अन्तिम क्या कही-
कही विचारण से ड्रेम पाते हैं, और पूरे पुरुरवा के मन में सिद्धांती कि यदि उर्वशी
की पन्द्र से माँग भी लिया और वह प्राप्त भी हो गई तो क्या आनन्द है कि
यह मुझ-बुद्ध से उसके प्रणय निवेदन की स्वीकार हो कर मैं लौटा और प्रणय-
व्यापुक्ता के आनन्द में पुरुरवा अन्तः आनन्दित रहा कि यदि लोगो और
ड्रेम पाने की वस्तु है तो निश्चय ही उर्वशी किसी रात भूतल पर स्वयं कही
आयेगी।

उर्वशी अपने आग्रहों की विवशता को बड़े दम से दिखाना चाहती है। कहती है 'पुलखा तुम मेरा हल क्यों नहीं कर माये यदि मांगने में संकोच था तो हल तो पुलखों का धुल्ल है।' पुलखा समझ नहीं है। वे कहते हैं 'हल तो था विधाटन --- अवयव दोनोंमें ही है।' और फिर पुलखा प्रतापी राजा है --- पुलखों की सभ्यता का हल करना तपस्वी मर्यादा के विपरीत भी हो सकता है। इसकी अनासक्ति उसके प्रणय को बाधन करती है अतः स्तर चला हल करना शौन्धीय न होता। उर्वशी कागजा तरीका है---उन आदर्शों को सुनने वह इसकी पर नहीं आई। वह तो स्वर्ग में भी था। इसी पर वह आई है राजा पुलखा का विषय-व्यय सर्व धामे के लिये, आर्ति-गन्-धुम्बन-परिरम्भ धामे के लिये, चित्ते के प्राप्ति करने पर नये नये तरत फूट निकलते हैं, देह की के रोमांचितियों से बीच बढ़ते हैं जिस में एक विचित्र चमक होती है और जिस में तन-मन की एक प्रस्थिति हो जाती है। उर्वशी अनुभव करती है कि पुलखा विवश प्रतापी है--- कि तन का आर्ति-गन् धुल्ल है, परन्तु मन तो वहीं और रुक रहा है। यह देखा है। उर्वशी तन-मन का सार्वभौमिक न हो तर्कसे ऐसा अनुभव करती है मानों वह सदैव धौलकती स्वामी मारी पुलखा की ओर में न हो अपितु परमात्मा की आराधना में प्रार्थना की कोई निर्विघ्न कक्षा हो। उर्वशी का यह काम कि वह नहीं पुलखा पर जिस का जंझा लटका रहा है जिस के कारण उस के तपस् प्रवर धुम्बन में भी होती-रहता है।

उर्वशी: तपस्वतः पुलखा इस शंका अन्तिम जंझा को अलग नहीं कर पाये और उनका शौन्धीय काम जागृत हो अन्त पायी हो उठा। उन में उर्वशी पूर्व प्रणय जटिल कलमी तीव्र हो उठी कि उन्हें संवेक शक्ति से जीने नहीं देती। वे उस चमक लुप्त उर्वशी के तन को बाध के निजोद्भूत कर भी जाने के लिये उद्यत हैं किन्तु तभी ^{अन्तरात्मा} अन्तरात्मा की अर्पित उसे अव्यवस्थित कर देती है:-

धृष्टि का जो रेल है, वह रक्त का मोधन नहीं है
 तब ही आराधना का मार्ग आर्ति-गन् नहीं है।

यही तो विवश के पुलखा की। तन अतिवृत्त करमा चाहता वह अंशुता लगाता धृष्टि कहती है--- तन की आराधना का मार्ग आर्ति-गन् नहीं है तो और क्या है? तन का शौन्धीय को उपहार तन-धुम्बन नहीं तो और क्या है? अन्तर्लोक की विचित्र मनः स्थिति से सुझता हुआ पुलखा एक बार पुनः आदर्श लोड की अवस्था करता है और एक बार फिर उसका मन कहता है:-

वह सुझावरी कल्पना है, प्यार कर तो
 स्वामी मारी प्रकृति का चित्त है तब से मनोहर
 की गमन चारी। यहाँ मधुमातल छाया है

भूमि पर उतरो

कमल ऊपर, कुंडल से, कटप से,

बस अतुल सौन्दर्य का भ्रंश कर लो ।

और बुझि फिर जाड़े जा जाती है। मन-बुझि का संघर्ष अबेले पुरखा भुल रहा है। तिरु सा अपार कम, तिरु सामान बुद्ध का रत्न, चट्टान सी मुजाये, आनंद दीप्त मुल मण्डल वाला सेवारी पुरखा बंसा है संशय में, असमंजस में, संकल्प-विषय की उवा पीठ में। यही सुखदण्ड पुरखा सिंह गर्जना करता है---समस्त दुर्मन्त्राओं को संकल्प में बदल कर सूर्यसाद करता है---एक अन्तिम सा निर्वासः

मर्य मानव की विषय का सूर्य हूँ मैं

उर्वरी अपने समय का सूर्य हूँ मैं।

अंत तन के भाग पर पावक जलाता हूँ

बादलों के सीत पर तन्मय चलाता हूँ

किन्तु दूसरे ही क्षण एक असहाय चीन दुर्मन्त्र की भाँति पावक जलाता है:-

बुझि ही जाता सद्य बौद्ध मन के धाग से

धीरे सेती स्वामी नारी उसे मुखाग्र ले।

तो क्या अब यही निष्कर्ष है---बुद्ध बुझि से चीत गया। पुरखा का मन उर्वरी उर्वरी के लिये संकल्पित है:-

मैं तुम्हारे धाग का बौद्धा हुआ रत्न

का पर धर शीत मरना चाहता हूँ।

और उस पौरुष पुरखाद्विषय फिर दार्शनिक शान्ति की ओर उन्मुख हो कर पुनः देवदत्त की कामना करने लगता है। वह देवदत्त को ही महान समझता है---भूमि की क्या आकाशता उसे दुर्मन्त्र है? सभी तो सद्य है। और फिर मानव जीवन का आदर्श तो देवदत्त ही है---कैसी विचित्र विचित्र पूर्ण स्थिति है:-

उन प्रकृतिकृत ग्राम पुरुषों में मुझे शास्त्र सत्य दो

मन्य के बस लोक से बाहर न जाना चाहता हूँ

मैं तुम्हारे रक्त के छि में समा कर प्रसन्नकण्ठकण्ठकण्ठक

प्रार्थना के गीत गाता चाहता हूँ।

पर क्या उर्वरी भी प्रार्थना चाहती है वह तो देव साक छोड़ कर आई थी

देवदत्त का अन्त साध पीने के लिये। वह पुरखा को प्रशिक्षित कर रही है काम

बुझि के साध के भोग के लिये। सखा-मित्र, मित्रुण, आकाश, पाताल सभी सब साध देते हैं जब तक वह देवदत्त भीतर है। उर्वरी बुद्ध (रक्त) के समान बुझि (सर्प) की देखा सिद्ध करती है और वह आई ही है जीवन अमर-दीप्त के अन्त

अधिक कर चलने वाले ताप-ताप मधुमयी गन्ध का वाग करने के लिये। यह कहती है मनुष्य में ही सीतलता है और ज्वाला भी, योनी भी है और भीनी भी, मन में असीमता है तो मन में रस तिथनी डारा भी है, मनुष्य जल-अमल, मृत्ति-अवयव मधुमयी तथा धर-अधर स्वर्य ही है। उर्वरी समझती है --- "रक्त कुण्ड से अधिक उज्ज्वल होती है और अधिक जानी भी" यही कि कुण्ड तोखी है --- तुम दोनों का विचारकरती है --- सद् अस्त में शैव कहती है परन्तु मन अर्थात् शीर्षित बुद्धय-अनुभव करता है। कुण्ड निर्वीच प्रसिमाओं की निर्माता है, बुद्धय उसे रक्त संकलन के कर अनुप्राप्ति करता है अतः रक्त देखें है। यह पुरखा को अपने सम्बोधन से अभिभूत कर आदेश देती है:-

पदो रक्त की भाषा को, विचारों करो इस लिपि की
यह भाषा यह लिपि मानस की कभी न बदलयेगी।

फिर कैसा वाप और कैसा पुण्य? न वाप न पुण्य।

हाँ, पुरखा भी वह, उर्वरी स्वर की तो दुरराता है:- "रक्त कुण्ड से अधिक उज्ज्वल, अधिक समझती तो किन्तु यह कहती है कि केवल रक्त की भाषा हमें उस दिव्यता की ओर नहीं ले जा सकती जो अत्यन्त है, एक है, पूर्ण है। रक्त और रक्त का आनन्द ही तो सब कुछ नहीं है। इस से भी ऊपर एक और स्तर है जो प्रमाणीत है, रक्षणीत है, जो देह धर्म से ऊपर अन्तरात्मा के स्तर तक उठता चला जाता है:-

जहाँ स्व की लिपि अल्प की उच्च आँका कहती है।

मनस्वेता पुरखा उर्वरी के देह धर्म से ऊपर उठाओर उठता गया। देह केवल आत्मा-वैतरात्मा के बीच की छार्च है, इसे अतिश्रुति कर ही आत्मा के मुख्य लक्ष्यके लोक को जाना जा सकता है। एक ऐसी स्थिति तक उठ जाना ही मनुष्य धर्म है जहाँ प्रत्येक पुरुष शिव है और प्रत्येक पुनर्जिमी नारी शक्ति वायिनी भवानी। यही वाक्य का सत्य है। इस पर उर्वरी निरन्तर हो गई।

परन्तु उर्वरी रवीन्द्रे धर्म की बात। तुम क्यों भी रहो, मन से या मन से, किन्तु अपने यहाँ पर यही भाँति मेरा कर्तव्य रहने दो, अपने आर्त्तिमन वाद में उसे रहो --- कर सीकृत वादो। अर्थात् पर तत्त्व ऊँच पुष्पन अँकित करो। यही नहीं, काम क्षुब्धता उर्वरी पुरखा को काम क्रिया की प्रक्रिया भी समझाने लगी:

किन्तु, आह। यों नहीं, तनिक तो शिथिल करो बाँधों को,
निष्पेक्षित मत करो, यद्यपि इस मधु निष्पेक्ष में भी,
मर्यादित है शक्ति और आनन्द एक वाक्य है।

और फिर योनी की प्रकृति सुखी के सौन्दर्य वाग में लीन हो जाती है। यह

यह प्रकृति सौन्दर्य अब दर्शन की भाव भूमि बन गया जहाँ पर योग-भोग-वैराग्य रात्रि दिवा के आकाश में दर्शनीय है। समय विभाजित है/निमित्त, यत्न, विफल भाव संवत्सरकाल के महाकाश में भूल रहे हैं। और पुरुषवा यत्न काल गति का वर्तमान भूत भविष्य में कोई ठहराव नहीं देखते। काल अनुतिष्ठत है, शास्त्र है। सभी काल के आधीन है। यत्न काल जोड़ पर पुरुषवा उर्वशी दोनों ही सज्जत हैं। महाशून्य में जो अव्यक्त है उस पर विज्ञाओं और काल का प्रभाव नहीं पड़ता। उसी अव्यक्त का प्रसार कुतल वातावरण गमन है। जहाँ अव्यक्त निराकार विराट् सत् समस्त सरसक धारियों में जाग्रत है। उसी दार्शनिक चिन्तन में पुरुषवा और उर्वशी अर्द्ध, मामी संघर्ष करने लगते हैं। और उर्वशी ने सद्य ही स्वीकार कर लिया----- तुम मेरे प्राणेश, मन-मूल, सहा, मित्र, सहचर हो।

फिर यही ज्ञान चर्चा! ईश्वरत्व, माया, भुक्ति, मोक्ष, राग-विराग, अज्ञान, कर्म, तर्क, चेतना, अन्तरचेतना, आत्मा, जिव, परिवर्तन, ज्येष्ठ, काल जोड़, भुल-दोष, सत्-चित्त, सत् - असत्, काम, यम, नियम, संयम, वैद, धर्म और ईश्वरों, मिथ्यामकाम सत्य और मोक्ष आदि ऐसे अनेक विषयों पर चिन्तन है। यह कवि का अपना प्रदेय है---अपनी जिज्ञासा है, अपनी शंका और अपना समाधान है। कवि पर इन विविध विषयों के अध्ययन चिन्तन में, अनेक दर्शन-य ज्येष्ठ, अव्यक्त, आदि, कबीर, शेक्सपीयर, गीता, प्रसाद, रवीन्द्र, अरविन्द, प्रमोद, रसिक, न जाने कितने प्रभावों का योग है। इस में शैव, शाक्त, आगम, तंत्र सभी दर्शनों की ओर होश किया गया है। यही कारण है कि यह अंक ही कामाध्यात्म की व्याख्या बन गया है।

अंक 4:- नाटकीय निर्देश:

महर्षिधन का आगम। महर्षि की परनी सुकन्या उर्वशी के मय जात पुत्र के को लिये लड़ी है और चित्र लेटा प्रवेश कर वातावरण करती है।

कवि और प्रेक्षक-वाचक की दृष्टि में यह अंक नाटकीय संरचना में एक महत्वपूर्ण लड़ी है। समस्त पुरुषवा उर्वशी आकाशमय यत्नी अंक हैं सन्दर्भों में निहित है।

अर्द्ध अंक का प्रारम्भ महर्षि धन के आगम में हुआ है। उ महर्षि - परनी सुकन्या की मोह में उर्वशी का मय जात विशु है। चित्र लेटा के आने से विशु की शिष्टा गमन क हो गई। क्यों न ही वाचकी उर्वशी और पु ग्यानी पुरुषवा का पुत्र चित्र लेटा अपारा के आगमन पर वाचकी ध्यानि से जाग उठे तो आश्चर्य ही क्या ? यत्न नहीं यत्न विशु का क्या भविष्य है---उर्वशी का चक्रवर्ती राजा होना

या स्वर्ग का देवता, जान जाये।

जिस समय आयु का जन्म हुआ था राजा पुलस्त्य राज मयन में बस कर रहे थे और उर्वशी अपने मय प्राप्त शिशु को सुकन्या के पास छोड़ कर राज मयन में चली गई थी। कारण था, उर्वशी को भरत मुनि का साथ कि वह पुत्र कथवा पति को मैं से किसी एक को ही प्राप्त कर सकती है। ऐसे पिता-पुत्र मिलें मे उर्वशी पुत्र के सुखों से वंचित हो स्वर्ग लौट पायेगी। इस साथ के उर के कारण ही उर्वशी ने आयु के जन्म का समाचार पुलस्त्य को दिया ही नहीं तथा अपने पुत्र को सुकन्या के कंक वामन-बोका में छोड़ दिया।

महर्षि अथर्व और सुकन्या सम्बन्ध की कथा की रोचक है। महर्षि सप्तम्या इस थे। सुकन्या राजा सप्तमि की पुत्री थी। प्रथम काल में महर्षि अथर्व के आश्रम पर पहुँचे। सुकन्या ने कंकवैद्य वामनीक आश्रित महर्षि के भेषों की चमक से प्रभावित अथर्व में ही उनके वस्त्र छींच लिये। महर्षि क्रोध हो उठे किन्तु जब उन्होंने सुकन्या के सौम्य स्वर एवं सौम्य सौन्दर्य को देखा तो उनकी आँखों में क्रोध के स्थान पर स्नेह का सारथ्य फैल गया। बोले--- लीज्ये। मुझे वरण करोगी? अथर्वश्रिता अंकाङ्गुली ली निहारती हुई खड़ी रही। हवि ने पुनः कहा, मैं तुम्हारे लिये तब जब से पुनः जीवन प्रवण बनूँगा। तुम साक्षात् सप्तम्या-वत् के समान हो। तुम स्वर्ग सिद्ध बन कर आर्ष हो गयी अथर्व हस्ता है। सुकन्या ने हवि का वरण कर लिया।

जब वह उर्वशी आश्रम में प्रसूति के लिये आई थी तब महर्षि अथर्व ने बड़ी ममता मयी दृष्टि से देह नारी छर्म की महत्ता मातृत्व में ही व्यक्तार्थ थी बोली कि:-

नारी ही वह महा तैत्ति जिस पर अद्वय से चल कर
मये मनुज मय प्राप्त सुख जन में आते रहते हैं।

उसी क्षण उर्वशी ने प्रवेश किया और तीनों नारियों में परस्पर वाग्-विवाद होने लगा। आयु की आँखें सौम्यगीय पिता के अनुग्रह हैं किन्तु जब मनुज रत्न की माँ उर्वशी मनुजोत्पन्न नहीं है। वह आयु की दृष्टि ही अपनी माँ उर्वशी पर से नहीं हटती। उर्वशी स्वयं अपने शिशु को गोले लगा कर प्रेमीय के मय का भोग मानती है।

किन्तु उर्वशी के मन में आकाश के प्रति आर्षका है। कल क्या हो गा? कल राजा पुलस्त्य का यह पूर्व हो गा, वल भर का भी जीवन राजा नहीं पायेगा और उनका यह सब पलायन बन जाती हो गा। वह दोनों की संयोजित की नहीं कर सकती। भरत का कैसा दूर साथ है।

पुनः और पति नहीं, पुनः या केवल पति पाओगी।

किसमा बड़ा व्यंग है नारी पर। कौन ऐसी अभागिनी नारी हो गी जो पति के लिये पुत्र अथवा पुत्र के लिये पति का त्याग करे। ऐसी दारुण और दुःसह स्थिति है। किन्तु सुकन्या ने आयु का वातन किया है, यही इसकी वास्तविक माँ है, उर्वशी तो मात्र गर्भ भार होने वाली ही रही। "भूत यवन, कैवल पुष्पन मातुल्य नहीं है"। अन्ततः पुत्र के भविष्य की कामना के लिये स्वयं उर्वशी दुःखठाने के लिये तत्पर है----उसे तो यह भोगना ही है। अतः सुकन्या जब उचित अवसर समझ आयु को उसके पिता के पास भेज दे। उर्वशी को तो पुत्र और पति दोनों का ही सुख त्यागना पड़ेगा। साथ प्रसन्न अप्सरा नारी के लिये मुनि के नियमों को, सुख दुःख दोनों को ही स्वीकारना पड़ेगा। उधर सुकन्या भी आयु को इस अन्व अवस्था में राज भवन नहीं भेजना चाहती, पता नहीं, राज-महिषी औरीनरी कैसा व्यवहार करें। विमातुल्य का भाव सुरक्षित प्रतीत नहीं होता। साथ ही सुकन्या उर्वशी को आश्चर्य करती है कि जब आयु की चिन्ता न करे। आयु जीवन की ज्योति बना रहेगा। बाल सुलभ चेष्टाओं से उन्हें आनन्दित ही करेगा---कालान्तर में हवि के साथ यज्ञवेदी पर मंत्र पाठी जानेगा। तथा शास्त्र में निरुपगत किसीर होने पर ही अपने पिता के पास भेजा जायेगा। तब तक उर्वशी निरिचिन्त ही स्वामी सहवास कर सकती है।

अंक : ४
मादय निर्देश

पुलक्या उठा राज भवन। राज दरबार में राजा पुलक्या, उर्वशी, महामातय, परिचारक, राज वरद्विज पण्डित, राज - ज्योतिषी एवं अन्य समासद यथा स्थान निवृत्त हैं। एक मंजीर मौन छाया हुआ है। मौन भंग करते हैं महामातय। नाटकीय दृष्टि से सर्वाधिक घटनायें इसी अंक में घटित हुई हैं। यह अंक घटना प्रधान कहा जा सकता है।

राजा पुलक्या की राज-सभा के मंजीर मौन की महामातय चुंग करते हुये पूछते हैं कि आज महाराज की आँखों में चिन्ताकुलता दृष्टिगत हो रही है और सभा का वातावरण भी शान्त और निरन्ध्र प्रतीत हो रहा है। ऐसा क्यों ?

उत्तर में राजा पुलक्या कोते कि उन्हीं ने एक विशिष्ट स्वप्न देखा है---मेरा सारे प्रतिष्ठानपुर में चल रहा है। मौन कहीं से गया छट-कुछ लाये हैं, उसे राज प्रसाद में आरोपित कर दिया गया है। तब उसे लौट रहे हैं, मैं भी क्षीर घट लिये उसे लौटने को छोड़ा हूँ। कोई मेरी ओर नहीं देखता। मैं हाथी पर सदा प्रतिष्ठानपुर के बाहर सबसे उपवन में पहुँच गया हूँ। मुझे वहाँ पकान्त में कोई का

मेरा मय भी भाग गया है। मैं ठीक उस स्थल के समीप हूँ जहाँ महर्षि ज्येष्ठ का आश्रम है।

ज्येष्ठनाथ का नाम सुनते ही पार्श्व में बैठी उर्करी अव्यवस्थित हो गई। उस सब दासी से पानी लदे बर्तनों का आवाज करने लगी।

राजा पुरुषोत्तम ने फिर स्वप्न की वृत्ति को बढ़ाया---उस आश्रम में कुशल भूमि विवरण कर रहे थे, मयूर सज्जित किनारे लगे थे, उन्हीं के पास एक वीर मय युद्धक क्षुब्ध की प्रशंसा बढ़ा रहा था। वह वधि पुरुष सज्जित और वीर सेव धारी था। उसके पवित्र नेत्रों ने मुझे आकर्षित किया और जैसे ही मैं उस का ध्यान के लिये बढ़ा कि स्वप्न भंग हो गया। फिर वहाँ कुछ नहीं था। किन्तु वह वीर आत्मक जीवन था।

राज्य ज्योतिषी विजयमना ने मन्त्रा कर के बताया कि स्वप्न कलाकेस के अनुसार राजा पुरुषोत्तम की कुशली में प्रसन्नता योग केन्द्रीभूत है---= प्राण दशा में शनि का प्रवेश और शुभ में मंगल का होना राजा के मन्यास को पृष्ठ करता है। वे आज सायं तक सुवराज पद पर अभिषेक कर प्रसन्न हो जायेंगे।

उसी समय जन-सापसी सुकन्या का आयु के साथ प्रवेशद्वार हुआ। महर्षि ज्येष्ठ की कर्तव्यशील भाविनी सुकन्या का दर्शन ही जैसे स्वप्न की साक्षात्ता की सुचना है। सुकन्या ने कहा, उर्करी/आज तक वधि का आदेश आयु की आश्रम में रहने देने का था। आज ही उन्हीं ने आदेश दिया कि आयु को राजपुत्र में माता - पिता के पास पहुँचा दो। उस की पूर्व - सुचना का कोई समय ही नहीं था। सोचकर वधि पूर्व जिस व मन्त्रालय शिशु को लाप कर पुनः लौट आई थीं उसे व आज लौटाने निकल गईं।

राजा पुरुषोत्तम पुरुष ज्ञान होने से वधि उद्विग्न विवश हो उठे। दान - दक्षिण दक्षिणा पुरुष आदि के लिये उनके कौशल सुन गये। उर्करी ने उन्हें बताया कि लौकिक सर्व पूर्व दृष्टिगत वधि में वह राजा लगे हुए थे सभी उस ने महाराज के तेज पूर्व की जन्म दिया था, किन्तु कुछ विशेष कारण से (भरत शाय) उसे गोपन रक्खा था। आज वह सब कहनेका समय नहीं है। इतना व कह कर सहसा उर्करी अन्तर्धान हो गई।

सुकन्या ने राजा पुरुषोत्तम की उर्करी के अन्तर्धान होने की तथा कारण स्वप्न में भरत शाय की पूर्व कथा सुना कर कहा कि महाराज, न तो आप झूठ बोलेंगे और न ही परमात्मता करें, उर्करी सब के लिये खली गई है। पुरुषोत्तम कर पीछे पूर्ण अर्ध देवी के प्रपंच की सत्यता न कर सका। वे क्षुब्ध मान संधान का देव लौकिक से उर्करी की वापिस लाने का संकल्प करने लगे। पुनः सागर मंजु हो गा। देवी और मानवों का झूठ ही गा, पर उर्करी की लाने के लिये पुरुषोत्तम व्यग्र हैं।

बालू का झील और विकास: वैदिक वाङ्-मय

बहु क्षेत्र में पुस्तक - उर्वरी
आक्यान

:- उर्वरी - पुस्तक की प्रथम कथा का मूल
झील समुद्र है। यह आक्यान समुद्र के द
बल्ले मज्जा के 95 में पुस्त में 16 भागों में
वर्णित है। ये मज्जा बल्ले मज्जा

क्यों कि उन से और उर्वरी का अर्थ का निर्माण हो रहा है। इन मज्जा
में एक सम्पूर्ण बीज का बीज की मज्जा की आक्यान सम्पूर्ण आक्यान में
मिलती है। समुद्र में उर्वरी के पुस्त से मिलता, धियोम, पुस्त का
आक्यान तथा उर्वरी का यह आदि प्रतीक वर्णित हैं। इस प्रतीक में अन्तरा उर्वरी
राजा पुस्त से मिलन हो कर देव ताक की प्रथम करती दुर्ग प्रमाण की मज्जा
अर्थात् पुस्त से इसके मिलने का पुस्तानुमान कर लिया गया है।

उर्वरी - पुस्त के मिलन का मज्जा में वर्णित ऐसी कथा है कि पुस्त की मज्जा
जिन का परिणाम हो कर पुस्त-पुस्त मज्जा था जो उर्वरी के प्रमाणपूर्ण मान अर्थात्
पुस्त की रचना के पुस्त मज्जा का वाक्य है। पुस्त ने इसी कारणवश से
जीतने की चेष्टा की है। यह मनोभाव समुद्र के पुस्त में उर्वरी का मज्जा हो कर
राजा वैजाना सम्पूर्ण आक्यान में उर्वरी ने पुस्त से परिणम की तीन शक्तें
रखी हैं कि:- दिन में पुस्त केवल तीन बार ही देव आतिथ्य कर सकती है,
किन्तु देवी सम्पत्ति के बिना सम्पन्न नहीं, कि ये केवल समुद्रिका की का मज्जा
की कर मज्जा और यह कि मैं तुम्हें कभी भीतपूर्ण मज्जा न देवूँगी--- यही पुस्तों का
का मज्जा के प्रति उर्वरी आक्यान है। सम्पूर्ण की कृति सम्पूर्णानुसार यह
सौकर्य हो ही नहीं हो मज्जा। उर्वरी अन्तरा प्रतीक को चली गई। सम्पूर्णों
आक्यान में ही पुस्त के देव, उर्वरी के आक्यान और पुस्त की पुस्त-
की सम्पूर्ण करने पर पुस्त के बीज और अब पर होट पड़ी। निर्माण
के पुस्त - निर्माण पुस्त के अर्थ से कर मिलने की है कि सम्पूर्णानुसार
पुस्त - प्रमाण में उर्वरी ने इसे मज्जा देव लिया और राजा का अन्तरा पर
अन्तरा सम्पन्न हो गया। इसी पुस्त से पुस्त पुस्त उर्वरी को मज्जा की
मिलने के बाद करता है। यह उर्वरी की पुस्त की मज्जा, निर्माण, आदि विषयों
से सम्पूर्ण कर मिलने करता है:-

इसे काये मज्जा सम्पूर्णों के वर्णित मज्जा सम्पूर्णों के
म मज्जा सम्पूर्णों के सम्पूर्णों के सम्पूर्णों के सम्पूर्णों के

72 10-95-1

:- सम्पूर्ण आक्यान

होरे गद्य क ही उर्वशी के लिये निर्दय-वृद्ध सम्बोधन है। "ओ वृद्ध हीन गुम्हरी (उर्वशी)! अपनी दुष्कामनाओं को तनिक दूर ही रखे दूर रखी, जाओ हम वाताताप करें, हमारे बदगार यदि उन रहे रह गये तो मावी जीवन में वे उन्हें कोई इन्जाम नहीं देंगे। नाटक कार इन्जाम ने भी अपने नाटक House of Dolls

में नोरा (Nora) और हेल्मर (Helmer) के सम्वाद में You and I have much to say, to one another इसी इति शक्ति को प्रस्तुत किया है — यद्यपि कृपायसे नु. ।

समाहित, अहीर और माधना मुख्य उर्वशी। क्या उत्तर है? पुरखा के व हम वाताताप से भी उनका क्या भला हो सकता है? पुरखा ने अपने वरिष्ठ काम में के वचन - मैं का अवराध किया है और यदि उर्वशी प्रथम सम्बोधन के समान वृत्त अथवा वायु के समान दुष्कामना हो जाते तो पुरखा का वह वाता-भाव क्यों? अतः पुरखा का हम पर अब कोई अधिकार नहीं। वह खीर नुह भीट जाये -----

किन्ता बाधा कृपा तजार्ह इन्द्रनिपुण माधप्रियेव

पुरखः पुन रत्नं वरेदि दुरायना जातवदायम रिम ।

10-95-2

हीर, विनय और दुःखी पुरखा ने पुनः क्षमा माधना करते हुये अपनी अज्ञाय अतमर्था इन्द्र कीविक कि उसके सुधीर से ^{अतः} वे जान ही नहीं निकलते जो शत्रुओं के वैभव और वशुधम को जीतने की क्षमता रखते थे। पुरखा अब क्षीन शक्ति का चरित्र-चरित्र मात्र रह गया है। वराहम हीन, प्रमाद मुख्य और निरलेख राजा में शत्रुओं को भयाङ्कान्त करने की क्षमता कहां है, वह तो मन्त्रियों की क्षमता पर वृद्धि कृति हो कर पिछा और स्वाधुन है:-

इम रिम ^{अथवा} इन्द्रनिपुण गोवा शतता न रीदि

अहीरे इती वि वरिदुम्हान्नारा मनायुं विन्तयन्तु धुनेयः

10-95-3

त्रिफिथ मन्त्रोदय ने इस मंत्र का अर्थ करते हुये लिखा है उर्वशी, तु मुझ से तीर की शक्ति अथवा अघ-शक्ति से दूरस्थ हो गई, कायर मन्त्रियों ने मेरी के समान स्वयं क कर मेरी की विन्ता और रक्षा में हमें बाधु सन्धाने निर्दय पुरखा को वरिष्ठ चरित्राशीत्यन्त विदुषः प्रकाश में नया दिहा कर जन लिखा। ?

६. Ye then wentest from me with the speed of an arrow or a racer
The cowardly Gaudharvas deluded us. They bleated like a lamb
to make us think that one of the Pets was in pain or danger
and then by a flash of feticious lightening made me visible to
thee in my nakedness.

Griffith: Hymns of Rigveda vol II.

Page 520 Fornali.

दुखसा की तिसरी खेतीय तिथि है, मावनामय जाहोश, अपनी ही चानि,
यह भी उर्वशी केही दुखसा अपसरा के तिथीय की। दमिह और मुन्य पुर्ण वातना
को मरु कामना, उस में हसन कर ली है मरु। उर्वशी को दुखसा की चिन्हा
वाली घर तथा उमरु जाई। चिन्हा नाम से यह बोली:-

सा क्यु उर्वशी उमरुसराय लय उवो यदि चिन्हायिन्नुकाय
काले न लो चिन्हायिन्नुकाय नरु रमिधिया कालेन ।

10-95-4

त्रिः लय मावनामय रमिधिया कालेनोत रम मेकयत्ये पुनाति
दुखसा उवो से कालेनोत राका मे वीर तमय रातवा साः

10-95-5

सम्प्रदायः उर्वशी की ललितार्थ --- अम्य अपसराये --- भी उर्वशी उर्वशीय की मरु होंगी
उर्वशी। उर्वशी उर्वशीयति उर्वशीय कर उर्वशीयति चिन्हा नाम से उर्वशी ने उर्वशीय उर्वशीय
उर्वशीय रमिधिया के लिये अपने लिये ही यह उर्वशी अम्य दुखसा उर्वशीय रमिधिया का
प्रयोग किया है --- यह उर्वशी उर्वशीय मुह रमिधिया कर दुखसा के साथ रही,
उर्वशीयति उर्वशीय अम्य से रमिधिया करती मुह दुखसा की मरु पुर्ण पुर्ण समर्पित कर
उर्वशीय दिवस में लीय वात के काम-मुह की भीना है और ऐसे वीर तम धारी की
अपना कालेन लीय कर यह अम्य मावना भी रही है। "यह अम्य दुखसा वात
सर्वनाम काहे उर्वशी की ललितार्थ का वाचक हो है या यौन-जन्त वातना के
प्रतीक मरुस विदु की ओर ललित, किन्तु इस उर्वशीयत मनीमावाभिन्नायि की
निर्णय ललितार्थ से जावेचित कर प्रस्तुत करना उर्वशी के लिये ही सम्भव था।

दुखसा ने भी उर्वशी की ललितार्थ की ललितार्थ किया होगा और उर्वशी ललितार्थ
की प्रतीक कालेन मुह उर्वशी की इन से कालेन अधिक मेकयत्ये उर्वशीय कर कर यह कालेन
की है कि ललितार्थ उर्वशीय कर उर्वशीय मनीय प्रतीक से ललितार्थ की ललितार्थ :-

सा ललितार्थः, मेनिः दुखसायिन्नुकाय पुनाति चरम्युः
सा ललितार्थ ललितार्थ न लेनुः ललितार्थ ललितार्थ न लेनुः ।

10-95-6

इस मन्त्र से निम्नलिखित पूर्वक नहीं उर्वशी का ललितार्थ कि अपसरायों की ललितार्थ
सम्प्रदायों यह कालेन किम का है। उर्वशी के उर्वशीय ललितार्थ ललितार्थ ने ललितार्थ
का ललितार्थ ललितार्थ किया है --- दुखसा, उर्वशी यह कर भी नहीं पाये है कि
उर्वशी के ललितार्थ ललितार्थ की ललितार्थ में ललितार्थ, मेनि, दुखसायि, चरम्यु, ललितार्थ
ललितार्थ अपसरायों का ललितार्थ ललितार्थ भी नहीं था।^१ कि उर्वशी ने ललितार्थ की दुखसा
के ललितार्थ की ललितार्थ कर ललितार्थ ने भी दुखसा कर ललितार्थ कर ललितार्थ
ललितार्थ प्रदान किया ललितार्थ यह भी ललितार्थ कि ललितार्थ ललितार्थ ने दुखसा के
ललितार्थ ललितार्थ पर ललितार्थ ललितार्थ कर ललितार्थ ललितार्थ किया, ललितार्थ ललितार्थ के
ललितार्थ ललितार्थ ने ललितार्थ ललितार्थ में ललितार्थ कर ललितार्थ किया था, किन्तु दुखसा
ने उर्वशी ल ललितार्थ की ललितार्थ ललितार्थ पर ललितार्थ ललितार्थ ललितार्थ ललितार्थ की ललितार्थ
ललितार्थ ललितार्थ से ललितार्थ ललितार्थ कालेन मुह ललितार्थ अपसरायों की ललितार्थ के ललितार्थ
ने ललितार्थ ललितार्थ न ललितार्थ ललितार्थ :-

सर्वात्म्यं यत्तु नाम आत्मन्मा इत्येवमर्थम् ॥ स्वयंभूतः
 महेवरायै वृत्तं रत्नमालायां नमः इत्येतत् देवाः
 तथा यथा च जगत्परायै नमः इत्येतत् आत्मन्मा इत्येव
 अथ तम महेवरायै नमः इत्येतत् आत्मन्मा इत्येव

10-95-7,8

वृत्तं के आत्मन्मा - जगत्परायै देव के लिये उर्वरी ने अप्सराओं
 के आत्मन्मा जगत्परायै की चर्चा की थी जो सत्यः अप्सरा-जगत्परायै का स्वयं न
 हो कर इत्येतत् तम ने वृत्तं पर दोषारोपण था कि वृत्तं मर्त्य मान्यो होकर
 निर्मलम वृत्त अप्सराओं को अपने आत्मन्मा ने जातिंगम-जाह्नव करने को उन्मत्त^{आत्मन्मा}
 था और अप्सरायें तमके आह्वय से मुक्त हो कर उसी प्रकार वृत्तमान करती थीं
 जैसे भव चक्रि मृगी अध्या रथ-सर्प वा कर चोके पड़ने वाले अथः उर्वरी के लिये
 यह भी सत्य था। यदि नामक का स्वयंभूत देवाड-मन्माओं के साथ उनकी वृत्त
 मुक्त रहे तो वे अप्सरायें भी वृत्तमियों की भाँति वृत्त मिला कर अध्या अर्थों
 की भाँति तम-जगत्परायै और इत्येतत् तम वृत्तमि कर सकती थी:-

यदावृत्तं जगत्परायै निमृत्तं वृत्तमिः इत्येव वृत्तः की
 ता वातायै नमः इत्येतत् आत्मन्मा इत्येव आत्मन्मा इत्येव

10-95-9

वे अप्सरायें निर्मल वृत्तमियों La Belle dam Sans Mesi 2A1 थी
 देवायै अपने जगत्परायै सौन्दर्य से मर्त्य की अभिज्ञ कर उसे जाह्नव करतीं और
 उसे वैयन्मि तथा नामक वृत्त बना कर ही जीवती थीं। वृत्तं ऐसी ही अप्सरा
 वृत्तमि की वृत्त के जेठा और वृत्त-वृत्तमान वाहक तमके जो उन्मत्त तमके तथा तथा
 एक एक वृत्त पर का उन्मत्त थी तम :-

विदुःस्वयन्मायै वृत्तमिः इत्येव वृत्तमिः इत्येव
 जगत्परायै जगत्परायै वृत्तमिः इत्येव वृत्तमिः इत्येव

10-95-10

उर्वरी वृत्तं के वर की विदुःस्वयन्मा था थी, उर्वरी ने ही उसे मनीषायै वृत्त
 दिया है, वृत्त-जगत्परायै से वृत्त वृत्त की दिया है।² जिस ने वृत्तं की वृत्त वृत्त
 वृत्तान दिया है। उर्वरी वृत्तमि वृत्त वृत्त, उस के वृत्तों में उन्मत्त है, उस के
 वृत्त वृत्त तम तम वृत्त ही गले और उस ने सकल ही वृत्त:-

1:- जगत्परायै मनीषायै वृत्त अध्या वृत्त-जगत्परायै की वृत्तमि वृत्त
 मान्यो हैं।

प्रश्नका उत्तर जोषी व्याप वि संस्थाप तत्पुत्रवो य जीवः
अशर्म रका किहो मीयममडम्पु न जाहोः किमपुत्रवति।

10-95-11

पुत्रवता का जन्म ही अशर्म की रक्षा के लिये हुआ था और उसी पुत्रवता ने
उत्पत्ति में अपने लैजु को स्थापित किया था, किन्तु उत्पत्ति के साथ पुत्रवता की
जो जन्म जन्मक धीवताका निवारण कहाँ हो सका? इतिहास पुत्रवता ने जन्म में
किया, तब क्या वह मिलनापुर मिलान का क्या ब्रह्म? उत्पत्ति पुत्रवता का जन्म लैजु
जन्म जन्म अपने पिता के नेतृत्व को दूर करेगा? क्या वह ही हम माता-पिता
की विचारों की प्रतीति जन्म प्रत्यक्षित करने तक ब्रह्म रहेगा?

उदा सुनु: पितरै ज्ञात दत्तापुत्रतादुनकर्मविदधानम्
को जन्मती सन्मता वि सुयोदय यदुग्म दत्तोरैव दीवत्त।

10-95-12

प्रश्नार्थ महीनय ने हमारे जन्म का अर्थ किया है अब तक उत्पत्ति के साथ-
समय जीवित हैं और हमने ने उन के सामर्थ्य जीवन की रक्षामुक्ति के कर
पारिवारिक जन्म लैजु को सुरक्षित रखा है, तब जन्म लैजु ही पुत्रवता
उत्पत्ति का पुत्र है। उत्पत्ति में पुत्रवता ने उत्पत्ति में पुत्र, क्या हमारी संतति हमारा
पुनर्निर्माण न करायेंगी? उत्पत्ति समाप्ति की कर सुकता होती---उत्पत्ति तीव्र उत्तर
मिमा:

इति ज्ञापि ज्ञेयते उनु पञ्चम ग्रन्थ दाह्ये सिवाये

इतने विन्या धरते जन्म करे उत्पत्ति नहि दूर मायः 10-95-13

(मैं अपने रोते हुए पुत्र को सम्मनना दूँगी और वह भी अपनी माँ की आचना
जान दुःख से कातर नहीं होगा। वह सुन्दारा पुत्रवता का है अतः सर्व
तन्त्रे लीन दूँगी। तुम ने और सुकता की है, घर लौट जाओ, तुम मुझे
नही पा सकेगे)

पुत्रवता का यह लोचना कि पुत्र जन्म के पुनः वह उत्पत्ति मिति सुखी सामर्थ्य
जीवन व्यतीत कर सकेगा यह सुकता पूर्ण विचार था। उत्पत्ति के स्पष्ट सब नकार
से पुत्रवता निराश हो गया। तथा उत्पत्ति और जन्म जन्मों से उस में जन्म-
जन्म की भावना प्रकाश हो रही:-

पुत्रवो अद्य प्रथमेनापुत्रवराजतं वरमां सन्मता हं

अशर्मोत निदिशन्तेउत्पत्तिं पुत्रा रम्यातां अयुः 10-95-14

पुत्रवता की यह दुःख क्षीणता ही उत्पत्ति कायेगी कि वह अपने घर की उत्पत्ति
कसता था कि पुनः उत्पत्ति की प्रार्थना कर लेगा। यह वह ही पुत्र कायेगी तो
उस जन्म से क्या विचार करने से क्या वह निजल सक्ता है? पुत्रवता में निराशा

11- GRIFFITH: So long as father-in-law and mother-in-law who sanctify
the Union live and main in their household fire ---
Sri Aurobindo Kaudir Annual Page 50
Quoted

(Unrequited love)

आत्म इन्द्र के लिये प्रेम करने के और प्रायः प्रत्येक प्रजा की के जीवन में भावना लक्षित भी होती है कि दो में से कोई एक अपना दोनों की प्राणी आत्म प्राप्त करने की का निर्णय करते हैं, दूसरा ने भी यही किया। दूसरा यकीन है दूसरा को जाने, वह निर्णय की मृत्यु देवी की नींव में फिर विश्राम करके अपना भगवान् मैथिली इसे का हैं। यकीन दूसरा के मत यकीन के भगवान् की होती: वह प्रिया-प्रेम का ऐसा विद्वान् न देव सखी की, यकीन दूसरा की आत्म इन्द्र के निर्णय हैं विष्णु कागा बाबा हैं---रघु के गौम-प्रेम की को काका का की रहने वाली अन्तरा मर्त्य मानस के साथ धर्म से सहानुभूति को रखती है पर उसके मन में निर्णय बदलता की प्रकृत भावना बनी है। १

दूसरी का मृग मा प्रपत्नी मा रवा दुकाती जहियाल न ही व नये प्रेमाभि सख्यावि लनि साता दुकाता दुकायेला।

10-95-15

यकीन ने कहा:- दूसरा मरी मरी, तुम्हारा निवास न रहे, भयंकर मैथिली तुम्हें न लक्षित करें। प्रिया का लोभ्य स्पर्श नहीं होता, उन के वृद्ध संगीतों के वृद्ध (प्रा) होते हैं जो काका का दूसरी पत्नी की दूसरा का कथन नामा है। २ उत्तर में यकीन ने पुनः कहा:- मैं परितर्कित रूप में मर्त्य दूसरी के संग विश्व विहार करती रही, मैं ने तुम्हारे (दूसरा के) मानिक्य में चार वर्ष तक मानिक्य रात्रियाँ व्यतीत की है, मैं प्रति दिन केवल एक बार का विहित पूत का सेवन करती थी, मैं पूर्ण संतुष्ट थी, अब जा रही हूँ:-

यत्किं स्वाद्यं मर्त्येयवर्जं रात्रिः शरद्वृक्षतः

प्रायः लोभं सद्दत्तं शरदां तादेवेदं तातु वाचा चरामि।

10-95-16

1. Vedic India P 345.

W.I

The lure of Paradise is too much for the fickle female. She leaves her mortal love and her last words (verse 15) are cruel and cynical though not unsympathetic.

2. B.D. Kosambi - Myth and Reality. P. 52

पुलक्या ने एक बार फिर देखा की कि उर्वशी उस केतकीय लौट जाये, उर्वशी की प्रतीक्षा करते हुए पुलक्या बोले:- मैं अगौल वासिनी वासिनी उर्वशी की अपने मित्र की रक्षा चाहता हूँ। हमारे सहस्रों के समस्त मन तुम्हें अवधारण करने हैं, लौट जाओ। उर्वशी, मेरा प्रिय (तुम्हारे पिता) दाह हो रहा है।

अन्तर्निष्ठ रक्षो विमानोऽसु विमान्युर्वशी वसिष्ठः

उप रवा वसिष्ठः सुकृतं सिद्धाग्निं वर्तय हृदयं तप्यते मे।

10-95-17

उर्वशी के पास उत्तर की क्या था? उस ने देव गति को ही उत्तर बना दिया और कहा:- हे देवी! प्रेक्षा ने तुम से शपथ की क्या था कि तुम निरालस ही मृत्युमुख की हुई हो, अब तुम्हारी संज्ञा के देवताओं को हृदिष्ठ है कि हम लुप्त करेंगी, किन्तु फिर भी तुम देव लोक का रक्षण सुई मेरे साथ भोग करो मे।

वसिष्ठ रवा देवाः इमं आहूतं यदे तैः-वसिष्ठं नृपुण्यम्:

प्रजापते देवा-वसिष्ठा मयाति त्वमे वसिष्ठं वसिष्ठम् ।

10-95-18

उपयुक्त 18 वर्णों के माटकीय अध्यात्म का संक्षिप्त निष्कर्ष है कि उर्वशी का अपहरण भी, पुलक्या के पक्षीय नामकी राजा थे। वे दोनों बार लड़ लड़ भोग-विभाज में लड़े लड़ रहे, प्रलय के अतिरेक से पुलक्या नित्येव एवं सामर्थ्य योग हो गये थे। प्रलयनी उर्वशी नामकी प्रेम में लड़ विभोर थी। इस की एक पुत्र हुआ जो जो अपने पिता से दाईं हाथ लड़ दूर रहा। पुत्र के होने पर उर्वशी राजा के पास से लौट ल गई। विष्णु उर्वशी और प्रसिद्ध पुलक्या पियोगी हो गये।

इसके बाद के पुलक्या - उर्वशी के अर्ध प्रलय-प्रसंग की निष्कर्ष-स्वरूप अवसिष्ठ पर 20 विन्दरहित का यह है कि भारतीय इतिहास का अध्ययन करने पर ऐसी प्रलय-कथाओं का सुझाव एवं प्रचलन विमान-कण प्रतीत नहीं होता।¹ अन्तर्गत पुलक्या पुलक्या और अन्तिम्य सुन्दरी अपहरण उर्वशी का मित्र, प्रजापार, विरह और उत्प्रेरण, पुनर्निर्माण, निराशा, और कई अग्रिम लक्षण में प्रलय की कश्चित्तापि की पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न जाति लक्ष्मी उस पुन की सामाजिक सांस्कृतिक परम्परा एवं विचार धाराओं की अभिव्यक्त करने में समर्थ हैं। पुलक्या उर्वशी सम्वाद की उनके प्रलय, मित्र-विरह-उत्प्रेरण एवं पुनर्निर्माण की गाथा है। जिस में उन्होंने ने अन्ततः निवृत्ति की अपना जीवन समर्पित कर दिया और आयु पुन की प्राप्ति द्वारा अपने जीवन की गति को जानने का प्रयास किया है। यह समस्त घटनाक्रम निवृत्ति के विधान में इस पुन की कल्या की समर्पित है।

१. A History of Indian Literature, vol I. P. 383 (Calcutta)

कविगणों, मुनियों और संन्यासियों ने शास्त्र सत्य की खोज में बन्धनों को तोड़ा इन संन्यासियों को सिद्ध किया है और सतपथ ब्राह्मण में सभी सत्य को प्राप्त करने की चेष्टा की गई है।

सतपथ ब्राह्मण में पुरुषा - उर्वशी कथा

अथर्ववेद में पुरुषा - उर्वशी प्रथम सम्पादक संहिता है, सतपथ ब्राह्मण में इसी की व्याख्या है। यह में इस प्रश्न-उत्तर का उत्तर में उत्तमान हुआ है तो दूसरे में पुनर्विचरण की दिशा दी है। सतपथ ब्राह्मण में पुरुषा - उर्वशी की प्रथम कथा 15 मंत्रों में संक्षेपित की गई है जिस में 8 टुकड़ों में 10 वें मंत्रों में अथर्ववेद की ही 8 मंत्रों में संक्षेपित की गई है जिस में 8 टुकड़ों में 10 वें मंत्रों में अथर्ववेद की ही 8 मंत्रों में संक्षेपित की गई है। सतपथ ब्राह्मण की इसी विधि संहिता है। इसे लक्ष्य का सतपथ ब्राह्मण का अनुवाद करते समय Eggling लिखता है:-

The discourse in fifteen verses has been handed down by the Bahusiksha (The Theologian of Rgveda) that her (Purvasi's) heart took prey on him (Purusa).

उत्तमा इति उर्वशी ने दुःखी पुरुषा से कहा:-

"संसार की अन्तिम राति तुम मेरी शिरसा का भोग कर लो मे। उस समय तक तुम्हारी यह तन्तु जन्म प्रलय कर चुकेगी।"

पुरुषा वर्षाविराजित वहां पहुंचे। सम्पूर्ण स्वर्ग रात-प्रातः था। राजा से यजुर्वेद ने कहा 'प्रवेश करो'। राजा के प्रवेश के उपरान्त उर्वशी की भी वहां प्रवेश दिया गया। उर्वशी-उर्वशी-उर्वशी-

उर्वशी ने कहा:- प्रातः कात मन्त्रों का तर देने जायेंगे। अभीष्ट कर मांग लेना।

पुरुषा ने उत्तर दिया:- देख। तुम्हें निश्चित करो कि मैं क्या कर मांगूँ।

प्रति निवेदन किया उर्वशी ने:- राजा, निवेदन करना कि मैं भी आप में ही एक मन्त्र होना चाहता हूँ।

पुरुषा ने ऐसा ही किया। प्रातः कात उसे यह वरदान मिल गया।

मन्त्रों ने पुरुषा की यह अन्तिमवाणी दे कर कहा:- वरदान करते हुए तुम

हम में से एक हो जाओगे।" हर प्राण कर पुत्रता अग्नि स्थानी और आहु पुत्र हो से कर तनीय गृह की ओर चले गये। उकी-मुह विवरण करि दूरे राजा ने गच्छ्यों से प्राण अग्निस्थानी की अरण्य भी में स्थापित कर दिया और पुत्र के साथ अपने गाँव की ओर चले गये। जब पुत्रता पुनः अरण्य में स्थापित लौटे तो पुत्र स्थापित अग्नि स्थानी पुत्र हो चुकी थी। और उस के स्थान पर अक्षय (अग्नि के उत्पन्न) और तनी (स्थानी के उत्पन्न) के दो पुत्र थे। अक्षय एवं तनी की अर्जियों के अर्थ है उत्पन्न अग्नि का पुत्र करते दूरे पुत्रता गच्छ्यों में सम्मिलित हो गये। मानुष से क परिमानुष होने पर उकी की प्राण उन्हें सदा ही गई।

अक्षय प्राण के स्थान काउड में होता गारा पुत्रता, उकी और आहु के नाम से कर आहुति हो गई हैं। पुत्रता प्रति है, उकी घरनी और आहु दोनों के सहाय की सत्तरन।

अक्षयराशि निष्पत्ति । उत्पन्न सीतक्रीडराक्षसा
अक्षयराशिपुत्रस्यपुत्रतापुत्रताति तामभिनिष्पत्ति न
पुत्रता अक्षयपुत्रता अक्षयः पुत्रताः पतिरक्षय दत्त-
पुत्रतापुत्रतापुत्रता अक्षय तदा पुत्रताः / अक्षयपुत्रतापुत्रता
अक्षयपुत्रता है अक्षय तदापुत्रतापुत्रता होति ।

अक्षय प्राणः 3-4-1-22 उक्षय

पुत्रपुत्रता :-

पुत्र और प्राण अक्षय की परिधि से निकल कर यदि हम वेदांग की पुत्र पर अक्षय अक्षय की पुत्रपुत्रता अक्षय बोधायन अक्षय तनी में की उकी विवरण तथा का वर्णन मिलता है। बोधायन अक्षय में उकी की कथा अक्षय प्राण के अनुष की है, किन्तु पुत्रपुत्रता में अक्षय के दो-चार पुत्रों में मूलभूत अक्षय है।

पुत्रपुत्रता में उक्लिष्ट अक्षय विवरण अक्षय में किंचित भिन्नता है। उकी अपने राव यदि पुत्रता के साथ घरनी त्व में रह रही थी। अक्षय उकी-पुत्रता के दाम्पत्य जीवन पर ईर्ष्या से भर उठे। उकी ने अक्षय की आवा की इस पुत्रपुत्रता की पुत्र कर दी। अक्षय ने पुत्रता से उन कर दाम्पत्य जीवन भंग कर दिया। उकी है अक्षय की कर रावा पुत्रता विरही और पुत्रता

1:- पुत्रपुत्रता: 7-1475152 मैक्डोनाल पुत्र अनुवाद

दुःखी मन से उत्तरासु ७० में विवश करने लगे। प्रसन्न करते हुए एक बार उन्होंने
ने अन्धकार-मग्नता तराही में अन्ध अन्धकारों के साथ उर्वशी को बैठा और उस से
उस वापिस लाने का आग्रह किया। उर्वशी ने दुःखी मन से उत्तर दिया:-

"अब तुम मुझे यहाँ न ला सकोगे।" हाँ, हम स्वयं
में मिल सकते हैं।"

सर्वाङ्गुली:-

सर्वाङ्गुली की सर्वाङ्गुली में अन्ध उर्वशी की गर्तों होतीं;
जस में निज धन्य है क्षण के क्षण साथ प्राप्त उर्वशी
को स्वयं-स्वयं करना पड़ा और अत्यन्त लौक में पुनरा
की भावना बनना पड़ा।^१ जैव कथा पूर्ववत् है।

महा लक्ष्मी में उर्वशी जाह्नवाम

राजायन:-

राजायन के काण्ड ७ अध्याय ३६ में पुनरा - उर्वशी की
कथा वर्णित है। निजधन्य की कोष भावना हो कर
उर्वशी का छत्ती पर जा कर पुनरा की बत्ती बनना
पड़ा।

राजायन में पुनरा के जन्म की भी कथा वर्णित है। एक बार शिव और
उमा हरजन में रमण कर रहे थे। स्वयं शिव ली लय धारण किये बैठे हुए थे।
उतः का - निजधन्य का कि जो भी वस में जाये गा यह ली लय में परिणत हो
जाये गा। अर्धम प्रजापति काण्ड ७ अध्याय ३६ में पुनरा निमित्त भोजन हुआ हरजन में
पहुँचा और ली लय बन गया। यह भोजन की शरण में पहुँचा। शिव-उमा की
कृपा से वह एक मास ली और एक मास पुनरा रहता था। एक वह लता लय में
ली ली विवश कर रही थी। लता - वह कुछ उस पर आसक्त हो गया और
कुछ और लता के समान ही पुनरा की उत्पत्ति हुई। लता भिये पुनरा की
ऐसा कहते हैं।^२ सर्वाङ्गुली के पुनरा १०-१३-१४ में पुनरा की ऐन सम्प्राप्ति भी
किया गया है।

उर्वशी विवश क्षणिक में एक बार निज ने उर्वशी से रति-दान की याचना की।
उर्वशी ने निज की याचना पर कोई ध्यान नहीं दिया।

१:- सर्वाङ्गुली: १०-१३

2. B.L. Yadava - A critical study of the sources of Kalidasa Page 65.

एक अन्य विद्वत् ब्रह्मालय में विचरण करती हुई उर्वशी के अर्चुन सौन्दर्य पर रीक कर ब्रह्म ने भी उर्वशी से रति - वान की प्रार्थना की। उर्वशी ने उसे भी टाल दिया। कामाग्निपुत्र ब्रह्म ने एक कुम्भ में धीरे तिलन किया जिस से बलिष्ठ और अमरत्व का चम्प हुआ और वे कुम्भक कहलाये।

जब उर्वशी पुनः मित्र के समीप गई तो वे क्रोधित हो गये और मित्र तथा ब्रह्म ने उसे मर्त्य लोक में जाने का काव दे दिया। क्रोध-वमन होनेकर पर बलिष्ठ ने उसे कुम्भ-पुत्र राजर्षि पुरुरवा की भाया होने का संकेत भी किया। काव प्रसिद्ध उर्वशी राजा पुरुरवा की बत्नी बनी और आयु की चम्प देने के उपरान्त स्वर्ग साक चली गई।

महाभारत:-

महाभारत में पुरुरवा - उर्वशी का उल्लेख चतुर्न तत्र विकीर्ण है। क्या यह प्रसंग केवल यो ही है। पुरुरवा के संसर्ग का उल्लेख आदि पर्व में तेरह श्लोको के मातक के रूप में हुआ है।^१ ब्राह्मणों के उन रत्नादि का अपहरण करने के कारण उसे उन का कोप भाजन करना पड़ा। सभा पर्व में वे अर्धमा पर्व अतुल सुहृद सम्मान्य हैं।^२ वन पर्व में अर्धमाचारी हैं,^३ शांतिपर्व में राजनीतिज्ञ।^४ अनुशासन पर्व में उर्वशी की चन्द्र की पुत्र अर्धमाओं में स्थान मिला है। अर्धुन के प्रसंग में उर्वशी अर्धुन से रमण करने की याचना करती है--- उस समय उस का सौन्दर्य अर्धुन है। वन - पर्व में उर्वशी का नर-शिशु सौन्दर्य उल्लेख, मातक और मातल है। उसके रूप साक्ष्य का विषय-विशेषण उसके रूप-सौन्दर्य की मेष्ठता की प्रतिबिम्बित करता है। उस की काम चेष्टाओं और काम तरंगे उस के कामोद्दीप्त सौन्दर्य की अविद्यतीय बना देती है।

रामायण और महाभारत दोनों ही में आयु की उर्वशी का अत्यन्त पुत्र बताया गया है।

१:- पुरुरवा गतौ विद्वानि भायां तम वदन्तः आदि पर्व: अ० ७९ श्लोक १८

२:- पुरुरवागोर्ध्वं रथं सुहृदो अयति राज्ञः वन पर्व: अ० ७९ श्लोक १७

३:- वन पर्व: अ० ८७७ श्लोक १२९

४:- शांति पर्व: अ० ७२ - ७३

**हीराणिक वाङ्-मयः -
में उर्वरी आख्यान**

**पुस्तक - उर्वरी का आख्यान श्रीमद् भागवत,
ब्रह्म पुराण, बह्म पुराण, विष्णु पुराण, स्कन्द
पुराण, नरस्य पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण तथा**

हरिपुरा में वर्णित है। बह्म, नरस्य और हरिकण्ड पुराणों में अन्य पुराणों की
अनेक कतिपय विशेषताओं सहित विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। पुस्तक के
ऐक्यवर्गीय होने का इच्छा और सरसम्बन्धी कथा सभी पुराणों में स लगभग एक ही
ही है। इन सभी पुराणों में पुस्तक और उर्वरी की सन्तानों की संख्या में
भिन्नता नैव होते हुये भी सभी पुराणों में वाच्य की ही न्येष्ट माना गया है।

इन पुराण कथाओं का सौक्ष्ण्य परिचय अनेकित है ताकि यह इतिवृत्त
किया जा सके कि काल प्रवाह में यह कथा अनेक प्रकार से परिवर्तित एवं संवर्धित
हुई है।

श्रीमद् भागवत पुराणः -

श्रीमद् भागवत में पुस्तक, उर्वरी, जगत्स्य और
वर्षिक के जन्म का विवरण मिलता है। पुस्तक
ऐक्यवर्गीय है। पुस्तक मनु - १६वा की संसि

हता और सोम-पुत्र कुल की सन्तान है। १६वा वैवाह्य मनु की भार्या थी।
वे निरन्तर थे। संसि प्राप्त के लिये उन्होंने ने मुनि वसिष्ठ से मित्रावसन
कराया। सोता की वाच्य में विवरीत भर्ष से पुत्र के प्राप्ति पर पुत्री हता
का जन्म हुआ। मुनि वसिष्ठ ने अपने तप के प्रभाव से और आख्यान विष्णु की
आराधना से पैदा कर प्राप्त किया कि हता पुत्री सुदुष्कर्म भाग्य पुत्र में परिवर्तित
की गई। भद्रकाल करते समय सुदुष्कर्म ने भद्र वर्तन पर विचार करते हुये शिव-मार्गी
के विचार स्थल में प्रवेश किया। यह वन शाश्वत था कि जो पुस्तक इस अवसन में
प्रवेश करे गा वह सभी वन जाये गा। सुदुष्कर्म पुनः मरी की गया। लोकोद्भव
सोम-पुत्र ने सभी मरी सभी हता की जीवन - लक्ष्यरी के रूप में प्राप्त कर लिया।
पुस्तक हता की सन्तान है।^१

अनिमद्वय मुन्वरी उर्वरी भी अन्य अक्षराओं की मांति मन्दर मीधत सगु
में ही उत्पन्न हुई थी।^२ उसके रूप साधन पर मांति मित्रावसन का दीर्घ
स्थिति की मता यह जिसे के उन्होंने ने छ में संवर्धित किया और सभी मुन्वरी सभी
वर्षिक जगत्स्य और वर्षिक के जन्म का कारण बना।^३

१:- श्रीमद् भागवत स्कं: १ अ० १: १३ - १५

२:- --- वही --- ६-८-७

३:- --- वही --- ६-१२-७-६

भीष्मद भागवत में दुर्यवा और उर्वशी की प्रणय कथा दुर्योधन और कर्तव्य-
प्राप्त्य के ही समान है। एक दिन नारद ने बन्धु सभा में दुर्यवा के स्व-गुण-
जाह्नव्य और औदार्य तथा सत्य वाचिता की धुरि धुरि प्रशंसा की। इस से
प्रभावित के हो अप्सरा उर्वशी जो मित्रा-वत्स के द्वारा साधित हुई थी, काम-
प्रदीप्ता हो कर मर्त्य लोक वाली राजा दुर्यवा के पास चली गई। राजा दुर्यवा
अपूर्व सुन्दरी को पाकर हर्ष हो गये। वे भला क्यों सीधे रहते। प्रतिपक्ष पक्ष
में जाकर राजा को उर्वशी ने दो मेघ हरोहर रूप में स्नान दिये। उसने यह भी
सह्य रक्खी कि वह किंचित भुख्ता या ही न होवन की भी तथा दुर्यवा को कभी प्रण
मान न देवेगी। इन में से किसी एक स्त्री की भी अनुमाना पर वह राजा का
परित्याग कर चली जायेगी। राजा प्रतिपक्ष दुर्ये।

उर्वशी के अभाव में देव लोक हुआ ही गया वह और देव राज बन्धु व्याकुल
रहने लगे। उर्वशी ने उर्वशी को साधित स्वर्ग में लाने के लिये गन्धर्वों को प्रेरित
किया, गन्धर्वों ने भी दुर्यवा - उर्वशी युग्म की प्रतिपक्ष-प्रेम करना अनिवार्य
तमका। अतः गन्धर्वों ने उर्वशी वाञ्छित तथा दुर्यवा रहित अवतरोक्त मेघ पुरा
लिये। यथा व्याकुल उर्वशी ने सप्तगण शिथिल दुर्यवा को पौरुष होने प्रतीत
कहा। यथैव दुर्यवा उसके सन्तानवत् मेघों की रक्षा करने में अनमर्ष रहा। दुर्यवा
अपने पौरुष पर यह डौट सहन न कर सके और आसुष से कर निर्धन हो निष्पन्न हो
पड़े। तत्क्षण गन्धर्वों ने मेघ-युग्म त्याग दिये और पूर्व योजनानुसार विद्वुक्त प्रकाश
कर दिया। उर्वशी ने मेघों को ले कर साधित जाते दुर्ये दुर्यवा को पुन नान देखा।
प्रतिपक्ष प्रेम हुई और उर्वशी दुर्यवा का परित्याग कर मर्त्य लोक छोड़ कर स्वर्ग
लोक चली गई। गन्धर्वों और देवताओं का अक्षय्य सफल हुआ।

विष्णोमी दुर्यवा उन्मत्त व हतवत्तः प्रमत्त करने लगे। दुर्योधन में सरस्वती
तीर पर अपनी पाँच लक्ष्मियों सहित विचरण करती हुई उर्वशी को देख कर दुर्यवा
ने जा से कर लोक जाने के लिये अनुमति विनय की, किन्तु निर्वय उर्वशी ने स्त्री-
धर्म का महान करते दुर्ये कहा:- विष्णोमी मेघों के समान होती हैं, वे अथवा
रक्षाओं और विचरण छातिनी होती हैं, वे प्रेम किसी से करती हैं और सम
विस्ती और ले। निर्वय और निष्पुत्र उर्वशी ने मारी दुःख की मदयता के साथ,
राजा ने कहा कि संवत्सरान्त में वह एक रात्रि के लिये उसके साथ रहेगी।
उर्वशी भई चली थी। दुर्यवा उर्वशीरान्त उर्वशी से मिले। उस तक वह आसु की
अन्गी बन चुकी थी। उर्वशी के वः पुत्र दुर्ये--बाहु, भुवाहु, शरबाहु, रघु,
विजय और जय । आसु ज्येष्ठ पु- है।

उत्पत्ती के विषय में राजा पुलस्त्य वैरागी हो गये।

ग्यारहवें स्कन्ध में भी बृहत् बृहत् ने उद्देश को वैराग्य का उद्देश देते हुये पुलस्त्य के बृहत् बृहत् पुनः विमुक्त वैराग्य की कथा का वृत्तान्त दिया है। वे अपने पुनर्जी - जीवन का पर्यालोचन करते हुये सदाताप व्यक्त करते हैं। जातिधर्मों पर आत्म समर्पण, शिष्टिय जन्तु नाम सुख पर आत्म मानि, और शारीरिक सौन्दर्य की अज्ञातता पर शुद्ध हो कर राजा पुलस्त्य वैरागी हो गये। वैरागीत्वान्न ज्ञान का चिन्तन करते हुये राजा ने लिखों के सौख्य पर श्री-सम्पद पुरुष के साम्राज्य से लगे करते हुये पुरुष को उनके संग से दूर रहने का उपदेश किया है।^१ तदुपरान्त वे शान्त प्राय में स्थिर हो गये।^२

ब्रह्म पुराण:-

ब्रह्म पुराण में पुलस्त्य-उत्पत्ती की कथा एकाधिक स्थानों में बिखरी है। जीव और जीवधर्मों के स्वामी ब्रह्मा ने राजसूय यज्ञ कर देव गुरु ब्रह्मपति की पत्नी तारा का अवलोकन कर लिया। ब्रह्मा जी के हास्तक्षेप से ब्रह्मा ने तारा को सावित ब्रह्मपति को दे दिया, किन्तु तब वह गर्भिणी थी। मुनि के आदेश से तारा ने बलीदा स्नान में गर्भ - रक्षण किया और इस शिशु का नाम मृग हुआ। मृग ने ब्रह्मा से ^{समागम} ~~समागम~~ सेवकजी पुलस्त्य की जन्म लिया। उत्पन्न होते ही उस ने प्रभु गुरु से राख किया और फिर ब्रह्म तथा देवताओं ने ब्रह्म को कर राजा नाम पुलस्त्य रखी।^३

राजा पुलस्त्य के उत्पत्ती के: पुत्र उत्पन्न हुये---आयु, अमायु, उदय, विवायु, क्षयायु, वृद्धायु, और अमायु। ये नाम श्रीमद् भागवत् में उल्लिखित नामों से शिन्धता रखते हैं किन्तु महाभारत में आये नामों से इन की समता है। यह पुराण में भी आयु को उद्देश पुत्र बताया गया है।

१:- श्रीमद् भागवत् : ११-२६-२२

२:- -- कवी -- : ११-२६-२५

३:- जातमात्र: सुतो रातमकरोत्पुपुस्त्यम्

तेन सर्वैर्यज्ज्वीर्यस्यै जंताः श्रुताः

तदातपुत्र हीतर-मेति राजावैवः पुत्र रताः

व्याधिष्वेवं नाम मृगः सर्वे सम्पुष्टगन्तव्यः - ब्रह्मपुराण अं० १०८-७३-७४

पुत्रवा विद्वान्, तैत्तिरी, अग्निहोत्री, यौत्रेय श्रुत्य एवं सत्य वादी
कुल राजा थे। महा नानिनी उर्वशी ने निरभिमान उन का वरण किया था।
राजा ने उर्वशी के साथ वैव्रथ, अतडा, मन्दाकिनी, नट, मन्द वन, भन्ध मादन,
दुरु तथा मरु वन आदि अनेक रमणीय स्थलों पर विहार किया था। पुत्रवा-
प्रमाण - प्रतिष्ठान पुर - के शासक थे।^१

विष्णु पुराण:-

विष्णु पुराण में पुत्रवा जन्म की कथा भीमद् भागवत्
तथा कुर्व का कथानक ब्रह्म पुराण के अनुसार ही है।
मित्रा वरुण से अभिषेक उर्वशी ने मर्त्य लोक वाली तैत्तिरी
ज्य कुली, दानी, और सीम वान राजा पुत्रवा का वरण कर लिया।

इस पुराण की विशेषता है, पुत्रवा का प्रतिष्ठान पुर का शासन सिद्ध
होना।

पुराण डार ने लिखा है:- मनु ने सुहृद्मन् की राज्याधिकार नहीं दिया
उद्योक्तिं वृत्तः यव रात्रौ ही या विन्दु बशिष्ठ की आज्ञा का पालन करते हुये
उने प्रतिष्ठान पुर दे दिया। सुहृद्मन् के उत्तराधिकार में राजा पुत्रवा को
प्रतिष्ठान पुर का राज्याधिकार मिला।

उर्वशी के साथ रत्न की कथा भागवत् के समान ही है। बृहदेद एवं सत-
पथ का वर्णन ब्रह्म कथानक पर पड़ा है किन्तु पुत्र पुराण की यह कथा ब्रह्म
भागवत् के अधिक समीप है।

इस पुराण से विदित हुआ कि राजा पुत्रवा प्रतिष्ठान पुर के शासक थे।

मत्स्य पुराण:-

मत्स्य पुराण में पुत्रवा - उर्वशी आश्रयान् निषिद्ध
शिवम् एवं में मिलता है। पुत्रवा की उत्पत्ति

वैतान्त मनु की प्रथम मन्तव्य इस से हुई है। इस की
राज्य है कि मनु वानवर्णी हुये। इस दिग्दर्शन करता हुआ भगवान् शिव के
शरण में जा मिलता। भगवान् तम का भिक्षु था कि वह वन मौख्य की परिधि में
जो भी वृक्ष जाये गा वह वही बन जाये गा। अतः इस भी बला इन गया।

१:- वेके वने केवाले राजे सदा मन्दाकिनी तरे
अतडाया विमानायां न मर्दन च समीपतरे
उत्तराम् पुरुषं प्राप्य समीपम कतहू मात
मन्दायन कारेणै मेरुनि तथोत्तरे
प्लोक्षमकुन्देषु दुरा परितेषु
उर्वया ललिते राजा रेके वरमार्गमुवा

--- ब्रह्म पुराण च 10-8-19

साथीनी देता में विचार करती हूँ बस पर मोनस्पुत्र कुछ बातचीत हो
गया। कुछ ठना की जन्तान की दुलवा है। सुर्वकी राजा सुर्वका के यज्ञ
से प्रसन्न हो कर उना - महेक ने उना की पुनः दुलवा बना दिया जो सुर्वका के
मान से प्रतिष्ठित हुआ। सुर्वका के तीन पुत्र हुए, किन्तु उन में प्रतिष्ठान का
राज्य दुलवा की ही दिया और स्वयं राज्य तोष कर बलावृत्ति में चलाया
गया।

दुलवा दुलवाधी नृपति थे। दुलवाधी त्रय को के समन्वय को सभा-समन्वय
सहित रीति से बनाये रखते थे। समन्वय कर उन्हीं में खुश हो की सभा की। क
काम, अर्थ और धर्म की उ त्रयी में के धर्म की काम और अर्थ की अवस्था अधिक महत्व
देते थे। चतुर्थः काम, अर्थ और धर्म तीनों में ही राजा की परीक्षा की। राजा
में भी तीनों का सम्मान किया और उनकी सम्मान की किन्तु धर्म की विशिष्ट
स्थान दिया। इस पर काम और अर्थ में अवमान अनुभव किया और क्रोध में काम
राजा को शाप दे दिया।

काम में शाप दिया----- उत्तरी-विद्योग में गंडमादन पर विचार करते समय
वु उन्माद प्रसिद्ध हो कर बिलास करे गा।

अर्थ में शाप दिया--- --सौम से तेरा नाह हो जाये गा।

किन्तु धर्म ने राजा को बदाम दिया:-

सु दीर्घ जीवी और धार्मिक हो गा।

अर्थ शायमदास्त्ये लोभात्वं माशमे स्थिति
कामोदप्याथ तयोभ्यारो भविता गन्ध मादमे
कुमारस्य माशित्य विद्योगा दुर्वनी भवात्
उमोदप्याथ विरायुस्तर्ल धार्मिकता भविष्यति।

म० पु० 24-18-20

ग्रीक पुराणों में भी ऐसी समानाचार कथा मिलती है। पैरिस की परीक्षा लेने के
लिए तीन जज्जराएँ आईं। हीरा, चाँदी और लोहे का एक उनके साथ थे। पैरिस
ने लोहे का एक की अवस्था अधिक सम्मान दिया। परिणाम मिला हीरा और
चुम्की उस से खुद हो गई। १

राजा दुलवा में कामव केरी कामा अवगत उत्तरी और विन तेरा ही गा
की और केरी का विचार दिया। इसे काम कर देय रास कन्ध ने राजा दुलवा
के सम्मान में विजयीमान मलय लकी मयंकर मादक का आयोजन किया।
दुलवा इस सभारोह में किञ्चन रूप से आसीन निकले गये। अतः मुनि ने नाटक का

1:- K.R. Sengar. Ausobindo Kaudir Annual 1949. P.61

निर्माण किया एवं मेनका, रम्भाऔर उर्वशी ने अभिनय। उर्वशी लक्ष्मी की भूमिका का निर्वाह कर रही थी। जब उस से पूछा गया कि वह किस का जन्म भरण करेगी तो बृहस्पति ने तबान पर तथा तबान में बैठे हुए पुलस्त्य की वरदान का कामाभिभूत उर्वशी ने पुलस्त्य का ही नाम उच्चारित किया। मानसिक आनन्दान्तरिक में उर्वशी भूल गई कि वह लक्ष्मी की भूमिका में है। सचकी नाटकीय प्लान से दुषित और मुनि ने उर्वशी को शाप दिया कि वह मर्त्य लोक में अपने पुत्री पुलस्त्य से विमुक्त हो कर 95 वर्ष तक जता बनी रहेगी--"तदा मृतमत्रा भविष्यति"। उर्वशी ने शाप मोक्ष के बाद जाठ पुत्रों को जन्म दिया। इन के नाम हैं:- आद्य, बुद्धाय, अर्वाय, पुनः, प्रतिमान्, ययु, सुचिचिद्व, और शतायु।¹ इन संस्तितियों में आद्य का नाम ही सर्व प्रथम उल्लिखित है।

इस पुराण में उल्लिखित विवेकायें :-

- 1:- बृहस्पति ने कहा - पुत्र पुलस्त्य को ही प्रतिष्ठान पुर का राजा बनाया। अपने बृहस्पति के तीन पुत्रों को मर्त्य।
- 2:- पुलस्त्य उर्वशी - विष्णु ने मरुत्तमदन पर शाप के बाद लक्ष्मी भटके रहे।
- 3:- पुलस्त्य ने उर्वशी को विष्णु के लक्ष्मी की देवता के लक्ष्मी से शाप की।
- 4:- भारत के शाप में उर्वशी को मर्त्य लोक में विष्णु मरुत्तम मरुत्तम मरुत्तम।
- 5:- उर्वशी ने जाठ पुत्रों को जन्म दिया।
- 6:- प्रतिष्ठान पुर प्रमाण ही है।²

व

अन्य पुराण:-

उपयुक्त पुराणों में उल्लिखित उर्वशी आख्यायिका के अंश लक्ष्मी की अन्य पुराणों में मिलते हैं। देखी आख्यायिका

4-3-36 में उर्वशी के जन्म की कथा ही हुई है।

एक बार ब्रह्मा ने उर्वशी नामक स्त्री की सहायता भंग करने के उद्देश्य से सुन्दरी अप्सराओं को भेजा। नारायण स्त्री बदरिकाश्रम में सदाशा कर रहे थे। स्त्री ने उर्वशी से ब्रह्मा के पुत्र मरुत्तम की धान लिया और अपनी हार से उर्वशी निष्ठापूर्वक उर्वशी उर्वशी का निर्माण किया। सभी अप्सरायें उसके लक्ष्मी का - लक्ष्मी की गई। और ब्रह्मा का गर्व भी भंग हो गया। उस से निर्मित होमे के कारण ही उस अप्सरा का नाम उर्वशी मरुत्तम।

1:- म० पृ०: 24-33-34

2:- आख्यायिका प्रतिष्ठानाया पुराणायुडे

म० पृ०: 104-5

वदन पुराण में सत्य पुराण की ही भाँति पुलका जन्म, उर्वशी के, भरत शापवादि वर्णित हैं।

ब्रह्माण्ड पुराण में ब्रह्म पुराण के समान ही पुलका जन्मवादि की कथा वर्णित है।

अग्नि पुराण में पुलका की जन्म कथाओं का सूक्ष्म वर्णित है। सत्य पुराण में शेष कथा पूर्ववत् है केवल पुलका के पुत्रों की संख्या पाँच लिखी है।

उर्वशी - पुलका पुलका विषाण द्वारा भी भिन्न है। देव जीव में पुलका के सौन्दर्य से विमोहित उर्वशी नृत्य में डूट कर गई। पुलका हँस पड़े। नृत्य गुरु पुलका ने रुक ही कर पुलका को उर्वशी - विषाण का शाप दे आता। २

हरिवंश पुराण की महाभारत का अन्तिम पुरक भाग अष्टादश तमस्कना वर्णित पाँचदे। इस में भी शतपथ ब्राह्मण के ही अनुसार उर्वशी - आश्वाम वर्णित है।

0000000000000000

साहित्य संस्कृति में उर्दू की आकृष्यता

साहित्यिक संस्कृति में महा कवि कालिदास रचित विक्रमोर्वशीयम् नाटक विख्यात है। विक्रमोर्वशीयम् एक उच्च स्वरूप है जिस का आधार महाभारत पुराण और ब्रह्म पुराण है। किन्तु इस नाटक में पुराणों से निम्न परम्परा संस्कृति एवं सुसज्जित अलंकारों के योग से समन्वित पुरुषार्थ-उर्दू की प्रणय-कथा अत्यधिक सुन्दर रूप में प्रस्तुत की गई है। यद्यपि यह अभिज्ञान शाकुन्तलम् के समान सफल कृति नहीं रही जब तकनी तथ्यादि अन्य नाट्य कृतियों में यह बेहतर रही है।

प्रथम अंक में प्रतिष्ठान के उच्च चन्द्रवंशीय राजा पुरुषार्थ सुयोधननाम का वर्णन आ रहा है कि उन्होंने ने मारी कण्ठ का आर्तनाद सुना कि हमारी रक्षा करो, हमारी रक्षा करो। यह आर्तनाद रम्भा मैत्रा, सबन्धा एवं अन्य अप्सराओं का ध्यान। ये सब विगमिता हो गई थीं और जब कुबेर पुरी से लौटते समय देव्य केशी ने उर्दू और चित्रकला का अवलोकन कर लिया था तब उनकी आर्तनाद सुनकर राजा पुरुषार्थ ने अधिपत्य देव्य का पीछा कर अनेक अप्सराओं को मुक्त कर दिया। वेमूढ पर आसते समय उर्दू और पुरुषार्थ के परस्पर सम्बन्ध तथा से दोनों में काम जाग्रत पूर्व राग की स्थिति उत्पन्न हो गई। सभी देव राक्षसों से डर कर मन्थरा राजा चित्रकला ने राजा से विनम्र की कि ये उर्दू की से कर देव राज चन्द्र के पास चलीं। राजा ने चन्द्र का उन्मत्तनाद करते हुये चित्रकला के साथ उर्दू की से चन्द्र लोक भेज दिया किन्तु स्वयं राजा वहाँ नहीं गये। उर्दू राजा के इस औदार्य पर मुग्ध हो गई।

द्वितीय अंक में काम प्रणीत राजा पुरुषार्थ अपने विद्वत् मानसिक के साथ प्रमत्तता में विचार कर रहे थे कि तिरस्करणी विद्या के प्रभाव से अद्वय उर्दू और चित्रकला ने राजा की व्योम व्याधा से मुक्त हो कर उन्हें पूर्व वन पर एक प्रणय-व्रत मिला। उसी समय आकाश धानी पूर्व कि जिस के अनुसार उर्दू की से भक्त मुनी द्वारा निर्दिष्ट लक्ष्मी स्वयंवर नाटक में लक्ष्मी की भूमिका में अभिनय करना था। इस अष्टाक्षरनाटक की स्वयं देवराज चन्द्र अपने समस्त कलाकारों सहित देव्य की कामना रखते थे। अतएव उर्दू की से देव लोकावतार हुआ। उर्दू राजा पुरुषार्थ ने विमुक्त होने पर दुःखी थी और राजा भी उस के वियोग की सहन न कर सके। उन्हें यह पता ही न था कि उर्दू की द्वारा निर्दिष्ट यह पूर्व-व्रत पर अंतिम प्रणय-व्रत अब उनके साथ से भिन्न गया।

दुसरी ओर से महारानी औशीररी अपनी दासी सरयी निम्निका के साथ उधर आ निकलीं। उन्हें मार्ग में बहुत यह पूर्व-व्रत मिला गया। महारानी ने राजा की यह व्रत दिया जिसे वा कर राजा तो प्रसन्न हो गये किन्तु औशीररी निम्न

मन अपने राज प्रसाद को लौट गई। राजा भी विद्वत् के साथ लौट गये।

सुतीय अंक में चिन्मयक हास है। मरुत मुनि के दो शिष्यों के वातालाप के माध्यम से लक्ष्मी स्वयंवर नाटक का कथ्य उल्लिखित है जहाँ उर्वशी ने लक्ष्मी तथा मेनका ने बाकी का अभिनय किया है। मेनका ने उर्वशी से पूछा कि उस उत्सव में सम्मिलित वृन्धोत्तम सहित कैलाश की लीलाएँ कब हुई हैं उनमें से उर्वशी जिस की ओर आकृष्ट हुई है और जिसे अपना प्रिय देख रही हैं उर्वशी द्वारा नाटक में वृन्धोत्तम के स्थान पर अपने प्रिय-भाव से वृन्धवा नाम निकल गया। यह सुन कर मरुत मुनि ने उर्वशी को साथ दिया कि तु मे हमारे उपदेश का अन्यास किया है अतः तुम्हारा स्थान स्वर्ग में नहीं है। चन्द्र ने किन्तु उर्वशी पर दया की। लक्ष्मणनन्द उर्वशी से चन्द्र ने कहा कि तुम जिसे चाहती हो वह राजा हमारा हि तु व तब्यक्त है, हमें भी उस का प्रिय करना है। तुम वृन्धवा के साथ सब तक ध्येय राह सकती हो जब तक राजा तुम से उत्पन्न सन्तान का मुख न देखें हैं।

राजा वृन्धवा का निराकार कर जीवितरी चली तो गई परन्तु उन्हें भी परचासाप हुआ। उन्होंने मे चन्द्रमा तथा विशाखा को साथी बना कर प्रियानु-प्रसादन प्राप्त साधो, किन्तु वह राजा के सामीप्य के लिये ठहरी नहीं। लौट गई। उसी समय उर्वशी अमिताभिका देश में लड़ा जाई। और राजा के साथ प्रेम चर्चा करते हुये व प्रदीप काल में चन्द्र हरिमयों का भोग करती हुई अन्तःपुर में चली गई।

अर्ध अंक में उर्वशी-वृन्धवा का विवाह वर्णित है। एक दिन उर्वशी राजा के साथ मन्त्रमादन वर्क पर विचार करने गई। जहाँ मन्दाकिनी छत पर बालू के वर्क बनाती डीढ़ा में मन्म विद्याधर कुमारी उदयवती को राजा देर तक निष्कलक निहास्ते रहे। अतः, उर्वशी क्षुब्ध हो गई। राजा की अनुपस्थिति की भी उर्वशी को वह शिष्यों के लिये निरिच्छा कुमार वन में चली गई जहाँ साथ प्रसा हो वह लक्ष्मी बन गई। राजा उर्वशी के विवाह में दुःखी हो गये। गौरी चर्च राग मणि से ही वह पुनः लौट बन सकती थी। अग्र राजा चर्चा काल में और भी दुःखी हो गये, उन्हें उपमाद हो गया। लला वसादिक, कल-वधियों, वन-वर्कियों से वे उर्वशी के चिन्मय में दूखे फिलते थे कि अकस्मात् मार्ग में उन्होंने मे एक रत्न पड़ा देखा। उर्वशी के विना उस रत्न में भी उनकी कोई रुचि नहीं हुई। लक्ष्मी मेरुच से लयनि हुई वरुण चले से लो, यह संगमनीय मणि है। राजा मणि से कर आने लगे और लला वनी उर्वशी के चिन्मय पर मुग्ध हो कर उसे अपने आर्त्तमन बाह में बाँध लिया। लला पुनः उर्वशी बन गई। उर्वशीलक्ष्मी राजा वृन्धवा बनना उर्वशी सहित अपने राज प्रसाद में लौट गये।

पंचम अंक में राजा दुरववा को अपने पुत्र से आयु से संयोग एवं उर्वशी से वियोग का दर्शन है। एक दिन राजा संनम स्नान के लिये तैयार होते। परिवारिका संनम-मणि लिये जा रही थी कि एक गुरुज उसे मांस काट जान भट उठा ले गया। राजा ने गुरुज को छोड़ने तथा उसका इनम करने का आदेश दे दिया ताकि मणि प्राप्त हो सके। सभी कंधुड़ी ने प्रवेश कर निवेदन किया कि उर्वशी ने गुरुज को जान से जास्त कर मणि सहित उसे नीचे गिरा दिया। वह जान और मणि यहाँ हैं। जान पर अंकित था---यह जान दुरववा और उर्वशी के पुत्र आयु का है। इसी अवसर पर महर्षि अश्विन के आश्रम से कुमार को ले कर एक सावली रात दरबार में आ उपस्थित हुई। सावली ने मिलने उर्वशी की दरबार में आई और कुमार को राजा के चारु में बैठा देकर आनन्दित हुई। सावली ने उर्वशी से कहा---यह सुन्वारी निधि पुत्र तुम्हें सौंपती हूँ। मुझे व जाने की आज्ञा दी। उर्वशी को देव राज दण्ड का यह वचन स्मरण हो जाता है कि पुत्र-भुक्त वेदने पर उसे देव लोक जाना हो गा। राजा इस वियोग से दुःखी हो गये। वे अपने पुत्र आयु का राज्यनिर्धर कर संन्यासी होने की कामना करने लगे। सभी मारद भी उपस्थित हुये और उन्हीं ने दण्ड का संदेश कहा---राज्य, आप संन्यासी न हों और न ही संन्यास ल्याये। निकट भविष्य में आप देव-लोक दानव युद्ध में देव सहायक हों। उर्वशी आशीर्वाद आप की सख्तर्ष चारिणी हो कर रहे थी। इस सन्देश से सभी अत्यंत आनन्दित हुये। मारद ने सब आयु का अभिषेक दिया।

कालिदास के इस नाटक में अधिपय मौलिक उद्भावनाएँ हैं जो न तो ब्रह्म कथा में हैं और न ही पुराणों में। इन्हीं मौलिकताओं के कारण यह नाटक उर्वशी-कथा में विशेष महत्त्व रखता है। कालिदास का युग पूर्ववर्ती युग की मान्यताओं से भिन्न था। संन्यास की अवस्था का कारण मोक्ष नहीं था अपितु मनीष युग के अभ्युदय की प्रेरणा थी। पूर्व पूर्व प्रचलित बौद्ध-ईश्वरी उदरकर्मता में संन्यास प्राप्ति से सामाजिक विकास अवरोध हो गया था। विद्वरित प्रधान समाज में पुनः कर्म की प्रतिस्थापना आवश्यक थी अतः इसे हम बौद्ध ईश्वरी की प्रतिष्ठित तत्त्व में भी जान सकते हैं। परिवर्तित जीवन मूल्यों के कारण कथानक में अतः ही भिन्नता उत्पन्न हो गई है

1:- राजा दुरववा ने उर्वशी को हेमकट पर बैठा है दण्ड समा में नहीं। अर्थात् कालिदास विषय के बदलते हुये सामाजिक परिस्थित की कल्पना कर रहे थे। आज के युग में भी दुरव विषयों की कठिन स्थितियों में रक्षा करते हैं और वस्तु तत्त्व विषयों उन्हें व्याह दी जाती हैं।

2:- महारानी कोशीमरी राजा दुरववा की विवाहिता पत्नी थीं; पुराणों में कोशीमरी का उल्लेख ही नहीं है।

3:- उर्वशी को अतः के द्वारा साव देने का उल्लेख है, निवाधर्ष या सुन्वक द्वारा दिये जाने का नहीं।

4:- नाटक में राजा उर्ला-पुत्र आयु के मिलने से प्रसन्न भिन्न है जबकि उर्ला पुत्र-मुक्त देह लेने पर देव लोक चली जाती है। किन्तु पुराणों में राजा को निर्वासन देह लेने पर उर्ला के देव लोक चले जाने का उल्लेख है।

5:- संगमनीय गण के प्रसंग का उल्लेख मौलिक है और इसी प्रकार बाँधों अंक की घटनाओं का संकेत किसी पुराण में नहीं मिलता।

6:- नाटक की कथा सुखान्त है, पुराणों की कथा दुःखान्त है।

विद्वन्मौर्यीयम में कालिदास ने इतिहास वृत्त न चुन कर पौराणिक आख्यान चुना है। जिस में देवीय अप्सरा उर्ला के प्रति मानवी पुरुष पुरुषा का प्रेम ही कथा का मुख्य भाग है। उर्ला की कलह तथा पुरुषा के पौरुष के कारण हुई थी। पौरुष, सद्भाव और कृतज्ञता भावना से प्रेम भाव और अधिक लब्ध थी, गहन और भावात्मक हो चकचकाने लगा है। यह केवल दैविक आकर्षण तक ही सीमित नहीं है।¹ दृग्देव में चन्द्रमा मन्त्री प्राप्त: का उल्लेख है। चन्द्रमा मन पर नियंत्रण करता है और पुरुषा चन्द्रमा की बहु का पुत्र है अतः उस क चरित्र में चन्द्रमा एवं कुछ से प्राप्त भावनात्मक प्रेम और सज्जन्ति अभि व्यक्ति है। यह मूल पुरुषा की अंतर्मुखता रूप में प्राप्त है।² इसी भाँति उर्ला की भी कालिदास ने वाचन मोन्दव्युक्त और कवित्व सम्पन्न प्रस्तुत किया है देवगंगा या गन्धर्व-रानी अप्सरा मात्र नहीं।³ कालिदास कृत विद्वन्मौर्यीयम की रचना संगीत-भाव प्रेरित है। नाटक के संपूर्ण अंक की ही संगीतिका कहा गया है।⁴ इस में अंक की अवधारणा से नीति का और नाटक का सम्मिश्रित प्रयोग स्पष्ट हुआ है। पुरुषा का दुःख मानवी आत्मा का लोक है जो मोन्दव्य स्वस्था उर्ला के अद्वय होने से उत्पन्न होकर है। इस मोन्दव्य की आत्मा 'देवीय है, स्वर्गिक है और केवल ही मानवी लोक के निहित शीतों में सामान्य जनों द्वारा छोड़ी जा रही है। देवीय-मानवी का यह संयोग ही मोन्दव्य का वास्तविक स्वरूप है। कालिदास ने मानवकाप्रतिमित्र में यदि कला की उपासना की है तो

1. T. G. Mainkar - Kalidasa and his Art Page 80

2 Ibid 82

3 Ibid 83

4 Ibid P 86.

है। तो विद्वानों की भी।^१ यह कहना असंभव न हो गा कि स
संगीत और प्रेम को अपरिहार्य माना गया है।^२ कालिदास की उर्वरी तो मन्दन
वन का रत्न है। असीम आनन्द है। नाटककार की कला ने प्रेक्षक की कल्पना
को हैलिये कुछ छोड़ा ही नहीं है। हाँ, औरंगजेब के वृद्ध की मन्कीस्ता से हम
परिचित नहीं हो पाये।

1. T.G. Mainker - Kalidas and his Art - P.87

2 - Shakespeare - Twelfth Night - Act I Sc 1

If music be the food of love play on.

रवीन्द्र का उर्वशी

वैदिक काल से अरविन्द होकर तक उर्वशी विश्व के विभिन्न स्वल्प प्रसूत हुई, फिर होकर रचा ही गया इस प्रश्न का उत्तर ही रवीन्द्र नाथ टैगोर की उर्वशी है। उर्वशी कविता महा कवि टैगोर की चिन्ताकुण्डला में दर्ज है।

टैगोर की उर्वशी वैदिक-पौराणिक उर्वशी नहीं है, किन्तु उसकी सरल काव्यात्मक ध्वनि संगीत के माधुर्य में आज भी सर्वत्र गूँज रही है। यह वन्द्य अनुवीक्ष्य सौन्दर्य की शास्त्र संगीत का अभिव्यञ्जना है। मुक्त राज आनन्द ने उर्वशी को पत्नी कविता माना है जो अपने विस्वात्मक सौन्दर्य में उन्नत मनोविचारों से सम्पन्न होकर अमर बन गई है।^१ चान्दर वेटर की मोनालिसा कविता में जिस प्रकार सौन्दर्य का वह और चमत्कारिक आकर्षण के काल की सीमाओं में प्रतिबिम्बित नहीं है ठीक उसी प्रकार टैगोर की उर्वशी भी सौन्दर्य के समस्त स्वरूपों और सीमाओं में अतीत रहस्यात्मक सौन्दर्य की प्रतिबिम्बित करते हुए भी विज्ञान्य भाव पूर्ण पूर्ण नारी का स्वल्प है। यह नारीत्व का उन्मादी-सौन्दर्य भी है और अतीत सौन्दर्य भी।^२ रवीन्द्र की उर्वशी-उर्वशी के संगीत का चिन्तन और काव्यात्मक अभिव्यञ्जना का कोर्ष द्वारा प्रतिमान नहीं हो सकता। उर्वशी न माता है, न बहू और न कन्या है, वह केवल स्वामी सुन्दरी है --- मन्दन वातिनी।

न हो माता, न हो कन्या, न हो बहू, सुन्दरि स्वामी
हे मन्दन वातिनी-उर्वशी।

गोष्ठे जाये सञ्जना में, जान्त देव, शस्तारक्षतादि
तुमि होने नृप - शान्ते ना हो जानो सौन्दर्या दीप छेनि
दिवाये खोसितो गोष्ठे, उन्मुक्त नम्र मेरु पाते
रिक्त जाये नाहि जानो शीतलित जाते रो मंजारे
सोन्धो अर्द्ध रात्रे,
छवा ओवाय सखी सखी
ओमोवगुणित
सुखी अनुगुणित।^३

1. Mukraaj Anand - The Golden Breath P. 55

Urvashi a poem destined to immortality for the sublimity of its conceptions as for the sheer vigour of its imagery.

2. K.R. Sengupta - Around Kauder Annual 1949-P. 82

3 १९१५-१९१६ - ३०२१ - १९१६

यह तो ऐसी कविता है जिस की पूरी उध्वसित ही भेषाकर है। उध्वसित तो
अन्यगुणित है, अकुणित है। सामान्य नारी नहीं, सामान्य जन में रह कर भी
जन से दूरे है, नन्दन वासिनी है, किन्तु पूर्ण मानवी गुण-धर्मों से सम्पन्न है।
हम उसे यदि नहीं समझ पाते --- न सही, उसके विषय को निरूपण में। यह
कुन्तकीन वृत्त है, स्वतः मुकुटित है, सामर मध्य की सुधा - गरल युक्त उपलब्धि है।

कुन्त कीन वृत्तोंसमो आपुनाते आपुनी विकसि
कौनै तुमी कृते उध्वसी ।
आदीन वसन्त प्राते उठि कोने मन्थित सागरे
उम कोने सुधा वात्र, विष भाँकत लोभे काम कोरे
तौरींगत महा सिंधु, मंत्र सान्ध सुजने, माओ
बाँड़े चिली बंद प्राते उध्वसित वन लक्षिता कोरे अवन्ति
सुख सुन्द सुख, नान्य कान्ति, सुरेन्द्रवन्दिता
सुमि अमिन्दिता।^{१२}

पौराणिक उध्वसी से न्यूनाधिक मानवधर्मिता - सम्बन्धा उध्वसी यही है। यह
अमिन्दिता सौन्दर्य है, सुन्द - सुख सुख नान्य कान्ति युक्त है, यह पूरा नारी - सौन्दर्य
है अतः मेष्ठ है। यह देव लीक की नर्तकी - अपसरा मात्र नहीं है यह समस्त
प्राणि मात्र का आनन्दमूर्त्य है, यह कोई एक नारी नहीं, यह विश्व व्यापी नारीरूप
है अतः असीम सौन्दर्य - स्वल्पा भी है।

सुर समासले जैसे मृत्यु करे मुनीक उल्लसित
हे विचलित विन्नीत विन्नीत उध्वसी।
उन्हे उन्हे नाचि उन्हे सिंधु जैसे तरंगि दोल,
हस्य शीर्षे प्रियोरिमा, काँचि उन्हे धरार अञ्जल
तवी समीहरि हुने नमस्तले सुधी वृद्धतात
अववाह पुखेर वक्त माने धित अत्तहारा
मावे रक्त धारा
विमन्ते मेठता तवी दूरे अकुम्बिते
कोई असम्बिते ।^२

उध्वसी कविता का यह पाँचवाँ उन्ध है और सम्प्रकाशः अपूर्ण भी। ३७० धाम्पल
मे इसे होव कविता की अवस्था सम्प्रेषित उन्ध माना है। इसकी प्रत्येक वीज अन्ध से

१:- उध्वसी: रवीन्द्र नाथ टैगोर, विजतीय उन्ध

२:- --- यही --- ३ वाँ उन्ध

अधिक ज्योतिर्मय है। इन वस्तुओं का तो अनुवाद ही कठिन है।

पुष्पी के आँख में स्वर्णानिलों के दोलन से ऐसा डमक होता है
मानो मातृत्व की शिरायें झँझा उठी हैं।^१

कविता के अन्तिम छन्द में कवि और पुरुषवा शस्त्री पर अवार मानवी मनुष्य,
पुष्पों, अन्न प्रोक्तों और प्रसार चट्टानों से मिल कर फटाकार हो गये हैं। पुरन
उठता है --- क्या यही वह पुरुषवा है जो अन्त्यः प्रकाश तरंगों के तीर पर उर्वरी क
मनुष्यार करता थाज्जवा यह वह मनुष्य है जो निरन्तर अवेय और अतीत की सीमाओं
में प्रवेश के लिये निरन्तर प्रयत्न कर रहा है। वह दोनों ही है। ये काव्य वस्तुओं
की अनिन्दित हैं।

कोई सोचो दिशि दिशि तुमि तानि जाँह च ओन्दरि
हे निन्दुरा बोधुरा उर्वरी ।

जानि पुन पुरातनो य बनिसे डिरिसे डिक बार
जो तोन, भाकुन, होरो तिलो केरो उठि के अवार'
प्रधोम से सोनुजानि देखे दिसे मयनोर अवाते
चारि विन्दु पति
जोदुवात, महोम्मुधि अजुवों सोँमि तो
रोखो तोरोगिसे

किस उर्वरी निराशा से क्यों भर उठीं आकाश तो तवेय जागृत है और तुलना क्यों
नहीं करता। किन्तु उर्वरी --- विरिखो मा, विरिखो मा।
इस संदर्भ में जेनोए ने स्वयं उर्वरी का अंग्रेजी अनुवाद किया। वह भी बठनीय है।^२
पर उस में जंगला जैसी भावार्थक व्यंजना कहीं है? उहाँ

अपने मित्र श्री ब्रह्म चारु चन्द्र बन्दोपाध्याय को रवीन्द्र नाथ टैगोर ने
१ फरवरी, 1896 में एक पत्र उर्वरी के विषय में लिखा था, 'उसका विन्दी लीला
प्रस्तुत है।

अंग्रेजी में मैं उर्वरी के लिये कोई समानार्थक शब्द नहीं ढूँढ सका
कता सकता। इस कविता में ही इसका अर्थ निहित
है। एक दृष्टि से सभी सौंदर्य एक भाव हैं। वस्तु नहीं,

१. Edward Thompson - Rabindranath Tagore Poet & Dramatist P 123

२. B. Urvashi - 8th stanza

३. ए. २१ वी. के. चैपमैन: प्रयोगार्थ, कि. वि. ५. कालेज कॉलेज के लीजन्स के ग्राम

तब ऐसी प्रेरणात्मक अनुभूति है जिस से रस संचार होता है।
सौन्दर्य की अभिव्यक्ति नारी में पूर्ण और इस की प्रतीक उर्वशी है
उर्वशी है। यह सौन्दर्य की सौन्दर्यानुभूति है अथवा सौन्दर्य
सौन्दर्य के लिये है। अतः उर्वशी के लक्षण में यदि उर्वी उर्वी
कोई कर्तव्य आचारा है तो तो उसे नहीं होनी।

माया ने उर्वशी को अर्जुन कर लिया है। यह भी
सत्य नहीं है कि सौन्दर्य एक आत्मनसक आकर्षण है क्योंकि
यह सौन्दर्य नारी के सौन्दर्य में पूर्ण एवं अभिव्यक्ति है, इस में
नारी मोह का अङ्गित निष्पन्न है। इसी मोह बाध से देखता
भी नहीं है। अङ्गु कवि ऐसी वसे कोविदक सौन्दर्य कहता है
और यदि यही उर्वशी में भी है तो मे उसके लिये उत्तर दायी
नहीं। यह ठीक यही नहीं है और यदि इस में तुम
असमर्थ में पड़ जाओ तो भी मैं उत्तरदायी नहीं। उर्वशी
छिन्ना नारी रूप से प्रारम्भ होती है। उर्वशी न तो मां है,
न पुष्टिता, और न गुरुणी, वह तो गुरु संसार से परे एक सारी
नारी है --- एक मोहिनी नारी।

यह ध्यान में रहे --- उर्वशी है कौन? वह बन्धु की
बन्धुनी नहीं है और न ही विष्णु प्रिया लक्ष्मी है, वह
देव लोक की मांकी है, इस स्वरूप में बन्धु की अमृत बाधिनी
सहचरी है।

देव गण भी नारी की देह नहीं उल्लंघन करते। वे उसके
सौन्दर्य का भोग करते हैं। भले ही वह लेश-सौन्दर्य की
क्योंकि वही तो सौन्दर्य की पूर्णता है। सौन्दर्य की यह
पूर्णता केवल मानवी रूप में ही सम्भव है। अतः वह यह मानवी
सौन्दर्य अमृतः देवीय है। उर्वशी का यह लेश-सौन्दर्य ही उल्लंघन
उसकी पूर्णता है अतः देवीय सौन्दर्य वाचक भी है। लेकिन
धिर कोविदयोग्य बाधे स्वरूप अमृत। वह धिर योग्य स्त्री
बाध में अमृत है। उस में मानवी शिथिल भाव है ही नहीं।
अभिव्यक्ति माधुर्य है --- ही अभिव्यक्तिमाधुर्य।

उर्वशी कामना संगे साक्षात्कार्य है। कामना
हल्का भाव है जो लेश के आनन्द से लेश के परे उर्वशीगामी
भी हो जाता है। साक्षात्कार एक वासना केवलका सम्बन्ध
भौतिक है। कामना में साक्षात्कारकी अपेक्षा एक उदात्त भाव है।
साक्षात्कार शरीर सम्बन्ध है और लेश के ऊपर उठती ही नहीं।

सौन्दर्य नारी में ही पूर्णता प्राप्त करता है और तब से कुछ न होने पर भी यह सौन्दर्य अनिर्वचनीय है --- यह अनिर्वचनीय सौन्दर्य ही उर्वशी में है। अतः उर्वशी केवल भाव नहीं है।

मनुष्य ने सतयुग की उत्पत्ति की है। अपने दैनिक जीवन में हमें सौन्दर्य की अनुप्राप्ति सीमित क्षेत्र में ही होती है, किन्तु हमारी उत्पत्ति में असीम सौन्दर्य रहता है, अतएव पुराणों में स्वर्ग की रचना उत्पत्ति के माध्यम से ही हुई है। जो भाव हमारे अनुभव में अग्राही होते हैं, उत्पत्ति उन्हें साकार एवं पूर्ण रूप देती है।

विद्यमान की सम्पूर्ण सिद्धि हम सांसारिक कार्य व्यापार में नहीं होती, किन्तु यह हमारी भावना में रहता है और सतयुग में मनुष्य उसे अपने जीवन में लेह कर संतुष्ट हो जाता है। इसी भाँति हम नारी रूप की भावना एवं आदर्श सम्पूर्णता से सम्पन्न अनुभव करते हैं। उर्वशी का रूप ही भावना, सम्पूर्ण एवं निर्दोष नारी-सौन्दर्य का प्रतिमान है। हमारा मानव मन ऐसे आदर्श एवं निर्दोष नारी-सौन्दर्य की लोभ करता है और वही उर्वशी, मेनका और तिलोत्तमा के रूप में विद्यमान है।

यह दिन पुराण-वर्णित यही उर्वशी उत्पत्ति सत्य व्यवस्था जिन्हीं कि तुम और मैं। तब यह स्वर्ग से घृणित थील्लेखपुच्छ और पुच्छ की कामिनी बनी थी। यह पुच्छ सम्पूर्ण भाव तब सत्य नहीं था। यह पुच्छा की भाषी बनी थी। उसी उर्वशी का सौन्दर्य संसार की समस्त नारियों में मोहिनी रूप से उत्पन्न-दीप्त मात्रा में विद्यमान है। और प्रता यह नारी आदर्श कैसा 'यह ही उत्तर है:-

फिरिखी ना, फिरिखी ना।

स्वर्णीय है कि यदि मैं नैतिकता का आनंद लेता उद्योग तबनी ह का प्रभाव दर्शाता तो यह काव्य भी नीचिनीय हो जाता और न ही उत्पत्ति सम्पूर्णता तब में अभी होती।

"रवीन्द्र की यह उर्वशी सुन्दर है, शिख भी है और सत्य भी।"

0000000000

U R V A S H I

(English rendering from Bangla to English — R.N. Tagore)

(1)

Thou art not Mother, art not Daughter, art not Bride'?

thou beautiful comely one.

O Dweller in Paradise, Urvashi !

When evening descends on the pastures , drawing about her tired body her
golden cloth

Thou lightest the lamp within no home

With hesitant wavering steps, with throbbing breast and down cast look

Thou dost not go shining to any beloved's bed in the hushed midnight

Thou art unveiled like the rising Dawn

Unshrinking One!

(2)

Like some stainless flower, blooming in thyself

When didst thou blossom, Urvashi!

That primal Spring, thou didst arise from the churning of Ocean

Heater in thy right hand, venom in the left

The swelling mighty sea, like a serpent tamed with Spells

Fell at thy feet

White as the kind blossom, a naked beauty adored by the King of Gods

Thou flawless one!

(3)

What thou never had, never maiden of tender years
 O eternally youthful Urvashi,
 Sitting alone, under whose dark roof
 Didst thou know childhood's play toying with gems and pearls?
 At whose side, in what chamber lit with the flashing of gems
 Lulled by the sea waves' chant, didst thou sleep on coral bed
 A smile on thy pure face?
 In full blown beauty.

(4)

From age to age thou hast been the world's beloved
 O unsurpassed in loveliness, Urvashi
 Breaking their meditation, sages lay at thy feet, the fruit of their penance
 Smitten with thy glance, the three worlds grew restless with youth;
 The blinded winds blew thine intoxicating fragrance around
 Like the black bees honey drunken, the infatuated Feet wandered,
 with greedy heart
 Lifting chants of wild jubilation
 While thou..... thou goest with jingling anklets and waving skirts
 Restless as lightening.

(5)

(5)

In the assembly of Gods, when thou dancest in ecstasy of joy
O Swaying wave Urvashil

The companions of billows in mid ocean swell and dance beat on beat,
In the crests of corn, the skirts of earth tremble;
From thy necklace stars of f in the sky

Suddenly in breasts of men, the heart forgets itself,
the blood dances!

Suddenly in the horizon thy name bursts ———
Ah, wild in abandon.

(6)

On the Sunrise Mount in Heaven, thou art the embodied Dawn.

O wild enchanting Urvashil

The slender form is washed with the streaming tears of the Universe
Theuddy hue of thy feet as painted with the hazards blood of the three worlds
The tresses escaped from the braid, thou hast placed thy light feet
The lotus feet on the Lotus of the blossomed Desires of the Universe!
Endless one thy masks in the minds' heaven.

(7) O Consort of Dreams!

(7)

Hear what crying or weeping One, every where rise for thee

O cruel deaf Urvashil

Say wilt that Ancient prime ever revisit the Earth ?

From the shoreless unfathomed deep wilt thou rise again with wail looks ?

First in the First Dawn that formed will show

In the startled Gaze of the Universe, all thy limbs will be weeping

The water flowing from them

Suddenly the vast sea, in sounds never heard before,

Will thunder with its waves.

(8)

She will not return, she will not return ! that moon of glory has set
She has made her home on the Mount of Setting has Urvashin
Therefore, the Earth today with the joyous breath of Spring
Mingles the long drawn sigh of some Eternal separation
on the night of full moon when the world brims with laughter
Memory from some where far away, types a flute that brings unrest
The tears gush out
Yet in the weeping of that spirit Hope wakes and lives
Ah unfettered one ?

अरविन्द षोड की उर्वशी

वर्धिर योगी अरविन्द ने कालिदासकृत विष्णोर्वशीयम् का 25 सर्ग की अवस्था में सन् 1896 में काव्य-स्वान्तर किया है। यह स्वान्तर अंग्रेजी भाषा में है और चार सर्गों में विभाजित है। कुल मिलाकर इसमें 1580 काव्य पंक्तियाँ हैं। कवि ने इसका अंग्रेजी शीर्षक दिया है—व हीरो एण्ड दी निम्फ :

उर्वशी की कथा बभ्रुवेद, शतपथ ब्राह्मण, पुराणों एवं कालिदास के नाटक विष्णोर्वशीयम् में भिन्न छिछोरे भिन्न स्वत्वों में प्रस्तुत की गई है तथापि अरविन्द षोड ने इस कथा की आत्मा में प्रवेश कर इसे एक भिन्न परिवेष्ट प्रदान किया है। स्वयं कवि ने उर्वशी के विषय में लिखा है कि पौराणिक उर्वशी ब्रह्माण्ड में काल्पनिक सौन्दर्य की आत्मा है, वह ऐसा दुष्प्राप्य आदर्श है जिसे उपलब्ध करने के लिये मानवी आत्मा तृप्ति होकर आध्यात्मिक प्रयास करती रहती है, यह ऐसी देवी है जो अम्बरा स्व में सभी देशों और काल सीमाओं में जाकाशित है। केवल तभी व्यक्ति उसे प्राप्त कर सकता है जिस ने कविता और आदर्शों की उसी एक स्मृति और संवेदक संगति में अपने जीवन को ही काव्य मान लिया हो, जिस का अपना जीवन ऐश्वर्य-युक्त महा काव्य हो और जिस की आत्मा देखते-देखताओं के प्रति सदा और मेघोपम हो। यह व्यक्ति दुर्लभा ही है।¹ नायक दुर्लभा सैजस्य दुर्लभ है और अम्बरा उर्वशी सुन्दरीनायिका। दोनों ही सौन्दर्य निवेष्टित हैं। यदि उर्वशी स्वयं ही अम्बरा है तो स्वयं भी दुर्लभा ही की भाँति दुर्लभ है।² इस नाटक का वास्तविक सौन्दर्य तो इस अद्वय प्रेम-मादुर्य में है जो

1:- Aurobindo - Kalidas Page 54 (Second Series)

The Urvasie of the myth ---- is the spirit of imaginative beauty in the universe, the unattainable ideal for which the soul of man is eternally panting, the goddess adored of the nympholest in all lands and in all ages. there is but one who can attain her, the man whose mind has become one mass of poetry and idealism and has made life itself identical with poetry whose glorious and starlike career ^{close} has itself been a conscious epic and whose soul holds friendship and converse with the Gods. This is Pururava.

2. Ibid page 67.

If this is the nymph of Heaven, one thinks, the heaven must be beautifully like the earth.

पुरुषवा और उर्वशी के चरुदिक व्याप्त है। वे एक दूसरे को प्राप्त करते हैं, वि-
विधोगी होते हैं, विधोगी हो कर फिर संयुक्त होते हैं और इन्हीं त्यागस्थित
नितियों में नाटक की वास्तविक संगति निहित है। पुरुषवा उर्वशी को और
प्रेम-सुखित हो बढ़ते हैं, उर्वशी विनयेष्टा को बाँह का सहारा लिये भ्रष्टान्त
सुखी में नेत्र निमीलित रहती है। वे कहते हैं:-

O Thou too lovely!
Recall thy soul, the enemies of Heaven
Can injure thee no more; the danger's over,
The Thunderers' puissance still pervades the world,
O then uplift these long and lustrous eyes
like sapphire lilies in a pool where dawn
Comes smiling.

कालिदास का श्लोक है:-

सुन्दरि! समारवन्ति सगरवन्ति ।
मनु मयं भीत सुरारि तम्रं
विजयो रथी मरिचार्थि कुरु वज्रिणः
तदेतदुन्मील्य चतुराणां

महोत्पलं प्रत्युत्पीडयद्दिग्गम्भी । संक 1/5

अरविन्द मे Long lustrous eyes like sapphire lilies कर कर
काच्य में न ह केवल अलंकारित होना ही बढ़ाई है अपितु उसके मूल भाव को
भी सौन्दर्य से आवृण्व कर दिया है।

अरविन्द की उर्वशी के सभी कथा सुन लेव - प्रवर ब्राह्म-पुराण एवं
सौन्दर्यलक्ष्म में उपलब्ध कथानकों से लिये गये हैं। किन्तु उनकी रचना कालिदास
के विष्णुमार्कण्डेयम् के कथानक का अनुवाद होते हुए भी भिन्न है। पुरुषवा मे
जीवन छात्री स्वर्णिम सुमारी उला का दर्शन किया जिस के चरुदिक स्वर्ण की
आभा से प्रदीप्त मेनका, मिथिलेशी, मल्लिका, रम्भा, मीमीमा, गीता,
मासिनी, ललिता, तिलात्तमाकेसी अप्सराओं के बीच में वह भी थी।¹ वह
उर्वशी। उस अनाम वरिष्ठा उर्वशी को देख कर पुरुषवा का मन उत्ताप्त तरंगों
के समान आकाशित विस्तारित होने लगा।² पुरुषवा अप्सरा उर्वशी के सौन्दर्य
को देख कर आश्चर्य चकित हो गये। कठोर हृदय और पुरुषवा सौन्दर्य-वृष्टि
उर्वशी के समक्ष प्रयासिभूत हो कर पत हो गये:-

-
1. Collected poems and plays - Aurobindo vol I Page 40
 2. Ibid Page 41

Set thy foot upon my heart
 O Goddess! woman, to my bosom move
 I am Pururavas, O Urvasic?

पूर्व स्थिति से हमें: हमें: चिह्नित उवा की स्थिति में उचित उर्वसी ने पुरुरवा के मन पर अधिकार कर लिया। उनका संयोग तो देव लोक में ही निश्चित हो चुका था। पुरुरवा से मला कीन विवाह करता कुमारी बता का पुत्र था यह। उर्वसी ही एक मात्र ऐसी इच्छा-पुत्री थी जिसे माता ने जन्म नहीं दिया था जिना पिता के उत्पन्न कुमारी बता का पुत्र पुरुरवा और जिना मात के नारायण इच्छा की पुत्री उर्वसी ही दाम्पत्य सुख भोग सकते थे अन्य कोई नहीं।¹² युवा पुरुरवा अभी उर्वसी को निष्पत्तक निहार ही रहे थे कि आकाश में तीव्र ध्वनि हुई और देव्य ऐसी ने उर्वसी का अपहरण कर लिया। पुरुरवान तुरन्त ही उसे अपने बाहुवत्त से मुक्त कर लिया। ऐसी ने उर्वसी को हिमालय नग पर छोड़ दिया। पुरुरवा उर्वसी के पारस में बैठे उसके अनिमित्त सौन्दर्य का वान करता रहे। उनके पौलव पर उर्वसी भी मला की मुक्त न होती।

पुरुरवा-उर्वसी का प्रेम उन्माद बन गया। उर्वसी मर्त्य लोक के मानवी प्रेम - वात में सुख-दुःख दोनों ही अनुभव करती। लक्ष्मी तयंवर में पुरुरवास्तम के स्थान पर पुरुरवा शब्द का उच्चारण, भारत का शाप, मर्त्य लोक का जीवन सभी उस प्रेम भाव के मदीयन मंदिर विस्तार में वृप्त हो गये और पुरुरवा के समक्ष उर्वसी का चित्र अशोदात्रि रहता रहा।

दूसरे सन के जन्म में अनुसूचित जानन्द के जायेग का वर्णन अधिकतम है। इन दान जन्म चैटाओं में उर्वसी-पुरुरवा का युग्म रोमांच की मातृता में सुख हो चुका है।

1. Anubhava. Collected Poems and Plays vol. I. Page 42.

2. Anubhava Maudir Annual 1949 Page 76.

It is a union premeditated in the highest heavens
 for who can wed Pururavas, a virgin's son without a
 father born, except Urvasic, a Rishi's daughter without
 a mother born?

3. She Overborne

Panting with inarticulate murmurs lay,
 Like a slim tree half seen through driving hail
 Her naked arms clasping his neck, her cheeks
 And golden throat arrested and wide trouble
 In her large eyes, bewildered with their bliss
 Amid her wind-blown hair, their faces met
 With her sweet limbs all his, feeling her breasts
 Tumultuous up against his breathing heart
 He kissed the glorious mouth of Heaven's desire!

परस्पर के प्रेमाचार से भी सम्पन्न: वह लुब्ध नहीं होती जो प्रणवी युग्म को
 परस्पर प्रेम प्रत्यय पर होती है। कारीरिक प्रेमाचार क्षणिक है, किन्तु प्रेम का
 प्रत्यय स्थायी है। भीमस्त पुरुषों तक तक सन्तुष्ट अनुभव नहीं करता जब तक
 कि उर्वशी उसे अपने प्रेम का विश्वास नहीं दिलाती। प्रेम मानसिक धरातल से
 ऊपर उठ कर आध्यात्मिक स्तर की छींच कर स्थिर हो जाता है। इसी स्थिर
 प्रेम का प्रत्यय चाँदिये पुरुषों को:-

So cling they as two shipwrecked in a surge
 Then strong Pururavas with Godlike eyes
 Mastering her; cried tumultous, "O beloved,
 O miser of thy rich and happy voice
 One word, one word to tell me that thou lovest,"
 And Urvashi, all broken on his bosom
 Her Godhead in his passion lost moaned out
 From her imprisoned breast, my lord my love!

श्रीश्री साहित्य के अमामोक्ष्य नाटक धार सेकवियर, उन, रीजेट्री की
 सम्पन्न: प्रेमावेग के ऐसे लुब्ध ज्वार का और न की शान्त साधुओं की
 स्थिति का ऐसा माननादमक वर्णन करने में समर्थ होते हैं।

शीघ्र कातर पुरुषों का जब क्षणों की मये और उनके उर्वशी से मिलने की
 इच्छा भी सम्पन्न प्रतीत हुई, उस समय अनुहार करते हुए पुरुषों के शब्दों से
 उर्वशी स्थिति की गई। इस मनोवशा का इसके तब पर जो प्रभाव हुआ उसका
 वर्णन बहुत सजीव है:-

Thus stand a while, O fairest
 Thy face suffused with crimson from this gem
 Above the pouring wide its fire and splendour
 Has all the beauty of a lotus reddening
 In early sunlight.

पुलखा मानवी है अथवा अर्ध देवीय, उर्वशी देवीय है अथवा अर्ध मानवी।
हन्नी दोनों का संबंध मम पुन काव्य का आधार है। मानव की देवीय
गुणों से समन्वित करना और देव लोक को मानवी बुद्धि से परिपूर्ण करना,
ज्या बली उद्देश्य से व्यापक ब्रह्माण्ड में होने वाली गतिविधियों पर नाटक नहीं है ?

सात वर्ष तक पुलखा और उर्वशी एक साथ प्रणयोल्लास मग्न रहे, इसी
वर उन्होंने वे साथ साथ विचारण किया है, देव-पुमादीप्त उनको खताने हुई, किन्तु
देव लोक उर्वशी विहीन हो कर शुन्य सा रहा। उर्वशी को पुनः देव लोक
लाने के प्रयत्न हुये, उस भी विफले गये। केनका संहित गन्धर्वों ने उर्वशी के सम्मानवत्
मैथों को दुरा लिया, मग्न पुलखा उन्हें अछाने निकल पड़ा, गन्धर्वों ने उस से
विश्वरूप प्रकाश किया, उर्वशी ने पुलखा को मग्न देखा, परिणय प्रतिश्रुति शीघ्र
हुई, उर्वशी देव लोक चली गई, पुलखा अकेला रह गया। निराश और मग्न
हृदय पुलखा ने, जोषिलों के समान, यौनान्त हो कर अपने मैथियों को कुलाया
और जासु का अभिषेक कर स्वयं उर्वशी की उंच में चले गये।

अन्तिम सर्ग में निराश पुलखा वन, पर्वत, -शालियों, नदियों, कन्दराजों,
और प्रकृति की गोद में उर्वशी को ढोको लिये और देवयोग से अपनी मां चला से
जा मिले। वला ने उसे मातृ मन्दिर में भेष दिया जहां उसे अपने पवित्र संस्कार के
लिये इतारना भी मिलीऔर आशीर्वाद भी। अन्ततः पुलखा भी स्वर्ग - द्वार
पर पहुंचा वही जहां गन्धर्वों ने उनका स्वागत सम्मान कियाऔर वे पुनः
उर्वशी से मिल गईं।

अरविन्द पूरा उर्वशी पर जो ० के ० जार ० नीमिबान आर्यंगर का मम है:-

By rendering the Kurasi legend on an epic scale Sri Aurobindo
has dyed it with shining indelible purpose and crowned it with racial
and prophetic significance. Its wealth of sensuous elaboration; its
luxuriance in colour and sound; its high arching epic similes
its resounding polysyllabic proper names, its subtle fusion of
personal and national perspective; its forceful delineation of
drama of man's temptation and fall, its suggestion of the filiation
between earth and heaven - these diverse marks of
Sri Aurobindo's make a grand total of creditable achievement
in the difficult epic genre.

- Around Maudir Annual 1949 Pondy.

भारतीय साहित्यालोचकों ने अरविन्द पर आक्षेप लगाया है कि उन्होंने ने अपने उर्ध्वी काव्य में १९वीं सदी के सौन्दर्य मान और एलिज़बेथ युगीन अंग्रेजी नाटकों का अनुकरण किया है। अरविन्द ने प्रतिउत्तर में यही कहा:-

कालिदास कृत विक्रमोर्ध्वीयम् नाटक निश्चय ही पूर्ण रूप
के सौन्दर्य निवेदित है। कालिदास एलिज़बेथ युगीन
नाटक कार्यों से सदात्त सर्व पूर्ण नाटक रचना कर चुके थे।
वास्तवः सभी संस्कृत नाटक कार सौन्दर्य भावना से ही
भावित हैं। हां, उन में कुछ दुःखान्त भाव नहीं हैं
और ममता रूप में ये नाटक एलिज़बेथ युगीन सुखान्त नाटकों से भिन्न
नाटकों के समान ही हैं। अतः मैं ने इस नाटक को
एलिज़बेथ युगीन सुखान्त सौन्दर्य प्रदान कर कोई
दोष नहीं किया है। ।

000000000000

हिन्दी साहित्य में उर्वशी चित्रक रचनाएँ

जय शंकर प्रसाद का उर्वशी चम्पू:-

जब कि जय शंकर प्रसाद ने सन् 2014 में प्रकाशित चित्राधार में उर्वशी को संकलित किया। इसके पूर्व चम्पू अंश, 1919 के अंक कला 6 क्रि. 4 में इस का प्रकाशन हो चुका था। उर्वशी का मैं प्राय ऐतिहासिक वैदिक-ब्राह्मण कालीन सूत्र मने ही हों किन्तु इसका प्रथम एक महीन इतरक धरातल पर हुआ है।

मृगया से कालि, धीरे के वन-प्रान्तर में प्रत्येक युक्त होने की चेष्टा करता हुआ सख्त सान्ध्य गगन के अन्तर्गत गायी सुर्य हरिणों से देवीप्यमान रत्नं किरीट धारण किये हुये एक युक्त प्रकृति सौन्दर्य निरख रहा है। उसी समय किसी रम्भी की कातर वाणी सुनकर वह सरोवर तीर गया जहाँ उसने कमल चुन्नों से डीङ्गा रत एक परम साव्य मयी युक्ती की देखा। मयभीत युक्ती युक्त की देह कर आनन्दत हुई। युक्ती ने तिल-कटाव किया, किन्तु युवा पुरखा उद्यान की ओर लौट गये।

चन्द्रोदय के समय वही रम्भी वीणा धारण किये हुये मेघ शिखरों को लेकर पुनः उद्यान में पुरखा के समीप गई। युक्ती उर्वशी पुरखा पर आसक्त हो गई, बोली --- ये मेघ शायक अत्यधिक वृष्टि हैं, आप उन्हें समाप्त करें। और वह अपने यत्नान्तर हीट जाने लगी।

उर्वशी के सौन्दर्य से अभिभूत पुरखा उस प्रमत्त रम्भी से और भी प्रभावित हुये, उन्हीं ने इस सुन्दरी के विषय में अपनी जिज्ञासा कुछ प्रकट की। सुन्दर उर्वशी ने अपना परिचय दिया और कहा कि वह गन्धर्व कुमारों-राक्षस के कारण वह उद्यान में आई है। यार्ता-माधुर्य से दोनों की काम प्रयोजित हुये। उर्वशी ने वीणा मंगल डीङ्गा और पुरखा ने उसे अपने बाहुधर में बाँध लिया। परस्पर परिचय और प्रणय का परिणाम लज्जक 'कन्द' युद्ध की सम्पादना में परिणित हो गया।

केन्द्रक गन्धर्व ने उर्वशी की जीवा में माला जल दी। पुरखा ने उसे समझाया। केन्द्रक ने युक्ती स्वीकार की और खुद होने लगा। केन्द्रक पराजित हुआ किन्तु राजा की विरक्त मत्त लौट गये।

उर्वशी ने केन्द्रक का उपचार किया। उसने पुनः वीणा संगीत की और पुरखा उस से मिले। ये केन्द्रक का वह कर आनन्द, किन्तु बाबाई न कर सान्ध रहे। केन्द्रक की उर्वशी ने हटा दिया और तब भी विनाश साधनी हुई।

छोड़ी देर में उर्वशी चिल्लाई --- मेरे बच्चे! जाह, मैं वस भीत वृद्ध का अवात्मकन से कर मछ हो गई। राजा ने कारण जानना चाहा तो उर्वशी ने कह बताया कि केयूरक उसके मेव शावक से कर भाग गया। राजा ने केयूरक का पीछा किया किन्तु व्यर्थ। कोई परिणाम बाध न आया। उर्वशी स्वयं होज करने के लिये गई। राजा की अनुमति विनय पर उसे कोई तरत न आया किन्तु उसने कहा --- हम स्त्रियों के दुःख के दुःखों से भी मरनामक हैं, जाह अपने राज्य में जाहयेजोर प्रजा का पालन कीजिये।

उर्वशी ने जाने से राजा को दुःखी हुये।

उर्वशी विषयक अन्य गीति नाट्यः--

विष्णुमोक्षी:- जय्य रंजित भट्ट का यह गीति नाट्य जरीत, 1950 में प्रकाशित हुआ। विष्णुमोक्षी कालिदास जीर्णक गीति नाट्य संग्रह में संकलित है। और इस संग्रह में कालिदास का भिन्न भिन्न को भी नाट्य-रस मिलता है। जहाँ कालिदास कालिदास नृत्य वृद्ध भिन्न है वहाँ मेकल और विष्णुमोक्षी गीति नाट्य है। विष्णुमोक्षी ध्वनि स्पष्ट है। इस का प्रथम कालिदास के विष्णुमोक्षीयम् नाटक की ही रेखाओं से निर्मित है जहाँ यह कहना चाहिये कि नाटक का रंगी संस्कृत की हिन्दी में भाषान्तरित कर दिया है। जोई महीन प्रयोग का राज्य में नहीं मिलता।

उर्वशी भान भनः-

भी जानकी वसन्त शास्त्री की रचना है। इस रस में भी जिन शास्त्री की हैं संगीतिका कहते हैं कथानक की दृष्टि से जोई महीनता कहि नहीं, हाँ, गीतारमक लय अवसर महीन है।

०००००००००००

उर्वशी का कथानक

1:- दृष्टिकोण:-

दिनकर की सर्वश्रेष्ठ कविता रचना उर्वशी 1961 में प्रकाशित हुई और उस रचना पर भारतीय ज्ञान पीठ ने एक लाख रुपये का पुरस्कार भी दिया है। काव्य के प्रकाशन के पूर्व किन्तु काव्य की समाप्ति पर दिनकर जी ने वस्तु की एक काव्य बन्ध लिखा था¹ और उस में ही उन्होंने कहने की शीघ्रता किया है कि उर्वशी लिखने की श्रेष्ठ प्रेरणा उन्हें कदा से बौद्ध धर्म के प्राप्त हुई। उर्वशी का कथानक अति प्राचीन है, वैदिक कालीन है, किन्तु दिनकर जी ने जामिनी मन्त्री व्याधायें और तम दोनों की ही मूल लिया है। ये पितृ प्राचीन है उत्तरी मन्त्री भी। प्राचीन तो केवल कहने पर के लिये है, सम्भवतः उस प्राचीन काल में मन्त्री जीवन दृष्टि और अनुसंधान परा है।

उर्वशी पर की प्राचीन कथा
पर इस कविता की मूल व्याख्या
आज के विज्ञान युग की है

एक की एक हारी समय की है।² --- दृष्टि तिलक से
उर्वशी कविता की मूल व्याख्या कवि की था कि आज के विज्ञान युग की
या फिर कुछ और

उर्वशी आकरिमत रूप से काव्य की रचना हो, ऐसा नहीं है। कवि के सम्मुख हयवेद का उर्वशी-पुरुषा सम्बाध था, कालिदास का विष्णुधर्मोपनिषद् नाटक था, रवीन्द्र कृत उर्वशी थी और अरविन्द कृत द्रौपदी में हीरो एण्ड द मिन्क था। परीक्षा: कवि ने इसे स्वीकार ही किया है और अपने काव्य में उनका यत्र तत्र उपयोग भी। कवि ने पुरुषार्थ विद्वानों और साहित्यकारों से के महत्त्व की स्वीकार पर जो सार्थकता प्रकट की है वह शौचनीय है:-

यह नहीं सामने कालिदास
रस-कला केति - कविता विकास
जोगल का कान्त कवीर्ष्य नहीं
योगी साधक अरविन्द नहीं।³

1:- उर्वशी काव्य की समाप्ति पर शीर्षक कविता - दृष्टि तिलक में संग्रहित
रचना का. 2 जनवरी, 1961

उर्वशी प्रकाशन का. 30 जून, 1961

2 दृष्टि तिलक पृ. 98

3 ---वही--- 94

और दिनकर की उर्वशी रस-कला, केलि चिन्ता, ज्ञान और योग साधना का अभिनव संगम प्रस्तुत करती है। उर्वशी का सौन्दर्य कवि के कल्पना लोक में उस उर्वशी की ओर संकेत करता है जहाँ से वह सौन्दर्य अतीन्द्रिय होने के कारण क उन्मीलित के शब्दों में 'किरिचो ना, किरिचो ना' है, दिनकर की उर्वशी भी अन्त में इतनी ही ग्रन्थिग्रस्त हो कर अर्न्तध्यान होती है कि एक ही मूक ध्वनि होती रहती है --- अब वह फिर नहीं जायेगी। मुकाम्या का कथन है कि उर्वशी को लोखने का यत्न बुधा है:-

बुधा यत्न, इस राज-मन्त्र में अब उर्वशी में नहीं है

धली गयी वह बहते धारा, जहाँ से झूलत पर जाय थी।।

इस परिवेश में उर्वशी कथानक का अध्ययन अवैध है। दिनकर की उर्वशी में सन्दर्भ सत्य ठीक नहीं है जो दिनकर पूर्व प्रेक्षाभित्त प्रकाश ग्रन्थों में वर्तमान है किन्तु उनका संगमन और चित्रण सुख्य और रंजित चिन्तनों के माध्यम से कविने प्रस्तुत किया है। सभी सम्पर्क में उर्वशी के अध्ययन में नवीन दृष्टिकोण भी अग्र्य अवधाना साक्षित है।

१:- धरातल:-

उर्वशी ने दो उल्लासपूर्ण हैं --- एक छमा क्रम की और दूसरी वर्णन क्रम की। कथानकों का धरातल धूमनाओं पर आधारित है। उर्वशी नंद पर जाने से पूर्व कुछ सुधार की कल्पना के द्वारा है। उनके गीति नाट्यों की विवेचना नहीं है कि सुख्य-विज्ञान की व्यापारविज्ञान से औपमुख्य की धृष्टि होती है और अभिनव के प्रति आकर्षण सहज हो जाता है। इस से हट कर कवि का एक मामूली परिवेश भी है। सुखा-ज्ञान के कवि के अन्तर में जो रसधन्वी प्रकाशित थी, किन्तु जो अभिव्यक्त न हो सकी यही अब यौवनोदयान पर मन्दार्थिकता बन कर सरस हो उठी है। कवि ने अपने व्यक्तिगत यौवन-दुर्लभ यहाँ ज्ञानाकार में ही छोड़ दिया है, किन्तु मन की ग्रन्थि मंदिरुल न सकी तो उस से उस प्रकाश में ही का ही गर्व क्योंकि भीम प्रेक्षा किंतु भी सरस हो गयी जिस ने कवि को इसी विवेका में उल्लेख रखा कि उसे खण्ड कर या न करे। इस मुख प्रेक्षा पर तब दिनकर की का विचार है:-

किन्तु उस प्रेक्षा पर ही मैं ने कुछ कहा ही नहीं जिस ने आठ वर्ष तक प्रसिद्ध रह कर यह काव्य मुझ से निवृत्त किया।

अकथनीय विषय।

१:- उर्वशी पृष्ठ 157

सायब अपने से असम करके मैं उसे देख नहीं सकता, सायब यह
अतिरिक्त रह गई, सायब यह इस पुस्तक में व्याप्त है। १

डा० राम विनायक शर्मा ने इस पाठ्य पुस्तक को कहा है--- भगवान् पर बाठक
को इस प्रकार प्रकट होने से बचावे। २

अपनी ही इस विचारधारा का उत्तर यदि बहिले ही है मुका इतीत होता है:-

मैं ही पुस्तक राजा या
या, तब अब से कुछ ताजा या
या उसे विनाशता कैसे हुए
हुए मैं पीता था सोम-जुल
उन दिनों सोम से खाली था
मैं बहुत कुछ उस खाली या
उत्पत्ती बाद कर के वा सुते
हंस बड़ी सामने कर के सुते
कब मिया की पैसा, तब नर
पुनः गा देने नहीं अहं
उत्पत्ती कंठ से पुन गई
जो पुनः था, तब पुन गई। ३

कवि का व्यक्तित्व है। जीवन में जो अनुभव प्राप्त किया उसका एक ही निष्कर्ष
निष्कर्ष या सदा है:-

सातायें और उठाती हैं
उत्पत्तियाँ सोच उठाती हैं। ४

और यह दर्शनाचार्य कवि भाषा के क्षेत्र में करने की कितना जिज्ञासु हैं
या परीक्षितियों से सम्बन्धित कर रहा है या तबहुत किसी सिद्धान्त को
प्रतिस्थापित करना चाहता है

मैं पुनः गा हूँ कि बचन
अथवा मेरे ^{मेरे नरक} नरक का मन
सहचर है परी पदान्ता का
या जीसीनरी दुःख का ५

१:- उत्पत्ती पुस्तक पुस्तक

२:- डा० राम विनायक शर्मा---विनकर की उत्पत्ती : दो पुष्टिपत्र

३:- मुक्ति तिलक पुस्तक ११

४:- वही पुस्तक १६

५:- वही पुस्तक १७

और हार कर उड़ रहा है:-

जो त्रिया अन्त में जाती है
वह क्यों सब पर छा जाती है
क्यों नीति काम को मार गई
अपसरा सती से हार गई।

उर्वशी काव्य के अन्त में औशीमरी ही रोष अछाती है, वही नीति का बिम्ब है।
उर्वशी वसंते पूर्व ही अन्तर्धान हो चुकी है, वह काम - प्रतीक है। नीति ने
काम को मार दिया यही समाप्तन है, सिद्ध है। लेकिन कवि चिह्नकों से प्रसिद्ध
है। काव्य समाप्त हो चुका है, काव्य बिम्ब प्रत्यक्ष हैं जाग्रत स्वप्न है
रात को ही सब हुआ है:-

जाने अब मिट्टा जायेगी
या आज रात उड़ जाये नगी
यी ही टजोले मन अपना
देखो उर्वशी का तबना।

कवि के भीगे हुए सत्य संजोयी हुई कल्पना का वैचारिक परिवेश उर्वशी है।

३:- उर्वशी का अन्तःकरण:-

अधिकारिक:-

उर्वशी का कथानक पाँच अंकों में समाप्त हुआ है।

प्रथम अंक की मंच लग्ना का निर्देश देते हुए कवि ने

प्रतिष्ठानपुर, जो राजा पुरुषोत्तम की राजधानी थी, के समीप पञ्चम धृष्ट कामन
में रुँधे छीनो रात में लटी एवं सुप्रधार की प्रकृति सौन्दर्य का भोग करता हुआ
प्रस्तुत किया है। सुप्रधार प्रकृति सौन्दर्य से अभिभूत होकर वातावरण की सृष्टि
करता हुआ कहता है:-

पृथ्वी तल पर पञ्चम की है, आकाश में आकाशी का
खल चन्द्र अपनी पराजितना चिह्नित कर रहा है,

आकाश दीप फूल पर टके हुए तितारों की भाँति
न्योतिर्नय हैं अथवा शान्त उदधि के तल पर अनेक दीप
विश्रान्त रहे हैं।

आकाश में चन्द्र की मन्दार मति और धारा पर लीला
मंद सुगन्ध वायु, मानो प्रेम-विजल हो कर अलग रहने
परम धरे सुखी पर जीव रही है। अथवा ऐसा प्रतीत
हो रहा है जैसे आकाश अस्मिन्नी भूवाओं के आर्त्तमन-
वाह में लल ली बाँधने के तिते आकाश हो।

सभी आकाश मार्ग से रासाओं और दूरियों की ध्वनि को सुनकर सबसे बड़ी उस
 वज्रम वज्रम वज्रम में दूरियों की ध्वनि का अनुमान लगाती है। जैसे अप्सरायें
 उस दूरित काल के दूर लोक पर धूम मचाती हुई कल कल स्वर से उत्तर रही हैं।
 ये देवों की सीमा राशिनी है या स्वर्ग प्रतिमायें हैं, वज्रम की लक्ष्मी है
 या कविता की शक्ति वास्तवः ये तो काम के मन की कामना - अप्सरायें हैं
 जो अद्वैत प्रेम की जीवित प्रतिमायें हैं। ये अप्सरायें स्वर्ग छोड़ धरा पर
 विहार करने आई हैं। पत्तियों के आगमन से बड़ी और सुन्दर पेड़ों को जीट
 में छि जाते हैं। अप्सरायें स्वर्गीय रात में आनन्द में समस्त गायन करती हैं हुई
 विहार मन हैं। गायन और नृत्य मन अप्सरायें परस्पर सम्भारण करने
 लगती हैं।

रामा-मेनका संवाद में स्वर्ग-दूरियों की का मूलतः अन्तर स्पष्ट किया
 गया है। रामा के अनुसार धरती का जंगल देव कर राम भी ईश्वरानु को
 उठा है। स्वर्ग लोक भरणी सीत है, इस मंगल सौन्दर्य का प्रतिमान है जबकि
 स्वर्ग लोक अमिट, तिमिरनिर्मुक्त शिवा साकल देव-काया-काचित उत्पन्न है।
 दूसरी ओर न स्वर्ग मानवी धूम भी अमितीय है जो देवों की भी दुर्लभ है।
 देव लोक के प्रानी मन्त्र-दायी है, स्वर्गमयुक्त अन्न करते हैं, रूप भोगी हैं,
 किन्तु स्वर्ग लोक के में स्व-भोग, स्वनाम, स्वरा सुप्ति, एवं निर्द्विष्ट प्रेम
 संबंधों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। मानव की शक्ति भगता दूर्यु लोक से
 देव लोक तक को प्राप्त करने में सक्षम है, किन्तु देवता राम मन्त्र सीमा के पार
 भोग नहीं कर सकते। यह अन्तर ही भगता जिस काम का जो आनन्द को जीवन
 न जो लगे।

दूर्यु लोक की वह प्रतीति पर मन्त्रमय मेनका पर ज्ञान करती है कि वह
 भी क्या किसी मर्त्य मानव को प्रदत्त है करती है। लगता है कि वह भी स्वर्गीय
 के समान मन्त्रमय ही मर्त्य लोक की प्रतिमा गा रही है।

स्वर्गीय मानव लोक लेने पर ही रामा ने आश्चर्य करते हुये पूछा कि आज केविहार
 प्रमोद में स्वर्गीय उनके साथ क्यों नहीं आश्चर्य उत्तर दिया लक्ष्मणा ने ---
 एक दिन सुंदर के घर से जीवित हुई स्वर्गीय पर एक देव्य केशी ने आक्रमण किया
 और उसे अपनी सख्त बाइों में समेट कर उड़ गया। मर्त्य लोक के एक वरम और
 और सौन्दर्य की सम्मान एक राजा ने हमारा आर्तनाद सुनकर स्वर्गीय की राह में
 दूता किया। वह राजा सुन्दर के ही सुन्दर थे, तीर और वीर्यवान थे,
 स्वर्गीय की हमारी स्वर्गीय प्रदत्त से समर्पित हो गई। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वर्गीय
 एक देव लोक का परिरक्षण कर अपने द्विष्ट के पास रहेगी। 2 उधर राजा

1:- स्वर्गीय पृष्ठ 10 - 11

2:- स्वर्गीय पृष्ठ 12

बुद्धिवादी की उर्वरी प्रेरणाओं में निमग्न है। विभिन्न चक्रों के सम्पर्क में प्रेम विषय की चर्चा करते हुए सद्यः कथनी है:- इसकी वर सब रोगों से कठिन प्रणय है। प्रेमी युग्म किस प्रकार मिलन-प्रतीक्षा में पीड़ा भोगते हैं, मित्रा विहीन रातें काटते हैं, छोटे छोटे मनोरंजन मरी मरी आँखें लिये किसी की तस्वीर का स्वप्न जीकत करते करते हैं। सम्भवतः प्रणय-गीत उर्वरी भी तब से खोज खोज रहती है, वह प्रथम मोहिनी की हस्त की गर्ज है। सद्यः कथनी की आशंका है कि उर्वरी यदि उर्वरी होकर चली गई तो स्वर्ग की भीषण नष्ट हो जायेगी।

रम्या प्रेम को केवल मानवी मानती है। वह मानव लोक में ही प्रतीक के होते हैं, देवताओं की तो वह प्रतीक है ----

प्रेम मानवी की निधि है, आसनी तो वह प्रीति है
प्रेम हमारा स्वाद, मानवी की जातुल प्रीति है।

----- उर्वरी जीव । पृष्ठ १५

उसके लिये प्रणय, कामना और काम में कोई अंतर नहीं। देवता या मानव के साथ रमण-परिरमण केवल मनुष्य जगत में प्राणों का प्रणय है। उर्वरी उर्वरी नर की अपने रज्जुबद्ध तन के रंग में रंग कर उधर-तस्वीर का शोक करती है। से अमरायों और अपने जीवन सौन्दर्य की मनुष्य के लोभ उर्वरी में प्रीतिवादी की प्रकाश एक रसमय विनोद है। अमरायों के जीवन सौन्दर्य के लोभप्रिय हैं, लज्जित-गीत, आनन्द-संगीत, वस्त्र विचार की ये वृत्तियाँ सब मानवी जगत में खोजी गयी हैं। दुर्गा और दया उर्वरी के वर व्याप्त मानवी मानवी मानवी की ये वर खोजी गयी हैं। प्रेम की मादकता में भी मानवी निहित है। प्रत्येक प्रणयिनी नारी की मातृत्व का दायित्व लेना पड़ता है। मातृत्व से जीवन-सौन्दर्य विनोद होने लगता है ----

और मातृत्व की वृत्ति उर्वरी प्रणयिनी उर्वरी है
पर, माता का वर नारी का वर नहीं लगती है
तन बोझाता शिथिल, दान में जीवन गल जाता है
ममता के रस में प्राणों का केवल विचार जाता है।

----- उर्वरी जीव । पृष्ठ १५

यही नहीं, इसकी वर रोग, शीतलता, वर सब आते ही रहते हैं और बुद्धि के प्राणी विचार निवृत्त हो रहते हैं। नारी जहाँ वर कण्ठ मनु के लोभ के लिये समस्त विनोद विनोद के वर कर बुद्धि की जाती है। रम्या की ऐसी बात सुनकर सद्यः कथनी के लिये जाने की आसुर उर्वरी के प्रति खड़ी दया और शीघ्र है। रम्या के उसे और उत्तेजित करती है। मातृत्व के कारण उर्वरी का सौन्दर्य तो दृढ़ ही जायेगा साथ ही इसकी विनोद चर्चा भी बदल जायेगी। वह युक्त-विचार प्रेम और सौन्दर्य, आनन्द पूर्ण आनन्द-प्रणय, गीत-नृत्यादि के आनन्द से खींचा रहेगी। उसका कार्य तो अन्य नारियों की भाँति केवल यह होगा

पुनः पत्नी होंगी, बिन्दु की मोहनी में बहारायेंगी
 मंदिर तान जो जोड़ साँक सेकही सोरी गायेंगी
 कहिले भी कंधुली और ते ^{सो} भीली भीली
 मेह लगायेंगी समुद्र से देह दौं जी दीली।

----- उर्वशी अंक । पृ० १७

मेनका, बिन्दु ऐसा नहीं सोचती। मेनका ने मान्य - सामान्य भोग है, प्रेम
 के मध्य और साधुत्व के आनन्द को वाग है। मारीतल जो सम्पत्ता केवल
 रह-केल कला/विलास में नहीं, साधुत्व में भी है। अपने को दिन शिला की
 मोति गला कर परस्मिन्नी जगता हो तो वह भाग्य है जो देवागताओं को दुर्लभ
 है।

पर भी या अभी बात यह भी मन में आती है
 भाँजने की किया कहां से कहां पहुँच जाती है
 गहरी है निमगिता सत्य हेतुन देह जो हो कर
 पर, जो अभी यह असीम आनी परस्मिन्नी हो कर।
 कृता जनम को देह मानित केली मन में जगती है
 परमात्मा भी नहीं। कृते को कही किया गहरी है।

----- उर्वशी अंक । पृ० १७

ठीक इसी अवसर पर बिन्दुका आकाश मार्ग से आकर-प्राप्त होती है। यह
 अज्ञानी है कि अर्द्धी संसार में ही राजा पुरुषरा के मिलने के लिये साधु है
 और अज्ञानी यह है कि अपने लगी नि रति जान कान्त का अंक नदी वाहुंगी
 तो शरीर को और अज्ञान में निरुद्ध हो मिल आल केलेगी। अर्द्धी यद्यपि
 सम्पूर्ण प्रीति का ही सम्पत्ति है तथापि वह एक अज्ञान मान है, अल्पता का सुख
 है, अल्प वासनी जीवन है। अर्द्धी के मन में आनन्दोत्पत्ति है, उसके शरीरगत में
 अर्द्धी लगी ही नहीं है, निराकार की मन की अर्द्धी को जग देने की कामना है,
 मन की आग के प्रसार में ^{मन} करने की लीला का है और यह सभी सम्पत्ति है जब यह
 राजा पुरुषरा के आनिमन पात्र में लगी हो। फिर मेहा भी उर्वशी को राजा के
 प्रसन्न मन में पहुँचा का ही आई है। मेनका को यह है कि राजा पुरुषरा भी क्या
 इतने ही प्रणय-पराकृत हैं यहाँ तक कि उनकी प्रेम का क्या अतिरस? फिर मेहा उसे
 आश्चर्य करती है कि राजा के मन में भी अर्द्धी लगी ही प्रणय-अर्द्धी का संसार
 हो रहा है, तो भी उर्वशी को अभी व्याकुलता है चाहते हैं:-

नहीं उर्वशी नाहि नहीं, कामा है निखिल भुवन की
 सब नहीं निरुद्धकल्पना हैकटा के मन की

४ २

मेरी सब दुःखार मोहिनी। क्या नहीं चायेगी
 आज नहीं तो कल तुझे ³² ~~कल्पवृक्ष~~ में सब उड़ संजवायेगी
 और वही चायेगी नीचे तुझे उतारन मन से
 या फिर देह जोड़ में ही मिलने आर्द्ध मा मन से।

----- उर्वशी अंक । पृ० २५

~~सम्पत्ति पुरुषरा के एक पत्नी की है। राजा अभी वह मारीतल नहीं करी।~~

परिणीता औशीनरी की नैमित्तिक सामग्री को पूर्ति के लिये धर्म प्राप्त करना है।
 न वह स्वयं ही ज्येष्ठ श्रेष्ठ महाराज की उपाय के कारण कर सकती है और न ही
 स्वयं और स्वयंमान की रक्षा करते हुये ही कर सकती है। वह सामान्य
 नारियों की भाँति ही वर्तनी को कामने लगती है। औशीनरी में जातीय है।
 स्वभाविक भी है। अतः वह वर्तनी को नैतिक, धर्म, वापिनी, प्रतीक्षा और
 जातिनी आदि सम्बोधन करती है। निम्नलिखित मदनिका को ही उते धीरे
 देती है, पुस्त के व्यवहार से परिचित कराती है --- प्रीति की प्रथम जागरण में ही
 दुर्गम स्वयं-समाय रूप नारी कर की लगती है। इस अवस्था में पुस्त ही होता है
 पास और नारी होती है स्वभाविकी। वह पुस्त से मिलनी लेता धरा सकती है:-

यही लग्न है वह एक भारी, जो चाहे वह पा ले
 लक्ष्मी की नैतिक, कोकुली का दुस्त संग्रह ले
 रंग-पाने उगमिनी पर्वों की लता के लताक के
 मन्त्राले आरतीक पृथिवी के सिधु के वातक हरे ले ।

औशीनरी इस पुस्त की उत्पत्ति से परिचित है, वह जानती है--- जो अलभ्य, जो
 दूर उसी की, अधिक अधिक चाहता करे। मदनिका निम्नलिखित पुस्त के व्यवहार से
 मिल भाँति परिचित है। वह नारी को समर्पित है, अनाकर्षक है। मिल नई नई
 पुस्त ही-जाँची और नदीय प्रकाश-रीतिनी एवं उद्घाटनानों का जो नारी सुप्त कर
 सकती है, पुस्त ही के धारित रहता है:-

प्रीति में लक्ष्मी सुप्त कर प्रीति नहीं लगती है
 जो वह कर कर यह माँदनी वह पौकी लगती है।
 धर्म धर्म प्रकटे, दूरे, लिये फिर फिर लो दुस्त ले कर
 ले समेत जो मिल की प्रिय है धुलिन लक्ष्मी में ले कर
 प्रीति को रक्षे मने निम्नलिखित जो अलभ्य है यह में
 पुस्त जहाँ सुप्त ले रहता है वह प्रकाश के लक्ष्मी में ।

----- वर्तनी पृ० ३४-३५

मदनिका पुस्त की कामोत्तेजनाओं का, समाय का मनोवैज्ञानिक चित्रण करती रहती
 है और अन्ततः महाराजी औशीनरी अनुभव करने लगती है कि वर्तनी ने महाराज
 पुस्तका के वीर्य पर पूर्ण अधिकार कर लिया है। औशीनरी का निम्नलिखित परम्परा यही
 है कि कति के सिद्धा औशीनरी का कोई आधार नहीं है। नारी की विपरीता है
 उसके आँसु और हम आँसुओं की भी से दिया दिया का संभने का वास्तव प्रयास
 करती रहती है।

1:- वति की धरनी की वति है ----- कावेतः नैतिकी राज्य पुस्त

कुंभुजी के प्रवेश से यह अंक भी थोड़ा गतिशील हो कर रह जाता है। कुंभुजी आकर लक्ष्य देता है कि महाराज पुत्रवन्धना से वरपरारम्भ कर रहे हैं तब तब तब महारानी धर्माचार करें। जोशीमरी इस मूल्य वरपरारम्भ का अर्थ समझती हैं:-

डा. अमोही भांडना :

अप्सरा के संग रमना ही की आराधना है।

किन्तु यह विचार है। उसके अन्दर ही नारी बहुत अलगाव है। अपनी अलगाव और विधा कि उसे जो एक मन में, जीभ पर लाती नहीं। इतिनीता नारी फिर भी प्रियतम की शुभ कामना न करे तो क्या करे --- प्रियतम जाना भी नहीं सर्वप्रथम में पूल हों।

उर्वशी का प्रतीक जंक जो इस गीत का का स्वयं का प्रतीक है। उर्वशी और पुलकित पाद्री की आर में मंच पर अन्तर्गत होते दिखाए देते हैं। परस्पर प्रार्थना की आशा में प्रेमा प्रेम नृत्य अन्तर्गत पर प्रतीक प्रतीक होता है। उर्वशी को पुलकित के प्रार्थना होने की आशा ही है और पुलकित को उर्वशी को पाकर सनसत राग का ही विस्तारण कर लेते हैं। दिग्दर्शकों ने प्रतीक जंक के प्रारम्भ में ही जो प्रतीक का मंच उद्घाटित किया है जो माटक की भावना के निस्तान्त अनुभूति है:-

पुत्रावः कृतवन्तः पुनरन्तं वरेदि, कुरावनावातइवाहमात्त । १

राजा पुरुषदा उज्जैनी लो देव से युक्त कर शिव भज लोटे, लभी से व्याकुल
 दुःख है। समय, दिन, रात, सबमें डूबे व्यतीत हो गई, उस प्रेमी युक्त को मास
 न हो सका। पुरुषदा बन्ध से उज्जैनी को मांग नहीं सके क्योंकि उमड़े शिष्यत्व की
 बंधावा छटती थी। वे व्याकुल बने रहे जब तक कि उज्जैनी स्वयं इन के पास आकीर्ति
 हो कर न जा गई। उन्हें न तो स्वमित्री तरण की भाँति उज्जैनी को प्राप्त करना
 स्वीकार था और न ही बन्ध^{से} नाश कर उसे प्राप्त करने में उनका अंत कुछ होता था।
 वे तो अनासीन लोग थे ही प्रिय की आसक्ति प्राप्त करने की चाहना करते थे।
 यही उन्हें मिलती थी उज्जैनी के स्वयं को समेत सब कर उन^{के} ऊपर होती। उज्जैनी
 बस तरह है दार्शनिक जीवन की कल्पना भी नहीं करती। वह तो ब्रह्म लोड
 का ताप तप्त शत्रु अगस्त्यम धीमे जाई थी। पुरुषदा के दार्शनिक व्यवहार से ब्रह्म
 उसका प्रेम वृद्धि मन करता है:-

तत्र ते मुनीनां कृते पुनः जयमेव च आनिर्गम्यते

भन से, किन्तु, विष्णु दूर तुम कहाँ चले जाते हो। २

और दूसरा है कि अपने मन के अन्तर्धान में लंबा हुआ है---- स्व की आराधना का मार्ग आर्त्तिमय नहीं है। इस मतव्य की निश्चय भी नहीं कर पाता कि मन कस्ता है स्व की आराधना का मार्ग आर्त्तिमय नहीं तो और क्या है दूसरा अपने अन्तर्धान में निश्चय और अनिश्चय में उल्लंघनी के सौन्दर्य के अभिव्यक्त होते हुए की

३. मध्याह्न X-95 (11)

2. 312A E. 88

विरत चित्त रहता है। अपनी नारी प्रकृति का चित्र हैसब से ऊँपर से उठकर वह सुख कविता सुख या नागिनी को के स्वरूप को अपने ही मन पर स्थापित करने लगता है। कभी वह अपने ही जहाँ में लज्जित रहता है---- भर्त्सक नामक की विषय का सुख है या कि अपने स्वयं का सुख है।¹ कवि फिर में सुन्दारे वाच का सीँधा हुआ हाँ हूँ या वाच का सीँधा कमल हूँ।²

उर्वशी राजा पुरुषा को पाकक सेव (Elan Vital) से परिचित कराती है--- अन्त-ज्वार, धौवन अथवा यो योमनी गन्ध पीने की कामना करके ही उर्वशी गलीतल पर आरंभ है और मर में शीतलता तथा अत्यन्त दोनों की है। मर योमी भी है और भोगी भी। उर्वशी ने पुरुषा में देवत्व की आत्मा का सम्बोधन उत्पन्न किया है तो अनुभव की प्रकृत कामना का साक्षात्कार भी।

उर्वशी और पुरुषा दोनों के मर एक निमेष को मन को दुष्ट से बहुत दूर करते हैं--- उर्वशी पदाती है---पुरुषा बढ़ते हैं। एक भाव अभी गुप्त रहा नहीं कर सकती। रक्त संघातन एवम् ही विभिन्न भुक्त में भागियों को विस्थापित करता है। है। पुरुषा भी लड़ी गाते गले जाते हैं तो उर्वशी उन से गहना चाकती है। प्रेम की संभरण भूमि देह है। लकी ने मर कर उस नामक के सुख लोक में अन्तर्मुखी को दार्शनिक को उठते हैं। सुख देह सुख मन वाचका तक पहुँचने का साधन है। वह आत्मा स्थाप में पुरुष नारी का भी विषय नहीं रहता। लकी का अन्तर्मुख ही मन का प्राप्त है। लकी विषय लोक है जहाँ मर और नारी विषय और विषय का एक भाग है।

उर्वशी इस अंत में अनेकानेक संसारों उत्पन्न करती है और स्वयं ही उनका समाधान प्रस्तुत करती है। वह गुरुवि-पुरुष के मर को पुरुषा प्राप्त है, ज्वार, ज्वार, माया और सुखित पर लकी वाचकान है, लोह, सुखित, ^{राज} विषय, कर्म और आनन्द का विस्तार कराती है, वह आरम्भ करती लकी को उपदेशिका है, वर्तमान - भूत भविष्य की सम्पादिका है। उर्वशी काम और निष्काम कर्म के स्वयं को निर्देशित करती है और प्रारम्भ का का प्रचार भी। उर्वशी के विषय में डा० आर्यगर ने लिखा है कि लीला गिता है पुरुष - पुरुषा और लीला गिता की कवि मुनी उर्वशी का संगम लो देव लोक का में पूर्ण निश्चित ही जा।³ उर्वशी रवीन्द्र नाथ टैगोर की अति नामकी कल्पना है, कामना कवि है, वह विष्णु सुन्दरी है, शैलपिपर की है, वह नाम गिताम मुक्त का सुखिता है,

1:- उर्वशी पृ० १०

2:- उर्वशी पृ० ११

3:- K.R. Iyengar - Anandabha Hindu Annual 1949 P.36

मर्म तबहीं बात मानना के तार को उद्धारित कर तब तब तबार्थ मनोभाव बन जाती है। दिनकर की सुकन्या भी यही सोचती है। अखन मे सुकन्या को देखकर प्रेमान्वित हो कर कहा है:-

उरी नहीं, यह तपोव्रत ^{व्यति} मुनि नहीं, सिद्धि मेरी है।

बसने भी, यह हुआ पूर्ण कटुपत्र महर्षि कर्म का
स्वर्ग नहीं, वरि मे घर में नारी मनोव्रत बांगी थी।

तो तुम सम्पूर्ण छोटी तबन्या के पल की आभा-सी

अब होना क्या अगर स्वर्ग जिसका संभान कर्म में

हरि प्रसन्न यदि नहीं, सिद्धि बन कर तुम क्यों आई हो ?

और सुकन्या अपने को सिद्धि मान कर अपूर्व नारीत्व से भर गई। नारी तो सदा प्रसंगा की अनुवर्ती रही है। सुकन्या भी बार बार उ यही सोचती है। हरि प्रसन्न यदि नहीं, सिद्धि बन कर तुम क्यों आई हो। सुकन्या यथावतः वरि की सिद्धि बन गई। दिनकर ने उसे कर्म वरि के उदाहरण से घुट कर प्रथम दृष्टि प्रेम की स्थापना की है। दिनकर पर काव्यदास का जो प्रभाव है चाहे वह शकुन्तला के प्रथम दृष्टि प्रेम का हो या वरि के, यह काव्य के स्थायी प्रभाव की परिधि से बाहर नहीं है। दिनकर के नाट्य में न तो राजा शक्ति का आचमन है और न सुकन्या को वरि अखन की भार्या स्वरूप सोचने का। दिनकर ने नवीन उद्भावना की है सुकन्या और महर्षि अखन परस्पर प्रेम आकांक्ष हो गये और वन, वहाँ कोई वैवाहिक प्रसंग तक नहीं है।

प्रसंग का चित्र लेखा मे उर्वरी घुन आयु और मातृत्व सम्बन्धी चर्चा केरु क कर विषयान्तर कर दिया है तथा सुकन्या को उर्वरी की मूल कथा से सम्बद्ध कर ऐसी स्थिति उत्पन्न की है ऐसी अभिमान शकुन्तला में है। शकुन्तला को महाराज सुकन्या के दरबार में पहुँचाने आये देखते वरि कथ के शिष्य, और महाराज सुकन्या के दरबार में आये को पहुँचाने आई है वरि अखन की भार्या सुकन्या। एक में वरनी वरन है और दूसरे में घुन वरन। भरत मुनि के शाप के कारण घुन प्राप्ति के बाद उर्वरी को अन्तर्धान होना पड़ा है। उर्वरी अप्सरा है अतः उसका मानव लोक अधिक रहना भी संभव नहीं। मेनका भी शकुन्तला के मानव लोक में छोड़ कर चली गई थी --- उर्वरी भी आयु की मानव लोक में छोड़ कर गई है। भरत शाप की अन्तर्ध्या मे शकुन्तला के शाप की ही स्मृति कराई है। इस प्रकार घुन निताकर काव्यदासीय प्रभाव को कवि सर्वथा रचाग नहीं सका है। भरत शाप का अनेक बार ^{रम्य} दिनकर ने एक और उर्वरी को अन्तर्धान होला हुआ दिखाया है दूसरी ओर पाँचों अंक में महारानी ओशीनरी ने आकर आयु की अंगीकार कर लिया है। इस

इकार आद्य मे चतुष्टयः तीन तीन माताओं का सामिश्र और पुत्र बनाया है---
 उर्वशी तो कमनी है, सुकन्या छाया है और ओशीनरी राख माता। कैसा
 विशाल प्रयोग है जो दिनकर के लिये ही सम्भव था। यही उनकी मौलिक
 उद्भावना है यद्यपि वस वर भी कहीं कहीं कामायनी का प्रभाव है।

00000000000000

सन्दर्भ कथायें:-

सन्दर्भ कथाओं में दिनकर ने विभिन्न श्रोतों से अनेक सन्दर्भों को एकत्र कर उन कथाओं को मात्र सूच्य रखा है। ये यह मान कर चले हैं कि एक पाठक इन सन्दर्भ-कथानाओं को से परिचित हैं।

कही उदाहरण के रूप में और कहीं आख्यायनों के रूप में यह सन्दर्भ कथायें लिखी हैं। इसने ऊपर भी इनका कथा स्थान संयोजन कर दिनकर ने जोड़ियेक वर्ग केसिने लिये इस गीति नाट्य की महत्ता अभिव्यक्त की है। इन सन्दर्भ कथाओं में निम्न लिखित मुख्य हैं:-

उक्त श्लोक --- चन्द्रमा रोहिणी कौ कथा

- | | | |
|---|-----------------|--------------------------|
| 1:- रोहिणी चन्द्रमा-रोहिणी क उर्दगी अंक 2 | निबुझिका का कथन | पृ० 28 |
| की कथा | | |
| 2:- मदन-दहन कथा | उर्दगी अंक 3 | उर्दगी का कथन पृ० 32 |
| 3:- पुरखा चम्प कथा | उर्दगी अंक 3 | पुरखा का कथन पृ० 34 |
| 4:- उर्दगी चम्प उक्त कथा | उर्दगी अंक 3 | पुरखा का कथन पृ० 34 |
| 5:- चम्प सुकम्पा | उर्दगी अंक 4 | सहायक कथा |
| 6:- महर्षि कर्म की कथा | उर्दगी अंक 4 | सुकम्पा का कथन पृ० 106 |
| 7:- भरत शाय की कथा | उर्दगी अंक 4 | उर्दगी का कथन पृ० 109 |
| | अंक 5 | पुरखा का संक्षेप पृ० 127 |
| 8:- चन्द्रमा पुराणा की कथा | उर्दगी अंक 5 | पुरखा का कथन पृ० 129 |
| 9:- उर्दगी चम्प की कथा | उर्दगी अंक 5 | पुरखा का कथन पृ० 139 |
| 10:- तारा ब्रह्मसूत्र कथा | उर्दगी अंक 5 | महाराज का कथन पृ० 139 |

इन सन्दर्भ कथाओं के अतिरिक्त इन विषयक सूचना दे कर कवि ने मानों सुझा इन की कथा की और संक्षेप किया है जो उर्दगी अंक 3 में उर्दगी के ही कथन के रूप में प्राप्त है।

चन्द्रमा रोहिणी कथा:-

चन्द्रमा रोहिणी की कथा का सन्दर्भ उर्दगी के अंक 2 में निबुझिका के जोशीमरी के प्रति कथन में प्राप्त होता है। उक्त

महाराजा पुरखा चम्प मादन रक्त पर

उर्दगी के साथ विचार करने चले गये हैं। निबुझिका ने महाराजा जोशीमरी के प्रति पुरखा के प्रेम का व्यंग्योक्ति से उल्लेख किया है:-

तोटी आप प्रमदवन से सप्तोष वृक्ष में भर के
लेकर यह विद्यास, रोहिणी और चन्द्रमा ली
है अनुरक्त आप के प्रति भी महाराज अब देखे।

किन्तु यह विद्यास तोड़ ही कुछ कुछ ही गया। रोहिणी और चन्द्रमा के

1:- उर्दगी अंक 2 पृष्ठ 28

प्रेमानुरक्ति का जो उदाहरण दिया गया है वह प्रेमाभिप्राय में अत्यंत संकीर्ण और सांनिध्य है। महाभारत में रीतिनी और चन्द्रमा के प्रेम का उल्लेख मिलता है। वहाँ प्रजापति के सत्तावसत कुछेक पृथिवी थी। इन में रीतिनी अनिमग्न सुन्दरी थी। वह चन्द्रमा की प्यासी गई। चन्द्रमा भी रीतिनी के प्रति अनुरागात्मा रहे। कभी वहाँ से चन्द्रमा की अन्य पृथिवीयों ने चन्द्रमा की आसक्ति के प्रति अविरत प्रकट की जिस से प्रभावित हो कर वहाँ ने चन्द्रमा की शपथ दे दिया और कहा जाता है कि उसी शपथ का चन्द्रमा सदा सदा बदला रहता है।¹ बह्म और स्कन्द पुराणों में भी यह कथा वर्णित है।² काशिकास ने भी चन्द्रमा की प्रजापति की 26 पृथिवीयों का प्रति व बताया है।³

मदन मदन कथा:-

मदन मदन की कथा उर्वरी के तीसरे अंक में उर्वरी द्वारा सम्बन्धित है। प्रेम में अनादित उर्वरी काम सुनिता है। काम सुनिता वह

सुन्दरी अप्सरा पुलका के वादु-काल में ताप-ताप-सुख, आनन्द, परिरम्भ मग्न है और क्षण क्षण में काम निर्देश देती है।

किन्तु आह । यों नहीं, तनिक तो शिथिल करो बावों को:.....

यही उर्वरी मग्न मादमग्न विहार मन-उपवनों में यही लीन-दृष्टि देखती है जैसे कि काम देख ने भगवान् शिव की समाधि तोड़ने के लिये अपने पुण्य बाणों से उनके बुदबुद का कोष किया था और अचरित प्रकृति की सुरम्भ बनाकर शिव के मन में कामात्मा उत्पन्न की थी। कथा यों है कि जब वहाँ ने यज्ञ में शिव की आर्पणा नहीं किया और न ही उनका भाग निकाला और वह पृथ्वी को अपने प्रति शिव का और अवमान सदन नहीं चुना और उसने यज्ञ में अपने प्राणों की वादुति दे दी। शिव भी उसी के लोच से प्रभावित हो वैरागी बन गये।

उसीर सती ने विमलान के यहाँ बाँकी रूप में काम लिया और शिव की ही प्रति रूप में सदन करने की प्रतिज्ञा की।

उसी समय तारक असुर का आर्तक चारों ओर फैल गया। तारकासुर असुर पराक्रमीनी देवता था। समस्त लोक बाणों की चील कर वह देवताओं के लोच की क्षीण करने लगा था। वह अजर अमर था, देवता उसे चीलने में असमर्थ थे। अपनी असहाय अवस्था के कारण देवताओं ने प्रवना की से शोध करण माँगी।

1:- महाभारत पर्व 1/65, 75, 2/ 12, 13, 9/ 43, 10/ 208

2:- बह्म पुराण 12, स्कन्द पुराण 1/ 88

3:- तदुक्त 3/33

ब्रह्मा जी ने देवताओं को आश्चर्य किया कि तारक को अत्यु शिव के शीर्ष से उत्पन्न पुत्र पदारा ही सम्भव हो भी तथा तभी ने ब्रह्मा के रूप में विमलान के घर में जन्म लिया है और यह प्रसिद्धा की है कि वह शिव को ही अपना प्रति वरण करेगी। उधर शिव समाधिस्थ हैं, उनकी समाधि भंग करना केवल काम देव पदारा ही सम्भव है। काम देव से विनय करो। देवों ने काम से विनय की जिसे स्वीकार कर काम ने समस्त यम नियम संयम ब्रह्मसर्व एवं योगादि की सीमाओं को छोड़ कर चारों ओर घुमना भी को पैसा कर समस्त दृष्टि को काम मग्न कर दिया। देव, देव समुद्र, कियर मन्दर्ब समुद्र सभी काम के अधीन हो गये। कामाक्षी काम विधातु प्राणियों को कभी भी चान नहीं मिला। काम ने शिव से मध्यभीत होने पर भी उनके पारिवर्तिक घाता भी किछोर दो और जब फिर भी उनकी समाधि भंग न हुई तो अनेकानेक सम्मोहन कलाओं से युक्त रंग युक्त कर संधान कर शिव के दृष्टि में देव दिया। शिव की समाधि भंग हुई। क्रोध से भर शिव ने तीतरा मन छोल दिया देखते ही देखते कामदेव भग्न हो गया।

पुत्रवा जन्म कथा:-

उर्ली के तृतीय अंक में पुत्रवा ने स्वयं अपने जन्म एवं उर्ली के जन्म का कथन किया है। इस सम्बन्ध का उल्लेख करते हुये

दिनकर जी के मन में पुत्रवा जन्म की अनेक कथाएँ रही हो^{गी} पुराणों में लिखी गयी हैं अतः वे केवल एक सक्ति कर उस प्रसंग को छोड़ देते हैं।

कहते हैं, मैं स्वयं विश्व में जाया जिना पिता के,
तो गया तुम भी उसी भाँति, लघुमुच उत्पन्न हुई थीं
माता जिना, मात्र मारायण रवि की कामेच्छा से,
तब: पुत्र मर के समस्त संचित तब ही जाया लीं ।

पुत्रवा जिना पिता का पुत्र, उर्ली जिना माता से उत्पन्न पुत्री। दोनों का संयोग तो प्रारम्भ में निश्चित था ही।

अपने जन्म के विषय में पुत्रवा निश्चित है कि वह पिता के जिना ही उत्पन्न हुए थे— मैं स्वयं विश्व में जाया जिना पिता के, वह कर अपना जन्म प्रसंग व्याख्यायित नहीं करते, किन्तु उर्ली के जन्म के विषय में वे एक दम निश्चित नहीं हैं — वह मारायण रवि की कामेच्छा का परिणाम मात्र है या कि फिर समुद्र - मंथन के परिणाम तबल प्रकृत समान कान्ति मान रत्न की रूप राशि से कर जन्मी है।

1:- उर्ली अंक ३ पृष्ठ ३४

पुत्ररत्ना के जन्म के विषय में रामायण और भीमद् भागवत में किंचित अन्तर के साथ कथा मिलती है। रामायण में राम ने लक्ष्मण को भी कथा सुनाई है उस में कर्म प्रजापति का पुत्र बन महा प्रतापी था। वह भूम्या में ३३ वर्ष कुर्मन क था तथापि वह तदेव अक्षयुष्ट रहता था। एक बार वह उस प्रदेश में जा निवसता जहाँ शंकर और पार्वती विहार कर रहे थे। उस वन का नियम था कि जो भी वहाँ जायेगा वह स्त्री बन जायेगा। स्वयं शंकर सब स्त्री स्वयं थे। इस जैसे ही उस वन प्रदेश में पहुँचा स्त्री बन गया। वह पार्वती की कुवा वृष्टि से जाड़ा स्त्री और और जाड़ा पुत्र बना रहा। एक मास वह स्त्री रहता और एक मास पुत्र। स्त्री संव में उसे न पुत्रत्व का ध्यान रहता और पुत्र रहने पर न स्त्री स्व था। स्त्री देव में उसका नाम हंता था। हंता हंता को सोम पुत्र कुं ने देह लिया। सरोवर में स्नान रत हंता की कुं ने देह कर उस पर अपनी आसक्ति प्रकट की और उसे वरण कर लिया। हंता ने ही पुत्ररत्ना को जन्म दिया।

किंचित भिन्नता से भीमद् भागवत में पुत्ररत्ना की जन्म कथा प्राप्त है। इसा देवराज मनु और उनकी माया नंदा की पुत्री थी। उसका जन्म महर्षि वशिष्ठ द्वारा सम्पादित मित्रावरुण यज्ञ का परिणाम था। किन्तु पुत्र के स्थान पर पुत्री उत्पन्न हुई। चिन्तित मनु ने वशिष्ठ से इस विपरीत फल का कारण जानना चाहा। तो वशिष्ठ ने अपने तप - प्रभाव से उसे पुत्र बनाने के लिये विष्णु से प्रार्थना की और वना पुत्र स्व में सुदुर्लभ बन गई। सुदुर्लभ भूम्या प्रिय था। वह परिश्रमकरता हुआ मेरु पर्वत उपर्युक्त में जा पहुँचा जहाँ शंकर - पार्वती विहार नन्द थे। साधित वन प्रदेश में पहुँचने पर वह स्त्री बन गया और वना स्व में सुदुर्लभ ने उसे वरण कर लिया। वसी वना से पुत्ररत्ना का जन्म हुआ है। २

उत्पत्ति जन्म कथा:-

उत्पत्ति के जन्म के विषय में स्वयं दिनकर ने दो म्हा उद्धृत किये हैं --- नारायण हरि की कान्धेका और सङ्क-मध्य से उत्पन्न।

नारायण हरि से उत्पत्ति जन्म की कथा पौराणिक है। वायु, बुध्दयवर्णन, विष्णु, समेचित पुराणों में यह कथा दी हुई है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में वर्णित कथा इस प्रकार है:- बदरिकाश्रम में नर और नारायण हरिच्यो तपस्या रत थे। एक बार वन अम्बरायें हरि च्यो की तपस्या जीन करने आश्रम में प्रविष्ट हुईं। नारायण

१:- सातमीति २३३७ उत्तर ६१ कां सर्ग

२:- न भीमद् भागवत अध्याय १ स्कंध १ पौंड १३ - ३९

हवि ने उनका मन्त्रज्य समझ लिया और उस से एक अविच्छिन्न सुन्दरी अप्सरा का निर्माण कर दिया जिसे देख कर सभी अप्सरार्यें लज्जित हो गईं। निरास हो मैं अपने स्वामी बन्धु के पास गई। उन्होंने मे बन्धु को नारायण हवि द्वारा कर के उत्पन्न अप्सरा की कथा कह सुनाई। आश्चर्य चकित बन्धु नारायण हवि के आश्रम में पहुँच कर उनके पैरों पर गिर पड़े। नारायण हवि ने उर्वशी को बन्धु को दे दिया और बन्धु ने सुम्भुत को उर्वशी को मृत्यु-गीतादि की शिक्षा देने के लिये नियुक्त कर दिया।

वीरभद्र भागवत में केवल बतना ही है कि समुद्र मंथन से जो अप्सरार्यें उद्भूत हुई थीं उर्वशी उन में थी। उर्वशी को देख कर ही मित्राश्रम का तीर्थ लक्षित हो गया था जिस से बलिष्ठ और अमरत्व का जन्म हुआ। महाभारत में उर्वशी के लीन्दर्व के अनेक कर्म विभिन्न पर्वों में मिलते हैं।

महर्षि कर्म की कथा:-

उर्वशी के अंक 4 में महर्षि कर्म की कथा का संदर्भ है वहाँ सुकन्या चित्र लेखा को अपनी कथा सुनाती है कि किस प्रकार वह महर्षि च्यवन की भार्या बनी। जिस प्रकार महर्षि कर्म अपने तप पूर्ण होने पर नारी की कामना की थी ठीक उसी प्रकार ही महर्षि च्यवन के मन में भी तप-अंग होने के परचाय सिद्धि स्वप्ना नारी की प्राप्ति की कामना थी। दिनकर लिखते हैं:-

उरौ महीं, यह तपोधन च्युति महीं, सिद्धि मेरी है।

पवित्रे भी यह हुआ पूर्ण कटू तप उठि महर्षि कर्म का

स्वर्ग महीं, हवि ने तर में नारी मनोज्ञ मांगी थी।²

कर्म महर्षि की कथा भागवत पुराण में वर्णित है। स्वर्गाश्रम मनु की पुरी देवदूति का विवाह महर्षि कर्म से हुआ था। यह बार प्रथम ही ने कर्म को जाना ही कि तुम संतान उत्पन्न करो तो कर्म हवि ने सरस्वती के तट पर तपस्या की:-

प्रजाः सुप्रेति भगवान् कर्मो प्रादमनोदितः

सरस्वत्या तपसोये सङ्ग्राह समा यत्।

भगवान् नारायण ने हवि की तपस्या से प्रसन्न हो कर उन्हें कर्म दिये। महर्षि कर्म भगवान् के इस लेखीय प्रभा प्रदीप्त मुँह मन्त्र के लीन्दर्व की निहाले ही रहे

1:- वीरभद्र भागवत स्क-6, श्लो 18 वसोक्त 3-6

2:5 उर्वशी अंक 4 पृष्ठ 106

और साष्टांग हो कर उनकी स्तुति की। भगवान् ने भी कर्दम की आराधना से
तुष्ट हो कर उनकी मनोवांछा के अनुकूल वस्तुओं की व्यवस्था कर दी थी। व
उन्होंने मे कर दिया कि ब्रह्माक्षर के सातक स्वायम्भुव मनु महारानी रत्नम्बा के साथ
अपनी गन्धर्वकन्या कन्या ललिता आप के आश्रम में बंधारेंगी। वही रात्र कन्या
दुम्बारी नामाई बनेगी।

महर्षि कर्दम विष्णु तरीवर तीर ही बने रहे और उधर मनु-रत्नम्बा अपनी कन्या
ललिता विहार करते हुये उधर ही आ निकले। ते महर्षि के आश्रम में आये और
उन्होंने मे तेज प्रदीप्त प्रभा मण्डल युक्त महर्षि कर्दम की सौन्दर्य युक्त देखा। महर्षि
कर्दम ने विनीत आतिथ्य से उन्हें प्रसन्न किया एवं सौम्य वाणी में उनके जाने का
प्रयोजन जानना चाहा। मनु ने भी उनके सम्मान में कहा, मुने, यह कन्या नियुक्त
और उत्तमान्वार की बहिन है, आयु, शील और गुणों में अपने योग्य पति की कामना
करती है। नारद जी ने आप के स्व पुत्र जीन की प्रशंसा की है तभी से हमने आप
को चरण कर लिया है, कृपा कर इसे अपनी भायाई जानना स्वीकार करें।

अथ रत्ना रूपं विष्णु विवाहार्थं समुद्रमह
अस्तव्यं पशुर्वाणिः प्रस्तां प्रतिगृह्णान् मे।

महर्षि कर्दम ने भी यह कहते हुये उसे स्वीकार कर लिया:-

बाह्यु खीदु जानो उभय प्रस्ता च स्वामात्मजा

आयसोर मुन्धोटसवाह्यो विवाहिको विधिः । ।

भरत शीघ्र की कथा:-

दिनकर जी ने उर्वशी के सूर्य अंक में भरत का
उर्वशी की शीघ्र का संदर्भ दिया है। उर्वशी
अपने पुत्र आयु का शासन करने वाली व्यवस्था

विधि - वरभी सुकन्या को अपनी मनो वांछा से परिचित कराती है:-

भरत शीघ्र जिज्ञा भी कहूँ था, अब तक यह घर ही था
उसका हावक स्व सुकन्या। अब आरम्भ हुआ है।

अब तक उर्वशी राजा पुलस्त्य के समीप रहियर घर बायक सुकन्या भी जाती रही, किन्तु
वही घर अब अब आयु बड़ा हो गया है शीघ्र बन रहा है। यह शीघ्र कि स्वर्ग
लोक से वृ लोक पर आकर उर्वशी नामकी की भायाई बने की भी सुकन्या का
स्वर्ग सुकन्या से भी कहूँ कर, किन्तु इस लोक का नामकी सुकन्या कर पुनः स्वर्ग लोक
जाने का सुकन्या। उर्वशी की उत्तमा न भी होकिन्तु पुनः सुकन्या कर वृत्ति-परित्याग
ही ना ऐसा परिहास इस ^{अस्तव्य} प्रतीति होता कह है। शीघ्र का उर्वशी दिनकर से
वर्षा अंक में सुकन्या द्वारा कराया है:- एक पूर्ण सन्दर्भ उर्वशी के स्व में:-

जिनी भाति, कर दिया एक दिन सुकन्या महर्षि भरत की,

और भरत ने ही उसको यह दास्य शीघ्र दिया था।

पुनर्गर्भ निज कर्म जीन जिज्ञा के स्वल्प चिन्तन में मैं

था, वृ कर्म प्रेयसीपुत्रि पर उसी महर्षि नामकी की

किन्तु, न वींति तुमे सुखं न च सुखं गृहस्थं नारी के ,
 पुत्र और पति नहीं, पुत्र या कनिका केवल पति पायेगी।
 तो भी तब तक ही जिस क्षण तक नहीं देखें चाहे वह मा
 अर्द्धांगिणी। तेरा पति तुझ से उत्तम तमय को।^१

किसी भाँति का उत्तर मरत्य पुराण में है:-

पुलस्त्य ने देव्य देवी से अव्यक्त अप्सरा उर्वशी का उद्धार
 किया तो राजा के सम्मान में इन्द्र ने स्वर्ग में तन्त्री स्वयंवर
 नाटक का अभिनय आयोजित किया। राजा पुलस्त्य
 सत्सम्मान तथा स्वर्ग में उपस्थित थे। उर्वशी तन्त्री की भूमिका
 अभिनीत कर रही थी। जब उस से पूछा गया कि
 कनिका केवल पति पायेगी तो पुलस्त्य के स्थान पर
 पर उस ने तन्त्री स्वर्ग में बैठे हुए पुलस्त्य को पवमान
 कर उनके नाम का ही उद्धारण किया। जब यही वह बात
 थी कि नाट्य निर्देशक मरत्य मुनि ने वस धृति के कारण
 कारण उर्वशी को शाप दे दिया----

या तु क्व प्रेक्षस्ये प्रेक्षसि धूमि पर उर्वशी मरत्य मानव की ।
 जिस भाँति का यह उत्तर कारण है और शाप उसकी
 परिणति।

पुत्र और पति के स्थान पर पुत्र या पति कनिका की
 कुल उद्धारण है।

अधुना-पुनोमा की कथा:-

दिनकर जी ने पुनोमा की कथा का प्रसंग
 उर्वशी के बाधित अंक में उल्लिखित किया है।
 हास्य राजा पुलस्त्य अपने महामात्य को अपने

स्वप्न के दिव्य में आनाते हुये कहते हैं:-

पकाही निः संग मरत्य पुत्र विविध निर्जन में
 या वधुता में वहाँ जहाँ पर अधुना कहती है,
 अथवा के पास पुनोमा केदुग्ध-धारा ती।^२

पुनोमा की कथा का मुलाधार द्रुपद है। ब्रह्मण्य ग्रंथों में भी पुनोमा की
 कथा मिलती है। महा भास में यह कथा सचिन्तार वर्णित है।

१:- उर्वशी अंक ५ पृष्ठ 157

२:- उर्वशी अंक ५ पृष्ठ 129

महर्षि ऋषि की पत्नी का नाम पुलोमा था। पुलोमा एक राक्षसी थी जिस समय ऋषि स्नान हेतु गये थे, पुलोमा राक्षस जाति में आया। ऋषि पत्नी पुलोमा ने अतिथि का सत्कार किया। राक्षस पुलोमा उसके स्व-संतोष पर रीक कर अपनी संज्ञा छी रहा था। उसे पूर्व जन्म की कथा का प्रसंग ही आया जब बाल्यावस्था में रोती हुई पुलोमा को पकड़ करके ले लिये उसके पिता ने कहा था कि वह इसे राक्षस की दे देगा। यह राक्षस पुलोमा ही था। जो उनके यातनास का सुन रहा था। आज वह उसी पुलोमा को ले के सामने था। राक्षस ने ऋषि पत्नी के अपहरण करने का संकल्प किया।

उसी समय आत्म में अग्निद्वेष गूढ़ में अग्नि देव प्रज्वलित थे। पुलोमा ने अग्नि से पूछा --- यह किस की पत्नी है, सत्य सत्य कहें। मैं इसे बाल्यावस्था में ही घर चुका हूँ, किन्तु इस के पिता ने उस से इसे ऋषि को दे दिया।

अग्नि क्या उत्तर देते। असत्यता में पड़े रहे। सत्य कहना है। ओले:- तुम ने इसे चरा, ठीक है, किन्तु तुम ने इस के साधनमन्त्रमन्त्रित विधि पूर्वक विवाह नहीं किया। ऋषि तुम से नेष्ठ थे अतः इसका विवाह ऋषि के साथ हुआ है। पुलोमा देख कर क्रोध हुआ। उसने चराह का रूप धारण कर ऋषि पत्नी का अपहरण करना चाहा कि प्रलय घन के कारण बुद्धि परित्यक्त गर्भ पशु हो गया जिस से उसका नाम 'अव्यक्त' पड़ा। 'अव्यक्त' को देखते ही देव्य अक्षत हो गया और जन कर भस्म हो गया। संज्ञा सौम्य सुनीमर्षि पुलोमा भी जब ऐतन्म्य हुई तो भार्गव अव्यक्त को ले कर प्रवृत्त हो के पास गई। रोती हुई पृथु वधू को आरवस्त कर प्रवृत्त हो ने पृथु वधू की अनुभूता को वधुधरा नाम दे दिया जो अव्यक्त आत्म के पास प्रवाहित है।

तारा प्रवृत्ति की कथा :-

अग्नि पुराण में सौमर्षी वर्णन प्रकरण में तारा की कथा दी गई है। दिनकर ने भी तारा के अपहरण का प्रसंग उल्लिखित कर सौमर्षी की ही वर्ण की है। चन्द्रमा ने राजसूय

किया। यज्ञ की समाप्ति पर तीनों लोकों का राज्य दान कर दिया। यज्ञ के अन्त में अक्षय्य स्नान हुआ तो चन्द्रमा के सौमर्षी को देखते ही कामना से नौ देवियाँ - कान्ति, सिनीवली, द्युति, वृष्टि, प्रभा, वृत्त, तीर्थ, वसु, और वृत्ति अपने अपने बलियों को स्वयम्भु का शीम की सेवा में लगी रहीं। चन्द्रमा ने उन्हें अपनी पत्नियों

1:- सतः स गमोन्निवसत सुनी नृपकुलोत्तम

सौमर्ष्यास्तुष्टुतः सुते च्यवन तेन तो मयः।

महा भारत आदि पं० अ० ६/१ - २

की ही भाँति अवभाषा। चन्द्रमा पर उनके वसिष्ठों के शाप का कोई प्रभाव न पड़ा।
 जब सातों साकों के एक मात्र स्वामी हुये। चन्द्रमा फिर विनय शील न रह सके।
 उसने अपने गुरु ब्रह्मवर्षि के बत्नी तारा का अल पुरवक चरणों पर लिखा। ब्रह्मवर्षि
 का अवभाषा हुआ। वरिष्ठवर्षि देव-दानव युद्ध। वस युद्ध की तारकानय युद्ध
 संग्राम कहते हैं। अन्त में ब्रह्मा जी ने गुरुवर्षि की चन्द्रमा का साधने से रोक कर
 तारा ब्रह्मवर्षि की दिया है जी। देव गुरु ब्रह्मवर्षि ने तारा की मर्षिणी जान कर
 उस से मर्ष दयाग करने की कहा। तारा ने मर्ष त्याग किया फिर से बड़ा तेजस्वी
 कुमार प्रकट हुआ। उसने वेदा होते ही कहा:- मैं चन्द्रमा का पुत्र हूँ। यही पुत्र
 युद्ध वेषिष्ठ के पुत्र पुत्रमा हैं। हुये।

वैदिक काल से उर्दूगी काल तक वास्तु के स्थानान्तर

000000000000000000

0

पुस्तका - उर्दूगी कथानक वैदिक काल से आज तक कवियों और नाटक लेखकों का प्रिय विषय रहा है। युग दृष्टा साहित्यकारों ने अपने युग की मान्यताओं और प्रचलित विचारों के अनुसार उर्दूगी के कथानक में परिवर्तन कर युग-प्रतिबिम्बकी प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से उर्दूगी के कथानक में विभिन्न युगों में होने वाले स्थानान्तरों एवं परिवर्तनों के कारण और युग धर्म का अध्ययन करना अवैध है।

वैदिक - ब्राह्मण काल में उर्दूगी कथानक का आधार हव्येय है। हव्येय में यह कहा नहीं कहा-युग है जो 18 मंत्रों में सम्पादित हुई है। संयोजित कथानक के अभाव में केवल यथा सूत्र के सहारे यदि कोई कथानक सृजित किया जा सकेता है तो केवलतन्त्र ही उसकी भावना अभिव्यक्त कर सकते हैं। भाषा की दृष्टि से मंत्रों में ६वर्णित प्रत्येक शब्द अपने सामाजिक परिवेश में अस्तित्व धारण है।

हव्येय के दशह मण्डल के 99 पुस्तक केअठारह मंत्र उर्दूगी - पुस्तका के सम्बन्ध में हैं। मातृकुल प्रधाम समाज इस युग की विशेषता थी। उर्दूगी राजा पुस्तका की भारी बनी थी। प्रतिभुति मंत्र होने पर यह पुस्तका का परिवर्तन कर स्वर्ग लोक के लिये उद्देश्य है। और पुस्तका उसकी मनुष्यता करते हैं। न मानने पर, पुस्तका ने उसे छोड़े शब्द से सम्बोधित किया। अतएव पुस्तका उसे छोड़े अर्थात् छोड़, निन्दार्थादि अर्थ सूचक शब्द ही तो कह सकते थे।¹ इसे प्रेम विम्व पुस्तका की प्रणय - मधुर भाषा तो निश्चय ही नहीं कह सकते। उर्दूगी उसी उदासीन प्रीति से इसे पुनरुत्ते वरेदि कह कर धर लौट जाने की सलाह देती है। दुःखी पुस्तका भी उल्लसल्लसल्लस जानता है कि अन्ततः उसे विधीम दुःख से जीवन - स्थान करना ही पड़ेगा।² निर्मृदुति के विधीम होने यह ही कामना करने वाले पुस्तका को उर्दूगी प्रीतिपूर्ण करता है कि वह आरम काल न करे। सुख उसे न छोड़े। क्यों क्योंकि पुस्तका ने देव्यों के निरुद्ध देवों की सहायता की है अतः देवगण उसे स्वर्ग में सम्मानित करे। यह आरमकाल क्यों करें 10-99-19 अष्टिक देवों के लिये अधवा देवों के चारा उसे अन्ततः स्वर्ग जाना ही है अर्थात् मर्त्य लोक में उन का उद्वर्ग होना अवश्यभावी है। इसी लिये उसे मुरमुद्वन्तु : कहा गया है। इसी से यह स्पष्ट होता है कि (यह ही व्यक्त है) कि उर्दूगी का हृदय क्यों मुगलतन्त्र कहा गया

1:- हव्येय 10 - 99 - 1

2:- हव्येय 18 - 99 - 14

हे अथवा तिनको बौद्ध यहाँ बुद्ध - हीन होती हैं 10 - 99 - 138 एवं
पुत्रवा का पुत्र भी उसे जान नहीं सके ना। पुत्रवा उर्वशी को निर्वर्तित वह
उसे अपने समीप बुलाने को लिये यन्त्रि अपने से दूर जाने के लिये ही कहता है
क्योंकि उर्वशी के सामीप्य से उचित यह मध्यगीत है। यह सही है कि उर्वशी उसके
मिलन की विवशता भी किन्तु क्या वह उसके पास रह सकीं हर्षद कथानक
दुःखान्त है। उर्वशी चली गई, पुत्रवा विभोगी हो कर उत्सर्ग हो गये।

सतपथ ब्राह्मण मैथुनक दिया, एक पूर्ण कथानक। उर्वशी पुत्रवा की
माया तो बनी किन्तु तीन शीत लगा कर। यह प्रति दिन विंशति प्रत सेवन करेगी,
पुत्रवा इस से दिन में केवल तीन बार ही समागम कर सकेंगे और यह उसे पूर्ण
नयन न देखेगी। देव लोक में उर्वशी के अनाद में जो व उदासीनता व्याप्त हुई
उसे पुनः आनन्द में परिवर्तित करने के लिये गन्धर्वों ने उर्वशी के द्वारा पुत्रवा को
दिये हुये दो मेजों को घुरा लिया। उर्वशी ने असहाय अवस्था में पुत्रवा को
मिथीय, मित्रोय कहा, पुत्रवा नाम अवस्था में ही आमुष्य ले कर निकले, उल्लस
गन्धर्वों ने प्रकाश किया, उर्वशी ने उसे नन्देडा, प्रतिवृत्ति भंग हुई और उर्वशी
विधोम हुआ। पुनः संयोग कैसे हो गन्धर्वों ने अग्नि त्यागी प्रदान कर अग्नि देव
की अभ्यर्चना के लिये आदेश दिया। पुत्रवा ने अवस्था और सभी की उरगियों से
यम कर अग्नि देव की कृपा प्राप्त की। संस्तर उपरान्त उर्वशी से मिलन हुआ जहाँ
पुत्रवा ने गन्धर्वों से गन्धर्व होने का अवधान प्राप्त किया। गन्धर्व बन कर से स्वर्ग
में रहने लगे और उर्वशी से पुनः संयोग हो गया। उपर्युक्त परिवर्तनों से अथवा
परिवर्तन से आश्चर्य सुखान्त सिद्ध होता है।

गन्धर्व गति मनुज और देवों से भिन्न है फिर भी देवों की शक्ति से स्वर्ग
लोक के वासी हैं। गन्धर्व होने के लिये मर्त्य लोकी पुत्रवा की मृत्यु या बलि
अव्ययम्भायी भी जिसे उस भौतिक मनुज शरीर का गन्धर्व गति प्राप्त करने के लिये
उत्सर्ग कर सकते हैं। प्राचीन काल में पुत्रवा सदा ही उत्सर्ग होता रहा है।¹

पुत्रवा का प्राणीरत्न भी ऐसा ही है।¹ इसी प्रकार का आश्चर्य सुनसी पुत्रवा
का है। जिसे प्रति वर्ष इस आंगन के सुनसी धरे पुत्रवा में विधवा जानकर पूजते हैं।
सुनसी का प्रति वर्ष कृष्ण के साधविवाह भी करते हैं अर्थात् प्रति वर्ष यह विधवा
होती है अर्थात् प्रति वर्ष उसके पति के प्राणों का उत्सर्ग होता है।² यह कथा भी
उर्वशी-पुत्रवा के कथानक में पुत्रवा के प्राणितर्ग की ओर संकेत करती है। ग्रीक
पुराणों में भी इसी प्रकार की कथाओं का वर्णन है।

1:- D.D. Kosambi. *Myths and Reality*, P. 47 & 54

2. *Ibid.* P 57

पारंपारिक विद्वानों ने पुरुषा - उर्वशी आख्यान को अपने अपने दृंग से अध्ययन कर प्रस्तुत किया है। विद्वान मैक्समूलर पुरुषा-उर्वशी कथा को एक स्वतंत्र कृत्या कहा है। उर्वशी पुरुषा से प्रेम करती है अर्थात् उषा कास हुआ, उर्वशी ने पुरुषा को मग्न देखा अर्थात् उषा कास समाप्त हुआ, उर्वशी ने पुनः पुरुषा से संबंध कर लिया अर्थात् सम्बंध हो गई। मैक्समूलर की यह स्फारमक व्याख्या निरुक्त समर्थित नहीं जा सकती है।¹ उर्वशी ही उषा है जिसे पारंपारिक विद्वान और पुराण कथाओं में Eos या Aurora या Uruki भी कहा गया है। Uruki भी उसका एक अन्य नाम है और आश्चर्य नहीं कि Europa, EURYASSA.

24 Euryphass इसके अन्य नाम हैं। पुरुषा को यूनानी साहित्य में जावे Polydeukes से तुलना कर अध्ययन किया जा सकता है। इस प्रकार यूनानी देवियों और पुरुष के नामों में भाषायांतरात्म्य का होना पौराणिक साधनों की एक स्वता ही ही स्थापित करता है। मैक्समूलर के आलोचकों ने उषा-सूर्य के स्वतंत्र को वैदिक एवं सामान्य कार्य व्यवहार कह कर आलोकार कर दिया।² डा० कीथ ने भी इसे त्रुटिकार नहीं किया और न ही दक्षिण भारतीय विद्वान मारायण आर्यमर ही इस से सहमत हैं। वे उर्वशी - पुरुषा आख्यान में उषा - सूर्य की अवेशा रोहिणी - चन्द्रमा का स्फारमक मानते हैं।³

उर्वशी स्वतंत्रक व्यक्ति है किसी भी प्रकार सामाजिक ग्रं संगठन का जोड़ नहीं होता। भारतीय इतिहास - पुराण वेदा Geldner ने भी उर्वशी को वारांगला कहा है, इस से बहुवचन प्रथा का जोड़ तो होता ही है, तने: तने: नारी के होने वाले सामाजिक ब्राह्मण का भी परिचय मिल जाता है। दक्षिण भारत के मन्दिरों में देव वासी प्रथा आज भी दृश्यमान है, यही प्राचीन भारत में मातृ देवी के रूप में दृश्यमान थी।

मातृ देवी की पूजा भारत की अपनी विशेषता है। उर्वशी और अन्य अप्सरायें मातृ प्रकृति से ही सम्बन्धित हैं। मेनका माता है और उर्वशी भी। मेनका का कार्य पूर्व भाषा में ही वर्ण है तनी। दक्षिण ब्राह्मण में शकुन्तला को भी अप्सरा कहा है।⁴ उर्वशी ज्योत्स्न है, सदापि आकाश चरी भी है। तने दृश्यमान हैं

-
1. Max Muller - Quoted Chips from German workshop. vol II P. 120
 2. George W. Cox. - The Mythology of Aryan Nations P. 342 - Quoted
 3. K. R. Gyanan. Anubhavo Maudh Annual 1949
 4. D. D. Kosambi, Myth and Reality P. 50

उन्मत्ताकाव्यानि इति भी मया है 10 - 92 - 10 । महाभारत में काशिराज की तीन पुत्रियाँ अम्बा, उम्बिका, अम्बालिका तीनों मातृ साधक नाम लारी थीं। अम्बा आत्मघात करके शिकुओं का पुनः उत्पन्न हुई तो पितामह भीष्म की मृत्यु का कारण बनीअम्बा भीष्म की मारी के कारण उत्सर्ग होना चढ़ा ! ऐसे ठीक ऐसे ही ऐसे उम्बिका के कारण पुत्रवत् उत्सर्ग हुआ था।

रामायण काव्य में उम्बिका ने पुत्रवत् उत्सर्ग को मन्त्र न होने की रत्न रखी थी। विष्णु शस्त्र में अम्बरार्य पुत्रवत् उत्सर्ग मन्त्र की कर उसके उत्पन्न एक पुत्र हैं 10 - 95/6 - 9 । उम्बा भी तो मन्त्र की प्रति दिन देखी जाती है। उम्बा की मन्त्र - का भी विहित किया गया है। उम्बा की उम्बिका ऐसी ही प्रतिमायें अतीरिवाय - हिलती थियों में उम्बा मिलती हैं। उम्बा का वैदिक काल में विशेष महत्त्व है। उम्बा ने सप्त थियों का उत्सर्ग है। अतः यह एक महत्त्व देती है। इसने वह भी उम्बा का उत्सर्ग मन्त्र हुआ उत्सर्ग भरत है, उम्बा का उत्सर्ग उम्बिका ऐसी अम्बरार्य के व्यवहार के कारण ही हुआ हो गा।

उम्बिका विवेक ने स्पष्ट है कि वैदिक पौराणिक में मातृ पुत्रवत् उत्सर्ग रही हो गी जो उम्बा - उम्बा - उम्बा होती गई और क पितृ पुत्र की स्थापना पुत्र होती गई। पुत्र का उत्सर्ग होता था यह प्रतिमायें है।

पुराण काल में उम्बिका की उम्बा में आगे-पीछे कुछ न कुछ उम्बा पुन जोड़े गये हैं। उम्बिका - पुत्रवत् उत्सर्ग की उम्बा मिली --- वैदिक ऐसी से उम्बिका का मोक्ष, उत्सर्ग में का भी - उत्सर्ग नाटक का आयोजन, भरत मुनि का साध और उम्बिका का राजा पुत्रवत् उत्सर्ग का मातृ का वैदिक कालीन उत्सर्ग की उस रिक्ता को स्वभाविक बना कर ऐसा आकार प्रदान करता है जिस से उत्सर्ग नैतिक प्रतीत हो।

लौकिक संस्कृति पुन तक आते आते समाज और राज्य की मान्यतायें बढ़ने लगी थीं। रिक्तायों का समाज में स्थान मोक्ष व देव हो गया था। वे पुत्र की कामनायों की दृष्टि का मात्र साधन बन गई थीं। गणिकाओं और वारामनायों की समाज में स्थान बढ़ता जा रहा था। मोक्ष कुछ के प्रभाव से विम्वार के चक्रवर्ती सम्राट राज्य विस्तृत हो चुके थे। उत्सर्ग मोक्ष ने राज्य विस्तार किया, महावीर स्वामी ने राज्य छोड़ा अर्थात् समाज में निष्कृत मार्ग प्रकट हो रहा था। जीवन के प्रति दिनो दिन उदासीनता बढ़ती जा रही थी। कुछ धर्म के कारण मध्यम प्रतिवदा मार्ग के प्रचलन से पुन - अव्युत्त, उचित - अव्युत्त, अच्छे - बुरे की विद्वान समाज प्रायः हो गई थी। महायान का प्रभाव भी धीरे धीरे समाज में समाज महान मान और सुखान का प्रवेश महान हो गया था।

1:- D.D. Kosambi - Myth and Reality, P. 60

2:- Ibid P. 62

संघों के दुष्प्रभाव के कारण समाज में भारी का लगन उत्पन्न हो चुकित हो देता जाता था। संघ में शिक्षकों के प्रवेश से समाचार भी फैलने लगा। संघ के शिक्षकों से समाज के जो वैश्विक मूल्य हो रहे थे वे भी निःसंदेह हो गये। समाज में एक समृद्धता उत्पन्न हो रही थी। लोहों और ब्राह्मणों में संघ की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। अनुशासन के लगन पर पलायन, समाजीकृत जीवन के स्थान पर निवृत्ति सब साधना अपना कर जीवन का स्वभाव दिया जाने लगा था। सामाजिक या कि इसकी प्रतिष्ठित होती और सब स्वतंत्र समाज निवृत्ति के प्रति आस्था स्थापित करने के प्रयत्न होने लगे।

समुद्रयुग का शासन काल युग का महत्वपूर्ण युग रहा है। समुद्रयुग केवल सामान्य राजा तो था ही, शासन साम्राज्य की उसने नौ राज्यों पर अधिकार कर अपने राज्य में मिला लिया जिस में मगध, विजय और पट्टनायकी के राज्य भी थे। कालिदास ने युग राजा का चित्र देखा था। अतः निवृत्ति मार्गीय युग के उनके लिये महत्वपूर्ण नहीं था। अतः निवृत्ति प्रथम उत्तम और महर्षि ज्ञान के अन्त - निवृत्ति ज्ञानों से समृद्धता और आदु हो अभिमान समृद्धता और विद्वान्जीवन मार्ग में युग राजा लोहों में समृद्धता गया है --- निवृत्ति ने प्रवृत्ति की ओर सब प्रगत लोह महत्वपूर्ण है। अतः अखण्ड ज्ञान की लोह भी सामाजिक की हीनमान सम्बोधन कर आदर और सम्मान देता है। यह युग एक समृद्ध काल था जिस में लोहों और ब्राह्मणों के आदर्श और धर्म का एक देव समन्वय हुआ है। अखण्ड ने युग के गीत गाने में लोह संघों नहीं किया तो कालिदास ने भी वेद, उपनिषद्, गीता, अर्थशास्त्र, कामसूत्र, अनुश्रुति आदि के नियमों और वैश्विक मूल्यों को प्रचारित किया है। उनके काव्य और मार्गों में इसी दार्शनिकता की छवि मिलती है। इस सामाजिक सांस्कृतिक अराजक पर विद्वान्जीवन में लोह पुरुष - लोह का ही जानना अवशिष्ट हो गया।

पुरुष - लोह का अन्तर्गत अधिकारी पुराणों में वर्णित है, किन्तु अन्तर्गत और पद्म पुराणों में इस आख्यान की विशेष वर्णन मिलता है। वैदिक आख्यान में पुरुष भी अन्त में लोहों को उठ विद्ये जाते हैं। पुराण कालों ने पुरुष को सम्राट्टी के रूप में प्रस्तुत किया है। वे आदु को पुत्रराज बना कर सम्राट्टी को गये। पुरुष प्रसंग को देखते हुए पुराणों में ही कहानी को सम्पूर्ण रूप मिला है। अन्तर्गत सभी पुराणों का अन्त इस कहानी की वही रूप में लोह कर रहा है कि लोह पुरुष ही मार्ग थी और आदु लोह लोह पुरुष था।

अन्तर्गत लोह सामाजिक साम्राज्यों के कारण मानव मूल्यों में भी परिवर्तन

अकस्मात्की था। समाज अब पुरुष-प्रधान हो गया था, जहाँ व्यवस्था भी स्थिर हो रही थी। संज्ञास आश्रम का विशेष महत्व था। नीति के कारण ही युवराज का ज्येष्ठ पुत्र को ही दिया जाना चिह्नित था। पुरुषवा के वः पुत्र थे तथापि राज्य आयु को ही दिया गया क्योंकि ज्येष्ठ पुत्र ही राज्याधिकारी होता था। पुरुषवा और उर्वशी के जन्म की कथाएँ भी पौराणिक उदभावनार्य हैं। के जन्म कथाएँ अलग अलग पुराणों में लिखी वही हैं। उर्वशी में जहाँ वैदिक स्वत्व की कल्पना की जाती थी उस में अब मानवीयम्येयनों आरोपित की गई और उर्वशी एक सामान्य नारी की भाँति भी अनुभव होती बननी।

कालिदास ने महत्त्व पुराण को अपने नाटक विजयोर्वशीयस का आधार बनाया। युग की आकांक्षा और आवश्यकता के अनुसार उर्वशी - पुरुषवा की कथा में प्राचीन परिवर्तन एवं परिवर्धन किये गये हैं। इन परिवर्तनों में कालिदास ने उर्वशी उर्वशी पुरुषवा आश्रम को जो अब तक चिह्नित था अब व्यवस्थित स्वत्व प्रदान करने की चेष्टा की है।

कालिदास ने नाटकों में राजन्य के वर्णन होते हैं। रंजुसता, विजयोर्वशी 'विजयिनी' सभी नाटकों में राजा, राजद्वार, राजकुमार, राज परिवार सम्बन्धित हैं। ऐसी युगल वर्ण भी राजसी ही है। इनके अतिरिक्त एक निवाहिता महारानी भी है।

विजयोर्वशीयस में उर्वशी-पुरुषवा का प्रधान उद्देश्य है। हेमकूट पर-पुरुषोपरममा तत राजा पुरुषवा ने आर्जुनाद सुन कर देश के पक्ष से उर्वशी और पुरुषवा को मुक्त किया तथा उनकी रक्षा की। हेमकूट पर कालिदास की रचना है। लक्ष्मी - रत्नधर की कथा को भी एक अभिन्न रूप मिला है। वैदिक-ब्राह्मण ग्रंथों में तो इसका बल्लेही ही नहीं है। इस कथा को अति नैतुतीय अंत में उर्वशी संश्लेषित किया है। जहाँ उर्वशी भरत-कोप का शोध-भावन बननी और महर्षि लोक में जाकर उसे पुरुषवा की प्रणय ही भावात्मकता पड़ा। पुरुषवा के प्रेम को सिद्ध करने के लिये कवि ने उर्वशी को काल में परिवर्तित कर एक और अनुपम चरित्रक कल्पना की है। लियोनी पुरुषवा को उर्वशी से मिलाने के लिये मध्यमयीय मणि के प्रसंग का प्रकरण प्रस्तुत किया गया है। इसे इन निमित्तवाद भी कह सकते हैं। आयु का व्ययन आश्रम में सुकन्या द्वारा बालन पोषण ठीक रूप के आश्रम में रंजुसता के बालन पोषण के समान है। कालिदास आश्रमों में अधिक समय नहीं लगाते, अन्य काल में ही पुनः पानों को राज-सम्पर्क में ला चढ़ा करते हैं। आयु के साथ भी वही हुआ। रंजुसता प्रवर्धनारियों के साथ दुष्कृत दरबार में गई थी आयु सुकन्या के साथ पुरुषवा दरबार में आया है। रंजुसता महाराज सुकित दुष्कृत की पत्नी थी जो आयु पुरुषवा का पुत्र। रंजुसता के साथ युविका प्रसंग आयु के साथ उनके द्वारा चिह्नित उद्देश्य और जान का प्रसंग है। यही उनका उनका परिचय है।

उपनी - पुरुषा के इस कथानक में एक नारी कात्र जीर्णमयी भी है, वह वह पुरुषा की विद्याका महारानी है। अपनी सभी जगह जगह पर सत्यता प्रेम की छीन से व्याकुल होते हुए भी, जब वह प्रेताओं की जगह जाऊँ उस पुरी होती है, पति के विस्-साधन हेतु चन्द्र साधनी करती है या आरम कलिदान / कालिदास ने भी रामायण की भाँति ही पुरुषा की राजर्षि कह कर सम्बोधित किया है। पुरुषा की भाँति ही पुरुषा की राजर्षि मही कहा गया है।

उपनी विवेचन से इतना निष्कर्ष तो निकलता ही है कि उस मेवाक पुरुष - प्रधान की रक्षा या और समाज में बहुसंख्यी प्रथा प्रचलित थी। वैदिक काल से गुप्त काल तक का परिवर्तन वास्तुः धर्माचरण से नादयानुकरण तक की प्रवृत्ति में क्रियमान हुआ है।¹

उस दृष्टि से और दार्शनिक विषयों से भी इस युग में पर्याप्त परिवर्तन आ रहे थे। कुछ धर्म की अवधारणा तो ही की साथ ही वैष्णव धर्म और शैव धर्म में भी कालिदास शैव मत का समर्थन करने लगे थे। यद्यपि उसमें भी प्रवृत्ति का पोषण कर रहे थे --- निवृत्ति का नहीं। पुरुषा वैष्णव धर्मानुयायी थे, सुर्वोपासक थे, और कालिदास शैव।

यथा प्रतीत होता है कालिदास ने रामायण के अनुसार अपने जोटक की रचना की है, न कि पुराणों के आधार पर। रामायण में पुरुषा की केवल एक ही संज्ञान आयु का उल्लेख है, कालिदास ने भी एक ही युग का वर्णन किया है। किन्तु सभी आधार पर इसे रामायण के समानांतर मानना कठिन हो गा। प्रौ० बी० आर० मादक ने तर्ककार दिया है कि रामायण के लौकिक विवेचन के आधार पर ही कालिदास ने इस जोटक की रचना की होगी।²

सुदृढ पुरी राजर्षिः कालिदासः पुरुषा

तमजगत्तमकं सुसुद्धिं सौ भक्त भविष्यति --- उत्तर संस्कृत

वास्तुः कालिदास का युग धर्म बड़ा ही चटित रहा हो गा। गुप्त काल मानवी विकास के युग में बहुसंख्यीय या और कालिदास ने इसे ही अपनी रचनाओं में सुलभित किया है। गुप्त काल में वे युगः आरम्भ धर्म की स्थापना करने का प्रयास किया है। उस युग की शिल्प कला इस की का प्रमाण है जो कुछ शिल्प कला से भिन्न हिन्दू परम्पराओं के अनुगत थी।³

1:- O.D. Kosambi, *Myth & Reality* P. 42

2. B.R. Yadav - *A Critical Study of the Sources of Kalidas* P. 68

3. T.G. Kanbur - *Kalidas - His Art & Thought*

कालिदास के उपरान्त साहित्य में पुलकित-उत्कृष्ट विषयक कथानक पर एक लम्बे समय तक कोई रचना उपलब्ध नहीं होती। संस्कृत साहित्य में भी विष्णुमैत्रीयन के उपरान्त इस विषय पर कोई रचना नहीं मिलती। दक्षिण भारत में विष्णु और यक्ष्म पुराण पर आधारित कवि अज्जायकृत तैलम् रचना अधिराज मनोरंजन या पुलकित चरितम् प्राप्त होती है।^१ अज्जाय दक्षिण में कोण्ठोर के राजा के दरबारी कवि थे।

कालिदास के उपरान्त वेद-पुराण सम्मत तथा विष्णुमैत्रीयन पर आधारित अंग्रेजी भाषा में *Hero and the Nymph* शीर्षक से महर्षि अरविन्द ने एक 1500 शीतियों की काव्य रचना की जो चार सर्गों में विभाजित है। अरविन्द जब अपने इंग्लैंड प्रवास में भारत लौटे तब 1895 में यह रचना साहित्य जगत में आई। वे इस समय 25 वर्ष के भी नहीं थे। स्वाभाविक था कि युवा महर्षि का अंग्रेजी भाषा के प्रतीक, उपमान, अलंकार और अन्य काव्य-सौन्दर्य प्रभाव आसता। संस्कारों ने भारतीय और व्यवहार ने अंग्रेजी अर्थात् अंग्रेजी प्रभाव में अरविन्द ने पुरातन एवं नूतन का अभिन्न संगम करते हुए काव्य रचना की। गीति नाद और सौन्दर्य का एक अद्भुत मिश्रण स्वयं अंग्रेजी के कवि शेक्सपीयर में भी प्राप्त होना दुर्लभ है।

रवीन्द्र नाथ टैगोर ने लगभग इसी समय उत्कृष्ट शीर्षक रचित किया। यह 'कोई पौराणिक आलोकन नहीं है। उत्कृष्ट का स्व-सौन्दर्य वैदिक काल से ही अस्तित्व में रह चुका है। केवल इसी अस्तित्व में अस्तित्व सौन्दर्य को लेकर कवि ने उत्कृष्ट को मान्यता से स्वीकृति प्रभा प्रदान की है। न वह माता है, न बहू और न अम्बा, न छाया, न जल, न जमीन, नारी स्व में वह एक अपूर्व सुन्दरी है --- ऐसी सुन्दरी जिस के अतिरिक्त एक देवीय सौन्दर्य है। देव मानवी थी, सौन्दर्य देवीय है। उसके चारों ओर में सुधा पात्र है और बाएँ में गरल भाण्ड, जो जोड़कर होते हुए भी जोड़ालोत है। यह सुन्दर है, चित्र के विषय में कवि मौन है। जान कोदस ने भी ऐसी भाषात्मक सुन्दरता की मनोरम अवलोकन की है।^२

हिन्दी साहित्य में उत्कृष्ट विषयक अधिराज कालिदास नाटक मिले गये हैं। जब हीरा प्रसाद ने उत्कृष्ट नाम लिखा, उषा शंकर भूषण ने विष्णुमैत्रीय गीति नादय, चाँकी बल्लभ शास्त्री ने उत्कृष्ट मान भी तंगीसिका और दिनेश्वर ने उत्कृष्ट गीति नादय को काव्य परिचय में यह रचना दी है। प्रसाद जो ही उत्कृष्ट में उत्कृष्ट - पुलकित का मिश्रण केवल एक संयोग है, मन्थर्व के पुरत उत्कृष्ट के प्रेम में सममादमय था। प्रसाद

१. H. H. Wilson - The Theatre of Hindus Footnote P 59

2. J. Keats - Beauty is Truth, Truth Beauty, that is all
Ye know on earth and all ye need to know.

पुलखा ने उसे गायन कर दिया। अक्सर बाहर छेदक द्वारा भेद साधकों का अवसर और अक्सर राजा के पास से उर्वशी का घना जाना कथा का आधार है। उदय रंजित मंदिर की उर्वशी का विवाह के मादक विद्युत्कीयता का विन्दी स्वतन्त्र है। दिनकर ने उर्वशी को महाकाव्य की भावना से भाविका नीति मादक के परिवेश में प्रस्तुत किया है। कथानक की दृष्टि से दिनकर का उर्वशी में पूर्वोन्मिश्रित आकाशनों से विन्दी तन्त्रा है और विन्दी सामंजस्य इसका विवेकन ओषित है।

दिनकर की उर्वशी में परिवर्तन :-

उर्वशी को कवि ने पाँच अंकों में संगठित किया। प्रथम अंक में उर्वशी के अवसर की सूचना और राजा पुलखा द्वारा उसके जीवन की तन्त्रा

का जर्न है। मधुसूदा ने यह सम्पूर्ण सूचना केवला को दी और साथ में यह भी कहा कि उर्वशी पुलखा पर पूर्ण आसक्त है। चित्र लेखा ने आकर समाचार दिया कि वह भाव्य उर्वशी को पुलखा के समीप भेज कर आई है।

दूसरे अंक में राजा पुलखा उर्वशी के साथ प्रणय-गन्ध मन्त्र आसन पर्यंत पर विचार करते हैं, तब मधुसूदा जीरीनरी राजा की वस प्रणय-गन्ध को जान कर विचार्य हुई जवनी तभी निगुणिका से अपनी मनो-आशा व्यक्त करती है। मधुसूदा की मागली भावना का चित्रण इसमें ओषित है। राजा पुलखा ने यह सर्व तन्त्रा मन्त्र आसन पर विचार करने का भी तन्त्रा देना है। और तब तब रागी ओषित ओरीनरी को निमित्त यह के निमित्त जीना है। उपरान्त इसके प्रणयजोर परिवर्तन का सैद्धान्तिक भावनात्मक विवेकन है। दूसरा अंक वस प्रणय पर परिवर्तन होता है कि पुनः-प्राप्ति के लिये पुलखा उर्वशी संग प्रणय आराधना को और ओरीनरी भावना से प्रार्थना करे। यह एक मन्त्रीन उद्घाटन है।

तृतीय अंक तो उर्वशी का प्रणय-मादक का प्रण है। एक सर्व ज्ञाती होने पर वह कामना यष्टि की अनवरत शिक्षा पुलखा को छोड़ कर चली जाती है। इस अंक में प्रणय तीला के अतिरिक्त ओषित वाचिनास भी है। धर्म, काम, योग, प्रणय, भावा, जीवन, जगत, के अनेक शक्तों की उद्घाटित कर उगका विवेकन कर अर्थात् पुलखा और मानवी तथा ऐसी में विवेकन कर सर्व-दीप्त उर्वशी दोनों की अन्तः काम प्रकार की बहुत समय तक ओषित न रहें तब। तब के संदर्भ उपरान्त उर्वशी स्वप्न प्रसिमाओं का अतिरिक्त इसी हुई पुलखा को अन्तः छोड़ कर चली गई।

चौथे अंक में नवीन ध्येय के लक्ष्य में वांछित उत्कृष्ट-पुत्र आद्य के साथ जब सुकन्या अपना दिन मेहों से बाल्याश्रय मग्न थी इन दोनों में भी प्रिय और नारीत्व एवं घर विनय वहाँ हुई है। यही सुकन्या अपनी जीवन-कथा, विवाह और सुखी जीवन की सम्पूर्ण कथा सुनाती है, नारी जीवन के आदर्शों की स्थापना करती है और रिश्वत् स्वयं में सर्वोपरि बोध को वर्णन करती है कि सभी उत्कृष्ट वहाँ जा वर्णन होते हैं। वह सुख मानवी माता के रूप में प्रकट हुई। मातृत्व का अनिवार्य रूप और भक्त - शाय --- पुत्र और पति नहीं, पुत्र या केवल पति पाओ भी --- दोनों की अब उत्कृष्ट को भाव रहे हैं। यहाँ घर कवि ने इस स्त्री-स्वयंवर आश्रय को केवल धृष्ट रक्ता है। पुत्रत्व उत्कृष्ट राजा के पास मात्र ही समाप्त के साथ न्याय मित्रत्व के लिये जाने घर विनय है।

पाँचवें अंक में अंत प्राप्त आद्य को से हर सुकन्या राजा पुत्रत्व के बाल्यार की और चली और राजा के भी स्वयं में अपने पुत्र आद्य को देहा, उत्कृष्ट पारल में होती है, यही व्याख्या, मन में अत्यंत आनंद है पुत्र या पति, पति या पुत्र संतान विनयों में उनकी मानवी नारी जो व्याख से बानी पानी मांगती रहती है। स्वयं वर्तमानों में भी धृष्ट को कि राजा पुत्रत्व पुत्र प्राप्त कर लीष्ट ही पुत्रत्व का हों है। राजा अभी वर्तमान में अपने को महात्मा भी न जाने थे कि उत्कृष्ट अनंतत्व को यह। राजा ने भी आद्य को अनिवार्य घर पुत्रत्व प्रकट की।

विनय ने वैदिक - पौराणिक अध्यात्म घर काव्यत्व से प्रभाव को लेकर तत्त्व मीतिक उद्भाषनाओं में अपनी रचना को समन्वित किया है। जो उनकी अपनी मीतिक उद्भाषनाओं में है कीर्ति, नार्तिक अथ वृत्तिस्वयं प्रधान हैं, अन्तर्गत ही वही पुरानी हैं। हाँ, वर्तमान काल के वैदिक उद्भाषनों की वर्ण भी स्वयं - सिद्धांत में आती है। स्मृति और भूत मनोवैज्ञानिक विनय ही हैं। प्रिय प्रकृत को तो हस्तगत मनोवैज्ञानिक कहा गया है। वस धृष्ट से यह प्रकट मनोवैज्ञानिक विनय भी है।

०००००००

..

उर्दू की नाट्य गीत

००

उर्दू में नाट्य गीत

उर्दू उर्दू की दूर काव्य है। नाटक के नाट्य लक्षणों का निर्धारण इस कृति की विशेषता है। कवि ने इसे गीत रूप में प्रस्तुत किया है अतः इसे गीति नाट्य की संज्ञा दी जा सकती है।

गीति नाट्य की प्रमुख विशेषता उसकी वैयक्तिक अनुभूति है जिसे नाट्य-कार संगीतात्मक स्वरूप में प्रस्तुत करता है। वस्तु की सम्पूर्ण कथा गीत के रूप में होती है और वाक्य के संघर्ष की अवस्था आन्तरिक संघर्ष की अवस्था में लिया जाता है। उर्दू की कविता विशेषता है। यद्यपि तीसरी शताब्दी में गीत की सम्बोधनता में अवसर अवसर मिलता है और कवि ने मिश्रण की भाँति 'मन और भाव' *Run - on - lines* में लिखार व्यक्त किया है तथापि उसकी गति-धृति और वे हैं तब में कोई अन्तर नहीं जाने पाता अर्थात् गीत की टोन को हृदयात्मक रूप प्रदान किया गया है। उर्दू उर्दू के इस गीत-नाटक की भाँति के स्वरूप में और निर्धार प्रदान किया है। पात्र अपने स्वरूप में संगीतात्मक भावना का ऐसा सृजन करते हैं कि प्रेक्षक की सहृदयता इसे गीतिमय व्यक्तिगत गतः प्रदान करने लगती है। नाटक का प्रारम्भ ही अप्सराओं के आकर्षक व्यक्तित्व से व्यक्तिगत ध्यान-रमन से प्रारम्भ होता है, समस्त गायन उसका प्राण है, प्रत्येक शब्द भारी-भार प्रदानता का गीतिमय व्यक्तित्व को ही अभिव्यक्ति करती रहती है। उर्दू की कथा-वाक्य, प्रभाव और परिणाम, ऐतिहासिक वास्तव और वैयक्तिक प्रभाव, प्रीति की कठोरता और नारीत्व की सरलता में विकसित और परिपूर्ण रूप है, अतः सर्वत्र व्याप्त संगीतात्मक भाव लोक में गीति उत्पन्न की प्रदानता इसे गीति नाट्य की रूपरेखा का औचित्य सिद्ध करती है।

उर्दू में नाट्य-लक्षणों की आधुनिक अवधारणा समझे नाट्य-गीत की प्रतीक है। उर्दू की नाट्य शक्ति में समाप्त गीति नाट्य है। कवि ने शब्दों को दूरियों में विभाजित नहीं किया है अर्थात् दूरियों का चित्रण समस्त लक्ष्यों से देने का प्रयास किया है। दूर्य परिचरित में समस्त-व्यक्ति ही तो भूल है और कवि ने अपनी दृष्टि से वस्तु उपयोग किया है। स्थान सुचना दूर्य परिचरित का दूसरा महत्वपूर्ण निर्माण है। वस्तु की सुचना भी कवि ने स्थान पर देनी दी है। जिस से घट-परिचरित की कल्पना नहीं करना पड़ती बल्कि वह तत्कालीन

उत्पत्ति-काल-वर्षादिक दृष्टि से तथा इस की कनाये रहने में समान होता है। यही भारतीय मनीषा का महान नाटकीय विधान है। इसे वाचस्पत्यमिश्र जीशय मेरुसम - त्रय (Unity of Time, Place and Action) कहते आये हैं।

भारतीय नाट्य शैली :-

भारतीय नाट्य शैली विश्व की सब से पुरानी नाट्य शैली है। संस्कृत नाटकों में जिस प्रकार सब से पहले नट-नट्टी, सुखधार आदि की व्यवस्था है, विमर्श ने भी उर्दू की में इसी परम्परा का बालन किया है। नट-नट्टी के माध्यम से सुखधार नाटक का नाम

य प्रयोग प्रेक्षकों तक प्रेषित करता था जिस ने कि प्रेक्षक उस कथा वस्तु के साथ साक्षात्संग्य करने की पूर्ण विधि में रह सके।

भारतीय नाट्य शैली में वैदिक काल से अस्मात्मान काल तक की अनेक परिवर्तन दृष्टे हैं जिन में वाचस्पत्यमिश्र नाटक वाचस्पत्य भी प्रभावशाली रही है।^१ विष्णु जीशय रीति के उत्तर काल में जब वास्तविक नाटक व्यवस्था भारत में अपनी स्थापना कर रही थी। उस प्रकार १९ वीं एवं २०वीं शदी में भारतीय नाट्य परम्परा में वाचस्पत्य भावक परम्परा का संक्रमण हुआ और एक नए नाट्य कला विकसित हुई।

भारतीय नाट्य कला ने नाटक के केवल तीन ही तत्व ऐसे हैं किसे ने नाट्य रीति को जाना है। वह स्वयं कोर अन्तर्गत ने वस्तु, नेता एवं रस को प्रेरित जाना है। वस्तु-व्यापक - भी अधिकारिक एवं प्राज्ञिक दो प्रकार की होती है। उर्दू की गीत नाट्य में अधिकारिक कथा उर्दू की-मुसलमान देखि-रहा है। उसके फल की प्राप्ति भी उर्दू की होती है, उर्दू की वा की उस पर अधिकार है। उक्त दो प्रकार की अधिकारिक कथा कहा जायेगा। प्राज्ञिक कथा अन्तर्गत और सुखधार की कथा है जो भीष्टे जायेंगे की में व्यापक है। उसका उद्देश्य सुखधार - उर्दू की जायमान की सहायता देना है और सुखधार को विकास गामी बनाना है। प्राज्ञिक कथा अपने उद्देश्य - प्राप्ति के बाद स्वतः समाप्त हो जाती है। नेता की नायक है। अन्तर्गत ने नाटक में २२ गुणों को माना है।^२ नाटक को उपलब्धि की रस है। नाटक में वस्तु नेता और रस को उपलब्धि के भी अनेक स्तर हैं--- नाटक में पूर्व रंग और सुखधार का प्रवेश होता है तत्पश्चात् नट-नट्टी उसकी स्थापना करते हैं। पूर्व रंग तत्पश्चात् ने नाट्य शक्ति की रचना, संकायपर्य्य आदि, सुखधार के जाने के बाद नट उर्दू की पूर्व रंग की स्थापना करने के लिये अभिनीति किये जाने वाले नाटक की सुखधार देता है। तत्पश्चात् सुखधार-कथा रंग पर प्रस्तुत होती है।

१:- वाचस्पत्यमिश्र रसज्ञेय में वस्तु, अभिनीता

तत्पश्चात् अधिकृत मुख्यतः प्राज्ञिक-मर्द विदुः । एवं वस्तुवत् १/११

२:- वस्तुवत् २/१२

मुख्य तथा अथवा वस्तु की पाँच अर्थ प्रकृतियाँ हैं।^१ और तदनुरूप पाँच अवस्थायें हैं।^२ अर्थ प्रकृति से सात्त्विक प्रयोजन की प्रकृति है। प्रकृति का अभिप्राय सिद्ध हेतु का अभिप्राय है। अर्थ प्रकृतियों का प्रयोजन के अनुसार ही अवस्थाओं का विभक्तिकरण किया जा सकता है। अर्थ से सात्त्विक कल के रणाय अथवा हेतु से ही है। यह कल नाटक कार और नायक दोनों का कल ही माना गया है। एक कारक के लिये नाटक का कल रसोन्मास केवल नायक के लिये धर्म अर्थ काम मोक्ष में से किसी एक दृष्टिकोण की उपलब्धि/कल के व हृद्देश से जो कार्य आरम्भ किया जाये उस की ये पाँच अवस्थायें --- प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्ति, निष्पत्ति और पलायन आभासिक ही होती हैं। अभिनव भारतीयकार ने इन अवस्थाओं का सम्बन्ध केवल नायक से ही नहीं माना है अपितु उसे नाटक कार से भी सम्बन्धित किया है। आरम्भ जीवमुत्पन्न है, प्रयत्न फल प्राप्ति के लिये मेहनत है, प्राप्ति फल प्राप्त करने के लक्ष्य में आशा अथवा समायोजन है, निष्पत्ति संघर्ष विमर्श के उपरान्त मिश्रण लाभ की स्थिति है और पलायन समग्र फल लाभ है। ये अर्थ प्रकृतियाँ और अवस्थायें इसी हैं: जब एक दूसरे से मिलती हैं तो पाँच सम्बन्धित प्रकृतियाँ होती हैं। एक प्रयोजन से अन्तित कला का दूसरे एक प्रयोजन से सम्बन्धित हो जाने की सीमा कहते हैं।^३ ये सीमाएँ भी पाँच हैं --- मूल, प्रतिकूल, यथ, विमर्श, और निर्विण्ण।

नेता आनन्द नाट्यशास्त्राचार्य पाण्डेय के अधिष्ठान में उत्पन्न करिष्ठ किया है। उन्होंने ने रसोन्मास में नेता के २२ गुणों का उल्लेख किया है। नायक की पूर्णता के ही जीरोदाह, धीर लज्जा, धीर प्रशान्त और जीरोदुर्ग --- कार प्रकार के नायक माने हैं। इसी प्रकार नायिका के २२ गुणों की नायिकाओं का विवरण किया गया है। नेता ही नाटक में रसोन्मास कहलाता है। भारतीय नाटक - विचारकों ने नेता की ही नाटक का कल प्राप्त होने का या विकास किया है। जिस से नाटक सुष्ठुत्त रहते हैं। सुष्ठुत्त की नाटक बारबारता के रूप में। भारतीय समीक्षा ने नाटक में नायक के रूप में ही लक्षित रहे हैं। अतः नाटक में रसोन्मास की उपलब्धि न केवल नायक के ही होती है अपितु नाटक कार की भी होती है।

रस नाटक की उपलब्धि है। रस अर्थात् आनन्द। काव्य शास्त्र में शौन्दर्य केना की अवधारणा ही उसे आनन्द स्वयं आनन्दमयी कहती है। रस शौन्दर्य केना का आनन्द प्राप्ति और विमर्श के माध्यम से जाने बढ़ता हुआ आनन्द

१:- सीधेविन्दु: प्रकाश च प्रकृति कार्यमर्थ ई

अर्थ प्रकृत्यः संघातत्वा बोध्या यथाविधि --- साहित्य दर्पण - ६/६४

२:- अवस्थाः संघ कार्यस्य प्रारम्भस्य पलायनमर्थः

आरम्भस्य प्राप्तिनिष्पत्ति पलायनमर्थः --- साहित्य दर्पण - ६/७०

३:- अर्थ प्रकृत्यः संघ संघातत्वावस्थामर्थः

यथा संघेन जायते सुतादृशाः संघ संघः

अन्तरेकाव सम्बन्धः सन्निवेशाभ्यो जति --- साहित्यदर्पणम् यदा तदा १/२३

स्थिति का आस्वाद्य कराने लगता है। यह आनन्द स्थिति ही राग है।

पारचाय नाट्य शैली:-

पारचाय नाट्य शैली के मूल स्वरूप निम्नलिखित
विशेष हैं। पारचाय या मौखिक नाट्य शैली
का मूल युगान्त होने वाले युगान्ती या युगान्ती
नाटकों से है। कतिपय साहित्य समीक्षकों ने

भारतीय नाट्य शैली पर युगान्ती नाट्य शैली का प्रभाव लगाने की कुवेला भी की है।
भारतीय नाट्य शैली युगान्ती शैली से प्राचीन एवं अधिक गौरव संगत है।

और मौखिक नाट्य शैली में नाटक की वः अवस्थाएँ मानी गई हैं। ठीक
भारतीय नाट्य शैली की भाँति। वे वः अवस्थाएँ हैं:-

- 1:- पारचाय Exposition 2:- प्राचीन संघर्ष मध्य घटना Initial
- 3:- Incident ————— संघर्ष आसन्न और आरंभ दोनों
प्रकार से भी सम्भव है।
- 4:- नायक का 'राम सीमा' की ओर बढ़ना Rising Action
- 5:- 'राम सीमा' -Crisis (Climax)
- 6:- संघर्ष में निराली पक्ष पक्ष का हार falling Action या
Denouement होता है और
- 7:- अन्तिम अवस्था Catastrophe

यह अन्तिम अवस्था एक ही या दो ^{पक्षों} की हार से होती है।

पारचाय नाट्य शैली में नाटक के चरित्र बनावे गये हैं--यस्य, पात्र,
आपकर्म, वेष्टकाय शैली और वः हृदयगत। इसे भारतीय नाट्य-विज्ञान के तीनों
सत्यों के अन्तर्गत रक्का जा सकता है। नाटक (नायक) सत्य में पात्र, आपकर्म
और वेष्टकाय का अध्ययन किया जा सकता है। यह सत्यों शैली और हृदयगत
निहित है। पात्र आपकर्म का चरित्र चित्रण करते समय छोटे गये सम्भावनों से
ही विकसित होता है। सम्भावना की भाँति नाटक का ही सत्य मूल इसके नि
हित्य में काम करने की आवश्यकता नहीं होती। नाटक की प्रिय परमो ही नायिका
है वह भारतीय नाट्य शैली पारचाय समीक्षा समीक्षा नहीं करते। और भी भारी पात्र
जिस का कथा भाग में प्रधान भाग है/नायिका कहलाती है। कथोपकथन क्या रूप
यस्य का सार भाग है। इसका गठन, व्याख्या और समीक्षा ही कथा यस्य को
निहित करता है। अतः नाटक में कथोपकथन और शैली का ही उन्नि सत्य बनाने
में सर्वाधिक वाचित्य है। कथोपकथन में ही स्थान कथन एवं आकार भावित, का
अपना विशेष स्थान है। स्थान कथन का सार्वभ्य है मंद पर जोले जाने पर भी मंद
है अन्य पात्र उस से सम्बन्धित रहते हैं --शैली प्रतीति करार्य जाती है जब कि
शैली से ही मूल का विकास करते हैं कि वह बात को जोलने वाला पात्र ही कथोपकथन

हर अभिव्यक्ति करता है। भविष्यतः अन्य बातें उसे नहीं सुनते। देश-काल की
 सम्बन्धता की दृष्टि, यद्यपि वे छोड़ने पर उसमें दो एक रूढ़ता जाती है उस दृष्टि का
 नाम ही संस्कृत श्रम है। संस्कृत श्रम अर्थात् देश-काल और कार्य की एक स्मृति।
 देश-काल रूढ़ता की एक स्मृति, जोर उसी की संगति में समय-काल की अनुसंधान
 जिस से कार्य सम्पादन में आवाजाह्वि स्थिति में आने वाले/संस्कृत श्रम उद्वेगित है।
 उद्वेगित का एक तात्पर्य नाटक की उपलब्धि है। नाटक की उपलब्धि ही नाटक-कार
 की उपलब्धि होती है अतः नाटक में उद्वेग की दृष्टि, नैतिकता एवं आदर्श
 महत्त्वपूर्ण रहते हैं।

पूर्य रंग

[illegible]

अब यह बड़ी बेतुह बात आयातों के है। हमारा पैसा तो सब जगह है। ये परस्पर
 आवाद करते हैं --- हम विदेशों पर फिर यह सारा सब कुछ माता है। यहाँ है
 और फिर के आन्तरिक बाजार पर सब कुछ उन्नी गीति माता की कहानी
 आयातित है। हमारे विचार हैं---

- 1:- काली जी का पूजा का प्रकार
2:- मङ्गलपत्र और लक्ष्मण जी का पूजा का प्रकार
3:- काली जी का पूजा का प्रकार

[illegible]

उसकी समुद्र लीक है। यहाँ पर समुद्र में ही श्वेत मंगूर जीवन व्यतीत करता है। यहाँ यह जीवन जो भीता है, उसका अर्थ कर जाता है। इस एक श्वेत की उम्माव

तरीक़ पर आदरस भी आधार है। देवत्व एक रस है अतः नीरस है। उरती के लोक का काम भाव, कौंतक संवरण, समस्त आकाशनों का जीवन ही काम्य नहीं है। उसका उर्ध्व नाभी संवरण, आकाशम में प्रवेश और विकास देवत्व के आकाशों को कामना, देव धर्म से ऊपर उठ आरम धर्म को स्वीकार करना भी एक नाटक का अन्वेषण है।

और सब सज्जना मेमका की भर्त्सना करता है कि वे लोक दासी होकर भी वह नृत्य लोक की प्रशंसा करे शोभनीय नहीं प्रतीत होता। मेमका की रस उर्ध्वी की भी कौतुक किसी नृत्य मायक के उर उनी हैं।

उर्ध्वी लोक का उच्चारण ही पुनः उर्ध्व की प्रशंसा करता है। उर्ध्वी उन आकाशनों में नहीं थी, हमले भाव भी नहीं उर्ध्व थी। उसे तो पता है कामना केतव्य। किन्तु मेमका ने समस्त विद्या और पुरी विद्या पुनः दी। उनी लोक पर पूर्व रंग और प्रस्तावना भाव समाप्त समझना चाहिये।

उर्ध्वी धर्मियों का नीति नाटक है। प्रथम उर्ध्व का रस है उर्ध्वी - युग्मका का रस, उन में प्रेम का नीतिगुरु और उन का प्रथम प्रतिफल। उर्ध्वी नाटक की उर्ध्व प्रकृति का जीवन भाव है। तदुक्त होने वाली उर्ध्वी उर्ध्व की अवस्थाएँ हैं। किन्तु मेमका आकर पूछना देती है कि एक बार उर्ध्वी ने विचार के। उर्ध्वी समय वह देवता ने आकाश मा. में ही उर्ध्वी का उर्ध्वी रस कर लिया था। उर्ध्वी के सुन्दर लक्ष्यगत और प्रकृति ने उर्ध्वी के उर्ध्व नाटक की पुनः और देवता को तार कर उर्ध्वी का विमोक्षण किया। उर्ध्वी नाटक के नीतिगत पर उर्ध्वी रस और राधा उर्ध्वी के नीतिगत पर। ये दोनों ही एक दूसरे के लिये समान हैं। वह लिये किन्तु मेमका उर्ध्वी को राधा के प्रथम रस में छोड़ कर भाग है। वह समस्त कार्य-व्यापार सुन्दर है।

देव, उर्ध्वी-युग्मका प्रेम उर्ध्वी नाटक की पुनः और उर्ध्वी-युग्मका की परस्पर संगोष्ठा। इसमें सौंदर्य के वैचारिक विचार विचार उर्ध्वी नाटक में उर्ध्वी नाटक की धारा है। उर्ध्वी नाटक प्रथम का विमोक्षण करता है, रस, विमोक्षण, उर्ध्वी नाटक की पुनः देवता के समस्त पु. लोक की देव समझती है और तदनुक्त उर्ध्वी नाटक की नाचियों के सामान्य जीवन से केवल। उर्ध्वी नाटक की कामना, नीतिगत, युग्म, जीवन की उर्ध्वी नाचियों की रसगत सभी पूरे नाटक का के नीतिगत में नियोजित है। देवता की दो नाचों में उर्ध्वी नाटक दो उर्ध्वी जीवन ही नहीं करता। दूसरी ओर नाचियों की समस्त नाचियों में ही उर्ध्वी नाचों की प्रतिपादित करने पर उर्ध्वी नाचियों की नीतिगत नाचियों से उर्ध्वी जीवन-नीतिगत की ओर के नीति करता है। उर्ध्वी नाचों की नाचों जीवन और देव भाव की उर्ध्वी रस के लिये नाचियों की निम्न करता है। उसे देव समझती नाचों दूसरी ओर नाचियों

आरण्य का चुल्ले वाली मेनका माता तो ही स्वयं ही प्रिया मानती है। इसी के साथ यह भी समझनी चाहिए कि गामी जीजीनारी के रहते हुए क्या चुल्लेवा उत्पत्ती के साथ उसका माता का निर्वाह कर सके हैं। उत्तर केवल में—आधुनिक युग ही—

जीजीनारी लोग नियत वर्ष सुनसानों पर रहते ही रहते हैं। युग का मनो विवर्तन है।

किन्तु युग का रस भीमना गंध के मने लगी हैं

निराश प्रेमा एक युग अभिलिखित होन लगी है।

संसार में इस अंक में क्या हुआ है। उत्पत्ती-पुल्लवा प्रेम - जीजीनारी का है। परन्तु वीरुन और सुनसान दोनों पर रोक का व्यापक है, एक देश में ही दूसरा मानवी। इस प्रकार संसार का क्या मानवीय परिवर्तन केने लगे समस्त मान में लक्ष्य है। युग का जो निर्यात के उद्देश्य के माता के परिवर्तन किया है।

युग के लक्ष्य के लक्ष्य में

युक्ति निर्यात है

उत्पत्ती यात्रा नाट्य का दूसरा और नाट्य युग की वृद्धि से विन्दु नाट्य की उत्पत्ति के साथ प्रत्यक्षता का प्रतीक है। इस अंक में केवल तीन पारोपान्त में पर प्रस्तुत हैं जो अत्यन्त महत्त्व से यह प्रस्ताव देते हैं कि पुल्लवा उत्पत्ती यात्रा में मानव प्रतीक पर ध्यान कर रहे हैं। जब तक के विचार उत्पत्ती में प्रथम जीजा रस में या उत्पत्ती में प्रथम पुल्लवा प्रथम पारोपान्त में रस केवल तक उनकी महत्त्वानी जीजीनारी को प्रथम साधन करने में जीजीनारी नहीं करता है। एक और तथ्य है—राजा पुल्लवा को विन्यास केवल के लक्ष्य को, किन्तु जीजीनारी महत्त्व निर्यात है। अतः एक लक्ष्य को लक्ष्य केवल राज-युग का होना भी अनिवार्य है। जब तक के लक्ष्य जीजीनारी के साथ समस्त के जीजीनारी जीजीनारी अन्य मान नहीं है। उत्पत्ती भारतीय मान का आदर्श है।—

नारी। उठे जो एक मन में, जीजीनारी का लक्ष्य नहीं।

इस अंक का महत्त्व बहुत अधिक है। इसी अंक में हमारा परिवर्तन उत्पत्ती नारी जीजीनारी से होता है जो एक सामान्य नारी की समस्त लक्ष्यों एवं लक्ष्यताओं से परिवर्तन है। तब तक है, इस लक्ष्ये प्रथम प्रत्यक्ष है, किन्तु यह एक नारी भी है अतः उत्पत्ती की उत्पत्ति और पुल्लवा के साथ उत्पत्ती विचार उनके लक्ष्ये लक्ष्य है। दोष और

- 1:- एक लक्ष्य विन्यास, किन्तु सब कुछ युग महत्त्व है युग। युग। अपने युग में क्या जीजीनारी लक्ष्य-मात्र है। विन्यास यह एक लक्ष्य क्या जाने नहीं लक्ष्य-मात्र करती रहे जीजीनारी, युक्ति जीजीनारी प्रथम लक्ष्य में लक्ष्य रस में भी रस है, के उत्तर के आराधन में

----- उत्पत्ती अंक 2 पृष्ठ 39

2:- उत्पत्ती पृष्ठ 39

पुरुष का प्रकृति कारण है। जोशीमरी इसे गणिक्का तक कह सकती है।¹
 पुरुष की लालुष मनोवृत्ति और लो का नम्मीर प्रेम इन दो विषयों पर ही
 कवि ने वर्णित वर्ण की है। पुरुष-वर्षी प्रमुख पात्र होते हुये भी उस अंक में
 कहीं कहीं हेकिन्सु अन्वित की दृष्टि से उनकी स्थिति सृष्टि विधान से प्रस्तुत
 की गई है। अन्त में जोशीमरी जब तक के माये गये गीतों के उपरान्त प्रवां नील
 गाली है वह भी किताब वर्णित है -----

हाँ, अमोघो साधना है,
 अपसरा के संग रक्ता री की आराधना है; 2

उत्पत्ति का प्रमाण है

वृत्ति विधान है

सुतीय अंक को इस नीति मादर का प्रस्तावना कर सकते हैं। पुरुष और
 उत्पत्ति का में लो लो पात्र हैं। पुरुष और उत्पत्ति अपने प्रगल्भ प्रेम में मग्न हैं
 या वैयक्तिक स्थान में एक दूसरे से के ६० सिद्धांत प्रतिपादित करना चाहते हैं।
 यह अंक जोशीमरी और भावनात्मक अन्वित आ अन्तर्गत उदाहरण है। पुरुष का रस
 गन्ध रस और शब्द से मिलने वाले सुगंध से उन्वेष्टित हैं।³ के अन्वितमक भाव
 में रह रहे हैं। यह गुरु की भावना करते हैं और इस में जाने भिन्नता का प्रमाण
 भी।⁴ यह उदाहरणों में प्रमाण है --- काम के आध्यात्म तक पहुँचने का
 आशंकात्मक आशयान साधक है। दूसरी और उत्पत्ति सौन्दर्य और यौन दृष्टि का
 प्रतीक इस पर केवल वैद-धर्मी भौतिक संशय की ही आप्त मानती है। पुरुष इसे
 स्वीकार नहीं करता। वह तो पौरुष के लक्ष पर उत्पत्ति का आशय भी कर सकता था,
 किन्तु के लक्ष पर जा कर उसे माँग कर ला सकता था, किन्तु ये दोनों की स्थितियाँ
 उसके उर्ध्व के विपरीत होती हैं और उसके अवयव का कारण बनतीं। वह तो अनात्मक
 यौगी भी है और उत्पत्ति के सौन्दर्य पात्र का लोभी भी। अन्तर्गत में मन-दुष्टि के
 संघर्ष स्तर हैं, मंडल-विषय है, सुन-अवगुण है, योग भी है भोग भी है। किन्तु
 पुरुष की आत्मा निष्कलुष है। वह परम रस और तमस में से डेल सत्त्व की
 कामना करता है। लो तो मानव का अर्थ है। उत्पत्ति दार्शनिक नीति के *Elan*
vital सिद्धांत पर चल कर दौधन-अन्योपि को छक छक कर जीने में
 विधात करती है, वह रक्त की भाषा पढ़ना पढ़ाना चाहती है, निरी दुष्टि
 बन्ध है, बाध और पुरुष दृष्टि के माय है। पुरुष इसी स्तर से ऊपर उठ कर

1:- उत्पत्ति अंक 2 पृ० 32

2:- उत्पत्ति अंक 2 पृ० 39

3:- लो गणिक्का भाग ४

4:- लो पृ० ४

आदि अभिनय का प्रारम्भ ही चौथे अंक से प्रारम्भ हुआ है।

पाँचवाँ अंक अभिनय की दृष्टि से गेष्ठ है। प्रारम्भ में ही कार्य बहुलता है। छतनायें और प्रियायें हैं। स्वप्न है, स्वप्न फल का दुष्टा भविष्य वक्ता भी है। उर्वशी का अन्तर्धान होना पुरुषों के पौत्र को पुनर्जन्त है। महाभारत उर्वशी के वाचन लाने की युक्ति को नकार देते हैं और अंत में आकाश भाषित प्रस्तुत कर पुरुषों को जिस रूप में प्रस्तुत किया गया है उस से ऐसा प्रतीत होता है जैसे पुरुषों पर ही पौत्रों का नाम आदी गौरवों का है। स्वप्न आस्था बनाये हुये वह परित्राजक हो जाता है। अंत में उत्तरार्ध में पुनः चिन्तन प्रधानता आ जाने से अभिनय शिथिल हो जाता है। इसी अनेक दुर्लभाओं के होने के बाद भी दिनकर की ही कृति एक सफल काव्य है यद्यपि उसे पूर्ण स्वेन भाटक नहीं कह सकते। उर्वशी के नाट्य गठन में गीति नाट्य का स्वल्प हीना भी अध्ययन का विषय है। गीति नाट्य में नाटकीय अभिनय के अतिरिक्त समस्त सक्ति कलाओं का समावेश रहता है। और इन कलाओं के सौन्दर्य परिवेश में ही गीति नाट्य विकसित होता रहता है।

उर्वशी दिनकर के अन्य महा काव्यों की भाँति किसी मनुष्य समस्या को लेकर लिखी गई कृति है। वह मनुष्य उर्वशी है --- काम से आध्यात्म तक मानव जीवन का सम्मेलन। सम्पूर्ण ग्रंथ में काम की ही व्याख्या की गई प्रतीत होती है। काम की प्रणय-परिणति को प्रस्तुत करती है उर्वशी और परिणय-परिणति को प्रस्तुत करती है अन्तर्धान। प्रणय और परिणय पर लिखा गया यह काव्य एक सौष्ठव प्रबन्धप्रतीत होने लगता है। कार्य-व्यापार के अभाव में अन्य छोटी भावनी मनो-लेखों को इस में स्थान नहीं मिल सका --- केवल संगार की ही प्रधान स्थान दिया गया है। संगार की प्रेम की एकमात्र मापनीय होमस्तम दृष्टि को व्यञ्जित करता है। अन्तर्व्यञ्ज्य के चित्रण से इसका व्यापक सौन्दर्य निश्चय ही बढ़ जाता है। अन्य रत्नों का इस में निराला गौरव स्थान है।

अब रहा गीति नाट्य का स्वल्प। उर्वशी एक गीति नाट्य है। गीति नाट्य के गठन की प्रस्तुत करते हुये दिनकर की ने सर्व प्रथम ही प्रकृति के मनोमुग्धकारी स्वल्प का चित्रण किया है और सम्पूर्ण कृति में सर्वत्र प्रकृति के सौन्दर्य एवं होमस्तम चित्र वातावरण और पात्रों के चरित्र-सौन्दर्य में निरन्तर वृद्धि करते हैं। सीमित वातावरण की बहुलता, विषय के अन्तर्व्यञ्ज्यवादात्मक चित्रण आदि वैसे ही गीति नाट्य की संज्ञा हैं, किन्तु यहाँ भी अनेक न्यूनतायें हैं जिनमें गीति नाट्य के परिप्रेक्ष्य में देखने पर उर्वशी की पूर्ण रूप से गीति नाट्य कहने में किंचित संकोच होता है।

सर्व प्रथम मंच निर्देश का का ही इस गीति नाट्य में अभाव है। गीति नाट्य में ध्वनि, वाद्य, संगीत के सम्मिश्रित प्रभाव का जो चित्रण है उसके अनुसंधान रचना का निर्देश दिया जाना आवश्यक है। वातावरण की रचना का अधिकार्य भाग मंच रचना द्वारा निर्देशित होता है। यह ठीक है कि प्रकृत समुदाय अपने मनोमुग्ध

उसकी रचना कर लें किन्तु उसका एक मायम सम्बंध नहीं होना। प्रथम अंक में तो मृत्यु का भी है गीत भी है, संगीत का प्रभाव कोमल कृत्तियों को प्रस्तुत और अभिव्यक्त करने में समर्थ है — समस्त गायन एक नहीं तीन तीन हैं अतः इस अंक की प्रभावशालिता भी अधिक है किन्तु अन्य अंकों में इस संगीतात्मक मृत्याभिनय की कोई स्थान नहीं मिला। परिणामतः प्रथम और विजतीय अंक किंचित् तुकान्त अन्य में होने के कारण इस प्रभाव को कनाये रहने में समर्थ हो सके है किन्तु शेष तीन अंकों में गीतात्मकता का स्थान भिन्न तुकान्त अथवा अनुकान्त छन्दों के और समस्त गायन या मृत्यादि के अभाव एवं गीतात्मक सुन्दरता से इस कृति को गीति नाट्य स्वत्व का ह्रास होता रहा है। यह काव्य के अधिक निकट जा पहुंचा है। अनुकान्त सम्वादों के काव्य भावा रूप को गीति सम्वाद नहीं कहा जा सकता।^१ मुख्य बात जो गीति नाट्य का प्राण हैकिली भी अवर्धित अटना की ओर संकेत नहीं करते और यदि सम्बंध स्व में उनका उल्लेख भी कहीं किया गया है तो उसकी प्रस्तुति भी छन्दों के द्वारा यदि मंच पर भाव-रस में की गई तो कहीं अधिक प्रभाव शाली होती।

उर्दू की गीति नाट्य के मंचन के प्रथम पर कतिपय रंग निर्देश आवश्यक है। श्री सीरेन्द्र नारायण जी ने उर्दू की के मंचन के लिये कुछ सुझाव प्रस्तुत किये हैं। उनके अनुसार :-

बहिले अंक से अप्सराओं का स्वर्ग से उरातल पर अवतरण वाले प्रसंग से संबंधित समस्त गान, पुरुष की सेवा, नारी के विभिन्न रूप और महत्वका वर्णन आदि स्थलों को निकाल देना चाहिये। अप्सराओं के वातालाप में उर्दू की और पुरुषों से सम्बंधित लम्बे वातालाप के परचाहू तीसरे अंक का उर्दू की -पुरुषों के प्रदर्शित किया जाना चाहिये जहाँ पुरुषों को --- आग के खदले मुझे समस्तों को लोभ देना । इस दृश्य के अन्त में श्री पुरुषों का कथन हो --- मैं तुम्हारे लक्ष पर धर शीर्षक कीर्ति करना चाहता हूँ।

तृतीय अंक के स्थान पर विजतीय अंक की व्याख्या मयी जोड़ीनरी का ध्यान सन्तान कामना की ओर हो, प्रस्तुत किया जाये। इसी अंक में विजतीय दृश्य में पुरुषों के उर्वगामी -संवरण सम्बन्धी प्रसंगों को प्रस्तुत करें। अटनाओं और कुठाओं को प्रस्तुत करना इस अंक में लक्ष्य नहीं है। क्योंकि ये अत्यधिक विषम हैं एवं कतिपय प्रसंगों को ज्यों का त्यों दिखाने में मंच पर असौमनीयता प्रस्तुत करना समीचीन न होगा। श्री सीरेन्द्र नारायण का कथन है:-

इस अंक का निर्देशन सतवार की छार है।^२

१:- गीति-सम्वाद का उत्तम उदाहरण मन्द दास का मध्य गीति है।

२:- उसे रवी उस रती भाँति,हर-बीड़ आसिगन में

और जगते रती अछर-बूट की कठोर चुम्बन में

किन्तु, जाह। यों नही, तनिक तो शिथिल करी चाहों को ---

उर्दू की तृतीय अंक पृष्ठ ६।

महाराज का पैराना— मुकुन्दा आयु ही है कर उपरिष्ठ होना, हर्षणी का
 शोध यश उत्कर्षान होना; राजा पुरुष का पर्वणी को दायित्व लाने का के लिये
 शोध, शोध का देव-दानव संग्राम की आशंका से शून्य, दुरुधरा की प्रवृत्ति, मुकु
 आयु का राज्याधीन, महारानी जीर्णमरी का प्रसन्न और आयु को जीर्णधार करना
 जातिष्ट होनायें ही होनायें वस्तु अंत में मरी बड़ी हैं। मर्यादा की दृष्टि से यह अंत
 अभिन्न कोरलमें जन्म अंतों को भाति अधिक सकल है। किन्तु, विचार की दृष्टि से
 वस्तु में भाव जन्म की लक्ष्य की लक्ष्य विचार-जन्म की वैधायिकता का उभाव है
 प्रियम से नाटकीयता बहुत मह है। जन्म में जन्म के लक्ष्य के लक्ष्य से पुष्पान्त अनुभव से
 पुष्पान्त नाटक जन्म में विनिमय होने लगता है। जीर्णमरी को जन्म मर्यादा
 राज माता का प्रान्त हो गया। यह वही जीर्णमरी है जिसकी लक्ष्य वस्तु की अंत
 में वस्तु की लक्ष्य की लक्ष्य प्रतिक्रिया कर विचार में विनिमय की प्रतिक्रिया की
 प्रतिक्रिया की लक्ष्य में लक्ष्य प्रतिक्रिया कर रहा है। यही नाटक का प्रवेश भी है।

कठिनाई प्रतीत नहीं होती। अंक में केवल वैचारिक संवाद है, अभिनय की कल्पना न्यूनता है। इस अंक का विषय नारी मनोभावों का विवरण है --- प्रथम और द्वितीय, परिणीता का स्वतन्त्र स्वरूप, - भाव, क्रोध और नारी सुलभ रूपांशु की प्रकृति इस अंक में अभिव्यक्त हुई है। महारानी औशीनरी में नारीत्व की सौम्य सुंदरता भी है, आत्म समर्पण की विवशता भी। मिश्रित बड़ी खुर है। अपने नाम के अनुरूप वह सदा खोलेद्वार तर्क से महारानी को समझती रहती है। मदनिका काम-प्रवण जीवन पर प्रयत्न करती है अथवा काम-मदरता, उसके प्रभाव और नारी जीवन में काम का जीवन से सम्बन्ध बताती है रहती है। पात्रों के नाम-गुण परस्पर सार्थक भाव लिये हैं। नाटकीय कौशल केवल कंचुकी के प्रवेश से प्रतीत होता है। इस अंक का पटाक्षेप भी महारानी औशीनरी के भाव से होता है। यह गीत पूर्वाग्रह में पाँचवाँ गीत है। इस गीत के समाप्त होते ही साक्षात्कार बड़ा अस्मादपूर्ण बन जाता है। प्रेक्षकों की सम्पूर्ण सहानुभूति महारानी औशीनरी की विवशता के प्रति हो जाती है।

तीसरे अंक का नाट्य-गठन भी बहुत कुछ सामान्य है। केवल गंध मादन वर्तन का प्रकृति सौन्दर्य - निवेशित प्रवेश और उस में विचार विचारण करते हुये पुरुषवा और उर्वशी। कुल दो पात्र हैं --- एक पुरुष और एक नारी। दोनों ही खोलेद्वार तर्क प्रधान-पुरुषवा दरातल से ऊपर उठ का आध्यात्म की उपलब्धि में प्रयत्न-रत और उर्वशी उच्च मिलन (स्वर्ग) उत्तर कर उरती की तप्त अगल-धूम, छलकती हुई व काम ज्वाला से अपने मन को सुप्त करने के लिये फूल पर आर्ष र हुई अपसरा। समस्त ज्ञान-विज्ञान की चर्चा, स्वर्ग - मूर्त्य लोक का विचारण, परिणय और प्रथम काम-आध्यात्म आदि अनेक विषयों पर की गई मन्मीर जातार्थि ही इस अंक का ग्राम हैं। अभिनय के नाम पर एक बार भी न तो कोई पात्र मंच स्थान करता है और न ही पूर्व दो अंकों की भाँति कोई पात्र मंच पर प्रवेश ही करता है जिस से कुछ नाटकीयता तो अवश्य आ जाती। अंक का पटाक्षेप भी व उर्वशी के कथन पर समाप्त होता है। इस अंक की समस्त ज्ञान चर्चा उर्वशी कभी अपने में पाँच जल कर बैठे बैठे होती है ही - कभी पुरुषों की छाया में लेट कर तो कभी वर्तन माना के नीरव प्रकाश में। इसे मुझ अंक कहा जा सकता है।

चौथे अंक में मुख्य परिवर्तन है। प्रथम एवं सुतीय अंकों का उपरान्त प्रवेश अथवा द्वितीय अंक का राजमहल मंच पर नहीं स्थापित मया अक्षि एक अन्य अवर्ण साक्षात्कार है --- महर्षि ज्ञान के आश्रम का, जो प्रतिष्ठाभूर के राजमहल की सज्जा में निरान्त पकाही, वैभव हीन, किन्तु शान्त और आरिभक साक्षात्कार से परिपूर्ण है। यही अंक अपने परिवर्तन में हमें भौतिक साक्षात्कार उठा कर आध्यात्मिक साक्षात्कार की ओर ले जाता है। इसी अंक में मासुर के महरा की की प्रतिष्ठित किया गया है। इस अंक में भी केवल नारी पात्र हैं। सुन्दर, चित्र लेहा और उर्वशी। मंच की सज्जा आश्रम के अनुरूप है। नाटकीय सन्दर्भ में

केवल उर्वरी का प्रेक्षा दिखाया गया है, सु मंच पर सुकन्या और चित्र लेडी प्रारम्भ से ही उपस्थिति हैं। उर्वरी प्रेक्षा कर चित्र लेडी से तो चार्तालाप करती है और सुकन्या से अपने पुत्र आयु को ले कर मातृत्व भाव से उसे गले लगाती है। बच्चे को बार बार पुचकार कर चुम्बन लेना भी उसके मातृत्व भाव की ही प्रतिष्ठित करता है। सुकन्या का उर्वरी को सम्बोधन और आयु को उर्वरी की गोद से बाधित लेना और उसे पुचकारते हुये संवाद करना नाटकीय गठन को अभिनय के माध्यम से पुष्ट कर प्रस्तुत करना है। अस्त शीघ्र^१ को स्पर्श करती हुई उर्वरी चित्र लेडी के साथ मंच से प्रस्थान करती है और यहीं पर क्षुब्ध अंक समाप्त हो जाता है। नाटकीय गठन की दृष्टि से इस प्रकार दूरव्यपारिर्वात निरूप्य हीप्रयोजन सिद्ध है।

पाँचवाँ अंक सम्पूर्ण उर्वरी गीति नाट्य का अभिनय सिद्ध अंक है। इसी अंक में आंगिक और वाचिक अभिनय सार्थक हुआ है। मंच सज्जा की दृष्टि से भी यही अंक अधिक प्रभावशाली है। स्थान--- पुरुरवा का राज प्रस्ताव है। राज प्रस्ताव समस्त वैभव से सम्पन्न। राज प्रस्ताव में महाराज पुरुरवा, उर्वरी महामातय, राज-परिजित, ज्योतिषी एवं अन्य सभा सदस्य अपनी अपनी सीटिकाओं पर आसीन हैं। सभी व्यक्ति मौन हैं, राजा किञ्चित् चिंताग्रस्त मुद्रा में हैं। सम्पूर्ण वातावरण शान्त है। द्वैतों पर भी इस शान्त गहन वातावरण का प्रभाव है। राजा की चिंता का कारण उसका सव्यः पुत्रः देहा गया स्वप्न है। स्वप्न की अभिव्यक्ति पर चिन्तित है उर्वरी। व्यवसाय का मामोल्केह सुनते ही वह छहरा उठती है। यह मुद्रा ही मंच की शोभा है और द्वैतों के मनोवेगों की उत्तेजित करने में समर्थ है। उसकी परिचारिका अनाम भी छहरा कर उसे पानी देती है। और उर्वरी मंच पर ही पानी पीती दिखाई पड़ती है। द्वैत इस छहराहट के कारण और प्रभाव को खानने की हरसुखा से व्यग्र होने लगता है। उर्वरी अपनी आरंभिक जन्म मयाप्रति मुद्रा में बार बार पानी माँग कर पीती है जब कि अन्य पात्र इस से निष्प्रयोजन एवं अनभिज्ञ रह कर राजा पुरुरवा के स्वप्न के रस का उदघाटन होने की कामना सिधे व्यग्र हैं। उर्वरी के दाह-अनुकूल भाव का प्रभाव अंक में प्रारम्भ में सर्व व्याप्त है। इसी अवसर पर प्रतिधारी सुकन्या के शुभागमन की सूचना देता है। वह भी यह प्रहस्यधारी के साथै। यह और स्वप्न की सत्यता छिटित हो रही है दूसरी ओर अस्त शीघ्र उर्वरी के प्रति सार्थक होता है जा रहा है। इस प्रसंग से ही प्रेक्षा आन्दोलित उद्येलित होने लगता है। सुकन्या और आयु के प्रेक्षा होते ही वातावरण राज दरबार के स्थान पर राज परिवार में परिवर्तित होने लगता है। आयु ने उर्वरी को प्रणाम किया और राजा को भी। राजा ने तो इस प्रहस्यधारी को गले लगा लिया किन्तु चिन्ता, आरंभ और मध्य प्रसंग उर्वरी चक्रेत कनी रही,

१:- पुत्र और पति नहीं, पुत्र या केवल पति पावो गी

उर्वरी, पृष्ठ १२३

यही मंत्र की माटकीय विशेषता है। आयु धन्य की सदैव भाव से गोपन रह कर उर्वशी अवुरय हो जाती है। शेष की सार्थकता यहाँ सिद्ध हुई।

उर्वशी का अन्तर्धन होना माटकीय गठन की सफलता का तोषान है। सुकन्या ने भारत शेष की कथा को सुँदर कर दिया है और उर्वशी के प्रति राजा का मोह विद्युत्प्रिय आश्रय से परिपूर्ण हो झोठ की सीमा में जा पहुँचा। वे जो उर्वशी के वरण की निश्चित मानते रहें, उससे विद्योग में बन्धु लोक को चुनौती दे कर उर्वशी को वरण कर वापिस झूलन पर लाने के लिये सम्मोद हैं। मंत्र पर इसका प्रदर्शन अत्यधिक प्रकाश गाली है। इस सारे वीर्य आर्त-माद पर आकाश भाषित मेध्य ध्वनि ने मानो सुधारवात कर दिया। दुरवस्था निवृत्ति - संधानित हो गया। मान्य चादी राजा दुरवस्था परित्याज्य बन कर राज प्रताप का परित्याग कर जला गया और दूसरी ओर से महारानी औशीनरी का प्रवेश हुआ। महारानी से राज माता सम्मोदन माटकीय गति को और अग्रसर करता है। राजमाता औशीनरी ने आयु को चारुसत्य भाव से वृद्ध से लगा लिया। इस अग्रतत्त्व मिलन में एक आरम्भियता है, एक चारुसत्य भाव से परिपूर्ण आनन्द की आका है। सुकन्या ने भी अपने वापिस जाने के लिये अनुरोध किया है चाप की औशीनरी को राज प्रताप में वापिस लौट जाने के लिये का संकेत भी किया है। माटकीय कौशल से माटक में समाप्त होने की औशीनरी भी है और प्रेक्षकों को अपने अपने घर जाने की संध्या भी।^१ आयु ने औशीनरी के चले चरण सदैव लिये और औशीनरी ने उसे वृद्ध से लगा लिया।

उर्वशी नीति मादय के गठन की सब से बड़ी विशेषता है उसके प्रत्येक अंक का प्रारम्भ जोड़ पटाक्षेप। प्रारम्भ करना सरल है किन्तु पटाक्षेप के लिये कवि को मादय-स्थिति उत्पन्न करना पड़ती है। पहिले अंक का पटाक्षेप समस्त गायन के साथ हुआ, दूसरे में भी औशीनरी का निराशाजनक भीत है। तीसरे अंक का समापन प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में की गई नाम यहाँ के तमरण से होता है, चौथे अंक में 'ध्वज आनन्द' में सुकन्या, चित्र लेखा, उर्वशी की चार्ता में आयु का पौकज और चारुसत्य भाव यहाँ गला है तथापि अन्त में मरत शेष की आरंभ है। यही चार्ता अंक का प्रारम्भ है। और चार्ता अंक तो रहस्य, वीर्य, अज्ञात, शान्ति और चारुसत्य भावों के उत्तर-व्याप में समाप्त हुआ है।

प्रारम्भ में जो सुकन्या और मन्त्री ने प्रेक्षकों को प्रस्तावना के रूप में दुरवस्था-उर्वशी के प्रलय - माया की सुकना की धीवरी अन्त में पलीकृत हो कर संवाहित हुई है। औशीनरी जो विजतीय अंक में उपेक्षित थी पाँचवें अंक में प्रति के सान्निध्य से उपेक्षित रहने पर भी चारुसत्य में पूर्य गई है। मन्त्री जीवन की सार्थकता भी दुरवस्था होने पर ही है। मादय-गठन की दृष्टि से यह नीति मादय इति: इति: अग्रसर होता है और औचित्य अंक में पूर्ण अधिन्य कौशल को प्रदर्शित कर समाप्त हुआ है।

१:- तो यह चली लगी, आर्यों, चापस लौट चले हम,

में अपने घर देखि। आप अपने प्राणिम गणन में ।

उर्वशी: अन्तिम चर्चितार्थ

नाट्य गठन की आलोचना:-

उर्ध्वी के अध्ययन के तीन अध्याय हैं:-

१:- नाटक

२:- गीति नाट्य और

३:- काव्य।

गठन और शिल्प से यह नाटक प्रतीत होता है। भाषा और भाव-सौन्दर्य में यह गीति नाट्य और भाव विचार में एवं अभिव्यञ्जना में यह काव्य प्रतीति है। अर्थात् उर्ध्वी में नाटक, गीति नाट्य एवं काव्य तत्त्व का समावेश तो है किन्तु पूर्ण एवं स्पष्ट यह उक्त न नाटक है, न गीति नाट्य और न काव्य। इस विषय में कतिपय मान दण्ड निश्चित कर विचार करना अधिक संगत हो गा।

उर्ध्वी:- नाटक:-

कालकालकालकालकालकाल

नाट्य शास्त्र में पाँच अंकों वाले नाटक को छोटा नाटक कहा गया है।

उर्ध्वी में केवल पाँच अंक हैं। यह नाटक छोटा नाटक है। जबकि जीवन की अभिव्यक्ति करने छोटे रूप में नहीं हो सकती। जीवन का वैयक्तिक चित्रण इस लघु सीमा में बाँध कर नहीं रखा जा सकता है। साधारण उर्ध्वी में जीवन की विविधता का भी चित्रण नहीं है। यह एक ही मूल भाव --- काम --- के व्युत्पन्न प्रवृत्ति है। नाटकीय संक्षिप्तपद्धति अंक में यथा स्थान दिये गये हैं --- सूत्रधार नहीं द्वारा प्रस्तावना परम्परागत है, पात्रों का प्रवेश-प्रस्थान, पात्रों की मनोस्थिति का बीच-बीच में संक्षेप (कोष्ठकों में) एवं टिप्पणियाँ, मृत्यु एवं संक्षेप गायन की योजना, प्रारम्भ और निष्पत्ति की दृष्टि से आकाश-भाषित की योजना आदि नाटकीय तत्त्व हैं और इन नाटकीय प्रसंगों को गीति नाट्य का परिधान देना दिनकर जी का दृष्ट आभासे ही यह इसे पूर्ण रूप से प्रस्तुत करने में लक्ष्य को असमर्थ करते हैं। आकाश भाषित उनकी विविधता धीमा या अनीष्ट यह एक प्रश्न है। चौथे अंक में दुरावा की प्रवृत्ति गर्जना को मानवीय तर्क द्वारा दिशा देना सम्भव नहीं था और नाटक आगे ही न बढ़ता यदि आकाश भाषित द्वारा निष्पत्ति यह को प्रस्तुत न किया जाता। तो क्या इसे दिनकर जी विविधता करें या फिर दिनकर ने जिस परम्परा चादी दृष्टि कोन से उर्ध्वी का प्रारम्भ किया है इसमें आकाश - भाषित एक आवश्यक नाटकीय प्रभाव अभिव्यक्त करता है। फिर कतिपय दिनकर विद्यमानतायु से भी अत्यधिक प्रभावित हैं। अतः आकाश भाषित जैसे महत्वपूर्ण नाटकीय कौशल का छूट जाना उन्हें स्वीकार नहीं था। निष्कर्षतः दिनकर उर्ध्वी को नाट्य-शिल्प के माध्यम से ही प्रस्तुत करना चाहेते हैं। संक्षुप्त नाटकों में आनन्दवाद की प्रतिष्ठा की गर्व है दिनकर ने भी उसका निर्वाह किया है। औशीनरी - वायु के मिलन में आनन्द आनन्द की चेतना लहर लेने लगी हैं। परम्परानुसृत भक्त वाक्य करते हुए औशीनरी ध्वज है:-

हम तो चली भोगसकी जो सुख दुःख हमें क्या था
जिसे अधिक उपलब्ध, उदार युग आने की ललना की।

उर्ध्वी पृ० १२४

बताने सक्षम होते हुये भी उर्वशी नाटक नहीं है। उर्वशी में कटनाक्षेपिक्य नहीं है। और न ही जीवन का विविध कर्म क्षेत्र। एक किन्तु पर केन्द्रित कथानक --- केवल काम केतना---नाटक की विशेषता को प्रतिपादित नहीं कर सका। कथानक की क्रिया द्वारा प्रस्तुत किया जाता है किन्तु इस में क्रिया अर्थात् अभिनय का अभाव है। दूसरी ओर सम्पूर्ण नाटक में चिन्तन-मनन-दर्शन की वैचारिक विवेचना बतानी अधिक है कि नाटक अपने आप में एक प्रबन्ध *Thesis* बन गया है।

नाटक अथवा नीति नाट्य दोनों ही स्वरों में अभिनय ही उसका प्राण है। उर्वशी को चाहे नाटक माने या नीति नाट्य, पाँचवें अंक की गति सीलता के कारण उत्तम नाटकीय प्रभाव को छोड़ कर दोष चार अंक नाटकीय नहीं कहे जा सकते। केवल सम्वादों को नाटक नहीं कहा जा सकता। ये सम्वाद भी 5-8 पृष्ठों तक दीर्घ जाही हैं। इनमें नाटकीय सम्वादों की अपेक्षा भाषण कहना अधिक संगत प्रतीत होता है। मंच पर यौन-दृश्यों को प्रस्तुत करना भारतीय नाट्य कला में वर्जनीय है फिर भी उर्वशी की भोग क्रियाओं को प्रस्तुत कर दिखकर ने मर्यादा का निर्धारण नहीं किया है। प्रथम अंक में मंच पर अप्सराओं को आकाश मार्ग से कृतन पर उतारने का दृश्य कठिनाई से प्रस्तुत किया जा सकेगा। सम्मेलन: चित्र-पट पर इसे दिखाना अधिक सरल है। उर्वशी स्वयं राजा पुरुरवा के सामिन्ना के लिये प्राण बलिदान करने की सीमा तक आकुल-व्याकुल है। वस्तुतः यहाँ कालिदास ने रंगमंचीय दृष्टि से अपने नाटक की रचना की हैयहाँ दिखकर ने मंच का ध्यान न कर केवल काव्य लिखने की चेष्टा की है यह भी सम्भवतः कामायनी की स्थिति को स्वीकारते हुये साहित्यिक कुनौती के रूप में।

दूसरा अंक व्यापार मुख्य है। पुरुरवा का मुन बहान मुख्य है। यह भले ही कालिदास सम दौर का अथवा देव-गुरु सम ज्ञानीही, रसिक सम लेखक हो। इन्द्र के समान प्रतापी मानी भी हो--- येसे पराक्रमी और पर पुंगव को प्रेक्षक भी मंच पर देखना चाहते हैं किन्तु पहले दो अंकों में इसके दर्शन ही नहीं होते। औत्सुक्य वर्धन में यह कला सहायक या सिद्ध हो सकती है किन्तु प्रभावविन्धित की दृष्टिसे प्राणवान नहीं कही जा सकती।

तीसरे अंक में कविता की प्रधानता है। इसे किसी महाकविकाव्य का उत्तम सर्ग कहा जा सकता है किन्तु नाटक का आम अंक नहीं। पुरुरवा-उर्वशी सम्वाद आठ आठ पृष्ठों में फैला हुआ भाव्य है। नाटकीय कथोपकथन नहीं। पुनश्च स ज्ञान-विज्ञान की चार्ता को अभिनय नहीं कहा जा सकता। चौथा अंक उर्वशी अप्सरा की सुनना में परित्यक्ता सुकम्पा को उत्तम सु सुकणी के रूप में प्रस्तुत कर एक प्रतिप्रिया व्यक्त करता है। महर्षि अय्यन भी मुख्य ही रहे। उनका कोई स्थान मंच पर नहीं प्रस्तुत किया गया। विष्णु - उद्योग ने महर्षि अय्यन-सुकम्पाकी गीत कथीक की चित्र पट पर प्रदर्शित किया जा सकता है मंच पर इसे उपस्थित न करना एक नाटकीय कौरव के प्रति संकुचित दृष्टि का द्योतक है। इस यही कहा जा सकता है।

चौथे अंक में से अध्यन-आख्यान को हटा देना चाहिये और पाँचवें अंक में से औसीनारी चारा पृष्ठ को भी लगाने तक छोड़ के ही मुख्य को मंचन किया जाना चाहिये शेष मुख्य छोड़ दिया जाये।¹

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उर्दू की का मंचन सम्मति पूर्वक स्वीकृत नहीं किया गया है जा सकता।

उर्दू की: एक रेडियो स्पष्ट

उर्दू की गीतात्मकता, तब सय संगीतादि को ध्यान में रख कर यदि इस की जल्दना रेडियो स्पष्ट के रूप में भी की जाये तो भी

इसे सफल रेडियो स्पष्ट नहीं कर सकते। तृतीय अंक में उर्दू की एवं दूसरा चारा जोमे गये सम्वाद चलाने लम्बे हैं कि उन्हें सहज ही भाषण कहा जा सकता है। नाटकीय सम्वाद नहीं। उर्दू की का कथन हीरोिक आठ पृष्ठों में समाप्त होता है, दूसरा भी चलाने की लम्बे भाषण कोल्ला है। इन लम्बे भाषणों में भी संगीतात्मकता का अभाव है। चौथे एवं पाँचवें अंक में संगीत और भाषण के अभाव होने से इसका गति - नाट्य रूप भी क्षीण हो जाता है। दिनकर जी ने स्वयं डा० रजवीर रात्रा से यह स्वीकार किया है कि उर्दू की का प्रारम्भ एक रेडियो स्पष्ट के रूप में हुआ था। प्रथम अंक की समाप्ति पर ही उन्हें यह अनुभव होखे लगा था कि उर्दू की रेडियो स्पष्ट की गति प्रस्तुत न हो सकेगी।

शायद आप का यह सोचना ठीक हो कि अंक ४ का हटाने के लिये

काव्य यदि सग्न का हटाना होता तो मुझे स्तब्धता अधिक रहती।²

दिनकर जी अपनी इस सीमा को जानते थे। उनके मन में भी इसे काव्यात्मक समझाए स्व देने की इच्छा रही हो-गी। डा० देवी शंकर अवस्थी तो इसे मार्चडो-सर्वेन पर लम्बे लम्बे सम्भाषण करने की प्रतियोगिता मानते हैं:-

कामाख्यात्म से हट कर राष्ट्रीय संकट और देश भक्ति

पर भी इसी प्रवाह से भाषण दिये जा सकते हैं।³

दिनकर जी के लम्बे काव्यवादात कृत विक्रमोर्वशीयसु नाटक था और जब शंकर प्रसाद की कामायनी का स्वकात्मक कहल्लय महा काव्य। दिनकर कामायनी के समकक्ष ही एक काव्य रचना करना चाह रहे थे होने --- वे कामायनी से प्रभावित भी थे --- इसकी ध्वनि उन्हीं में शब्दों प्रस्तुत है:-

1:- उर्दू की: लखिना और शिल्प: पृष्ठ 162

2:- उर्दू की: लखिना और शिल्प पृ० 163 सुकन की मनी धूमि पृ० 111-उत्तर

3:- ----- पृ० 164

यस दृष्टि से, मनु और बड़ा तथा पुरुषा और उर्वशी
 ये दोनों ही कथाएँ एक ही विषय को व्यक्त करती
 हैं। दृष्टि विकास की जिस प्रक्रिया के द्वारा पक्ष का
 प्रतीक मनु और बड़ा का आख्यान है, उसी प्रक्रिया का
 भावना पक्ष पुरुषा और उर्वशी की कथा में कहा गया है।

भास्य है मनु-बड़ा का आख्यान कामायनी की है क्योंकि उनके पूर्व मनु-बड़ा का
 प्रसंग पर कोई रचना हिन्दी साहित्य में उपलब्ध नहीं होती। साथ ही दिनकर जी
 यह भी मानते हैं कि मनु-बड़ा आख्यान यदि दृष्टि परक है तो मनु-बड़ा आख्यान कामायनी
 के पक्ष की उपासना करते हैं और उर्वशी के पाँचवें अंक में तो समग्र रचना की, यहाँ
 तक कि शिव-साधक तक, कामायनी के अनुसृत हैं।

समाधान के लिये हम यह कह सकते हैं कि दिनकर जी ने उर्वशी में गीत योजना कर
 इसे गीति-मादय का रूप दिया है। पुरुष काव्य के रूप में इसे प्रस्तुत करना क्लृप्तकृतक
 मन्तव्य था, यद्यपि यह ग्रंथ मनु काव्य के माधुर्य को प्राप्त कर सफल रंगमंच का
 स्वरूप न पा सका। हम यह कह सकते हैं कि रूप-रचना की दृष्टि से उर्वशी गीति-
 मादय तो है पर यथार्थतः न तो यह सफल काव्य है और न ही सफल गीति-मादय।
 सत्य यह है कि दिनकर जी की उर्वशी साहित्य की कसौटी पर मध्य और पुरुष
 दोनों ही काव्य विधाओं का ऐसा अभिन्न मिश्रण है जिस में समन्वय तो है
 पर सन्तुलन नहीं।

उर्वशी: एक दुःखान्त गीति मादय'

उर्वशी का पाँचवाँ अंक ही तदमा
 खगुल अंक है। इस अंक में दृष्टान्त
 जिस तात्प्रा से प्रस्तुत की हुई है
 उसकी किसी भी अंक में नहीं।

ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास कृत अभिज्ञान शकुन्तलम् अथवा विष्णुमोक्षगीतम्
 का पूर्ण प्रभाव कवि दिनकर पर है कि राजा प्रताप में पुरुषा, आयु, औशीनरी
 और उर्वशी के मिश्रण सुख में अन्तर्धान होने वाली उर्वशी देव अस्माद जोड़ कर खी
 जायेगी। दूसरी ओर रौद्र रूप वाली महाराज पुरुषा, उर्वशी के अन्तर्धान होने के
 इसके अपहरण की कल्पना से, उत्साह से उत्पन्न हैं।

खी गर्भ 'सब शून्य हो गया' में विद्युत्, धिरही हूँ'

देवों को मेरे निमित्त सब बलनी ही मरता थी ।

साजो मेरा शून्य, सजाओ गगन जयौस्यन्दन की
 सदा नहीं, बन शत्रु स्वर्ग-पूर शूरेबाच जाना है

:- उर्वशी दृष्टि से

पुलक्या का यह रौद्र रूप शनैः शिथिल हो रहा है। वे अब स्वामन्त प्रान्त की सन्ध्यास
केला की प्रतीक्षा कर रहे हैं:-

छो किसी एकान्त प्रांत, निर्जन कन्दरा, घरी में

अपना अन्तर्द्वार रात में उद्घाटित करने को।

पुनरवा अव नियति के आगे बौद्ध हीन है। राज सत्ता से आयु को योंप चुके हैं। और स्वयं:-

जहाँ रहूँ गा, वहीं महात्मा का अभ्युदय बना कर

यत्नी निः स्व क्या है मकरा है सिवा एक जाशिव है।

यहाँ पर पुस्तकें भारतीय मनीषी, उदार मना, निः स्व ऐकान्त सेयी यती बन गयी है --- वह पूर्ण काम उद्धात्त मनस्कृत सध्यासी है --- त्यागी है।

अब राज्य का संभालन और प्रजा पालन आयु के दुर्लभ कण्ठों पर आ गया है। राज्य की बात होती ही नहीं है बात तो परिवार की है। औशीनरी के मासुदक का भाषावेग बनी स्थल पर चित्रित हुआ है। दूसरे अंक में प्रस्तुत औशीनरी वैराश्य पूर्ण थी. पाँचवें अंक में खड़ी उल्लास पूर्ण है। उसकी मार्ग दर्शिका है सुकन्या और आयु ने अपने जीवन काल में तर्कन तीन मातायें देखी हैं --- अपनी माता, - उर्वशी, बालक माता --- सुकन्या और अब राज माता --- औशीनरी।

यस गीति-नादय को क्या दुःखान्त कहा जायें या सुखान्त' दुःखान्तता गीति नादय को प्रकृति के अनुकूल होती ही नहीं है। गीति-नादय स्व कोमल भावभावों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। पारंपारिक काव्य नाटकों में दुःखान्तता की सम्मिश्रता कला और श्रवण के भावों को तिरछित करने में श्री --- भारतीय नादय कला में दुःखान्त की ही स्थान ही नहीं है। तथापि उत्तरी के अन्तिम दूरयात्रा में प्रलय बोधित हो जाता है। न तो हमें उत्तरी का अन्तर्धान ही आनन्द देता है और न ही पुनरा का सम्मिश्रण और न ही आयु का राज्याधिकार । निवृत्ति के हाथों के छिन्नोन्निविष्ट रूप में सब पात्र रंग मंच को छोड़ते चले जाते हैं गये और गये कीन 'मातायें और पुत्र। ऐसा प्रतीत होता है कि गगन चुम्बी तार के महत् कोशल करने वाले पात्रों के अभाव में मंच पर अब बौने पात्र रह गये हैं और मन अस्माद से भरा रहता है।

जीबीनरी के प्रबोध करने वाली है सुकन्या जो कहती है:-

हम हो जाती हैं कृतार्थ अपने अधिकार गंवा कर

और औशीनरी उस कौमाखलिपि मात्र कहती है:

हम तो रत्नों भोग उसको जो सुख दुःख हमें बदा था।

आयु क्या करे' वह भी कामायनी के मानव त्वरों को दोहराता है: ५ ।

माँ! बताते मत हो, भविष्य वह चाहे वहीं लिखा हो

मैं आया हूँ अग्रदुत अजयन उत्तरी स्वर्ग - जीवन का।

१:- कामायनी: प्रसाद: मां। क्यों है इतनी इतना
क्या हूँ मैं तो नहीं पास ।

घाणों में नष्ट आयु, उसे उठा कर वक्ष से लगाती हुई जोतीनरी और छोटे छोटे छोटे पीछे की ओर चलने वाली लुब्ध्या इस अवसादान्त में सम्मिलित हुई हैं।

000000000000

अध्याय तीन
पात्र योजना और
पात्रों का चारित्रिक वैशिष्ट्य

* * पात्र योजना

गुणवत्ता का आधार

सद्पात्र, असद्पात्र और सदासद्पात्र

नाटकीय आधार

उत्तम मध्यम और अधम पात्र

* * पात्रों का

चारित्रिक वैशिष्ट्य

स्त्री पात्रों का चरित्रांकन

उर्वशी, औशीनरी, सुकन्या एवं अन्य स्त्री पात्र

पुरुष पात्रों का चरित्रांकन

पुरुषा, च्यवन, आयु एवं अन्य पुरुष पात्र

अध्याय 3

उर्दू में पात्र योजना और पात्रों का चरित्रक विकास

उर्दू में पात्र योजना

.....

नाटक चाभूष है, अभिनेय है, गति गीत है, अतः पात्रों द्वारा ही संघटित एवं विकसित होता है --- इसमें पठनीय कुछ भी नहीं है। अतएव कल्पना द्वारा अनुमान के लिये कोई स्थान नहीं है। पात्रों का चरित्र विकास ही नाटक की सफलता है, पात्रों का चरित्र चित्रण ही नाटक का सर्व प्रधान स्पर्श तत्व है। पात्रों में ही प्रमुख और मौल्य पात्र होते हैं। प्रमुख पात्र नायक होता है और उसे नलि गीलता देने में के लिये, हास - प्रतिहास, संघर्ष, और छटना संघोषण के लिये एक प्रति नायक होता है और इन दोनों के ही अनेक सहायक पात्र होते हैं। इसी प्रकार नायिका, उसकी छत-नायिका एवं अनेक सहायक स्त्रीपात्र होते हैं।

नाटक में चरित्र चित्रण बरतते रूप से होता है। वस्तुतः अभिनयवाचक रूप से नाटक में स्वतः विकसित होता रहता है, इसकी व्याख्या नहीं की जाती। यह चरित्र विकास कथोपकथन के माध्यम से स्वतः विकास मानी होता है। स्वतः कथन यद्यपि आत्मस्वरूप होते हैं व तथापि चरित्रों के विकास की करते हैं।

उर्दू में पात्र-संघोषण को हम:

- 1:- कुछ गुणवत्ता के आधार पर और
- 2:- नाटकीयता के आधार पर

अध्ययन कर सकते हैं।

गुणवत्ता के आधार पर:-

मानव मन की स्थिति और गुण विशेषों के आधार पर सत्पात्र, सद्गुण पात्र और असद्गुण तीन रूपों

में विभाजित कर अध्ययन किया जा सकता है। उर्दू में सत्पात्र वर्ग में देवीय पात्र आते हैं जो सम्पूर्ण नाटक में केवल देव ताक की कल्पना से सुध्य हैं। सद्गुण पात्रों के वर्ग में राजा पुरुषा और क नशिर्न व्यक्त तथा आयु का चरित्र है। असद्गुण पात्र वर्ग

1:- रवान सुन्दर दास:- साहित्य तोलन

में देव या आधुरी पात्र केशी कलक का एक रेखांकन देवी मुख्य है।

देवीय पात्र मुख्य विधान से भारत के रूप में बाध कथा से सुचित है। देव लोक की समा में उर्वशी द्वारा पुरुषोत्तम के स्थान पर पुरुषा उठने पर भारत मुनि ने उसे शाप दिया और वरुड तत्त्व उसे मर्त्य लोक में पुरुषा की भार्या बनना पड़ा। अप्सरा होते हुये भी मानवी रूप में वह आयु की जन्म दात्री बनी। भारत मुनि का उसे एक ही शाप था --- ; पुत्र और पति नहीं, पुत्र या केवल पति पाजो गी।"। भारत मुनि का नामोल्लेख केवल क्षुर्य अंक में ही आया है --- वह मात्र मुख्य है अतएव हम नीति नाट्य का पात्र नहीं है।

इसी प्रकार असुपात्र केशी का वर्णन प्रथम अंक में ही आया है जो अप्सरा उर्वशी को आकाश मार्ग में ही जल-जलसे उड़ा ले गया था और पिसे मानवी पुरुषा ने ज अपने पात्रत्व से पराजित कर उर्वशी का मोचन किया था। यह केशी प्रकरण भी उर्वशी के प्रथम अंक में सहाय्या द्वारा सुच्य है। 2

सद्वत्स पात्रों में नायक पुरुषा, आयु और महापात्य आते हैं। पुरुषा नायक है। और सम्पूर्ण उर्वशी नीति नाट्य के वही एक मात्र पात्र हैं जिन का चरित्रपूर्ण पूर्ण विकसित और पूर्ण उत्प्राटित है। आसात्य और आयु क्षुर्य अंक से पंचम अंक तक उल्लिखित हैं। आयु पंचम अंक के नाटकीय कौशल से सम्बन्ध प्रमाणाती पात्र है।

नायिकाओं में उर्वशी देवीय पात्र है, आः तद् पात्र है, कीर्तीमरी और सुकन्या मानवी हैं। अर्थात् सद्वत्स पात्र केशी में हैं। मेनका, रम्भा, सहजन्मा, चित्र लेखिका अप्सरायें हैं आः उर्वशी की ही सहायिका हैं। निमुनिका कीर्तीमरी की सहायक पात्र है। अप्सरा उर्वशी प्रथम दो अंकों में केवल मुख्य है --- उसका उदय सुतीय अंक में हुआ है और चौथे अंक में वह समाप्त भी हो गई है, किन्तु उसका प्रमातमन-अस्तित्व पर आशान्त बना रहता है। सुकन्या प्रकरण उत्तम अथवा साधुत्तम के प्रहमचारियों की अनुकृति के रूप में इस नायिका प्रहमा नीति नाट्य में प्रस्तुत कर की गई है। उसका महत्व हम निचे भी है कि वह उर्वशी पुत्र आयु की तीन तीन नाताओं में से एक है।

पात्र संयोजन का दूसरा आधार नाटकीयता के आधार पर भी किया जा सकता है। पुरुष पात्रों में पुरुषा, उत्तम पात्र है, मध्यम और आयु मध्यम तथा केशी अंशम पात्र हैं। इसी प्रकार स्त्री पात्रों में उत्तम पात्र उर्वशी है, मध्यम पात्र कीर्तीमरी व सुकन्या तथा अप्सरायें। अंशम पात्र कोई नहीं है। मध्यम पात्र की अवधारणामें हमना ही करना पर्याप्त होगा कि वे पात्र स्वयं में बहुत महत्वपूर्ण न होते हुये भी प्रमुख पात्र के चरित्र विकास में सहायक हैं। उनका अस्तित्व प्रमातपूर्ण होते हुये भी नाटक में आशान्त व्याप्त नहीं होता।

उपर्युक्त आधार पर ही हम पात्रों के चारित्रिक वैशिष्ट्य का निरूपण करेंगे।

1:- उर्वशी: अंक 4, पृष्ठ 115

2:- उर्वशी: पृष्ठ 12

रत्नी - पात्र =====

उर्वशी =====

उर्वशी गीति नाट्य नायिका प्रधान है, इसमें उर्वशी के ही चरित्र का विकास है। कविवर दिनकर ने इस ग्रंथ का नामकरण भी उर्वशी किया है जो इस बात का जवाब है कि कवि दिनकर भी इस गीति नाट्य को नायिका प्रधान काव्य मानते थे। यह और बात है मने ही कुछ संकोच से कही न जाय--- महा कवि जय शंकर प्रसाद 1938 में कामायनी लिख चुके थे। कामायनी का नामकरण भी "शुद्धा" के पर्याय में हुआ है। अनेक अक्षय व्यंजना परक है। इसका स्पष्टिकरण भी प्रसाद जी ने अपने आशुत कामुर्ध में किया है:- "कामगोत्रका शुद्धा नामविका"। शुद्धा कामगोत्र की बालिका है, इसी लिये शुद्धा नाम के साथ उसे कामायनी भी कहा जाता है।" उर्वशी में पला कुछ नहीं है। वह अभिष्टात्मक नाम छारिणी देव लोक की अप्सरा है। उसी के नायिका स्वल्प पर ग्रंथ का नाम भी साधारण उर्वशी रखी गया है।

उर्वशी के दो रूप हैं:- देव लोक की अप्सरा और मर्त्य लोक की अभिष्टारिका।

उर्वशी-----अप्सरा:-

उर्वशी अप्सरा है अतः अमोनिजा है। उर्वशी सागर मंथन से उत्पन्न अप्सराओं में से एक है, वह एक रहस्यमय उपरित है। वह नारायण दधि के दूध से उत्पन्न है। दिनकर ने इस सभी पौराणिक आख्यानों को महत्त्व दिया है। स्वयं उर्वशी का कथन है:-

मैं अदेह कल्पना, मुझे तुम देव नाम लेते हो,

मैं अक्षय, तुम दुग्ध देह कर मुझ को समझ रहे हो

सागर की आत्मजा, मानसिक तन्मया नारायण की। 2

दिनकर ने उर्वशी को सागर-तन्मया अप्सरा और नारायण की मानस-पुत्री स्वीकार किया है। "उर्वशी तो वर्तमान, कृत, भविष्य में व्याप्त है, पृथ्वी, रत्नी, लोक, मेघ, आकाश, समस्त पृथ्वी उर्वशी की ही माया है। उर्वशी देह-भाव को प्राप्त मानती है। वह सिन्धुधारी नहीं है, वह गमन की लता नहीं है, वह व्योम पुर की कला भी नहीं है, नहीं वह विष्णु की तन्मया है। वह नाम मोत्र से रहित पृथ्वी है, अम्बर में उड़ती हुई मुक्त-आनन्द - विहा है, कतिपय हीन, सौन्दर्य चेतना की तरंग है, वह केवल अप्सरा,

1:- कामायनी: कामुर्ध

2:- उर्वशी: पृष्ठ 88

जिह्व मर के अतुल बरुआ-सागर से लहसुन है।" यह उर्वशी है। एसी उर्वशी देवी है। स्वयं उर्वशी का कथन है:-

"मैं मानवी नहीं, देवी हूं, देवी के आसन पर

जदा एक निश्चित रहस्य-आवरण पड़ा होता है।" 2

उर्वशी का स्व वर्णन करने वाले तीन पात्र हैं: लवङ्गवा, पुरुषवा और स्वयं उर्वशी।

इस उर्वशी के देवी स्व का चित्रण कवि ने अपनी समस्त कवित्व-आभा से किया है।

उर्वशी का स्व भी सौन्दर्य बाधित नहीं, सांसारिक नहीं, मांसल भी नहीं, अद्भुत है।

लवङ्गवा का कथन है:-

बसी लिये तो सखी, उर्वशी उमा मन्दन उस की,

झापुर की कौमुदी, उल्लस कामना बन्दु के मन की,

सिद्ध विरागीकी समाधि में राम जगाने वाली,

देवी के शोणित में मधुमय आग लगाने वाली,

रति की मूर्ति, रमा कर प्रतिमा, तृषा किञ्चन मर की

विष्णु की प्राणेश्वरी, आरती-शिखा काम के कर ली। 3

उर्वशी का यह स्व सौन्दर्य कल्पना में उतरने वाला चित्रण है--- इस में सुलभता नहीं,

विचित्रात्मकता है। यह एक चित्तवत् स्वस्व है। रति और रमा मानस-मन की

कल्पना हैं जिस में भारी सौन्दर्य के चरम स्वरूप को हम में देखा है --- यह भी

मानवी नहीं है। उर्वशी एक सुता है, कामना है, उमा है और काम के कर में

आरती शिखा है। त

यही देवी उर्वशी मानवी पुरुषवा को हुबहु समर्पित कर उन्मत्त मन से मलिन हो उसके मन में पुरुषवा के प्रति जाग्रत जो प्रणय भाव है वह बीड़ा बाधक है, साधन के अभाव में वह डोई डोई ली है, तन से खींच कर मन से लोई ली है, अममनी ली छड़ी छड़ी है, कुसुम पंखड़ियों तोड़ती हुई ली है, न जाने यह छड़ियों पर छड़ियों बिताती हुई किस के ध्यान में पड़ी हुई है। 4 पुरुषवा के प्रणय में निमग्न उर्वशी इतनी व्याकुल है कि वह :-

कहती थी " यदि आज जान्त का जंक नहीं पाऊँगी

तो शरीर को छोड़ पवन में निश्चय मिल जाऊँगी। " 5

उर्वशी अतिशारिका नायिका है। पुरुषवा के कल-विभ्रम पर रीक उठर ही यह स्वयं लोक से उतर वृ लोके पर अतिशार करने आई है। साहित्य दर्पण द्वार में

1:- उर्वशी: पृ० १०

2:- उ उर्वशी: पृ० ८७

3:- उर्वशी: पृ० ११

4:- उर्वशी: पृ० १४

5:- उर्वशी: पृ० २०

अभितारिका नायिका का लक्षण लिखा है:-

अभितारयोः कान्तं वा मन्मथवर्षयन्वा

स्वयम् अभितारत्येवा धीरैरुत्ताभितारिका! 3/76

उर्वशी कामाक्ष्या है, वह राजा पुरुषा के संग अभितार करने स्वयं जाई है।

इसी अभितार के विषय में जगन्नाथ का मत है:-

यह अभितार समागम है ऐसी उर्वशी का मानवी पुरुषा के साथ संग--- और उर्वशी देवीसे मानवी बन कर महाराजा पुरुषा की पुण्यनी कनी। दिनकर ने इसे एक अद्भुत अनुश्रुति के रूप में वर्णित किया है।²

उर्वशी----- अभितारिका:-

मानवी रूप में उर्वशी का रूप सौन्दर्य अविद्यतीय है। वह उर्वशी जो स्वर्ग से ६ कला पर जाई है वह वेदों की जाया से जैसे ही प्रकट हुई उस का अतीन्द्रिय सौन्दर्य अद्भुत था--- वह सर्व के मुख से निम्नी हुई मणि के समान ज्योतिर्मयी थी, ज्योता स्वर्ग - प्रतिमा में ठली हुई चांदनी के समान ज्योतिस्मान्वी थी ज्योता त्रिभुवन की न मारी - की छिे थी।³

मानवी मारी उर्वशी एक से पुरुषा से मिली है, न जाने कितने दिवस-रात, संवत्सर अभितार में ही व्यतीत हो गये हैं --- तीसरे अंक का प्रारम्भ ही इस अभितार - काल से होता है:-

जब से हम तुम मिले न जाने कितने अभितारों में
रखनी कर संगार कितानित सम में घुम चुकी है
जाने कितनी बार चन्द्रमा को मारी मारी से ,
अब दूरा से गई और फिर ज्वाल्मना से जाई है।

इस सुन्दरी उर्वशी के सौन्दर्य ने राजा पुरुषा को के मन में इसके प्रति जो आकर्षण उत्पन्न किया है अपनी मानसिक कल्पना में उर्वशी को साकार कर वे कितने प्रसन्न हैं:-

हम कपोलों की लज्जा देखते हो '
और अरों की हंसी यहदृन्द-सी चुकी, कली, सी '
गौर चम्पक-विष्ट-सी यह देह हलधुजा भरन से
स्वर्ग की प्रतिमा कला के स्वप्न साधे में ठली सी '
यह सुन्दरी कल्पना है, प्यार कर ली ।
स्वसी मारी प्रकृति का चित्र है सब से मनोहर। 4

1:-

2:- उर्वशी: अंक 3, पृ० 84

3:- उर्वशी: पृ० 29

4:- उर्वशी: पृ० 47

वसी अंक वं प्रथम गीत में पुरुषवा ने उर्वशी को अपने अद्भुत स्वप्नों की मणि कृतिम प्रतिमा कहा है।

पुरुषवा उर्वशी के अनुपम सौन्दर्य से अभिभूत थे। ये विस्मय पूर्ण और अद्भुत सौन्दर्य से इतने प्रभावित थे कि अनेकानेक रोमांटिक कल्पनाओं से उर्वशी का स्व निहार रहे थे। उर्वशी उनके लिये दिव्य सौन्दर्य लोड बन कर प्रकट हुई थी। सागर-तनया उर्वशी जगत्पति आकुल व्याकुल सागर का जब चीर कर उदित हुई थी तब प्रसन्नता को भलांगी थी जिसे देख कर व्योम भी झुककर विस्मय से भर गया हो गा। सागर की सुनील उर्मियों पर धुन शिखों में ज्वाला-मर्तकी के समान उर्वशी का सौन्दर्य ज्योतिर्मुद्रकल्पना-प्रभूत रहा होगा। जब एक अप्सरा सी उन्मत्त रहती होगी जिसे काली-काली लहरे मागिमियों की तरङ्ग डेर डेर कर छड़ी जाँगी। उर्वशी को गलांकर सागर भी रोया हो गा और मणि-मुक्ता-विभूत उदित समुद्र तल का निवास गृह भी जाना हीन हो गया हो गा। वेद ताक वाली सुर-मन ऐसी दिव्य कान्ति वाली उर्वशी को पाकर धन्य हुये होंगे। यह उर्वशी अनन्त सौन्दर्य मालिनी थी। फिर क्या पुरुषवा उसके सौन्दर्य पर मुग्ध क्यों न होता।

"उर्वशी के नेत्र किसी अन्य लोक के दर्शन हैं, उसके ऊपल उषा के समान अलक वर्ण हैं और अक्षर कोमल विरल्य के समान पतले और रस-सिक्त हैं जिन पर स्वयं काम देव झींझ करते हैं, तारकों से झिलझिलाते हुये ये काम और और चन्द्र-किरणों के समान झूलती हुई जाँचें सौन्दर्य में अनुपमेय हैं, और सुन्द-सुन्दर उर्वशी अपने तीरथ में इतने मनोहारी हैं कि इन पर कोई भी अपने प्राण छो डेठे तो आश्चर्य ही क्या। उर्वशी की मुक्तान किरी दूरान्त किरण के समान मन मोचनी है। ऐसा रहस्य मय अथवा दिव्य सौन्दर्य त्रिभुवन में भी नहीं है।" ।

किन्तु उर्वशी तबसे अपने अप्सरा स्व से ही आलस्य रहती है। यह जानती है कि उसका स्व-सौन्दर्य नामची नहीं, देवीय है।

"उर्वशी नाम-मोत्र विहीन अप्सरा है। यह अर्ध यौवना है, पुरुष के प्राण तल से उठ निर्वसन, शुद्ध हेमास कान्ति को प्रसारित करती है। यह क्षणिक के रूप पर भी अपने स्व-धारि की अमृत वर्षा करती है, यह कामना विह्व है, यह देवालय में है, यह कला चेतना की मधु है। यह प्रकृति प्रतिमाओं में स्थायित्व निविडतन्मत्ता मायिका है, यही मुष्टिमध्यमा, मरिदा लोचना, काम सुप्तिता मारी है। यह कवि की सुखोक्त कल्पनाओं की कविता है। यह देश काम से बरे चिरन्तन मारी है, यह आरम्भ यौवन की निरव्य मलीन प्रभा है, यह चिर सुखी सुखमारी है।" २

यह उर्वशी दिनकर की पर्वोत्सवीन्द्र रवीन्द्र की उर्वशी है जिसे काट काट का दिनकर ने प्रस्तुत किया है और न ही उर्वशी की मुस्मान दिनकर-कृत उर्वशी की है, उसमें कहीं "मो नासिका" के अक्षरों की मुस्मान स्थापित है।

पुष्प विज्ञापिनी जाया उर्वशी:-

उर्वशी का अभितार गोपन नहीं --- अविव्यक्त है। अभितार-मुहं हाथों में खाँचना केवल दिनकर की ही सामर्थ्य है --- खाँचना का काव्यानन्द दिनकर के इस क्षेत्र में अविद्यतीय और शब्दातीत है। यह मदिर लीचना निविडस्तनन्ता उर्वशी का पुष्प भाव है जो केवल ऐन्द्रिक अनुभूतियों से रसमग्न रहना चाहता है। उर्वशी स्वर्ग लोक से भू लोक पर ऐन्द्रिय सुहृ-मोग के लिये ही जाई है। देखा तो गन्ध की सीमा के पार नहीं जा सकते किन्तु मनुष्य लोक में तो मानव "छल छल कर जाता है। यहाँ भी कवि ने रोहसनीयर का सहारा लिया है। भले ही उसका जीवन दो दिन का ही हो। उर्वशी को दैत्य केरी से कर भाग रहा था। भयभीता उर्वशी की कातर ध्वनि ने पुष्परा का ध्यान आकृष्ट किया और ने उस की रक्षा कर उसे उसकी अन्य अप्सरा सहिष्णु के बीच लौट कर लौट गये। सभी ने उर्वशी पुष्परा के अभितार को आभुज व्याकुल है। यह एक अद्भुत प्रणयनी मानवी कर्म कर जीवन जीना चाहती है। उसके मन की उदक कामाभिलाषा उसे देव-नित्य में नहीं रह सकती किन्तु वह राजा के बाद-वक्ष्य में निमग्न जाने के लिये लातापि है। उधर पुष्परा भी उसे "प्राप्ति की मणि", "मनोज मोहिनी" कह कर सम्बोधित करते हैं। उर्वशी को यह अभीष्ट नहीं था कि वह स्वयं चल कर पुष्परा के पास जाती है, उसका कर्म पूर्वक वस्त्र कर लिया जाता तो तो वह महाराजा पुष्परा के प्रति कृतज्ञ होती --- सम्भवतः उसका स्वतः ही अभितार हेतु आया उसे मासता रहता है। कवि के समक्ष सुमहा गरज, संवाग्धिता हरज की कथाएँ रही होंगी --- उर्वशी भी उसी प्रकार के हरज के बोध पर रोझी:-

यही ध्वज जो मानवी, प्रणयीके जापुञ्ज में
छिपी नहीं, विद्रुम-तरंग पर छड़ी हुई जाती है।

---- उर्वशी: 3/42

उर्वशी जो छलते हुए अमल की अमल-धर्म चीने के लिये हरती पर जाकर पुष्परा की जाया कनी, यही महाराजा के मुह से अनासक्ति के उपदेश मुझे पर व्यथित हो गई। वह तो "विद्रुमन्मय भर्ष चाहती है, आर्त्तिग्न चाहती है, पुष्प - परिहर्म्मन चाहती है --- देह धर्म की कामना करता है अनासक्ति की नहीं।

1:- रोहसनीयर --- चीनल और एडीनल ---

महाराजा पुरखा के आलिङ्गन प्राप्त में आकाङ्क्ष करते हुये भी यदि उसे अनात्मिका सुनना पड़े तो वह से बड़ कर उसका अन्य कोई उपहार नहीं।:-

तब से मुझ को कते हुये अमैदुद् आलिङ्गन में
मम से, किन्तु, विषय दूर तुम कहां चले जाते हो ?

... ..

और अभी यह भाव, मोह में बड़ी दूर में जैसे
पुकारो मारी नहीं, प्रार्थना की कोई कविता है।

पुरखा विवक्षा प्राप्त है --- "स्व की आराधना का मार्ग आलिङ्गन नहीं है" और "ज
"स्व की आराधना का मार्ग आलिङ्गन नहीं तो और क्या है" इन दो आयामों में
भटकता है पुरखा --- कुछकालकाल पुरखा का मन या कि स्वयं विमर्श का ।

उर्वशी महाराज पुरखा के दुहरने स्वप्न की मणि कूटितम प्रतिभा है। उर्वशी रक्त की भाषा है। भुति घट पर उत्तम रत्नों का सार्थ, अक्षरों पर रत्न की गुहगुदी, छ डंगलियों का स्वभा पर संघर्ष है उर्वशी। उर्वशी चाकती हैलन का अति-
प्रमज --- उस से उत्पन्न सुख-संलग्न। उर्वशी अन्त में एक ही कामना करती है ---
यह है शरीर सुख भले ही पुरखा दार्शनिक चर्चा करे या वैशेष नीति-उपदेश देकर
अनात्मिका की दुहाई दे। उर्वशी तो धाकती है:-

पर मैं बाधक नहीं, जहां भी रहों, भूमि या नभ में,
स्वार्थ पर हसी भाँति मेरा कभीत रहने दो
कते रहो, वस, हसी भाँति, उर-बीजक आलिङ्गन में
और जलते रहो अक्षर-रुद्र को कौर पुष्पन से।

मान जसमी ही कामना नहीं है, उर्वशी तो काम कला विचारक वह मारी है
जो अपने तन सुख के लिये पुरखा को काम-शिल्प सिखाती है --- वास्तव्य पुरखा
की बाधों का कथाय वह नहीं सहन कर पा रही है:-

किन्तु आह। यों नहीं, तनिक तो शिथिल करो बाधों को

अथवा

मा,यो नहीं, जो देखो तो उधर बड़ा डीसुड है

जैसे उर्वशी किसी प्रकार काम ज्वार से उपनते हुये पुरखा का ध्यान खंडा कर रक्ति-
काम खटाना चाहती हो पित्त से उसे स्वयं अधिक काम-सुख मिल सके।^१ उर्वशी का भी
यही चरित्र उसे एक वृत्ति पराधना अगाध प्रेमिका के बद से बटा एक गर्भिका की भाँति

1:1 That Pleasure is best which slow delays the game
When maid and youth together feel the same.

OVID.

प्रत्यक्ष कर देता है। और स्मरण कराता है जोशीमरी की उस पीढ़ियों की जहां सबकी भाव के आश्रित में हमने उर्वशी को गणिका, अधम, बाविनी, दुर्वीच्छाकेक और व्याधिमनी कहा है। उर्वशी मात्र मोद की वस्तु रह जाती है।

काम बना चित्तारद उर्वशी बार बार के काम-सुखों में आकण्ठ वृत्त है। उसके शोभित में सुप्त प्रथम काम गया है जो पुष्पनों की पुष्पार और प्रमोद के कम्पनों से परिपूर्ण है। वह महाराजा पुष्परा को बोलेय काम-शक्ति से वतनी संतुष्ट है कि पुष्प कीमाधुरी उसके लम्बे नहीं समितती। बार बार अश्रुओं का स्पर्श कठोर बावों का आर्जित और तन का उरताप उस में संकुचित हो कर उसे आत्म-विमोह कर देता है। यही उसकी पुनः - चित्तवृत्तता है, प्रसन्न वृत्ता है।¹ उर्वशी रचका, लीडर, और काया के परिचय - बातों में ही आकाश है और प्रेम-देवता को जमाने का एक मात्र साधन जानती है --- दुःख। और वतने के बाद भी वह "देव काल से बरे चिरन्तन नारी है।"² पुष्परा जब उस प्रथमनी की "त्रिकाल सुन्दरी मान ही दे सके।"³ उर्वशी के प्रदूष्य होने पर राजा पुष्परा उसके स्व-सौन्दर्य का स्मरण कर उसके विधिवोग में भी उसका स्थापन करने में रूचि करते थे। उनके लिये वह माया मनाज प्रतिमा थी:-

अन्य अश्रु, रजितम कबोल, कुसुमाब्ध धूर्त दुर्गों में
आमंत्रण जितना आनन्द माया-अमोह प्रतिमा में का
ग्रीवा से आकटि समन्तउल्लेखित तिष्ठ मदन की
आलोचित उज्ज्वल असीमता की सम्पूर्ण रचका में
वह प्रतीय कमान, जिन पर ही मूर्ति जड़े हुए हैं
त्रिवली किसी स्वर्ण सरली में उठती हुई लहर ली अजिवादि

उर्वशी: एक पुनीत मातृत्व:-

मातृत्व नारी जीवन की परम उपलब्धि है। इसी मातृत्व का सौभाग्य मेनका को भी मिला और उर्वशी को भी। महजन्मा सोचती है कि क्या उर्वशी मानवी आचरण कर सकेगी।

रम्भा ने तो अफराके मातृत्व का सार ही टुक तुना दिया है। रम्भा मातृत्व को क्या जाने 'वह मातृत्व में स्व-जीवन का विगमन देखती है और उन अप्सराओं को प्रकारान्तर से हासिली भी है जिन्होंने ने अपने वैवी स्वरूप की मानवी पुरुषों के हाथों का डिलोना बना दिया है:-

पुष्पती हों गी, शिशु को मोदी में हलरायें भी
मदिर तान को छोड़ साँझ से ही लौरी मायें भी
बहमें भी उँचुकी क्षीर से क्षम क्षम मीली मीली
मेव जगारें गीममुष्य से देह कहीं भी टीली।

३/५० 19

जिन्ना सुई मातृत्व पद से प्राप्त होना है उसकी चिन्ता छोड़ रम्भा वतने में ही दुःखी है कि देह की कान्ति और कमाव टीला ही जाये गा। मेनका इसे कम

1:- उर्वशी: पृ० 72

2:- उर्वशी: पृ० ९३

3:- उर्वशी: पृ० 94

स्वीकार कर सही नहीं कि उसे मातृत्व बोध है:-

युवा जननी को देख शान्ति कैसी मन में जगती है
स्वप्नती भी सही, मुझे तो यही विद्या लगती है
जो गोदी में लिये क्षीर मुह शिशु को सुना रही हो ।

----- पृष्ठ 19

भौतिक भ्रमका स्वयं वृत्त्य की अंशायिनी कम चुकी है। वह मातृत्व के महत्त्व को भी जानती है ---- उसकी चेष्टा को भी। चेष्टा में उस जानन्द भी उसने भोगा है, वह जननी के गौरव गर्व और स्वाग को भोग चुकी है:-

लगती है इस विता सत्य है गहन देह की ली कर
पर, हो जाती वह असीम कितनी वयावनी हो कर।

----- उ० पृ० 19

गर्भ-भार मूल सर्वोपम महर्षि व्यसन के आश्रम में देह का शान्त पीतिमा युक्त
हस्त धरन बहुषी है, निस्तदाय, दीन-दुर्लभ पर भविष्य के प्रति आश्रित वह
विदुषी अब महर्षि के आशीर्वाद की पात्र है। महर्षि भी उसे नारी जीवन की साकारता
का प्रमाण पत्र प्रदान करते हैं --- कवि दिनकर ने अश्विनी के कवि वर्त्मन् के सौंदर्य
को अपनी भाषा में ब्रज उता है:-

"मुझे। सदा शिशु शिशु के स्पर्श में रंजित हो जाते हैं।"

----- 4/111

उर्वशी जानती है कि वह स्वयं मानव-पुत्री नहीं है। किन्तु उसे मानव की मां
होने का तो गह है:-

कैसी नहीं हुई तो क्या 'जब मां तो हूँ मानव की
महर्षि देखती, रत्नमयी को ऐसा ताल दिया है।

----- उर्वशी: 4/पृ० 112

वह अपने पुत्र के रूप और व्यवहार का उत्कृष्ट वर्णन करते नहीं समाती।
सभी दाताओं की यही वृत्ति है:- उस मानव-पुत्र आयु का दृढ़ दृढ़ देहना, मृदुल
होना, उसे अपने अंक में ले प्राण तक शीतल होना मातृत्व की ही सीमा है। मातृत्व
है और मनोवैज्ञानिक सत्य भी कि गर्भिणी के विचारों और कल्पनाओं का प्रभाव
गर्भव शिशु पर भी पड़ता है --- इसी आधार पर उर्वशी भी चन्द्र रश्मियों, तारकों
की पवित्र आभा और सूर्य किरण को समेट कर अपने अन्दर रत लेना चाहती है ताकि
उसका शिशु प्रतिभा सम्पन्न अमर ज्योतिषों से परिपूर्ण हो। कैसी कामना है।
कल्पना है कि राजकुमार के राजा बनने पर वसुधा भी समताप्यवती हो गी, हीन
की रत्न-वापसलुषा पर नहीं रहेंगे और समस्त जगत्-प्राणी आयु प्राप्त हो कर
खुशी होंगे। और इसी एक कल्पना पर राजकुमार का नाम कल्प हुआ आयु।² किन्तु,

1:- ode on Immortality - wordsworth

2:- उर्वशी: पृष्ठ 114

कचमचकचमचकचमचक उर्वशी का मुँह यहाँ पर चिन्ताकुल हो गया। शिशु से विमुक्त हो कर वह जीवित कैसे रहेगी? दूसरी चिन्ता और बड़ी है --- शिशु का जन्म-संस्कारपूर्ण हो गया है। महाराज उर्वशी के साम्प्रदाय की कामना करेंगे, फिर वह राजा के ही राज महल में विधवा पूर्ण जीवन व्यतीत करेगी। भारत का शासक है "पुत्र और पति नहीं", पुत्र या केवल पति पाओगी और विधवा प्रकृत उर्वशी क्याकुल है:-

विधा नहीं सकती तुल का मुँह अपने ही स्तनी की
न तो पुत्र के लिये स्नेह स्तनी का तब सकती हूँ। !

तब तक उर्वशी पुत्र-स्नेह के आकर्षण से अपने पति से लिय कर हथि कुटी में जाती रहेगी और कब तक जाय महर्षि ध्येयन के आश्रम में रह पायेगा? उर्वशी अपने जाय को नियति के रिलीमे की भाँति असहाय पाती है। वह केवल इतना कह कर सन्तुष्ट करती है--- मैं निमित्तक हूँ हकीमुकन्दकेव

मैं निमित्तक ही रही मुकन्दे। हय अखीर कालक की
तुम्हें छोड़ कर निश्चित लोक में और जीवन माता है
केवल पुन-धनन, केवल प्रथमन मातृत्व नहीं है।

माता लकी, पालती है जो शिशु को हृदय लगा कर। 252

वही उर्वशी जो अपने यव-सौन्दर्य पर गर्व करती थी, जो तब में पुत्ररक्षा की भी पराजित कर लकी थी, जो क्षम ज्ञान-विज्ञान की अभिलक्षणी या आज अपने ही रक्त कीभाषा में दयनीय है और जाति है मुकन्दे पर जिसे वह लकी। दयामणि देवि। शरण्ये। शुभे। यत्ने। कल्याणी। जादि तब तब सम्बोधनों से एकबारगी ही सम्बोधित करती है। उर्वशी ने तो स्वयं को भाग्य के बरोसे छोड़ दिया है --- नियति बड़ी प्रकृत है। अब उसे अपना मुँह नहीं दीखता --- पुत्र की चिन्ता सताती है:-

अपना पुत्र सुखक नमक है उसे छोड़ सकती हूँ
किन्तु, पुत्र का भाग्य क्षमि पर रह कैसे पनेहुँगी?
देना मेज उचित सब समयो, मुक से पक्ति तब पर
जमी पड़ेगी दृष्टिदयति की, अब जान दूटेगा।

---- उर्वशी 4/110

हेम पराजित होता है तो अपनी ही सन्तान से। उर्वशी पराधीन-सी अनुभव करती है। ये ही एव त, यन, अपने, चन्द्रमा, वायु, मण्डमादन, प्रसून, कुंज, समस्त प्रकृति विभा जो सन्तोहारी सुखमय और कादम जगती थी, जिसे उसने छक कर दिया था, आज छोड़ने पर भी नहीं मिलेंगे।

1:- उर्वशी: पृ० 119

2:- उर्वशी: पृ० 117

यह क्षण भर में छिपने जाने सौभाग्य की कठिन कल्पना से ब्रह्म नारी है---
 यह संसार की कितना दुःखदायी है --- "न तो प्राण प्रिय पुत्र, न तो प्रियजन
 जिन्होंने वात्से हैं।" इसके अन्यथा दूसरी कोई राह नहीं है। यह कष्ट तो उर्वशी ही
 भोगेगी। सुकन्या के आशवासन से श्रेष्ठ धारण कर नियति के सहारे अपने आश की
 छाँड़ उर्वशी अपने सच बच सुखी शिशु को सुकन्या की गोद में छोड़ कर प्रतिष्ठापूर्वक
 लौट गई। मा दुष्ट की ऐसी छिछोरे छिछोरे किसी नारी को न मिले।

सही बात तो यह है कि अप्सराओं में मानवी संततियों की जन्म तो दिया
 है, उनका बौद्धिक सहित नहीं दिया है। मेनका-युगी संतुष्टता प्रमोदा-युगी
 मारिच्य, रत्नी पुत्र आदि। पुताही पुत्र एक सच सभी को औरों ने ही जाना है।
 इन की अप्सरा माताओं ने नहीं।

उर्वशी: --- एउ सहज नारी:-

पुत्रदा ने स्वप्न में आत्म प्रति के आत्म से एक स्वयं बालक की देखा ---
 पुत्रदा माँके हुये, वह वीर-कर शीशीसुख्य कुमार था। राजा पुत्रदा ज्यों ज्यों
 स्वप्न में देखे गये बालक के सौन्दर्य का वर्णन करते हैंतों त्यों उर्वशी आत्म दुर्विनाक
 का ध्यान कर प्रयासुरा है --- पानी पी कर स्वयंकोमा चाहती है पर भस्म गोच
 की गूँज उठते अन्तर्मन में प्यासा प्रकटित करती रहती है। ऐसे ही प्रयासुरा क्षण में
 सुकन्या ने "जायु" सहित प्रवेश किया। सोनह वर्ष पूर्व का व्यास "जायु" ---
 उर्वशी पुत्र, राजकुमार आयुजने पिता के समुद्र छोड़ा था ---वही युवक जो महाराज
 के स्वप्न में भिक्षुमिला रहा था, प्रत्यक्ष था। पिता-युव के मिलन क्षण में उर्वशी को
 शोच मौलन हेतु जाना ही था, वह अद्यय के छोड़ में अन्तर्धान हो गई। केवल एक ही
 गूँज सुनाई देती थी:-

"पुत्र और पति नहीं, पुत्र या केवलपति पति बाजो गी"
 और हुआ क्या ' न क पति ही मिला और न पुत्र ही। उर्वशी अप्सरा थी,
 पुत्र: अप्सरा ही गई।

उर्वशी: --- बुद्धि समर्थता तर्क शीला रमणी:-

उर्वशी बुद्धि प्रधान तर्क शील और अपने व्यक्तिगत को स्थापित करने वाली
 रमणी है। इसका अर्थ इसी के अनुसंधान है। वह अल-विद्वान के प्रति समर्पित थी किन्तु
 इसे एक ही क्षीम था। इसे स्वयं अभिमत हेतु पुत्रदा के पास जाना पड़ा। उस से बड़ा
 अर्थ का क्षण और क्या ही सकता था ' जिसे पुत्रदा योग की भाषा में अनासक्ति
 कहता है। उर्वशी इसे तन और रक्त की भाषा में अनासक्ति समझती है। नीरवै का

सिद्धांत है:- *Theory of Eternity*

यही बुद्ध का दोस्तेयन-देवान र है। उसके अनुसार मनुष्य ही योगी और भोगी दोनों ही है, मन और तन, जल और जल, मुक्ति-महामुक्ति, धर जहाँ तक एक साथ मनुष्य है। उर्वशी का विश्वास है "रक्त बुद्ध से अधिक बली है और अधिक जानी भी। बुद्ध तो मज्जा और शौचित्य अनुभव करता है।" अतः "यदो रक्त की भाषा को, विश्वास करो इस निधि का, यह भाषा यह निधि मानस को बनी माँछ भरनायेगी।" उर्वशी राजा बुद्ध का मेसपीयर की भाषा में अपना प्रार्थनागत गुरु तथा मित्र तबधर *Friend, Philosopher and Guide* मानती रही है। किन्तु ईश्वर तक जाने के लिये प्रकृति से सम्बन्ध विच्छेद करना होगा, जो प्रकृति में रम रहा है उसे ईश्वर नहीं मिलेगा। उर्वशी की अपनी मान्यता है। वह तो ईश्वरत्व को ही इन जगती का उत्तम मनुष्य का उत्पादन मानती है। विश्वास को माया करना प्रकृति का प्रकाश करना है। मोक्ष प्रकृति और परमेश्वर में वेद है, यही माया है, यही मिथ्या है। प्रकृति एक परमेश्वर के चेत भाव ही ईश्वरत्व का जोश नहीं होने देता। माया प्रकृति बुद्ध है। राग द्वेष और विचार दोनों ही विषय हैं, ज्ञान और समता के द्वंद्व हैं। मोक्ष, नीति, भीति, धर्म, नियम संन्यास सभी से मुक्त व्यक्ति की चेतना को उर्ध्व होना चाहिये। विविध निषेध मय संन्यास जीवन से लिये संगत नहीं है। प्रकृति च नैतिक है। इस से निवृत्त जो भी है वह बुद्धि है। उच्चतम आनन्द की मज्जा है सब सम्बन्धों का समापन निष्फल है। उर्वशी का या कवि दिनकर का गीता ज्ञान उर्वशी की जिज्ञासा पर है और यही भाषण उर्वशी ग्रंथ में सब से लम्बा है जहाँ कविता कुछ गई है। ज्ञान-ग्रन्थ गुप्त गये हैं और मानसिक केन्द्रों व्यापक करने लगती हैं। कभी मेसपीयर का हेमेट जोता है:-

"मेद गुणों का नहीं, मेद है मात्र दृष्टि का मन का।"

There is nothing good or bad but thinking makes it so.

कभी बुद्ध का काम-सिद्धांत प्रतिपादित करती है उर्वशी। कभी तर्क की प्रकृति है --- या कवि को अपनी क्षुब्ध काम भावना का दायित्व --- "तन का काम जम्हा, लेकिन यह मन का काम मात्र है।" मन का काम भरपूर है, सही है, पर काम तन का काम जम्हा भी है। विचारणीय है।

उर्वशी: ---- एक प्रेमिका:-

उर्वशी समस्त गीता ज्ञान की अधिकारिणी है, एक पलायन की व्याख्या से अनासक्ति तक। माँस प्रेमियों आनन्द इस कथा जानती हैं। अतः तन का काम काम कैसे हो सकता है। विध्यासक्ति को तो स्नायु और मन भोगते हैं।

और तीन एकाग्रताओं में प्रेमिका सुख है --- कवि वर्तमान के शब्दों को दुहराते हुए कवि का काम है --- तंताने अज्ञात लोक से आ कर छित जाती हैं।

1:- *Lo! learn to love, the lesson is but plain
And once made perfect never lost again*
- Venus & Adonis

2. *Woodhouse - Ode on Immortality.*

महाकवि रवीन्द्र की उर्वशी की भाँति वह एक अतीन्द्रिय सौन्दर्य की स्वामिनी है, मन्त्रमोहिनी है --- नाम गौत्र हीन, माता नहीं काममा है।

जब रीकर प्रसाद की लहड़ा तो वह बन न लड़ी पर आँसु की शक्ति में साकार है: ---

"परिरम्भ कुंगी की मदिरा, निःसात्मक्य के भौंके"
और उर्वशी है: 2

"परिरम्भ पाश में बँधे हुये उस अम्बर में उड़ जाती है।"
वह प्रसाद जी की रिपुर् सुन्दरी है सखान पर "त्रिजाल सुन्दरी" है।

भारतीय साहित्य की विस्तृत धारा के सम्पूर्ण सामाजिक परिप्रेक्ष्य में यदि कोई पात्र अपनी समुत्तर में कल्पना और तर्क, प्रतिभा और विम्व, आकर्षक और उत्प्रेरक-वस्तुत्व है तो वह उर्वशी है अतिरिक्त दूसरा नहीं है। उर्वशी एक संज्ञा है, स्मृति है, एक स्थान है, एक अविज्ञाता है, एक वायवीय सौन्दर्य है और एक सम्मान्य संधार्य है। उर्वशी एक संज्ञा शुन्य आरम्भ है, अतीन्द्रियसंगीत की सहजानुभूति है, एक अदृश्य सत्ता की शक्ति है, वह एक लौकिक है, एक सिद्धान्त भी है, आकाश की एक कल्पना है और एक दृढ़ निश्चय भी। अन्तः उर्वशी एक नारी है और नारीत्व का एक असीम अज्योत सौन्दर्य भी है। यही उर्वशी दिग्दर्शक के का-य में वर्णित है।

संक्षेप में, विशाल साहित्य में जो भी शक्ति है, निरन्तर है राहें वह यौत्सीय साहित्य में जो या कि भारतीय साहित्य और संस्कृति की निधि हो, उर्वशी दिग्दर्शक ने उस सब को बरतते उर्वशी के चरित्र में गुम्भित करने की चेष्टा की है।

.....

:- Urvasie . ३० जार ० ४ वीं निवास आगमन : Kaudir Annual 1949

औशीनरी

=====

आशीनरी महाराजा पुत्रवा की पत्नी एवं प्रतिष्ठानपुर की महारानी हैं। महारानी बंद की गरिमा से युक्त आशीनरी का राजमहिषी स्वल्प उर्वशी गीति-नाट्य के प्रारम्भ में न हो कर पंचम अंक व अन्त में उद्भासित हुआ है। अतएव महारानी आशीनरी के सामान्य जीवन की हमें कल्पना पड़ेगी। आशीनरी इस गीति-नाट्य के विद्यतीय अंक में वस्तुतः दुर्लभ और अपने अन्तः संघर्ष की काव्यिक स्थिति अभिव्यक्त कर अध्याहार में ही जोड़ दी गई है। इस गीति-नाट्य में आशीनरी को पुरम अंक में उद्यतीर्ण कर अभिमान हास्यमय की भाँति नाटक को सुखान्त बनाने के लिये दिनकर ने सुन्नातम कल्पना का उपयोग किया है।

काका के प्रारम्भ की महत्त्वहीन आशीनरी एक सामान्य बोलचाल भोग्या ही रही जो भी और महाराज पुत्रवा उर्वशी के साथ गन्ध मादन विहार में विलास कर रहे होंगे। आशीनरी के नारीत्व में उजल-पुजल करने के लिये एक यही स्थिति पर्याप्त है और इसी स्थिति से उठा कर दिनकर ने आशीनरी को चित्रित किया है। वस्तुतः "उर्वशी" में आशीनरी को चित्रित करने का कोई कारण और कोई स्थान भी दिनकर के उद्देश्य में नहीं है फिर भी दिनकर इसे नली भाँति चान्से हैं कि उस भी काव्य जैसे ही समाप्त हो गया हो, उर्वशी के लिये वे जो कुछ लिख सकते थे उन्होंने ने लिखा पर उसे वे भी स्वीकार करते हैं कि --- "अपसरा स्त्री से हार गई यही स्त्री आशीनरी नारी, जब सारी हुआ लिये जाती है तब सब के ऊपर छा जाती है।" आशीनरी का यही नैतिक अस्तित्व अन्त में प्रभावशाली बन कर स्थाय हो जाता है।

आशीनरी राजा पुत्रवा की पत्नी है, विवाहिता पत्नी है, परिणीता है। अतएव वह राजा पुत्रवा की पत्नी है समस्त अधिकारों की स्वामिनी है। राज्यांगी रीति विधियों में राजा की अनेक परिणीतायें भी हैं जो भी भी रानियाँ जदमै प्राग्य का ही परिणाम समस्त स्वामी भाव में सब सहम कर लेती हैं या।

राजा पुत्रवा गंध मादन वर्त पर अपसरा उर्वशी के साथ आनन्द-पुनोद, और पुण्य-विहार में मग्न हैं। उन्होंने ने महारानी आशीनरी के साथ सहित देखा है:-

करती रहें प्रार्थना, फिर ही नहीं धर्म साधन में

जहाँ रहूँ मैं भी रहूँ, प्रियर के आराधन में ।

राजा पुत्रवा अपनी परिणीता से उर्वशी के प्रति पुण्य-माध का गोपन इसी भाँति कर सकते हैं। क्या सम्भव महाराजा पुत्रवा परिवाराधन में तीन है या कि

उत्कृष्टी के मांसल लीनद्वय में छीये हुये' राजा का उक्त कथन मात्र एक कहाना था। जैसे भी प्रेम और धृष्ट में कोई केहनानी नहीं होती। उनका यह छद्म कथन ही औशीनरी के चरित्र को उदात्त बना देता है और वह एक सद्बुद्ध पात्र के रूप में सर्वप्रिय बन पाती हैं।

कवि दिनकर की आत्म-स्वीकारोक्ति को भी इस संदर्भ में उल्लेख करना आवश्यक है। श्रुति-तिलक की कविता "उत्कृष्टी-काव्य" में औशीनरी भी है:-

धर, वाय, यही रोती रहती
दायित्व सभी होती रहती।
माताये जैसे उठाती हैं,
उपरिधां मौज मनाती हैं।

औशीनरी रोती है, उत्कृष्टी मौज मनाती है। औशीनरी दायित्व ठोती है मिलनसारन होने का जैसे उठाती है और उत्कृष्टियां यानि कि नीति तीन स्वच्छन्द नारियां धर वृक्षों के साथ मौज मारती हैं स्वार्थ सिद्ध कराती हैं। दिनकर को यह सब अनुमायिका हुआ जब वे तिरपन वर्ष के थे --- दुखती हुई अवस्था पर।

औशीनरी रोई नहीं, उल्टे तो सब सहन किया। सामान्य नारी भी राजारानी के भीतर रहती है और वही बहुत प्रकट होती है। राजत्व तो वाङ्मय-भोग है, अन्तर्मन में एक ओमल नारी है। औशीनरी में भी और उत्कृष्टी में भी। उव ही तो अन्तरा है जतः बहुमंती, बहुल्य पारिजी होने पर भी वह रस है। औशीनरी एक सामान्य नारी है जतः वह आनन्द, उल्लास व्यथा, शून्यता, मातृत्व राजत्व सभी का एक पूंज है जो अलग अलग संदर्भों में दीखती है।

महाराजी औशीनरी प्रसवद्वय से वृत्ति वृद्धन कर के जोटी थी तो उन्हे अनाथ विश्वास था कि उनका वाग्म्यत्व ठीक जीवन ठीक ऐसे ही सुख-सोमिन्ति में व्यतीत हो रहा है जो रोहिणी और चन्द्रमा का। कोई विषम क्षण जैसे आये गा ही नहीं। सभी निष्पुणिका ने पुरुषता-उत्कृष्टी का प्रसव-विहार वर्णन कर दिया। आनन्द और अनाथ विश्वास के दिग्ग-विभन्न होते ही औशीनरी कल्याण-व्यथा से भर गई।

औशीनरी कल्याण और प्रेयस की प्रतिमूर्ति है। निष्पुणिका ने किञ्चित् संकोच किया है कि वह उत्कृष्टी के प्रणय-विहार को बड़े या नहीं पर औशीनरी पत्थर का मन करते स्वीकार करती है :-

"बगली। जौन व्यथा है जिस को नारी नहीं सहेगी."

पुत्रव्या - उत्कृष्टी प्रणय-व्यापार "अग्नि देठा है जो इस अमीगिन का बुद्धव जला रही है ---- इसे भी जलने दो।" निष्पुणिका ने उत्कृष्टी का लीनद्वय वर्णन किया, महानिका ने उसे और उत्साहित किया। अन्ततः निष्पुणिका कह ही उठी:-

महाराज ने देह उत्कृष्टी को जधीर अकुला कर
बाहों में भर लिया दोड़ गोदी में उसे उठा कर।

औरीमारी इस दुख को डलना में भी नहीं देखना चाहती हो गी --- कोई नारी नहीं चाहती, कि उस का प्रति पर नारी के बाहु कल में रहे। किन्तु यह सत्य है तो यह नारी की विवर्तता भी है। फिर राजा पुलक्या प्रणयनी उर्वशी के दुष्कर्म की सिंहरन से अभिभूत थे। आवाद का प्रथम विवर्तता कालिदास से भी उन्हें याद आया है और यह उर्वशी के उनकी "प्राणेश्वरी।" बन गई। अब जैसे में औरीमारी 'क्या करे' यह अपने आप में इसकी विवर्तता है, इसकी निरादर है कि पुलक्या-उर्वशी के आजीवन एक साथ विवर्तता को जान कर उसे अपना जीवन निष्प्रयोजन प्रतीत होने लगा है और वह मरण को ही मार्ग करना बेयासर समझती है:-

आजीवन से साथ रहें मैं तो अब क्या करना है
जीते जी यह मरण फैलने से अच्छा करना है।

किन्तु औरीमारी न तो मर सकती है और न ही जी सकती है। उसे निमित्त यत्न के विवर्तता जीवित रहना है। यह धर्म है और औरीमारी को इस धर्म वास्तव के सिद्धे जीवित रहना है। लेकिन निमित्त प्रति पुलक्या-उर्वशी सामान्य का हस्ताक्षर भी कर रहना तो औरीमारी नारी के वक्ष में नहीं है और आश्रित में औरीमारी ने उर्वशी की इस स्वच्छन्द - विचार - कृति को गहिका, पापिन, अहम, प्रवर्धिका, व्याधिनीं क सब अनेक नामों से अवमानित कर मन की कृति को अभिव्यक्त किया है। यह स्वाभाविक उक्ति ही औरीमारी के चरित्र को मानवीय रूप में प्रस्तुत कर सुन्दर बनाती है।¹

प्रमदा नारी के समक्ष उद्घेष्टित मर सदा क मर ही जाता है। यह सत्य ही धर्म उठता है पर कुछ-हीना नारी उसकी कामासुर कवां 'कोई भी नारी अपने प्रति पर दूसरी नारी का ऐसा स्वाभिमन नहीं देख सकती जहाँ उसका प्रति प्रमदा के चरणों में समर्पित हो। औरीमारी अनेकानेक कल्पनाओं के विम्वर बना कर निवर्धन निवर्धनी रहती है। यह जानती है कि "जो अलभ्य जो दूर उसी को अधिक चाहता मन है।" पुलक्या सत्य भाव से जिसे प्राप्त कर लेता है उसके प्रति उस में कोई आकर्षण नहीं, कोई सावसिकता नहीं रहती। प्रमदा, जो पुलक्या को अपुष्ट रहती है, जो उसके साथ आँख-मिथानी करती है, यही पुलक्या पर शासन करती है और पुलक्या भी उसके व क्षीं भुल हो कर रहता है।² दूसरी ओर औरीमारी प्रणयनी भी है। यह सम्पूर्ण समर्पिता है अतः सत्य है, अतः रानी होते हुये भी अप्सर से हार गई है। औरीमारी ने अपना मन, मन, जीवन अपने आराध्य पुलक्या पर न्योछावर कर दिया है फिर भी यह राजा के दर्शन की मिथुनी बनी हुई है। औरीमारी को सभी राग सुख प्राप्त हैं, भौतिक सब सुखियायें प्राप्त हैं, जो नहीं मिला है वह है प्रति पुलक्या की लैव किर्ण जिस से उसके मन का मान-बहुत सिद्धता।³

1:- उर्वशी: पृ० 32

2:- उर्वशी: पृ० 35

3:- उर्वशी: पृ० 36

दिनकर मैथिली शरणगुप्त से प्रभावित कवि हैं। गुप्त जी ने साकेत में स्पष्ट रूप से कहलया दिया "पति ही पत्नी की गति है।" पत्नी की समानार्थक अभिव्यक्ति है औसीनरी के कथन में:-

"पति के सिवा योशिता का कोई आशार नहीं है।"

अपनी वस दुर्दशा पर औसीनरी न हँस सकती है और न रो सकती है। वह ऐसी अवस्था है जिस के आँख में दूध आया हो नहीं और आँखें पानी बरसाती रहीं। एक आँसू की किरण --- सत्य या कि असत्य---महाराजा पुरुषोत्तम ने चँवर की बात कह कर छ ईश्वराश्रमा की फ़ैस प्रेरणा दी है। औसीनरी अपने माय पर व्यंग करती हुई बड़ी सामान्य नारी की चिन्ता से कहती है:-

अपरा के संग रमना, ईश की आराधना है।

सूने वन में औसीनरी पुरुष पाने की आराधना करे, वह भी उर्वशी के पुरुष की। राजा न्यायी होता है। पुरुष का यह न्याय भी असंगत है। सब प्राणी कोई न कोई अवलम्ब पा जाते हैं। किन्तु "नारी बहुत असहाय है।" उसके मन में जो कुछ ठोस यह जीव पर लाये नहीं। वह केवल अपने प्रियतम की कुछ कामना करती रहें।

दिनकर का यह व्यंग क्या विद्रोही स्वर है या कि फिर सचमुच एक पत्नी की 'व्यथा दूषीतक' क्या दिनकर ने स्वयं की ऐसी पीड़ाभोग्या नारी की निष्ठा से जाना है।

औसीनरी का मातृत्व:-

औसीनरी के भले ही सन्तान की जन्म न दिया हो किन्तु उसकी नारी उसके भीतर मातृत्व की सम्भिरता, गुणत्व, और गुणों की अभी कभी छीन नहीं हुई। राजकुमार के बिना राज प्रसाद का क्या मुख्य 'कंकुली पैसा' अर्थ भी यह अनुभव करता है कि सम्पूर्ण सुविधाओं से परिपूर्ण प्रतिष्ठानपुर का राज महल एक चँवर के बिना सुना लगता है। माय का विधान किन्तु कुछ और ही था। औसीनरी 'ज्यं माता च नहीं जन सबी किन्तु वह मातृत्व का दायित्व जानती है और माता नहीं तो राजमाता बन जाने का उसे गौरव भी है। वह "जायु" की सुरक्षा अकेले में भले लगा लेती है। उसके चारसत्य प्रेम की कोई सीमा नहीं है। पुरुष बिहीन होने पर भी वह अपने को माता मानती हुई जायु की शासन भार ग्रहण करने के लिये हतबल करती है। उसे यह एहसास हो रहा है कि वह राज माता है नियति के चक्र से ही सही। वह एक नाटकीय प्रसंग है, मर्यादा अभिनय की यही सम्पत्ति है:-

किन्तु नियति की बात। सत्य ही अभी राजमाता हूँ
आ केटा। तूँ छुड़ाप्राण छाती से लुके लगा कर।

"केटा" शब्द में मातृत्व और ममत्व दोनों ही जान मिले हैं। जायु-औसीनरी मिलन अकारण नहीं है। एक छोटे से प्रसंग में औसीनरी ने केटा, पुरुष, सम्य आदि शब्दों

का प्रयोग कर भाव विवक्षता प्रकट की है। "केटा" शब्द ही औशीनरी के लक्ष्य कथन में बार बार प्रयुक्त हुआ है। अर्थात् औशीनरी का मातृत्व सख्त है। दूसरी ओर दिनकर ने औशीनरी द्वारा आयु को जो अनेक स्थितियों का आभास कराया है उन में एक सेक्सपीयर की भी उक्ति है।¹

एक भारतीय नारी की भाँति औशीनरी अपने वास्तविक दर्शन व संस्कारों के अनुकूल ही व्यवहार करती है — वह "अमानिनी है, उपेक्षित है, नीरव प्रेमयनी है और कामना शीतल है।"² अपने को हतभोगी, अनुसूची और तन्मासिनी जानने लुने की औशीनरी वसिष्ठता है और पुरुषवा के ज्ञान के बाद प्रजापिता है। उस का परचाताप एक भारतीय नारी की चोखार है, स्मृति अन्य संयोग काल के आनन्द-पुण्य अब विद्योगवन्धन एकाकीपन में परिवर्तित हो गये हैं। वह आत्म ज्ञान और आत्म प्रवचना से मन की शुद्धता को प्रकट करती है।

हाथ लती। मैं ही कदर्य, बोधी अनुवार कृपण हूँ
केवल शुभ कामना मंगलवा से क्या चोता है।³

शब्दों की मंगल कामना पर्याप्त नहीं होती, व्यवहार से उसे सत्य प्रमाणित किया जाता है:-

किन्तु हाथ प्रियतम को जिसकी सब से अधिक तुवा थी
अब लगता है, बूढ़ गर्भ में यही सुरभि देने से।⁴

औशीनरी का परचाताप और आत्म ज्ञान उसके मातृत्व में वह गर्भ और नारी जीवन की महत्ता को जान कर वह शान्त हो गई है। औशीनरी की अन्ततः नारी ही है मातृत्व जिस का एक अंग है।

औशीनरी ने मातृत्व भाव से आयु को जो लगाया है किन्तु क्या वह पुरुषवा के अन्तर्धान होने को भूल सकती है? क्या वह आत्म ज्ञान से बाहर निकल सकती है? क्या वह आत्म प्रवचना नहीं करती? वस न्याः प्ररित पुतारणों से वह निकल भी कैसे सकती है? वस क्षीम को दूर किया है आयु ने। औशीनरी उर्वरी के सवत्नी जेष्ठ से रण्डे ली थी ही, अब पति विमुख भी दुर्ब और डोछ से भी सुनी। वसने पर भी आयु पर दृष्टि पड़ने ली वह सब भूल गई। आत्मज्ञान, कला, उत्साह-विषाद से भरी औशीनरी मातृ-पितृ विहीन आयु के छि प्रति आत्मज्ञान भाव से ही परिपूर्ण हो कर जी रह सकती है:-

पिता गये मन, किन्तु ओ माता ली यहीं छड़ी है
केटा। अब भी ली अनाथ मरनाथ नहीं पलों का ।

1:- *Uneasy lies the head that wears the crown - Shakespeare.*

पु. - "जिस पर चढ़ा किराट भार-दुर्बल समाज-शासन का।" उर्वरी अंक 3 पृ. 148

2:- उर्वरी अंक 3 पृ. 149

3:- उर्वरी: 2/193

4:-

औशीनरी के चरित्र में एक हीम हीम समर्पिता नारी है जो आत्म व्रतवना ,
 आत्मप्रतारणातथापि यंत्र मर्यादा के लिये मर मर कर भी जीने वाली नारी है। इसे
 हम औशीनरी के माय्य की विडम्बना ही करें। इसी को श्री० विवेकानन्द नारायण सिंह
 ने हिन्दी काव्य का प्रथम द्रष्टा माना है। यही औशीनरी हमारे परिवार
 की भी एक द्रष्टा है, यही हम की मोलिका है। हम सम्पूर्ण उत्तरी काव्य में
 औशीनरी कीचित्र आत्मा के अछिन्न निरुद्ध ही पाते हैं।

0000000000000000

सुकन्या

अप्सरा नामकी अन्तान की जन्म देसी रही है परन्तु उस संतति के बालन कोश से उसे कभी सरोकार नहीं रहा है। अप्सरा के लल भोग जान्सी व, भावना नहीं। मेमका की संकुन्तता ही, पुताची के लल ही अथवा उर्वशी का आयु ही, सभी की नामकी माता - पिताओं ने बाला है। फिर यदि आयु का मातन बालन महर्षि च्यवन की-भार्या सुकन्या ने किया हो तो यह परम्परा का ही अनुसालन है।

देसी सुकन्या महाराजा श्यांति की पुत्री है। महाभारत की कथा के अनुसार सुकन्या ने लग्न-ग्रान्त में तपस्या रत महर्षि च्यवन के नेत्रों में मूल डेदने किया था और महर्षि की अनुमति पर महाराजा श्यांति ने सुकन्या की महर्षि च्यवन की भार्या रूप में लीव दिया था।¹ महर्षि कर्म में भी अपने तप पूर्ण होने पर सुन्दरी नारी की चाही थी, ठीक वही प्रकार महर्षि च्यवन ने भी सुकन्या की कामना की थी। दिनकर ने च्यवन-सुकन्या कथा में नेत्र मूल-डेदन की कटना की बलक छींचने तक की सीमित कर दिया है। चित्र मेढा ने तो केवल "स्पर्श ध्यानस्थ च्यवन का" कह कर बल कटना की स्पर्श तवेदन तक सीमाबद्ध किया है।

सुकन्या का छिन्न चरित्रांकन तब और भी बाधन हो जाता है जब वह पटवैद्य के गौरव और नारीत्व की गरिमा का विवर्तन करती है। इन्हीं ही जायानों में सुकन्या का चरित्र उन्मूलन बन गया है। वृत्ति पर "अमीन कु गर्व" करने वाली सुकन्या को हम की सुझावस्था पर भी कोई मानि नहीं है। चित्र मेढा भी स्वीकृत्य गीकार करती है कि रति-दान दोष मुक्त है:---

"वन्दिष्य - तर्जने में कोई दोष नहीं है।"

किन्तु सुकन्या एक वृत्तिज्ञा नारी है। उसकी दृष्टि में भोग केवल अप्सरा की "अच्छ डीड़ा" है। वृत्तिज्ञा नारी से प्रवृत्ति है जो अपने भर्ता से ही योग और भोग दोनों ही पाती है। उस का निर्मलात्मक मत है कि सुवासन्यों में एक वृत्ति चारिणी होने पर ही जीवन भर का प्रेम-पूर्व निर्वाह सम्भव है, विगलित जीवन के रूप पर किसी पुत्र की दृष्टि क्षम भर भी नहीं मिलती है।² तब अपनी परिणय-कथा में सुकन्या ने यदि भी बलक छींचने की है उपरान्त उनके नेत्रों में प्रणय की चमक देखी थी,

1:- महाभारत: जन पर्व ।

2:- उर्वशी: कुल पृष्ठ 103

यह प्रथम-दृष्टि आकर्षक अन्य नहीं छल्लूआ जा। महर्षि च्यवन ने स्वयं प्रस्ताव किया है:-

वरण करो गो मुझे¹ सुन्दारे लिये जरा को तब कर
मुझे। तपस्या के कल से मैं यौवन प्रवर्ण करूँ ना।

महर्षि च्यवन को भी इस विवाह-प्रस्ताव पर अपनी तपस्या भंग होने की कोई गलती भी नहीं है। उन के सम्मुख महर्षि कर्म का उदाहरण है जिन्होंने "स्वयं नहीं", "वर मैं नारी मनोव मांगी थी।" उन्हें विवाह हो गया था कि सुकन्या स्वयं उन की सिद्धि बन कर आई है। और सुकन्या उनकी परिणीता बन गई। इस प्रसंग से प्रकट: सिद्ध है कि सुकन्या परम सुन्दरी और ताकतव मयी विदुषी कैरि थी।

सुकन्या को अपने सौन्दर्य के प्रति आस्था और उन्माद है। महर्षि के विवाह प्रस्ताव को उन की तपश्च्युति न जान कर अविश्व उन की सिद्धि समझे जाने पर सुकन्या अतीव उत्साह से परिपूरित हो गई। समस्त चराचर जगत् उस के आनन्दोल हस्तित प्रतीत होने लगा। वह अतीव महिला मीठा होकर, मामो वह चार आठ छल गया हो जहाँ से रस-रस सुखराव लोट गये थे। वह तन और मन से बरे आरम्भ आनन्द के प्रकाश से भर गई थी। तब तो वह था कि सुकन्या का किसी राजा की अनुचरी नहीं बनना चाहती थी, वह तो किसी की सह धर्मिणी बन कर नारीत्व-धर्म को सार्थक करना चाहती थी:-

मैं जगत् की प्रभा नहीं अनुचरी किटीट, मुहुट की

प्रणव-गुण्यतीता स्वयं मैं केवल इसे कहूँगी

जिस में हो गो ज्योति किसी वास्तव्य तपश्चरम की।¹

कौन एसी नारी है जो अपने तप की प्रशंसा से पूरती न समाती हो। सुकन्या भी अपने तप-सौन्दर्य की प्रशंसा सुन कर, वह भी महर्षि च्यवन जैसे पुण्यात्मा तपस्वी से, हलफुल हो उठी। उसे उसी दिन आभास हुआ कि वह तन मन से सुन्दरी है। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि "सर्वत्र देह की बगड़ी टूट रही है, तपसा तोड़ क ला दीपित वह तपसायें निराल रहने हैं। और वह अपने सौन्दर्य से ही आकर्षित भर ग गई। उसे निरन्तर विचार हो रहा था कि हरि की प्रसन्नता से ही वह हरि की सिद्धि बन कर आई है। नारी की सार्थकता पुत्र की सिद्धि बनना ही तो है।

अपने दीर्घ साम्राज्य के अनुभव से सुकन्या को यह खोश हो गयी है कि महर्षि च्यवन मारियों पर अगर धं बड़ा करते हैं और उन का वास्तव्य भी शिरोजों पर उल्ला हो सहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि "दिनकर" के मन पर "प्रसाद" की बहदा का गहरा प्रभाव है। प्रसाद ही की कामाक्षी-बहदा-तन-मन-विवाह समर्पिता है, सही वीर्यव झोल है, सही नारी है:-

नारी तुम केवल बहदा से हो,
विवाह रक्त मग-मग-तन में
वीर्यव झोल ली बहा करी
जीवन के सुन्दर समस्त में।²

1:- कर्मी: पृ० 108

2:- कामाक्षी: सन्धा कर्म पृ० 106

दिनकर के व्यसन में इसी कदा भाव का प्रमाण पत्र दिया रहे उनकी कदा-
बाया सुकन्या है:-

पूछो मत जैसे तो शिव की उद्वृत्ति तनिक कायम है
मन की रचना में निविष्ट कुछ अधिक जैसे वायक का
किन्तु नारियों पर, सधनुष उन की अपारकथा है
और सधनुष उसमें ही वसन्तता निरीह शिखरों पर।

शिव जी पर भी तपस्वी व्यसन का सधनुष चारसन्ध भाव है। कवि दिनकर शिव
प्रेम की सादृश्यता में जीन्नी कवि वर्तमान है *ode on Immortality* का मर्म उदा
तेते हैं:-

*Not in the entire forgetfulness
Nor in utter nakedness,
But the trailing clouds of glory do we come
from God who is our home.
Heaven lies about us in our infancy.*

उर्वशी के मातृत्व भाव का अनुमान कर महर्षि ने चारसन्ध में ईश्वरत्व की महत्
कल्पना की है:-

"शुभ! सदा शिव के स्वस्थ में ईश्वर ही जाते हैं।"

सुकन्या का मातृत्व बड़ा ही लज्जित है, लज्जित पूर्ण है। सुकन्या की अपनी कोई
कोई सम्पत्ति नहीं है अपितु उर्वशी पुत्र आयु को पाकर वह अपनी रिक्तता तो
भारती ही है साथ ही उसके मातृत्व-वात्सल्य और सेवा-श्रीकाओं में अपने की निरन्तर
मग्न हुआ जाती है। उसके मन की कल्पना एक ही पंक्ति में व्यक्त है:-

तो जाती से मग्न हुआ जो उसके लज्जित प्रिय को
जो की कयं, दृष्ट मुझे को अपनी मां क्यों माने गा

"दृष्ट" शब्द प्रेम की अभिव्यक्ति है। उर्वशी पुत्र बहुत-बहुत नटने के और महाकुर्त
है। जन्म दात्री मां उर्वशी मर से उसकी दृष्टि नहीं हटती है और जो पीछे करने
जाती है मां --- सुकन्या --- है उसे मग्न वह मां ही क्यों माने गा

उर्वशी द्वारा भक्त शीघ्र का सम्पर्क जब सुकन्या को प्राप्त होता है वह उन्हें
महा भूत-कर्मा और दास्य कहती है। इस विधेयगुण नारी की सेवा को वह
विश्वी सविद्य शीला से व्यक्त करती है :-

1:- उर्वशी: पृ० 109

2:- वर्तमान: - Golden Treasure P 369.

3:- उर्वशी: पृ० 115

कौन मामिली है जो अंगुष्ठ पृष्ठ और त्रितम में
 किसी एक को ले कर सुई से जायु दिखा सकती है'
 कौन पुरन्धरी सब सकती है वृत्ति के लिये तन्त्र को'
 कौन सती सुन के निमित्त स्वामी को त्याग सकेगी' ।

किन्तु भरत शाप तो शाप ही है --- बदल नहीं सकता। नियति भी यही ही है। उर्वशी के भाग्य में क्या यही लिखा है:-

पृष्ठ और वृत्ति नहीं, पृष्ठ या केवल वृत्ति पाओगी।

यस वारुण व्याधा को केवल सुकन्या ही समझ सकती है क्योंकि इस में सन्तान के वृत्ति अर्थात् लैव की अन्तः समिता प्रवाहित है। उस के विचार से तो भरत मुनि उर्वशी को जल कर भस्म कर देते तो बेच था।² सुकन्या सदैव करती है: कब तक उर्वशी जिं जिं कर अपने वारुण्य को प्रकट करने आयेगी और कब तक जायु एक शिशु ही बना रहेगा' उर्वशी जानती है कि सुकन्या का मातृत्व सुना है आपस वह एक तर्क प्रस्तुत कर देती है:-

केवल पुन-वहन, केवल प्रजनन मातृत्व नहीं है

माता यही, पाकती है जो शिशु को पुनः जन्म करा।³

सुकन्या जिता नारी मन की मक्का को जानती है उतना ही विवाता की मक्का पर उसे सन्देह भी है। महारानी आशीनरीजिनी की मक्का मयी, दयामयी, उदार क और सुन काजक हों, विवाता तो विवाता ही है, उसका विवात कोई बामा कैसे कर सकती है' फिर इस शिशु को सन्देह के अंगन में क्यों कर छोड़ा जाये' छोड़े समय के लिये ही सही जायु सुकन्या की पर्व कुटी की चन्द्र-मोति बने गा, शिशु-झीझाओं से उसे जाननिष्ठ 'ह को गा, बान्धावस्था से मुवावस्था तक यज्ञ, तप, साध-वस्त्र विद्या आदि समस्त मानवी गुणों से सम्पन्न कर उसे वह स्वयं राज मकन में पहुँचा देगी। सब तक के लिये उर्वशी चिन्ता रहित हो सकती है।

सुकन्या विदुषी है, महर्षि ध्येय की तपः सिद्धि है अतः जिवज्यापिनी भारीत्व की बीड़ा का भी प्रतिनिधित्व करती है और दिवा-निर्देश भी। सोलह वर्ष का जायु का बोध-शिक्षण करने के बाद क महर्षि ध्येय की अरुण के अनुवाक्य में सुकन्या को ले कर जब महाराजा पुरुषा के राज दरबार में पहुँची तब उस ने उसी नारी - व्याधा और मातृत्व - विहीन उर्वशी को देख कर लीली बात उसी से क कह आनी:-

----- उर्वशी! आज अचानक वृत्ति मे

कहा " जायु को किन्तु - मेह आज ही गमन करना पड़े।"

उसके पूर्व सूचना देने का कोई अन्य सुयोग भी नहीं था। दिनकर ने कालिदास की भाँति मुद्रिका अथवा संयमनीय मभि का कोई विधान न कर वर्तमान युग के

मनःविचित्रसङ्गमः के वैश्वामित्र स्वप्न - सिद्धान्त का आशय लिया है एवं पुत्रवत्ता का स्वप्न ही वह संयोग था जिस में "जायु" को दरबार में सुकन्या के साथ बर्हवाया जा सका। उर्वशी व्याकुल हो कर शपथ कारण से अन्तर्धान हो गई। राजा पुत्रवत्ता उसे धका हुआ समझते हैं; हायद वह शीतल स्वच्छ वायु सेवन के लिये प्रसन्न बन जाती गई थी। ठीक उसी स्थल पर सुकन्या ने राजा को प्रबोध किया है कि उर्वशी मानवी नहीं ब्रह्मा, देवीय थी, महा मुनी भरत के शपथ को भोग्य के लिये वह स्वर्ग से झूलकर आई थी। आज वह शपथ पूरा हुआ --- "पुत्र और वसि नहीं, पुत्र या केवल वसि पाओगी।" शपथ पूरा गया और उर्वशी सुरपुर को लौट गई है। सुकन्या ने महाराज पुत्रवत्ता को प्रबोध क किया कि उर्वशी के लिये परचाताप कृपा है; वे अब केवल जायु की ही वृत्त - चिन्तना करें।

सुकन्या एक ऐसी धुरी है जिस के चारों ओर समस्त गीति-नाट्य का उत्तर भाग घूम रही है। उर्वशी का वाधित्व समाप्त हुआ, जायु को राजा ने पुत्रवत्ता बना कर समस्त राज्य भार सौंप दिया है। उर्वशी अन्तर्धान हो गई है, राजा पुत्रवत्ता परिदृष्ट्या से कर सन्ध्यासी बन रहे हैं। वह गई हत मागिनी आशीनरी, उसे प्रबोध करने के लिये तत्पर शिव वत्नी सुकन्या। आशीनरीके का वत्नीत्व निराश हो गया हो गया है। वह हत मागिनी है, अशुद्धी है, उपेक्षिता है और अकतमासु ही "मर गई कान्त के मन में" 4 मानो उस अमागिनी का यह भी अधिकार नहीं रहा कि वह सन्ध्यासी-सुख राजा पुत्रवत्ता को चरण-धूलि भी ले सकेती। यह निराश और अकता द खमी घूट सकता है जब सुकन्या उसे प्रबोध करे। सुकन्या ही उसे समझती है कि "देरागसो-सुख वसि को गुह्यता के क्षणिक दुर्लभ अन्धन के नहीं बांध सकते हैं, सुखि कामी उभी गुह्यता से परामर्श नहीं करते और ऐसे राजा यदि महारानी आशीनरी से मिल कर नहीं गये तो कोई विसम्य नहीं है।"

जितना ही आशीनरी अपने आप को कर्ष, दोषी, अनुदार, व कुपन कहती है सुकन्या उस की आत्मि, व्यथाऔर आत्म पीड़ित का परिहार "जायु" के उद्गमक विचित्र की कामना से तिरोहित करने का प्रयास करने में सफल होती है। नारी क्रिया है, प्रेरणा है, प्रीति है, कल्याण है। वसिष्ठ का साक्षी है कर सुकन्या सिद्ध करती है कि नारी केवल क्षमा है, क्षान्ति है, कल्याण है अतएव दिव्य गुणों में पुरुषों से भी अधिक निकट है। नारी अपना स्वयं गंगा कर कृतार्थ हो जाती है। 2 सुकन्या का यह प्रबोध ही आशीनरी को वैराग्य - सागर से निकाल आशा के से अभिप्राय कर देता है।

आशीनरी जायु के अनुबोध को ठीक उसी भांति स्वीकार कर लेती है जिस प्रकार कामाक्षी में मानव की विषय से प्रह्लाद की ममता विनश्वित हो जाती है। जायु की राजमुद्रा दण्ड नहीं है। अतएव वह आशीनरी मां आशीनरी को ही छोड़ता

1:- उर्वशी: पृ० १७७ 151

2:- उर्वशी: पृ० 156

हुआ जाता है। बीबीनारी ने ज्योत्स्नराम युवराज आयु को उठा कर गले लगा लिया।
सुडन्या मुनि पत्नी सुडन्या बड़ी गम्भीरता से आशीर्वाद दे लकी:-

रथान गयी हम कभी नहीं रखी हैं अधिक समय तक
इतिहासों की आग बूझ कर भी उनके धूलिष्ठों में।

सुडन्या और बीबीनारी दोनों ही "आयु" की मां हैं --- एक छाय माता
तो दूसरी राख माता। सुडन्या के चरित्र की यही उदाहरण तता उसे मजिमा नहीं
कर देती है।

00000000000000

11111111

...

अन्य स्त्री पात्र =====

चित्रलेखा -----

"उर्वशी" श्रीसिन्हाद्वय०के०

"उर्वशी" गीति नाट्य के अन्य स्त्री पात्रों में अप्सराओं की गणना है जिनमें से सर्वाधिक सुंदर चित्र लेखा है। यह उर्वशी की अन्तरंग सखी है और उसकी सलाहकार भी। यह सही होने के कारण ही उसके लिये दौत्यकर्म भी करती है। उर्वशी के प्रथम अंक में चित्र लेखा के साथ मेकअप मैकअप, रंगमाजोर सहजगया पैसी अप्सरायें भी हैं परन्तु राजा पुरुषवा के कृति आकर्षण होने पर उर्वशी की व्याधा को केवल खड़ी अनुभव कर सकी है।

चित्र लेख विरह पिदाग्ध व्याकुल उर्वशी को राजा पुरुषवा के उपवन में खोरी लिये पहुंचा कर रत्न चरण बाधित लौटती है। अन्य ससियों की इस शंका को कि महारानी के औजीमरी के रहते क्या महाराज पुरुषवा उर्वशी को अंगीकार कर सकेंगे, चित्रलेखा ने एक सच और अप्सराओं के उचित ही उत्तर दिया है:-

एक घाट पर किरारा का रहता खंडा प्रजय है।

--- --

जितने भी हों सुख, कम उर्वशी - सदृश्य पर ही ना।

उसेछोड़ अन्यत्र रहे, समहीन कम नर हो ना।

सुन की हो जो भी, रानी उर्वशी दुख की हो भी

एक मात्र स्वामिनी विपत्ति के पूर्ण प्रजय की हो भी।

यह चित्रलेखा ही है जिस में एक ओर सखी उर्वशी के प्रणय की सदैवना शीलता धरी हुई है पर दूसरे ओर पर मारीत्य और बदनीत्य की शंकायें भी छर कर रही हैं यह व्यंग्य तो अप्सरा के योग्य नहीं है फिर भी चित्रलेखा उसके विषय में अधिक नहीं तो विचार खानी दे सकी है:-

हैले समके नहीं। तुम जितना है कभी लिवाये।

सुन बामा क्या करे, किन्तु, जब यह विपरित आ जाये।

सपत्नी - भाव की विपरित की संका देनाअप्सरा चित्रलेखा में मानवी सदैवना है।

चित्रलेखा का एक दूसरा स्वभाव, जो अधिक दुष्टिद एवं तर्क प्रचल है, बहुत अंत में महर्षि वर्तनी सुकन्या के साहचर्य में प्रकट हुआ है। स्वमती नारी को देख कर योगीश्वरों का योग और तपस्वियों की तपस्या तक के मर्म हो जाती है। उसके सामने मेनका का उदाहरण है और अन्य अप्सराओं का भी; स्वयं सुकन्या भी इस सिद्धांत से अलग नहीं है:-

योगीश्वर तप योग, तपस्वी तप निदात्मक तप को
स्वमती को देख मुग्ध इस भाँति दोड़ पड़ते हैं
मानो जो मधु शिक्षा ध्याम में अचल नहीं होती थी ,
उपर गर्व हो वही सामने युवा कामिनी बन कर।¹

तेजस्क पुरुषों के प्रणय में न तो तपस्या बाधक है न और न ही तपोव्रत। ये तो योग समाप्त सुख और काव्य के रसास्वादन तदुक्त आनन्द को अपने प्रणय-बाध में भीगे रहते हैं। यही उनका महा सुख है। यदि महर्षि श्वसन ने भी सुकन्या जैसी स्वमती सो उन्हीं को अपनी सुहृदावस्था में भी भार्या बनाने का प्रस्ताव किया है तो वह जगत् सीतलर की सीमंतनियों को त्रिलोक - ज्योतीश्वर का दान है। उसने यह भी सिद्ध कर दिया है कि इन्द्रिय तर्पण में कोई दोष नहीं है।²

सारे संसार में प्रथम दुष्टिद प्रेम को सर्व श्रेष्ठ कोटि का माना जाता है। शकुन्तला-दुष्यन्त का प्रेम जगत् विख्यात है। पर इसे चित्रलेखा केवल आधा मानती है प्रथम प्रेम जिज्ञासा वचन हो पर केवल आधा है
मन ही एक, किन्तु , इस तप से तन को क्या मिलता है'
अप्सरायें तो अक्षय्य यौवन हैं, जतः वे नित नवीन रसास्वादन कर सकती हैं, किन्तु, चित्रलेखा पर मानवी संवेदना का प्रभाव अविनाशित अधिक है। तभी तो वह कह रही है:-
उफ री। मादक पड़ी प्रेम के प्रथम-प्रथम परिचय की।

मर कर भी सचि। मधु मुहूर्त यह कभी नहीं मरता है।
यह मुहूर्त भर का परिचय मने ही आधा हो या स्थायी, हेयव मधु सिंचित ही अंततः चित्रलेखा अप्सराओं की गति की नीरसता को, उनकी एक स्वता को, देवों के उद्यम काम-देव को जिना किसी अंग-द्वय के स्वीकारती रहती है। यह तो माता बनने के हेतु प्रलय-व्यथा को यदि स्वीकारे भी तबे देवताओं/रस लोचन दुष्टियाँ सम्भवतः उसे ऐसा न करने दें। अतएव वह और सभी अप्सरायें अन्ततः

“यह कुछ नहीं, रंजिकायें है, मात्र अभुक्त मदन की। शायद यही अप्सराओं की विषम वेदना है। वे नारी हैं, परन्तु माता नहीं बन सकती और यदि कहीं की तो जीवन में उन्हें केवल उन ही योग्यता पड़ा है।”

0000000000000000

मैमका और अन्य अप्सरायें

चित्रलेखा के ९ अतिरिक्त उर्वशी काव्य में मैमका, सहजन्धा, रम्भा अप्सरायें भी हैं। इन सब में मैमका ही अधिक संकेत मिलती है और मम्मकी सम्बन्ध में यह कहना तुल्य सुख भी अनुभव का नहीं है। मैमका की पृथ्वी ही सुखान्तता है और यही कालिदास की सर्वोष्ठ रचना है। ये अप्सरायें उर्वशी काव्य के प्रथम अंक में ही अवतीर्ण हुई हैं। केवल चित्रलेखा ही पुनः पृथ्वी अंक में सुखान्तता के चरित्र विकास के लिये प्रस्तुत की गई है। चरित्रों के प्रथम समवेत गान के उपरान्त सहजन्धा-रम्भा-मैमका का वातावरण भी इस अंक में अतीव गीत उठा जा सकता है जिस में ये अप्सरायें गीत में ही प्रगोष्ठा करती हैं। औरों किन्तु तीसरा गीत समवेत गायन के रूप में कवि ने प्रस्तुत किया है।

प्रकृति के अव्यक्त सौन्दर्य से अभिभूत ये अप्सरायें धरती की सुखमा और मम्म के अतीव विचार को देख कर दोनों के अन्तर को जानना चाहती हैं। स्वर्ग-सौन्दर्य को धरणी के सौन्दर्य से प्रथम और उसके अन्तर को जानने का प्रश्न भी मैमका ही उठाती है। मैमका जानती है कि धरती का आनन्द क्या है। धरती पर का सुख पशु, रत्न, उत्पल, प्राणतया भोज चन्द्रियों द्वारा उपलब्ध है अतएव इन में जीवन संवरण है। मैमका ने इस चन्द्रिय जन्तु सुख को भोगा है। मर्त्य मनुज स्व-रस पायी है और इससे एक ओर मनुज है जो उसे छूट छूट कर जितता है। यह सुख देवों को भी नहीं है। ये तो मम्म-सीमा के आगे जा भी नहीं सकते पाते। रम्भा और सहजन्धा का जो अभी मानस - संसर्ग का बोध नहीं है।

उर्वशी की अनुपस्थिति के विषय में चित्रलेखा करने वाली केवल रम्भा और सहजन्धा अप्सरायें हैं जो देव्य देवी की सम्बन्ध - कथा कह कर उर्वशी-पुत्रता प्रथम की सर्वा करते हुए उसकी सीमाता कर जाती हैं। इन चरित्रों के माध्यम से ही कवि विमर्श ने चन्द्रिय-सुख, मनुजत्व, अमरत्व, सदाचार और अनाचार, अवरण, और संरक्षण, प्रेम और काम, स्वर्ग और भू लोक, कामना और वासना, नारीत्व और मातृत्व, स्वर्ग-नरक आदि अनेक विषयों की परिभाषित किया है। किन्तु, उनकी बुद्धि और सर्व अन्ततः भावना में पर्याप्तता हो जाते हैं।

इस सारे विवाद में मैमका भागीदार नहीं। वह सभी कोलती है एक नारीत्व और मातृत्व का प्रतीक सम्पूर्ण काता है। उसका स्पष्ट यह है कि नारीत्व की पूर्णता मातृत्व में ही है और मैमका ने नारीत्व से मातृत्व यह स्वर्ग प्राप्त भी किया है:-

घर रम्ये। क्या कभी बात यह भी मन में आती है ?

माँ कभी ही त्रिया कहां से कहां पहुंच जाती है ?

मातृत्व कितना गरिमाय है जो आत्म त्याग से और भी गौरव शाली बन जाता है।

मातृत्व ही मंगल की ही पवित्रता है। जो माता है वही स्वयंसी है:-

मालती है विमल सिंहा सत्य है मनु देह की छों कर

घर, जो जाती वह असीम कितनी पवित्रिणी जो कर

पुत्रा जन्म को देख शान्ति कैसी मन में आती है

स्व माता की लक्ष्मी। मुझे तो वही त्रिया लगती है।

----- उर्वशी: अंक - 1, पृष्ठ 19

मेनका ने मर्त्य - मानव - संसर्ग - झुंड झुंड भोगा है। उसे भी दासक - पीड़ा का अनुभव हुआ है। वह भी अपने पुण्य-जीवन में तिल तिल जल चुकी थी, अपना है ही धुँदा अपने आधा देह चुकी थी। हमने चित्रलेखा से पूछा:-

दहक उठी जो आग चित्रलेखी। अमर्त्य के मन में

देहा कभी धुँदा भी उस का तु मे मर्त्य भुवन में ?

चित्रलेखी ने भी उर्वशी -पुत्रवा की दीव्यकलक लहे चिकलता को लिख से देहा-धुना है। उस ने पुरुष पुत्रवा के द्वारा अभिव्यक्त उर्वशी के सौन्दर्य को खेच धुना है। घर क्या चित्रलेखी ने उसे मेनका का भाँती भोगा भी है ? मेनका क्या करे ? उसे चिन्ता है उर्वशी की, औशीनर की, व अप्सराओं की और उन्नी उछेड़ धुन में सारे वृत्तों की डेवल एक वाक्य से समाप्त कर कि ----" रात अब डेवल चार बड़ी है" समवेत गायन करती हुई सभी अप्सराएँ आकाश में विलीन हो जाती हैं। मेनका का महत्व डेवल इस लिये है कि प्रेम और मातृत्व भाव की वह अचली अधिवक्ता है और जिसकी विवेचना अपने उ त्व में आप्त है।

0000000000000000

रम्मा और सखन्ध्या का अपना कोई प्रथम अस्तित्व नहीं है। कवि दिनकर ने कुछ विषयों की वही परिभाषायें उनके मुँह से उड़ता भर दी है। रम्मा और सखन्ध्या मुक्त अमौद-प्रमोद, विहार और गान की भरती के लुहों की जैसा अति अधिक समझती हैं। ये अप्सराएँ हैं अतः भरती-लुहें उनके लिये देय है। उनका अस्तित्व एक व्यक्ति के बन्धन में रहता नहीं है अपितु स्वच्छन्द रहने के लिये है। शिशु जन्म के प्रति उन्मैविमुग्धा है क्यों कि शिशु जन्म उनके सौन्दर्य के विमलता का कारण बनता है।

मिथुनिका और मदनिका महारानी जोशीमरी की सहेलियाँ हैं। मिथुनिका महाराज पुरवा - उर्मली प्रेम कीलकित चादिका है और वह उनके प्रणय-विहार का वर्णन कर जोशीमरी के मन में नैराश्य उत्पन्न कर देती है। मदनिका महाराज पुरवा यह गरा दीवले दिये गये "चतुर्वाराधन" का सन्देश पहुंचाती है और महारानी को प्रबोध करती देखीक है कि ऐलवर्ग के विकास के लिये उन्हें जोरिका रहना ही हो गा। नारीत्व की सफलता के लिये उसके पास एक ही मन्त्र है:-

प्रियतम को रघु सहेलियमन्त्रित जो अशुभ के रस में
पुलक बड़े लुहें से रहता है उस प्रमदा के वश में ।

0000000000000000

पुलव पात्रों का चरित्रांकन

पुलव

=====

पुलव उर्वशी का प्य का वह प्रव है जिस के त्रुटिबद्ध सभी पात्र प्रमन करते हैं। पुलव सौम्य वंशीय है, वे चन्द्रमा पुत्र कुद व हता के पुत्र हैं अतः उन्हें ऐल भी कहते हैं। पपुलव-जन्म की कथा अनेक पुराणों में वर्णित है तथापि उनके हता-पुत्र होने में सभी एक मत हैं। शास्त्र - वर्णित नायकों के गुण-धर्म के अनुसार वे हीर ललित नायक हैं। उर्वशी गीति नाट्य नायिका प्रधान है, सही है, परन्तु पुलव उस गीति ना नाट्य के नायक हैं और नायिका है उर्वशी। नायक के गुणों के परीक्षण करने पर पुलव एक निरिचन्स धीर राजा है, उनका स्वभाव मृदुल है, वे कला व्यसनी प्रेमी है, उन में तपस्विन शीलता, सज्जता एवं सौन्दर्य के प्रति आकर्षित है। शास्त्र सम्मत उन गुणों के आधार पर उन्हें हीर-ललित नायक कहा जा सकता है। हीर ललित नायक के सिद्ध में साहित्य वर्णन कार लिखते हैं:-

"निरिचन्सो मृदुरन्ति हीर ललितः स्यात्।"

हसी म्हा की पुष्टि कालम्बर ने भी की है:-

"निरिचन्सो हीरललितः क्षमासक्तः सुखी मृदुः। सचिवादि
विहीन योग क्षेमदा

चिन्तारहितः अत एव गीतादिहानिष्ठो भोग्युपगत
कुमार प्रधान रथाच्च

सुसुमार सत्वाचारी न दुरीति ललितः।"

----- कालम्बरः 2 व प्रकाश ।

उक्त गुणों के आधार पर देखें तो पुलव के राज्य की व्यवस्था का कहीं भी उल्लेख नहीं है। केवल च १४ अंक में महाभारतवादि उन राजा की स्वप्न की व्याख्या अथवा परिश्रम योग की स्थिति समझते हैं। अर्थात् राजा पुलव ने समस्त राज्य-कार अपने सुयोग्य मंत्रियों को सौंप दिया है जो कुशलता पूर्वक राज्य संभालन एवं प्रजा शासन करते हैं और स्वयं महाराज पुलव सुगारोत्तमा स्वती उर्वशी के लिये ही सौन्दर्य - वान में भोग निरत हैं। कालम्बर स्वभाव एवं उत्तम पराक्रम के अर्थ संयोग से ही पुलव हीर ललित कहाये हैं।

व्याख्यान:-

व्यक्तिगत:-

पुत्रवा के जन्म के विषय में दिनकर जी अपने काव्य की भूमिका में लिखते हैं:-

"जब मनु और श्वेता की सन्तान की वंशा हुई, उन्होंने
ने करिष्ठ इष्टि से यह करवाया। श्वेता की मनोकामना
थी कि वे कन्या की माता बनें, मनु चाहते थे कि उन्हें
पुत्र प्राप्त हो। किन्तु, इस यज्ञ से कन्या ही उत्पन्न
हुई। पीछे मनु की निराशा से क्रुद्ध हो कर अशिष्ट ने
उसे पुत्र बना दिया। मनु के इस पुत्र का नाम सुदयुक्त रखा।

युवा होने पर सुदयुक्त, एक बार, आठेक करते हुए
किसी अभिशप्त वन में जा निकले और भाष कहीं व्र युवा नर
में युवती नारी वन गये और उसका नाम रत्ना हो गया।
वसी रत्ना का प्रेम चन्द्रमा के मन्त्र युक्त पुत्र सुदय से हो सौते
गया जिस के वत्त रूप, पुत्रवा की उत्पत्ति हुई। इसी
कारण पुत्रवा की ऐल भी कहते हैं और उनसे चलने वाले वंश
का नाम चन्द्र वंश है।"

राजा पुरुरव १ को यह विश्वास भी है कि उनका जन्म बिना पिता के ही हुआ है
था। सुदयुक्त मुक्तः नारी की था। यह तो अशिष्ट ने अपने तपोवन से उसे पुत्र
बनाया था। उनके उपयुक्त ही थी उर्वशी जो बिना माँ के जन्मी थी:-

"कहते हैं, मैं स्वयं विश्व में आया बिना पिता के
तो क्या तुम भी इसी भाँति सद्युक्त उत्पन्न हुई थीं
माता बिना ----- "2

चन्द्र वंशीय राजा पुरुरव प्रतिष्ठानपुर के राजा हैं। वे पुण्य प्रतापी और
समस्त देवदूतों से सम्मान हैं। उन में मानवी भावना का आधिक्य है, राजा का
अर्ध एवं देवत्व का सम्बन्ध नहीं। उन्होंने ने न तो इसी किसी राजा के राज्य पर
चढ़ाई की और न ही वास्तविक किसी राज्य का शक्ति प्रयोग से अधिग्रहण किया। उनके
पराक्रम और तेजस्विता से उन के राज्य की सीमाएँ स्वतः बढ़ती जाती थीं, उन्हें
स्वयमेव ही समस्त सुख-सिद्धियाँ उपलब्ध होती रहीं हैं:-

नहीं बढ़ाया हस्त कभी हाथ पर के स्वाधीन मुकुट पर
न तो किया संघर्ष कभी, पर की वसुधा हरने पर
तब भी प्रतिष्ठानपुर बन्दित है सहस्र मुकुटों से
और राज्य की सीमा दिन दिन विस्तृत होती जाती है
वसी भाँति प्रत्येक सुखों सुख विजय सिद्धि जीवन की
अनायास स्वयमेव प्राप्त मुक्त की होती आई है। अंक ३ पृ० ४३

१:- श्रीमद् भागवत पुराण

२:- Anubhava Sanda Annual 1949 P 76

यह राजा पुरुषवा पराक्रमी है, वीर है, जाना है, सज्ज्वी है, प्रतापी है। कविवर दिनकर उर्वशी-पुरुषवा आख्यान की विलिखित विलसित की भाँति कोई जवा-सूर्य की अन्योक्ति नहीं माने अपितु पुरुषवा में समाप्त नर का प्रतीक छोड़ते हैं। पुरुषवा व्यङ्ग्यार्थमय चरित्र की स्थापित करता है। पुरुषवा पुरुष के भीतर एक और पुरुष है जो शरीर के शरासन पर नहीं रहता। काम सुख की ऐन्द्रिक तरंगें उदात्त हो कर समाधि से जा मिलती हैं। पुरुषवा अपने व्यङ्ग्यार्थमय नर की स्थिति से ऊपर उठकर साकार से निराकार, ऐन्द्रियता से अतीन्द्रियता की दिशाओं में विचरण करता है। अर्थ-काम के शरासन के पुरुषार्थ है, धर्म आत्मा अन्य है और कुट्टिद दोनों शासनों पर विचरण करती है। केव शरासन पर धर्म सन्दर्भित है। फिर यह पुरुषवा-उर्वशी काव्य-स्वयं काम केन्द्रित है। कुट्टिद व्यापार के प्रसारित होने से उर्वशी और पुरुषवा के सम्भाव्य जीवन-वृत्त की व्याख्या करते हुये उवा देने वाली सीमा तक सम्ये की ग गये हैं। इसी वदल पर हम पुरुषवा के चरित्र के रघामल-उज्ज्वल पक्ष का अध्ययन करेंगे।

पुरुषवा का चरित्र व्यक्तित्व और व्यवहार के विभिन्न स्तरों से निर्मित है पुरुषवा व्यक्तित्व के छनी हैं। वैभववान, सौर्यवान, वीर पुरुष हैं। उर्वशी काव्य के प्रारम्भ में ही कविवर दिनकर ने पुरुषवा को राजा नहीं, एक पुरुष के रूप में प्रस्तुत किया है जिस के पौरुषेय गुणों से वैश्य के भी पदों के द्वारा अवसृत उर्वशी की रक्षा की जा सकती। राजा पुरुषवा वीर ही नहीं परम सुन्दर भी हैं। उर्वशी काव्य के विद्वतीय अंक में निम्निका के ही चातुर्य से राजा पुरुषवा के व्यक्तित्व की चित्रित करती है:-

कारितकेय-सम सुर, वैज्याओं के मरु-सम जानी
रथि सम सैज्यन्त, सुरपति के सद्गुण सेव प्रतापी, मामी
धन्य सद्गुण सैज्यन्त, व्योमघातमुख, जलज-निभ रघानी
सुख सद्गुणसुख, मनोह, सुसुमासुख - से अनुरागी।

----- अंक 2, पृ 39

और भी अनेक उपमायें देकर पुरुषवा को महत्तर बताया जा उठा सकता था, किन्तु सम्पूर्ण कथा में पुरुषवा के केवल छाने ही गुण उल्लिखित हुये हैं कि यह वीरवीर है, जानमान है, सैज्यन्त-प्रतापी-मामी है, मुक्त बिकारी, प्रेमी और कामानुरागी है। सन्वासी भी है, परिव्राजक भी है, पर दिनकर इस विषय में मौन हैं। पुरुषवा का स व्यास धर्म और परिव्रज्या पर दिनकर ने कुछ न कहना ही उचित समझा है।³

1:- उर्वशी: भूमिका - 1

2:- उर्वशी:

3:- उर्वशी: भूमिका - 2

तनू से पुरुषवा एक आकर्षक व्यक्तित्व वाले पुरुष है। उनका सौन्दर्य तो देवताओं को भी दुर्लभ है।¹ पुरुषवा का शारीरिक मठन, उसके शरीर की कसि और तेजस्विता कुछ ऐसी थी कि जिस के प्रथम दर्शन में ही उर्वशी के मन-प्राणों में बहुत प्रेम समा गई थी। उर्वशी की इस सम्मोहित दृष्टि ने पुरुषवा के अपूर्ण तन-सौन्दर्य की व्याख्या की है:-

यह च योतिर्मय स्वं 'प्रकृति' ने किसी कमल पर्यंत ने
हाट पुरुष प्रतिमा विहाट निज मन के अकारों की
महा प्राण से भर उसको, जिस ध्रु पर गिरा दिया है।

---- अंक: 3, पृ० 72

कमल का जिस आभा ने युक्त यह ऊँच तन इतना मधुर भी है कि उर्वशी आश्चर्य विस्मयित हो कर कह उठती है---- "तुम्हारी यह माधुरी!" जिस में पुरुषों के समान विकसित अक्षर, डोँर पाँव, उबला उर्मित हृन्धन और तिस पर पर्यंत की आसुर वैशक्ति जिस से अभिभूत हो कर स्वयं उर्वशी स्वयं को उमड़े आलीशान में पैर धँस में ही तुम्हारे का अनुभव करने लगती है।²

पुरुषवा मन ने उतना ही सुन्दर है जितना तन ने। पुरुषवा मन की पावनता का प्रतीक है। उर्वशी दर्शन के उपरान्त ही मधुर मिलन की कल्पना उसके मन में जानी है पर निश्चय ही पुरुषवा में ऐसी कोईभी शिथिलता दृष्टान्त नहीं होती जहाँ सहस्रक चरित्रगिर जाये। अन्तर्मन में उर्वशी के लिये मादक प्रेम की लालसा उत्पन्न है पर जब उसे मिलन के बाद ही अभिभूत करता है। क किन्तु स्वच्छ स्वं से कह कहता है कि अनेक बार बन्दू से मोंग कर उर्वशी को घूतल पर लामे का विचार उसके मन में उत्पन्न हुआ है किन्तु क्या मिश्रान्त में प्रेम प्राप्त होता है? यह शंका भी वहाँ पर उत्पन्न होती है। क्योंकि प्रेम का स्वर स्वच्छ ही सम्मोहित होता है। पुरुषवा का यह अन्तः चिन्तन कि क्या यह अमानवी उर्वशी को मानवी पाश में बाँध कर रक सकेगा? यदि नहीं तो पुरुषवा केवल प्रेम-सहाय्य करेगा जिस के मोन में भी वह शक्ति होगी कि जिस से उर्वशी ऐसी अफिरा गम्मांगन छोड़ कर धरा पर आ जाये। पुरुषवा जानती है कि रक्तमणि और तुम्हारा की भाँति उर्वशी का हाथ भी वीरसेव्य था किन्तु मिश्रान्त और अवहरण दोनों ही अवयवकारक हैं। अतएव दोनों ही पुरुषवा के मन को स्वीकार नहीं। और फिर पुरुषवा अब ने ही मित्र बन्दू के दुर्गों की शीतलता अथवा देवों की शक्ति को उर्वशी का अवहारण करने से क्यों छोले? यह तो एक बड़ा पाप होता। पुरुषवा का प्रेम पुरुषवा की भाँति वाचन बना रह जित पर कर्म और जल की कुँस तक न रह सके। यह अमानसि ही तो आत्मका मन की उन्मत्तता है। मने ही उस के उर्वशी सहस्र न हो।

1:- उर्वशी:- ----- और परम सुन्दर थी

ऐसा मनोमुग्धकारी तो होता नहीं अगर भी: अंक 1, पृ० 13

2:- उर्वशी: 3/ पृ० 72

3:- उर्वशी: अंक: 3, पृ० 43-44

पुत्रवा एक नीति बान राजा है। राजा से ही राजा की मैत्री हो सकती है। पुत्रवा ने कभी भी किसी राजा का राजकुट्ट छीनने का प्रयास नहीं किया है और न ही किसी के राज्य की सीमा पर आक्रमण किया है। यह उसका नैतिक अस्तित्व है कि उसके राज्य का विस्तार स्वतः होता रहा है। यही पुत्रवा का नैतिक सौन्दर्य है।

पुत्रवा में इतना नैतिक साधन है कि अपने पुत्र आगु को युवराज बना देने के बाद तमिल राज-कुलों से मुँह मोड़ कर सन्ध्या धारण कर ले। इसी पुत्रवा में शक्ति भी है जो "अंध तम के भाल पर बाणक जला लड़े और बादलों के शीप पर स्थान्धन जला सदैव और विरक्ति भी है कि राज्य-कुलों को तुल्य तोड़ भी सके।"

पुत्रवा के चरित्र में एक प्रतीकात्मक अर्थ भी निहित है। उर्खी उर्खी धदि धुं, रसनाझाई, रवक, तथैय स्मोत की कामनाओं का प्रतीक है तो पुत्रवा भी उसी के समानांतर स्व, रसक मण्ड, स्वयं और रवक के प्रतीक है। उर्खी अंग है पुत्रवा अंग का धर्म, उर्खी इन्द्रियां हैं तो पुत्रवा संवेदनायें। इस प्रकार उर्खी और पुत्रवा अपरिहार्य और परिवर्तन व्यक्तित्व हैं। अंतर इतना है कि उर्खी गंध बायीं अपसरा है, जब कि पुत्रवा "धक धक कर" जीने वाला पुत्र है। इसी जीवन की सरसता को जानने के बिना उद्देश्य से तप्त ताप भगु अंधों से पान करने के लिये उर्खी स्वयं मोड़ कर मानवी-सम जीवन जीने के लिये आई है। इस मानवी भूत की इस प्रणय कही है और उर्खी उसी प्रेम पाश में आकृष्ट होने के लिये पुत्रवा के कैलक संगम में आई है। किन्तु, पुत्रवा धन्य चरित्र का व्यक्तित्व है। उसके चरित्र में एक और प्रेम है तो दूसरी ओर सम्पन्न, एक ओर साधना का उद्दान जानेग है तो दूसरी ओर अनासक्ति, एक ओर ऐन्द्रिय भोग-विज्ज्ञास है तो दूसरी ओर अतीन्द्रिय आध्यात्म। इन सब का समग्र स्व है पुत्रवा।

पुत्रवा में एक अध्वन्यात्मक मनुष्य है जिस के मानसिक मण्डल पर प्रेम और सन्ध्या दो धीरों पर स्थित है। पुत्रवा का जीवन प्रेम के धन्य --- स्वकीया और पर कीया --- से प्रारम्भ होता है और उसके दूसरे ओर पर वह दोनों से ही विरक्त हो सन्ध्याही बन कर पलायन करता है। परकीया उर्खी के प्रेम में लिप्त हो कर उसने अपनी ही मार्या औशीनरी की उपेक्षा की; उपेक्षा ही नहीं, उसे अपने मिथ्याचार से प्रेम में आते रहता अपितु यह कहना अधिक संभव हो गा कि पुत्रवा के व्याप पर औशीनरी की संशाराधन में लगे रहने की सलाह दी है जब कि स्वयं वह अपसरा के संग संग मध्याधन पर्वत पर रमन करते रहे हैं। क्या यही एक अनोखी साधना है? 3

1:- उर्खी: अंक 3 पृ० 43-44

2:- उर्खी: अंक 3

3:- उर्खी: अंक 2 पृ० 39

पुत्ररत्ना साहित्यिक ग्रंथ का उपासक है। चित्र लेखा पुत्रों की मनावृत्ति का चित्रण करती हुई राजा पुत्ररत्ना के उपर एक कृपित करती है --- एक पाद पर किस राजा का रहता बंधा प्रणय है। नृप का चित्त तो चंचल होता ही है। राजा स्वयं ही अपने प्रेमोन्मत्त मन की स्थिति पर स्वयं कहता है:-

नीति नीति, लंकोच - नीति का ध्यान न टूक लाना था

मुझे झूत उस लपने के उर्वशी के पीछे पीछे जाना था।

यही नहीं, उसे तो उर्वशी - सौन्दर्य प्रतना अभिभूत कर गया कि वह उर्वशी के स्व सौन्दर्य की अप्रतिम कल्पना करने लगा। उर्वशी उसके लिये मात्र नारी ही नहीं है, वह तो सृष्टि की निष्कल कल्पना है। उनके प्राणों को कोई परितोष नहीं है, वे अपनी कामला तरंग में आलिंगन आसुर है, उर्वशी उनके लिये स्वर्ग लोक की सृष्टि है, पर उसे प्राप्त करने के लिये वे निराश्वसी नहीं हैं।²

समय और संयोग होने पर पुत्ररत्ना का काम चलना प्रकट हो गया है कि उन्होंने ने उर्वशी को देखते ही दौड़ कर अंतर्धर कर लिया। आगतुर राजा पुत्ररत्ना ने उर्वशी को "प्राणों की मणि" तथा "मनोमोहिनी" जैसे सम्बोधनों से सम्बोधित किया है। यही नहीं, पुत्ररत्ना-परिरम्भ की कल्पना मात्र उन्हें व्याकुल बना देती थी।³

वे प्रणय करती हुई उर्वशी के साथ ही प्रणय करते थे और वन-पुष्पों से उसका चारों ओर घुंमार करते थे। पुत्ररत्ना जैसे साधक और वीर प्रती को सब कुछ उर्वशी के स्व-सौन्दर्य में ही नया:-

सरोजिष्ठ नर का सौंझत तब और नाम जानी का

मान्मल्ल का मान, गर्व गर्विले, अभिमान की

सब चढ़ जाते हैं तब ही प्रणय के चरणों पर। --- उ० अंक 2 पृ० 3

क्यों कि पुत्ररत्ना की पत्नी महारानी औशीनरी क्या है है। पुत्ररत्ना की विवाहिता पत्नी जो इन मन से लपकित है, उस का अस्तित्व है ही क्या। मदनिका के औशीनरी को लपक के पुत्ररत्ना की दुर्लभा को पप्रोक्ष लप में आता है कि वह राजा की औशीनरी में अब कोई लप नहीं है।:-

ग्रीष्म में झुल्ले कुसुम पर प्रीति नहीं जगती है

जो पैरों चढ़ गई आदिनी, वह फीकी लगती है। उर्वशी 303, पृ० 3

पुत्ररत्ना का औशीनरी के प्रति यह उदासीनता वह व्यवहार राज धर्म के साथ साथ भाव्य धर्म के मूल से भी उचित प्रतीत नहीं होता। और विडम्बना यह है कि यही राजा अपने पुत्र आयु को चली औशीनरी को सीमता हुआ बिना कुछ कहे परिष्ठापक हो गया है।

1:- उर्वशी: अंक 1, पृष्ठ 22

2:- उर्वशी: अंक 1, पृष्ठ 24

3:- उर्वशी: अंक 2, पृष्ठ 31

उर्दू की प्रणय पारा में पुलखा अपनी विवाहिता बत्नी को लो भूल ही गया है, राज-काज भी भूल गया है। वही एक संकेत की कि राज्य की व्यस्तता की समस्त सिद्धियाँ अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं राज-काज के लिये बर्बाद नहीं मानना चाहिये। इस प्रकार पुलखा का चरित्र एकांगी तथा आरम केन्द्रित प्रतीत होता है।

उर्दू की सामान्य में राजा पुलखा एक दीर्घ काल तक गंधमादन वर्तन पर प्रणय विहार करते रहे हैं। वासना का आदेग उनके समस्त जीवन पर प्यार की तरह उपलब्ध लगा है। उनका पौरुष उस असीम सुन्दरी स्वामी उर्दू की आत्मसात करने के लिये आतुर है:-

स्व का सतमय निमेषण।

या कि मेरे लीधर की ही वधि ।

मुझ को शान्ति से जीने नहीं देती।

हर छड़ी कण्ठी, उठी

इस चन्द्रमा की बाध से धर कर निधीड़ी ।

पान कर लो यह सुधा, मैं शान्त हूँ नी। ।

इस वासना के उपक्रम में भी पुलखा विद्वत्ता प्राप्त मानव की भाँति व्यवहार-बहल लगता है। दिनकर जीवन वर्तन विद्वत्ता प्राप्त रहे हैं, पारिवारिक स्व से भी और व्यक्तिगत स्व से भी। यही विद्वत्ता उन्हें मन-बुद्धि के विकारों के संदर्भ में परीक्षित रखती है। मन के इस उल्लेख उस्तपत वासनत-प्यार में कवि सोचता है:-

दुष्टि का जो पैर है, वह रक्त का भोजन नहीं है

स्व की आराधना का मार्ग आतिथ्य नहीं है।

अबिहो कवि जॉन कीट्स ने भी अपने कविता "एन्डीमियन" का प्रारम्भ ही यहाँ से किया है --- "A thing of Beauty is a joy for ever."

किन्तु वह अपनी कविता "ग्रीसियन अर्थ" पर चिन्तित चित्र को देख कर सौन्दर्य की निरन्तरता को मानते हुये "सुक को नित्य बाँधुरी बजाते हुये और सुखी को फिर सुन्दरी" रहने की कल्पना करता है। दिनकर भी इसे स्वीकारते हैं कि स्व के उपलब्ध होने पर सौन्दर्य नहीं रह जाता है क्योंकि:-

"जो अलभ्य को दूर उसी को अधिक चाहता मन है।"

किन्तु "रक्त और बुद्धि" के संदर्भ में उर्दू की उसे रक्त की भाजा की सिखावती है देती है और किछि क्षणों के लिये पुलखा उस रक्त की भाजा को पदु कर का यथार्थ में लो जाते हैं। अजीब अन्तर्जन्म है पुलखा के जीवन में। स्व की कठकपट्ट आराधना का प्रतिफल आतिथ्य न होना उसे रिक्ति-गत कर देता है और बुद्धि उसे पुनः ध्याय कर स्फूर्ति से भरने लगती है:-

स्व की आराधना का मार्ग
जातिंगन नहीं तो और क्या है ?
स्नेह का सौन्दर्य को उपहार
रस-सुन्दर नहीं तो और क्या है ?

--- अंक 3 पृ० 48

फिर वही मासिक कल्पनायें, उद्दाम आर्षेय और उर्वशी का स्व-चित्रण के सुनहले -
स्वहले बिम्ब , कपोलों की तलाह, अधरों की हंसी, चम्पक-गण्डित तो देह, स्वर्ण
प्रतिमा और "स्वसी नारी पृकृति का चित्र हैसब से मनोहर" ऐसी शब्दावली का
गीत होते " अमूल्य सौन्दर्य का भूंगार " करने के लिये उत्प्रेरित करता है। यह
पुरुषवा के स्तंभ का राग है जिस से:-

फिर अधर घट खोजने लगते अधर को
कामना तु कर तजवा को फिर प्रगाली है
रंगने लगे सहायों सारे सोने के स्तंभ में
खेला रस की लहर में डूब जाती है।

----- अंक 3 पृ० 49

रजसु प्रधान पुरुषवा कभी अहिद-चिन्तन में सतयसु की ओर बाध बढ़ाता है किन्तु,
उस शून्य से लौट कर पुनः रजसु का जातिंगन कर लेता है --- कभी वह यह
अनुभव करता है कि किसी अचानक देहा प्रेम की स्वाग्नि उर्वशी उसे धावनी की
धार में नहला रही है। *Wine woman and wealth* की प्रयोग का यह
सम्मिलन पुरुषवा का रजसु ही है।

पुरुषवा को वह भी अपनी इस-खेला का आभास हुआ है वह पौरुष अर्ध से
जात्म वितेज्य करने लगता है। उसका अधिष्ठित अस्तित्व किना निरीह है ---
"तिष्ठ ता उद्दाम अरिपार मेरा क्षत उठा है" जिस के समक्ष " समराज नहीं"
टिकते हैं, समय का व्याप्तुल्लसी मार कर सिमित जाता है, जिस की बाधों में मर
भक्त का मजराज का गलन का क्षत है । ' वह सब कहाँ है ' पुरुषवा उसी क्षण
अपनी पूर्ण औपस्थितता में है, उसका कलेक पास्तोय अर्ध है:-

मर्त्य मानव की विषय का सूर्य हूँ मैं
उर्वशी। अपने समय का सूर्य हूँ मैं
अंध तम के गाल पर पायक बनाता हूँ
बादलों के गीता पर स्यान्दन चलाता हूँ।

----- अंक 3, पृ० 50

किन्तु, यह इस-वास्तव की मिथ्या गर्वना है। उर्वशी की सम्बोधित करते हुये अपने
वास्तव का ज्ञान कर वास्तवः पुरुषवा अपनी दुर्बलता की ही प्रकट करते हैं और वह
उर्वशी, जो मर्त्य नहीं है, उसे अपने नयन-जाण से लेह देती और मुस्कान से जीत
लेती है। पुरुषवा जितना अवधार अनुभव करता है:-

:- उर्वशी: अंक 3 पृ० 50

मैं तुम्हारे बाण का बौद्धा हुआ हूँ।

जब पर धर सीत भरना चाहता हूँ।

बहतना ही नहीं, अपने रक्त की ज्वाला को जामने हुये और मनुष के रक्त में घुलते हुये ज्वाला मुँहियों के उरत के जाव भी पुरस्वा उरकी से एक प्रार्थना स्वर में पूर्ण आत्म समर्पण करते हुये चरण-वारण माँगता हुआ कहता है:-

मैं तुम्हारे रक्त के रंग में समा कर

प्रार्थना के गीत गाना चाहता हूँ।

----- अंक 3 पृ 32

एक महीन वैचित्र्य है उरकी पुरस्वा सम्पाद में। कभी उरकी रक्तः की प्रार्थना में पड़ी हुई कोई कविता मानती है। और कभी पुरस्वा उरकी से उहता है:-

"तुम उरकीत हूँ तुम या कामिनी हो।" 424

पुरस्वा एक ऐसा बीरता है जिस पर रौम उर ही उरकी उसके अकर्मण में कुतल पर आते है। पुरस्वा "वीर्य-अगुरु बोध है जो धृष्ट धृष्ट कर जलता है।" यह अगुरु-धूम दिनकर का मया मरी है "रक्त-मरी" में भी तपि ने हले गाया है। उरकी हली अगुरु-धूम की ताप-ताप गन्ध पीने पुरस्वा के पास आई है:-

मैं हली अगुरु की ताप-ताप, मधुमयी गन्ध पीने आई

निर्धौव रंग की छोड़, धूमि की ज्वाला में जीने आई।

----- अंक 3, पृ 33

उरकी के हली रूप ने पुरस्वा को प्रभाप प्रेमी बना कर मदोन्मत्त कर दिया है।

पुरस्वा मोहित है, न केवल उरकी है तन की प्रसन्न द्युति से ही अपितु मन की गति और गुरु दानि-दिनान से भी। पुरस्वा के लिये तो उरकी "बहुनि सज्जन की भीम-बुद्धि प्रसिद्धा है।" उरकी से पुरस्वा तुल्य भीकता है:-

रक्त बुद्धि से अधिक बली है और अधिक जानी भी

यहाँ कि बुद्धि सौझी और शोषित तो अनुभव करता है

निरती बुद्धि की निर्मिति का नि-प्राण हुआ कहती हैं।

पुरस्वा भी हली पाप को दोहराते हैं "रक्त बुद्धि से अधिक बली है और अधिक जानी भी।" जिस प्रकार निन्दन के पैरा-उपज लाल " में "हृष्ट" ने "पञ्च" को भरमा कर जान का कल खिलाया था उसी प्रकार उरकी भी अपने पञ्च - पुरस्वा-ह को बार बार उरसाहित कहती है:-

बहु रक्त की भाषा को, विरवास करो हम लिपि का

यह भाषा यह लिपि मानस की कभी न भरमायेगी।"

1:- उरकी: अंक 3, पृ 43

2:- उरकी: अंक 3, पृ 49

किन्तु, पुत्रवा का व्यवहारमक दोहरा व्यक्तिगत इस तम-सौन्दर्य-भोग के जाने भी कुछ देखा है। प्रेम दाह मात्र ही नहीं प्रकृत रिखा भी होता है यद्यपि यह सत्य है कि प्रेम की आधार भूमि देह ही होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि दिनकर के ऊपर भगवती चरण उर्मा की चित्र लेखा का रूप प्रभावित हो गया है। किन्तु दिनकर देह संस्कार से ऊपर उठ कर मन के महान् गुरुय लोको तक प्रेम की सीमा का प्रसार पाते हैं। उनका स्पष्ट मत है:-

जगता प्रेम प्रथम लोभन में, तब तरंग - निभ मन में
प्रथम दीक्षा प्रिया एक देवी, फिर व्याप्त भुवन में
पहले प्रेम कर्षण होता है, तदनंतर चिन्तन भी
प्रथम प्रथम मिट्टी कठोर है तब वायव्य गगन भी।

----- अंक 3, पृष्ठ 58

उर्वशी ने न जाने कैसे पुत्रवा का चिन्तक मन जगा दिया है। इस ऊर्ध्व गामी मानसिक चिन्तन ने कवि दिनकर को आत्मीय-मिलन का ऐसा बोध दिया है जहाँ "न तो पुत्र ही पुत्र है और न नारी केवल नारी।" तम का अतिश्रम करके हम आत्मा के गुरुय लोक का दर्शन कर सकते हैं। यह एक ऐसा कैलाश प्रान्त है जहाँ "शिव प्रत्येक पुत्र है, और शक्तिशालिनी रिखा प्रत्येक प्रणामिनी नारी।" यह यह एक कल्पना ऐसी है जिस में जब शक्ति प्रसाद का अनुकरण करने से दिनकर अपने आप को रोक न सके। कामाक्षी का नै प्रह्ला जैसे उदार भाव की मनःशक्ति के साथ कैलाश प्रान्त में ही तपस्या में जीन हो कर प्राप्त किया है था,² दिनकर का लक्षित इसी आध्यात्मिक मिलन की ओर है।

पुत्रवा उद्गम आवेग और यौन मूर्छ का भी भोग करने में क्षम है। काम तरंगों से उद्वेलित यह उर्वशी की केवल बुम्बन आलिंगन तक ही सीमित नहीं रहता इन्द्रिय परिवर्तन की रतिश्री का भी कुछ देता है। वह यौग के तन्त्र साधनों में से मैथुन की पृथक न कर पुत्रवा को काम-सुलिला उर्वशी काम-कला भी सिखाती है। वह पुत्रवा से दीर्घ बुम्बन-आलिंगन की कामना भी करती है:-

कैसे रहो जब इसी भाँति हर-भौंटा आलिंगन में
और जलाते हलह रहो उधर-मुट जो कठोर बुम्बन हैं मे।

पुत्रवा का कैलाशर जब और प्रखर बोधा है तो उर्वशी उसे काम शिल्प भी सिखाती है:-

किन्तु आज। यों नहीं, तनिक तो शिक्षित करो बाहों की
निष्केश मत् करो, यद्यपि, इस मधु निषेका में भी
मनश्चिन्त है शान्ति और आनन्द एक वास्तव है।

----- अंक 3, पृष्ठ 61

1:- उर्वशी: अंक 3 पृष्ठ 60

2:- कामाक्षी: कालि सर्ग, पृष्ठ 254 सप्तम संस्करण

हैंसके बाद भी काम-सुख बढ़ाने की कामना में चित्त को अन्यत्र न जा कर प्रकृति-
श्री में लगा देती है:-

ना, यों नहों, अरे देखी तो उधर बड़ा कोतुह है
नग्नति के उत्तुंग, समुज्ज्वल - विम-भुक्ति शृंगों पर
कीन नई उज्ज्वलता की तुली फेर रहा है।

----- अंक 34 पृ० 61

सगता है दिनकर ने का काम-आत्म पढ़ा है जिस का प्रभाव से दूर नहीं
कर सके हैं।

बार बार उन्ही काम तरंगों का कर्ण कर कवि दिनकर ने यह स्पष्ट संकेत
किया है कि उर्कती-पुलकाना निरय नवीन काम-सुख से तरंगित रहते थे। स्वयं उर्कती
ने पुलकाना के संसर्ग में काम-सुख भोगा है और उसे भी काम-सुख दिया है किन्तु न तो
स्वयं उर्कती ही उसे धरती के काम-सुख में सदा जीन रह सकी और न ही पुलकाना
को रह सकी। उर्कती यौन-सुख कामिनी है:-

कवरी के पुरों का सुवास, जादुचित्त अधरों का काम्यन
परिरांम्य लेदना से विमोर, कटिकित अंग मधुमत्तमयन
हो प्राणों से उठने जाती, ये भङ्गितियों गोपन मधुमय
जो अगुल-धूम से हो जाती, ऊपर उठ एक ऊपर में तय

::::: :::: ::::

जिसकी पावन वह रस समाधि, सब सेव स्वर्ग बन जाती है
गोचर शरीर में विभा अगोचर सुख की भक्त दिखाती है
परिरांम पात में बह्य हुये उस अम्बर तक उठ जावो रे
देवता प्रेम का सोया है पुष्पन से उसे जगावो रे।

----- अंक 3, पृ० 93

जहाँ उर्कती जो काम-विान्न सिखाती है स्वयं देा काल से परे विद्यमान नारी है।

अनासक्ति:-

पुलकाना ज्ञान-विशेष विज्ञान समन्वित चिन्तक मनीजी है। दिनकर का भीतर
ज्ञान पुलकाना के विशिष्टतम चरित्र में व्याप्त है। अनासक्ति एक अमोघ राक्षि है।
यह प्रेम को भी प्रभावित करती है। पुलकाना काम-रत हो सगता केपर उस आसक्ति
में भी उसे अनासक्ति है --- चित्त पर उर्कती झुंझा कर कब उठती है:-

तन से मुक्त हो कसे हुये अपने बुद्ध आतिंगन में
मन से किन्तु विजड दूर तुम कहाँ चले जाते हो * ।

किन्तु पुलकाना की अनासक्ति तो यही है जो वैराग्य के निकट है:-

पुण्डरीक के लपटा भुक्ति का ही चित्त का जीवन है
पर, सब भी रस्ता अतिथि जो सतिथि और न कर्म है।

----- अंक 3, पृ० 43

1:- उर्कती: अंक 3, पृष्ठ 44

दिनकर के सम्म यौग, दर्शन स्पष्ट है, जहाँ सब रात में सोते हैं वही संयमी जागते हैं।¹ दिनकर ने 2- निद्रा योग-जागृति का क्षण है ----- " आदि कह कर इसी तथ्य को प्रतिपादित किया है। गीता के अष्टम अध्याय में जिस विराट् ब्रह्म की कल्पना की गई है पुरुषवा उसी महा शुन्य के अर्द्धत भवन में प्रलय और पुराकृति के संघर्ष की जानकारी चाहते हैं।² इसी प्रकार काम-आनन्द से उठ कर अकाम आनन्द की स्थिति की प्राप्ति करने के लिये निष्काम कर्म-धारा में प्रवाहित होने के लिये प्रोत्साहित पुरुषवा गीता के अध्याय दो का प्रतिबिम्ब करता है:-

यह अकाम आनन्द भाग सम्पुष्ट सान्त्वन उस जन का
जिस के सम्मुख पलातलस्थितमय कोई श्रेय नहीं है
जो अविरत तन्मय निस्तर्ग से, पकाकार प्रकृति से
बहता रहता सुखित, पूर्ण निष्काम कर्म धारा में ।

----- अंक 3, पृ 79

संसार परिवर्तन शीतल है --- गीता कहती है। कवि दिनकर ने यही भाव प्रकृति के लक्षित कवि सुमित्रानन्दन पन्त की "परिवर्तन" शीतल कविता में देखा है। गीता में भी "परिवर्तननि कात संसारे" कहा गया है, वही दिनकर में वैज्ञानिक परिभाषा के रूप में प्रस्तुत है:-

----- किन्तु, परिवर्तन नारा नहीं है
परिवर्तन प्रिया प्रकृति की सदा प्राण-धारा है।

----- अंक 3, पृ 77

कहाँ गीता के कार्य-कारण के लिये प्रकृति की हेतु खताने वाला भाग³ दिनकर की उर्दगी में पुरुषवा पुरुष में परिवर्तित है। काम के मनोविज्ञान में भी कवि ने गीता के काम-प्रकरण⁴ को पुरुषवा के लिये ही अभिव्यक्त किया है। काम ही धर्म है, काम ही पाप है, काम की जन्म लक्ष्मी भी मन है, काम क्लारकार का पाप करता है। मन का यह काम गरल है, सही है, पर क्या तन का काम अमृत भी है, यह एक विचारणीय प्रश्न है। उर्दगी का कथन स्पष्ट है :- "

"तन का काम अमृत किन्तु यह मन का काम गरल है।"

उर्दगी तो तन की सुजा सुप्त करने की तन्त ताप को मधु समान पीने जाहीब है परन्तु पुरुषवा तो मन के उच्च निम्न की छीप में चिन्तन शील है। पुरुषवा का यही चरित्र उन्हे सामान्य नायक से ऊपर उठा देवत्व की कोटि में रख देता है।

पुरुषवा में कई सांसारिक आकांक्षाएँ एवं आस्थाएँ हैं। यह एक मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व है। जहाँ "स्मरण" के अनेक प्रसंग पुरुषवा के जीवन में काम करने उठाते हैं वहाँ "विस्मृति" का अवसाद भी उन्हें घेर लेता है। ये अवसाद के क्षण ही पुरुषवा

1:- गीता

2:- गीता: 10/20-32

3:- गीता: 13/20-21

4:- गीता: 3/36

की अहंतात्म की ओर ले जाते हैं। पुरुषवा के व्यक्तित्व में रोक्कसीयर के कवि और
ट्रेमी की एक सार्वजनिकता जगह है:-

कवि ट्रेमी एक ही सत्य है, तन की सुन्दरता से
दोनों सुख, देव से, दोनों बहुत दूर जाते हैं।¹⁴

इसी प्रकार "तुम मेरे ज्ञान मुक्त, सदा निद्र, सदा ही"

के रूप में भी दिनकर के रोक्कसीयर का अनुकरण किया है। फ्राइड का स्वप्न सिद्धांत
और जॉन पुरान के स्वप्न विचार² में बट-बादल, क्षीर बट, मयूर कुण्डलमर मुग,
चरित्र कुंजर आदि सुष प्रतीक हैं। यह उनका आपु से मिलने का समय है। उनका
चरित्रका योग भी इसी बड़ी में बगित है। पुरुषवा को ज्योतिषीय में पूर्ण विख्यात
है, इसके प्रप्रका योग का प्रमाण है:-

इस लिये कि प्राण ज्ञान में

रामि ने किया प्रवे, सुन में मंगल पड़े हुये हैं।

पुरुषवा नियति यादी व्यक्तित्व है। उर्की को स्मरण होता है भक्त मुनि
के साथ का, विषयों की ज्ञाता और अपने ही भाग्य दीज का, क किन्तु पुरुषवा
अपनी पुरेष्मा में बतना मन्त्र है, इसके मिलन से बतना जानन्दित है कि उन्हे अब
सभी राय काय व्यर्थ लगने लगे हों। पुरेष्मा का प्रारम्भ जो कवि ने दूसरे अंक में
किया था इस पाँचवें अंक में प्रतिफलित होता है। पुरु प्राप्ति पर उर्की का
अन्तर्धान होना पुरुषवा के उल्लेखको पौरुष की एक सुनीती थी। फिर से यह अपने
मित्र बन्धु के विरुद्ध ही झुड़ उठने के लिये सम्मद हो जाता है। उसकी यह
जोखलनी खानी इसके पौरुष्य अर्थ का नाद है। माया, सन्धास, कर्मवाद, नियति
आदि को सहसा स्वीकार कर पुरुषवा सन्धासी बन कर खो गये। यही पुरुषवा के
चरित्र का उल्लेख पक्ष है।

डा० टीका राम राय ने पुरुषवा की सुना रोक्कसीयर कृत "विभि रिचाड
जिबतीय" से उसकी चरित्रांकन की मज्जा की सीमा में की है, किन्तु यह
सौन्दर्य न तो भारतीयता के निकट प्रतीत होता है और न ही रोक्कसीयर के
ऐतिहासिक पात्र रिचाड पुरुषवा के समकक्ष रक्का जा सकता है। यदि पौरुष का
सौन्दर्य रोक्कसीयर में देखा ही है तो समग्र उर्की काव्य की रोक्कसीयर के काव्य
जीवन और एडोनिश में देखा जाना चाहिये। समग्र रूप से दिनकर का पुरुषवा पुरुष
की मान्यता का यह प्रतीक है जो भीय से योग की ओर जा रहा है। यही
पुरुषवा का नायकत्व है।

1:- Poets Philosophers and Lurates are of the Category Same.
- Shakespeare.

2:- जॉन पुरान: अध्याय 229

अन्य पुरुष पात्रों में आयु और महामात्य का चित्रण है। जिन्हें नायकत्व प्राप्त नहीं हो सका। आयु अभिमान रोगकुस्तलम के भारत की अथवा कामायनी के मानव की प्रतिकृति है। महर्षि अथर्व का सम्बन्ध उनके त्यागी जीवन के आदर्श की झलक भर है जो सम्बन्ध कथा के रूप में प्रस्तुत है।

अन्ततः पुरुषवा के नायकत्व में समाप्तन की प्रतीति तबतः सिद्ध है जिसे कवि दिनकर ने भी स्वीकार किया है।

अध्याय चार
छर्वशी में
काव्यात्मकता

वर्ण्यं विषयगत विशेषतायें

- कथानक
- नायिका प्रधान आख्यान
- नखशिख वर्णन
- प्रकृति चित्रण
- विम्ब योजना
- प्रतीक विधान
- सौन्दर्य विधान
- शीत-योजना
- रसात्मक बोध

कलागत विशेषतायें

- भाषा, मुहाविरे, लोकोक्तियां
- शब्द शक्तियां, अलंकार गुण-दोष वक्रोक्ति
- शैली और अभिव्यंजना

कला और रस का सन्तुलन

उर्दू में काव्यात्मकता

कथानक :-

उर्दू का कथानक काव्यात्मक है। प्रारम्भ से ही गीत की स्वर लहरियों में हरियों के साथ मानवी स्वरों में जो अद्भुतपूर्व चेतना की सृष्टि की गई है, वह काव्य सौन्दर्य की अद्भुत भूमि है। हरियों का सलुआ पर अवतरण कल्पना के चित्रों को साकार करने लगता है --- अमृत से मृत की ओर ला कर कवि ने कथा सृष्टि की काव्य-कला की गीतात्मक भूमि में संगीत लहरियों के माध्यम से ज्योत्स्ना स्नात कर प्रस्तुत किया है। सुक़्क़ार नट और नटों अभी अभी बंध पर की भूमिका प्रस्तुत कर की की न पाये थे कि एक के बाद एक तीन गीत लगातार प्रस्तुत कर कवि ने समग्र कथानक की माधुर्य की काव्य आकार दिया है। रम्भा, सहजन्दा, मेनका और चित्र मेनका अप्सरायें अपने संवाद में देख केसी ख़ासा उर्दू की अवसरण, राजा सुक़्क़ार दुलखा ख़ासा रसा और उर्दू की प्रेम व्याकुलता की सूचना देती हैं। राजा दुलखा की महारानी जोशीमरी कला की प्रतिगुहति है --- वह साधिका बनी साधु की परनीकुल का निवास कर रही हैं। उर्दू - दुलखा सम्वाद, लौक, गोलीक, सुक़्क़ार नट दुलखार्प, खर्ग, नरक, जीव-जगतवादि का विवेक काव्य के स्वरों में की गीति-स्वरों में सुहरित कर के कविता के नये नये आयाम प्रस्तुत करता है। उर्दू के सुतीय अंक की उन्द विहीन काव्य-स्वर लहरियाँ पौख गर्जना करने में की समर्थ प्रतीत होती हैं। दुलखा का अर्वादी स्वर उन्द-विहीन कविता में ही प्ररुदित हो सकता था। उर्दू के तर्क पूर्व संवादों की उन्द की आकाशकता थी। दुलखा के पौखेय स्वर विमलबोधक चित्रों से भाव-व्यंजना करने में सक्षम है। जब उर्दू तर्क की भूमि छोड़ कर माध-भूमि में उतर जाती है तो वह उन्द की भावा मूल जाती है और उन्द विहीन कविता के स्वर इसके व्यक्तिस्वर की ओर अधिक महत्वपूर्ण बना देते हैं। सुक़्क़ार और ख़लन प्रसंग गुरु सम्पीर है। यहाँ भी अप्सरायें

१:- मर्यादापनकी विषय का सूर्य है

उर्दू अपने समय का सूर्य है।

--- उर्दू अंक १

आकर सम्पूर्ण वातावरण को काव्य मय बना देती हैं। सुकन्या का पवित्र चरित्र काव्य की उदात्तता है जिसे अंग्रेजी में *Sublime* कहा गया है और अन्त में स्वप्न के मोहक 34 भिरामक चित्रों में उदात्त-उत्थना का चमक होता है। स्वप्न हमारी अपूर्ण कामनाओं की पूर्ति है। कभी कभी वह सत्य भी होते हैं। पुस्तक के स्वप्न के सत्यता ही काव्य का सुन्दरम हैं। आयु का मतलबों के सचक तीन तीन माताओं का मानिक्य, जन्म, बचन और अब राज माता का जन्म---केह का अविवादन एक नाटकीय पटाशेन है जो इस कथानक की काव्य - सौन्दर्य प्रदान करता है।

दिनकर की कथानक सम्बन्धी कतिपय मौलिक उद्भावनायें

दिनकर की उर्वशी के दो आयाम हैं:-

- 1:- परम्परागत कथा का निर्वाह और
- 2:- नवीन विचारों की अभिव्यक्ति।

जहाँ तक परम्परा का प्रश्न है वह प्रगल्भ काल से वर्तमान काल तक के कथानकों में अधिकतम कोर बदल से प्रस्तुत है तथापि कवि की विचार शैली कदाचित् कथानक में भुंजित हो कर अभिव्यक्त होती रही है। यही विचार संगति कथानक में कतिपय परिवर्तन का कारण रही है।

दिनकर की कृति उर्वशी में नवीन मौलिक उद्भावनाओं को दो वर्गों में रख कर देखा जा सकता है:-

- 1:- शुद्ध मौलिक उद्भावनायें तथा
- 2:- परिचर्चित उद्भावनायें।

1:- शुद्ध मौलिक उद्भावनायें:- दिनकर जी ने कतिपय प्रसंग अभिन्न ढंग से प्रस्तुत किये हैं। ये प्रसंग पूर्व काली अन्य किसी रचना में नहीं मिलते। प्रथम अंक में शिववि अप्सराओं के माध्यम से वर्तमान युग की तलनाओं की आलोचना करना चाहता है। वर्तमान युग सभी नारी अपने स्व-यौवन के गर्व में तथा उसे विमिश्रित होने से बचाने के लिये दिन अन्य अनेक कृत्रिम उपायों का प्रयोग करती हैं इनके अतिरिक्त भी खूब मातृत्व के प्रति निराला उपेक्षा भाव रख कर स्वयं सम्मानों का पोषण न कर बौद्धिक संस्कृति की ओर दृष्टि है। अप्सरायें इस नगर संस्कृति को परीक्ष स्व से प्रस्तुत करती हैं।

- 1:- विवाह एक पुरुष का असांख्यिक बन्धन है --- नारी सुख चाहती है। रम्मा की कृति है:- किसी एक नर के निमित्त सतत औरत होना क्या ' समाज में जो रंगीनियाँ हैं, सत्य-सौभाग्य की संस्कृति है उस में परिवर्तों के समूह आकर जो केंद्र - झीड़ा करते हैं उसे ही रम्मा कहती है:-

पर यह परिवर्तन प्रकाश कर, मन का रविम रमने है
हार्दों के जग में दो प्रानों का निर्मुक्त प्रमन है।

यह कभी कभी की प्रिया-पदों। नित्य की नहीं। और इस कभी कमार की तो समाधि की स्वीकारना चाहिये। नारी का उद्दाम कामना वेग उसी दिन जिसका उत्प्लुत हो कर व्याप्त होता है:-

तब है कभी कभी तन से भी तिल्ली रागमयी हम
कमल रंग में नर की रंग देती अनुराग मयी हम
देती दुस्त छिछ छ उँल अछर-मधु ताप-सप्त अछरों में
सुख से देती जोड़ुं उनक कल्यों को उरण करों में ।

यह युग नारी-स्वातंत्र्य युग के नाम से ज्ञात है। नारी गीत-नाच, सहवास, नृत्य, कला संस्कृति आदि के नाम पर अपनी वासनाओं की पूर्ति के आशय में मर्म-हँसी यह प्रेम के नाम पर शोभापाई करती है, प्रेम को राक्षसी - भूत बना कर रख दिया है मनुष्यों ने। उनके इस व्यवहार से नारी घृणा है। अपना कर्म कठोर यौवन मातृत्व भाव में विमिश्रित करने का पाप वे क्यों करें रम्भा पुनः एक कद्वित करती है --- यौवन को कर भस्म करेंगी माता अप्सरियों की।

दूसरी और मातृत्व भाव है। दिनकर मातृत्व को सचमुच बहुत महत्व देते हैं। रम्भा को दुःख है कि मातृत्व यौवन होने की प्रक्रिया है, मातृत्व होय है, मातृत्व से अपना तन लीन्दर्य क्षीय होते लगता है। आधुनिकता का लक्ष्य ही है।

पहले-गी कंचुकी छीर ले क्षण क्षण गीली गीली
मेह लगाये गो मनुष्य से देह करेंगी टीली।

--- उर्वशी 1/19

उत्तर में कवि मैमका को सामने रख देता है। मैमका, यह भी अप्सरा है, परन्तु उसने भी छरती पर झटके रह कर मानवी बन कर मातृत्व मीगा है। एक माता की उसका यथार्थ सत्य सौंदर्य जान सकती है। यह रम्भा से विरक्त सहमत नहीं:-

सहस्रगन्तवी है हिम शिला, सत्य हेमन्त देह की छी कर
पर, वो जाती यह असीम जिसकी पथरिचनी को कर
सुखा जनति को देत शान्ति छेती मन में जगती है
स्पन्तवी भी मही। मुझे तो यही प्रिया लगती है।

--- उर्वशी 1/19

आधुनिकता का यह आशय केवल नारी जगत पर ही चिन्तन नहीं करते पुरुष वर्ग भी इस से अलूता नहीं--- यही कवि की सुझाव और यथार्थता है, एक पक्षपातहीन सत्य:-

एक डाट कर जिस राजा का रस्ता खंडा प्रणय है
मया जोड़ भीमन्त प्रेम का करते ही रहते हैं।

--- उर्वशी 1/22

प्रणय भी एक व्यापारिक वस्तु बन गई। प्रति दिन नई नई प्रणय परिभाषाएँ मनुष्य मनुष्य का काम रह गया है। यही समाधि का स्वरूप लगता है। यह नगर-
संस्कृति है

अभिजात्य वर्ग एक ही कामना करता है:-

किन्तु पूरव चाहता मनु के नये क्षणों में

नित्य प्रेम्णा एक-पुण्य अतिरिक्त जोस कर्णों से

--- उर्वशी 1/22

जिसे एक निरीह विवशता है ^{कुल} सुनामा की --- वह क्या करे वह उस चन्द्रदेवता की आराधना कर सकती है कि प्रिय पति का कोई अनिष्ट न हो।

दूसरे अंश में औशीनरी, मदनिका और निमृष्टिका के माध्यम से भी कविई दिनकर ने नारी के आन्तरिक उत्कर्ष को दिखाने की चेष्टा की है। औशीनरी तो भारतीय नारी का आदर्श है। गुप्त की है शब्दों में पति की पत्नी की गति है। जो दिनकर ने पूरा का पूरा स्वीकार किया है। औशीनरी कहती है:-

पगली! कौन त्यथा है जिस की नारी नहीं सहेगी

एक परिणीता सती साधवी नारी को एक वाराणसा उसके पति से विमुक्त कर दे, इसे कौन नारी सहन करेगी? भले ही वह किसी की रूप गर्विता क्यों न हो। औशीनरी ने नारी मर्यादा को रक्षा हेतु, पारिवारिक शांतिता की सुरक्षा हेतु एक आह्वान भी है। वह सर्वशरीर को अपशब्द कहने से नहीं चुकती --- गणिका, प्रयत्निका, अश्व, चाविनी, व्याघ्रिनी, वहां तक कि स्वर्णया जैसे अपशब्द भी कह आती है।

मदनिका यथायुक्त वादी है। अपने निष्ठा मर का सौचित्य तथा, स्वामी का ज्ञान, ज्ञान शील का मान, अभिमान सभी कुछ वृद्धे पुत्रोचित गुण हैं, प्रमदा नारी हैं पर भेंट ही खाते हैं। वह खुले आम यह प्रज्ञान करती है कि उस नारी में कैसा प्रेम और कैसा रस जो सहज प्राप्त हो:-

जो पद पर चढ़ गई छी चाविनी वह नीकी लगती है।

--- उर्वशी 1/34

नारी जिस में पूरव रस लेता है वह रूप सुनिता है, जो यह कला जानती है कि पुलक को कैसे खसीभूत किया जाये यही आधुनिका है:-

प्रियतम को रचें सके निमज्जित जो अतृप्त के रस में

पूरव ^{सुख} ~~सुख~~ से रहता है उस प्रमदा के रस में । --- उर्वशी 1/35

गृहणी सदा सर्वदा सम्पूर्ण करके भी दास चारती रहती है। उसका नारी मन आकांक्ष करता है कि उसका मर मधुमा भयन से डेवल उसे ही देवे। यही उसकी सार्थकता है। बार बार औशीनरी यही सोचती है:-

पति के निवा मोक्षिता का कोई आधार नहीं।

हां। ^{पुत्रोचित} ~~पुत्रोचित~~ के लिये तो परिणीता भी पति को कतनी दूर विवशता से देखती है कि वह अन्त्यय समय कर सके।

सुख एवं वंदन अंक में सुकन्या और औशीनरी आदर्श नारी जीवन की सार्थकता सिद्ध करती हैं। सुकन्या स्वयं अपने जीवन का प्रतीक प्रमाण है। वृद्ध वृत्ति के साथ ही उसका जीवन सरल और सुख-सौख्य पूर्ण है। उस में गाम्भीर्य है और तेज मयी शक्ति भी। दूसरी ओर औशीनरी त्याग और तपस्विन्या की प्रति मूर्ति बन कर हमारे अंशिक निष्ठ आ गई है। वही शक्ति की इच्छा के प्रति हमारे मन में पैड़ा धीर्दलित अंक में वृद्ध की विनाशिता से अपनाये गये उर्वशी पुत्रों और कर्तव्य परावर्तता के प्रति हमारी श्रद्धा की वात्र बन जाती है।

2:- परिवर्तित उद्भावनाएँ:- दिनकर ने परम्परागत प्रसंगों में वर्तमान युग के वैज्ञानिक सत्य के पक्ष में अनेक ऐसे प्रसंगों को परिवर्तित कर दिया है जिन से यथार्थता की क्षति पहुँचती। यह सत्य है किन्ति— दिनकर पर कालिदास का प्रभाव बड़ा है किन्तु उन्होंने ने तिरस्करणी विद्या का उहाँ भी उल्लेख नहीं किया। कालिदास की अप्सरायें इस विद्या से अदूर हो सकती हैं दिनकर की अप्सरायें नहीं, क्योंकि इस पर यह वैज्ञानिक ज्ञान अभी भी विद्यालय में नहीं है। दूसरी ओर काव्य भी वास्तविक रूप से योच से मुक्त रहेगा। कालिदास के ने भारत नाप की योजना को मिश्र-विषयक के माध्यम से व्याख्यायित किया है --- दिनकर भव्यतः उर्वशी कोलामने कर उसी से स्वीकार करवा देते हैं--- यह अधिक स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक की लगता है। अथर्वनाम से यह आर्तिका से कर उर्वशी 16 वर्षों तक निरिच्छन्त पुत्रवा का राज्य भोगती रही और जब अथर्वनाम अध्याय सुकन्या आयु को ले कर राजदरबार में आर्त तो उर्वशी स्मरण कर के भव्यति हो जाती है। आर्तिका के आद भव की शक्ति पराधन ही तो कराती है। इस का नाटकीय महत्त्व मंच की दृष्टि से अनुमेय भी है।

दिनकर ने कालिदासीय चित्र-कट व्यवस्था है आयु के प्रसंग में। कालिदास ने संकुमता को दुष्यन्त के दरबार में भेजा था --- यह प्रसंग उन्हें बहुत प्रिय लगता था। संगमनीय मणि को लेकर उड़ने वाला गिरध को तीर से मार कर गिराने और फिर पुत्रवा के दरबार में बाण पर अंकित अंशित नामादि की देख कर आयु को पहचानना इस युग में कभी कल्पना से अधिक कुछ नहीं। कालिदास के पास एक पट था उन्होंने में उसे दोनों नाटकों में रूपा दिया --- अंशु शाकुन्तल में अंशु की स्त्री में जोड़ दी विष्णुमोक्षनीयम में संगमनीय मणि के रूप में। दोनों ही मुख्यकाम पदायी थे। दिनकर को सुकन्या वं साथ आयु को भेजने में वही आनन्द व आरंभ एक है मानो संकुमता दुष्यन्त के दरबार में गई हो। दिनकर इसे भी सीखा नहीं स्वीकार करते। प्रसंग के युग में स्वयं अब वैज्ञानिक प्रमाण है। राजा का स्वयं में बाधी, पुत्र, पट पुत्र, और शक्ति का दर्शन, अथर्वनाम में प्रत्येक पृष्ठ करते हुये और केतरीय सुकन्या का दर्शन प्राचीन काल के अग्नि पुराण समन्वित युग लक्ष्मी और वर्तमान युग के दूरस्थ मानव *Tellipathy* के कालिदास की सत्यता को प्रस्तुत करने में समर्थ है और अधिक संभव की।

यह प्रमाण भी है किन्ने दिनकर जी ने जान बूझ कर त्याग दिया है, के १६

परम्परागत। वैदिक काल से जैसे जा रहे आध्यात्म में विशेष रूप से चर्चित थे तीन शक्तें जहाँ उर्वशी विशेषतः पूज्यता के लिये करीबी ध्यान करेगी। तीन बार से अधिक पूज्यता उस का सम्मान न कर सकेंगे और वह उसे पूर्ण सम्मान न देतेगी। सम्भवतः आज के तर्कीय बुद्धिजीवी को ये तीनों ही शक्तें आत्मात्मिक प्रतीत होंगी --- कल्पने योग्य शक्तें, निरर्थक। कालिकास ने भी उन्हें छोड़ दिया है। दिनकर जी तो प्रेम को आध्यात्मिक तक पहुँचाना चाहते हैं --- काम, यौन, साक्षात्, सुख, हरिश्चन्द्र आदि को सम्मान मान कर सौम्यता, सुखिता, शान्त निराश्रयप्राप्त प्रेम को अनिवार्य है, पूर्ण है। कामना, साक्षात्कारों के लिये, तन से उठ कर, यह आध्यात्मिक उपलब्धि है। इस का दुष्टा दिनकर भला इन शक्तों को कहाँ स्थान दे पाता।

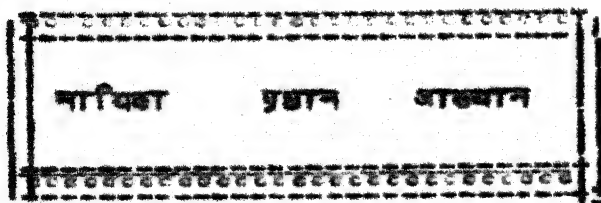
दिनकर जी इतिहासक कालक्रम प्रयोगों में चर्चित पूज्यता को गम्भीर नहीं बना सके, बना भी नहीं सकते थे। गम्भीर लोक इस जगत में स्वीकार्य ही नहीं है। उन की उर्वशी अप्सरा से मानवी कनी है और अन्त तक मानवी ही रही है। उसके रूप, साक्ष्य, प्रेम, दुःख, विवाद, बर्ष, तर्क बुद्धि, मन, आत्मा सभी को दिनकर ने पूज्यता में यथार्थ में मीठा है, उल्लाना की वायव्यता में नहीं। फिर भला दिनकर मानवी पात्रों को देखीय क्योंकर दिखाते।

दिनकर नारी के प्रति सम्मान भाव रखते थे। नारी चरित्र में प्राचीन आदर्श मर्यादा को उन्होंने ने बड़ी मान्यता दी है। तुलसी द्वारा प्रणीत 'अन्ध, बँधर, कौड़ी अति-दीना', पति के प्रति जो पत्नी के साक्ष्य, ब्रह्मण, और स्वीकृति को महत्त्व देने वाला कवि दिनकर यह सब समझ कर सकता था कि उर्वशी नारी को कर भी करे --- पूज्यता। घर लौट जाओ, स्त्रियों की मैत्री स्थापन नहीं होती, उनके हृदय दुःख के हृदय हैं, वे प्रेम एक से करती हैं तो रमण दूसरे से। नारी का बना-बतना अवमान और उपहास दिनकर के काव्य में नहीं आ सकता या जहाँ-जहाँ और अन्त में दिनकर ने भी उर्वशी के एक ही पुत्र का उल्लेख किया है---कालिकासीय अनुकरण है या जो कहें कि इस परिवार नियोजन के युग में उः या आठ पुत्रों को जन्म देना केवल धर्म के साथ न्यायपूर्ण न होता।

संक्षेप में दिनकर के काव्य में जो नृत्तनार्य हैं वे महत्त्वपूर्ण हैं, वसन्तिले और 24 अधिक महत्त्वपूर्ण कि उनसे परम्पराओं को हानि नहीं पहुँची है।

0000000000

ॐ नमः शिवाय



इस वैदिक आख्यान के काव्य-नाटक का नामकरण कवि दिनकर ने "उर्वशी" किया है। काव्यादादी युग की सर्वोच्च कृति कामायनी का नामकरण भी भ्रष्टा के कारण हुआ है। प्रसाद जी ने अपने काव्य की नायिका के नाम पर इसे भ्रष्टा शीर्षक नाम से प्रस्तुत नहीं किया है और उसके कथार्थक पर्याय कामायनी देकर काव्य की सम्प्रीकता और सौन्दर्य की रक्षा की है। कवि दिनकर को न चाहते हुये भी उर्वशी नाम की रचना पड़ा होगा। उर्वशी के पर्याय इतने सम्प्रीक नहीं हैं। साथ ही यह भी सत्य है कि उर्वशी के पूर्व के गीति नाट्य कथा, राधा, मत्स्यगंधा, तथा गीति काव्य यशोधरा, माण्डवी, कमुप्रिया, विष्णुप्रिया आदि नायिकाओं के ही जीवन चरित्र पर लिखे गये हैं और तदनुसार उर्वशी के नाम पर काव्य के भी शीर्षक दिये गये हैं। उर्वशी काव्य-नाटक का शीर्षक काव्य की नायिका उर्वशी के नाम पर ही किया गया है।

उर्वशी एक नायिका प्रधान गीति नाट्य है। उर्वशी अप्सरा है, वह अपनी अप्सरा अप्सराओं का नेतृत्व करती है एवं उन सभी में सर्वोच्च सुन्दरी है, खूब और बुद्धिमान है। गीति नाट्य के दूसरे अंक में अवसर की राधा पुरुषों की व परिणीती और औशीनरी की कला जन्म स्थिति प्रस्तुत की गई है तथापि उन दोनों हीन दशा का कारण उर्वशी ही है --- अप्रत्यक्ष रूप से उर्वशी सर्वत्र इस अंक में अज्ञात रूप से व्यापक रही है। कवि दिनकर ने औशीनरी को इसी अंक में छोड़ दिया है और फिर अन्तिम अंक में पटाक्षेप में अवसर पर ही औशीनरी के दर्शन होते हैं। तीसरा अंक पूर्ण रूप से उर्वशी के नेतृत्व में ही चलता है। उर्वशी का सम्पूर्ण सौन्दर्य इसी अंक में अभिव्यक्त हुआ है। यह कहना भी असंभव नहीं हो गा कि उर्वशी का तृतीय अंक ही सम्पूर्ण काव्य, विज्ञान, ज्ञान, दर्शन एवं कला-संस्कृति की अपने में संजोये हुये है। और इन सभी विषयों के उद्घाटन, विकास, और निर्मल में उर्वशी का अधिकार पूर्ण विवेचन इसे और अधिक महत्त्व प्रदान करता है। चौथे अंक में सुकन्या का मारी रूप अपने आदर्श रूप की प्रस्तुति है। सुकन्या एक आदर्श गृहणी, पत्नी व माता है। इन सब के स्वर यह एक आदर्श मारी है। भारतीय मारी का अस्तित्व आदर्श है।

महर्षि च्यवन मने ही कुछ वॉ पर उसने उन्हें बलि रूप में ग्रहण कर मारीचक का सम्पूर्ण सम्पूर्ण कर आर्क्ष प्रसन्न किया है।

उर्वशी काव्य में राजा पुरुषवा और च्यवन दो ही पुरुष पात्र माना जाते हैं। राजा पुरुषवा उर्वशी के स्व सौन्दर्य पर प्रेमान्ध हैं, उर्वशी के बिना उनका अस्तित्व ही नहीं है और दूसरे पुरुष पात्र महर्षि च्यवन केवल सम्बन्धित हैं। कहीं भी महर्षि च्यवन को पात्र के रूप में प्रस्तुत ही नहीं किया गया है। अतः यह स्पष्ट है कि उर्वशी गीति माध्य में पुरुष पात्र एक ही है --- राजापुरुषवा और जिनको हम उदात्त चरित नायक नहीं कह सकते। वे तल्लि नायक भर रह जाते हैं जबकि उर्वशी उदात्त चरित्र वाली नायिका है।

उर्वशी का चरित्र रूप, सौन्दर्य, व्यक्तित्व, मन्दराकाश और समस्त चन्द्रमण्डल सम्पूर्ण काव्य में व्याप्त है। अप्सरायें पण्डिते, दूसरे, तीसरे और चौथे अंक में प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से उपस्थित हैं, बाँधवाँ अंक उर्वशी के अन्तर्धान और औसीनरी के महत्व का अंक है। हमें कोई अप्सरा नहीं है। दिग्गज ने अपने प्रति तिलक संकलन में पृष्ठ 70 की लिखे गये वचन में स्वीकार किया है:-

जो प्रिया अन्त में जाती है
वह क्यों तब पर छा जाती है
क्यों नीति काम को मार गई
अप्सार सती से डार गई।

काम प्रतीक उर्वशी अप्सरा, नीति - प्रतीक औसीनरी सती से डार गई। नाटक की पूर्ण अस्तित्व --- डार या जीत---- नायिकाओं में ही होती है। नाटक का प्रतिफल नायिका पर ही घटित होता है, उपरलिखित औसीनरी की ही पूर्ण है। अतः हम सम्पूर्ण गीति माध्य को नायिका प्रधान आह्वान कहा जाये तो अनुचित न होगा। डा० सिद्धनाथ कुमार मैजिस्ट्रेट हिन्दी एकाकी की शिल्प विधि का विवरण में डा० विनयमोहन शर्मा का संदर्भ देते हुये उद्धृत किया है कि गीति माध्य में गीतात्मकता के अतिरिक्त एक गुण और पाठ्य है --- यह है मारी का वादुस्य। साधरील्लसकी नायिका मारी ही होती है और रस होता है। रजराज कुमार। रचनात्मक की दृष्टि से यही भाव माध्य कहलाता है। इस प्रकार उर्वशी एक प्रबल कविका नायिका प्रधान गीति आह्वान की है।

000000000000

1:- डा० सिद्धनाथ कुमार: हिन्दी एकाकी की शिल्प विधि का विवरण पृष्ठ

उर्वशीः
महं शिवं सौन्दर्य - वर्णन

उर्वशी एक नायिका पुराण भीति नाट्य है --- उर्वशी ही उसकी नायिका है। कवि का अभिप्रेत भी उर्वशी को नायिका के रूप में देखना है किन्तु कवि ओशीमरी को भी छोड़ नहीं सका है। सम्पूर्ण काव्य बहने के बाद हमारी पूरी गवानुभूति उर्वशी के प्रति नहीं ओशीमरी के प्रति बनी रहती है। आचार्य हजारी प्रसाद त्रिवेदी ने भी उर्वशी को काव्य की नायिका स्वीकार किया है। "कवि का अभिप्रेत कि क्या उर्वशी है, उद्दाम माम्नेयम् --- उर्वशी नाय का प्रतिनिधित्व करती है, पुरुषदा त्रिगा का और ओशीमरी प्रति-त्रिगा का।"

उर्वशी एक अविचारिका नायिका है। वह स्वयं कामाक्षिका के कारण पुरुषदा के सामीप्य और समागम की चक्कर है। वह अविचार में अपने जाव को परिवर्तन पार्श्व में यदि आलस्य न कर सकी तो निश्चय पूर्वक वचन में मिल पायेगी :-

----- " यदि आज्ञा काम का अंक नहीं पाई गी
तो सरीर की लोह वचन में निश्चय ही मिल पाईगी। "

उर्वशी अयोनिजा है, सभी अप्सरायें अयोनिजा हैं। उनका संसर्ग मानवों से हुआ है। मेनका ने तपोनिष्ठ कवि विश्वामित्र की समाधि रंग की थी, उर्वशी ने राजा पुरुषदा के लिये स्वर्ग लोक का रथान किया है। उर्वशी अपने अप्रतिम सौन्दर्य के लिये भी सर्व प्रिया है। ऐसा सौन्दर्य लोकव्यवसायीत है, अकर्णनीय है-----
कवि ने उर्वशी का स्वर्गिक सौन्दर्य चित्रित कर उसके प्रति चित्ताभाषा प्राप्त की है। सम्पूर्ण काव्य में पहले, तीसरे और पाँचवें अंक में उर्वशी का सौन्दर्य व्याप्त है। पहले अंक में साररीरिक, तीसरे अंक में साररीरिक और मानसिक दोनों की, पाँचवें में आदिक सौन्दर्य ।

उर्वशी के देवोपम सौन्दर्य की उल्लेख कर मूल रूप अवधारित करना उचित ठिठक है। सहजम्भा ने रामा को उर्वशी के सौन्दर्य का एक आभास मात्र दिया है:-

हसी लिये तो सही उर्वशी, उषा मन्दनकी
सुरपुर की कोसुकी, कामना चन्द्र के मन की
सिद्ध विरामी की समाधि में राग लगाने वाली
देवों की शीर्षिका में मधुमय आम लगाने वाली।

उर्वशी वसनों की नहीं अपितु वह रति और रमा के अतुलनीय सौन्दर्य से भी पूर्ण
परिपूर्ण है:-

रति की मूर्ति रमा की प्रतिमाहूषा विचित्रम नर की
विष्णु की प्राणेश्वरी, आरती शिरलाङ्गम के कर की

----- अंक । पृष्ठ 13

ऐसी उर्वशी पुष्करदल पुतरवा की देह अपना ही आधा ली लेती।

उर्वशी सागर आत्मन्ना है जिसे जंगलों में Nymph कहते हैं। चिकित्सा
विज्ञान में कामोन्मादिनी को Nymphomania कहा गया है। उर्वशी भी
कामोन्मादिनी है --- सभी अप्सरायें कामोन्मादिनी होती हैं --- उनका सौन्दर्य
न तो इसी ध्रुव होता है और न ही वे अपने मन-सौन्दर्य के प्रति चिन्तित होती हैं।
वे स्वेच्छिनी हैं:-

देती मुक्त नैमि अछर-मधु साध साध अछरों में
सुख से देती डोढ़ कमल कलशों को उग्न करो में ।

----- अंक । पृष्ठ 15

किन्तु उर्वशी तो उन सब में सौन्दर्य शक्तिनी है। वह सामान्य नारी नहीं, वह तो
सौन्दर्य की भावतीत कल्पना है:-

कही, उर्वशी नारि नहीं, आमा हैनिहिम सुवन की
रूप नहीं निष्कतुष कल्पना है झुट्टा के मन की।

----- अंक । पृष्ठ 24

पुतरवा ने भी उर्वशी के अविद्यतीय सौन्दर्य को देखा है। वह ने त्रिमूर्तुन्दरी की
संज्ञा देते हैं, युग-यगन्तर, दिन विगत में उर्वशी विष्णु प्रिया रहेगी, सब के सर्व
की महारानी बनी रहेगी। :-

तुम त्रिकास - सुन्दरी, अमर आमा अछण्ड त्रिमूर्तुन्दरी की
सभी युगों से, सभी विशाजों से चल कर आई हो

। । । ।

प्रति युग की परिचिता, रसाकर्षण प्रति मनमन्तर का
खिल प्रिया, सत्य ही, महारानी सब कोई सगनों की ।

उर्वशी का यह सौन्दर्य अविद्यतीय है। अंग्रेजी नाटककार शेक्सपीयर ने पिलियुट्रा
का यत्ना ही सौन्दर्य बताया है:-

Age cannot wither her
Nor Custom stale her infinite variety.

उर्वशी के अंग प्रत्यंग की शोभा का वर्णन कवि ने अपने गीति नाट्य में अत्यंत सघन विधीर्ण किया है। परम्परागत ढंग से एक ही स्थल पर स्व-वर्णन न कर कवियन अवसरानुसृत उसके अंग सौन्दर्य को प्रस्तुत किया है जिस से काव्य की स्वाभाविकता बढ़ गई है।

शास्त्रीय परंपरा में नायिकायें अनेक प्रकार की मानी गई हैं। विनय में भी उर्वशी को इस रूप में अभिलारिका के रूप में प्रस्तुत किया है, मुग्धा रूप अभिलारिका के साथ ही संगम है, विप्रलब्धा वासक सज्जा भी इस से अन्यथा नहीं।

वासक सज्जा:-

वासक सज्जा कोई फूलों के कुंड मलय में
 पथ जोड़ती हुई सैंतल मलय सुखित करने को
 छोटी हुई समुद्रसुख, वदमराग मणि नूपुर लजा रही है।
 या कोई सपनी उम्माता सैंतली जग रही है
 प्रणय मैत्र पर, शिशिर वास, विद्रुम की अस्फूर्ति में
 सिंह की ओर चन्द्रमा मंगल-मिठा दलल लजा कर।

विप्रलब्धा:-

मुग्धा:-

भुक्ति पर उरताप्त रसों का चर्च, और वे अक्षरों पर
 रसना की गुह्यगुपी अदीपित मित्रों के अक्षिणों में है।

--- अंक 3, पृष्ठ 56

उर्वशी एक ही रूप में अनेक नारीत्व है --- वह नारी का ऐसा व्यक्तित्व है जिस में अनेक नायिकाओं का सौन्दर्य समाया हुआ है। उर्वशी की देह मलय मूर्तिमान अंग सौन्दर्य से भी सुन्दर है। छत्राको का मूर्ति शिल्प संगम सौन्दर्य की वृद्धि से विशद भर में अत्यंत अधिकारी है --- उर्वशी इस मूर्ति शिल्प से भी सुन्दर है:-

पातालों के अमरुद अंगों की काट छोट
 में ही निविडुलमन्ता, मुष्टिमन्ता,
 मंदिर लोचना, कामकुलिता नारी
 प्रजापति कर मंग

सौहृदम को उम्माता उम्माती हूँ अंक 3 पृष्ठ 92

वस्तुतः उर्वशी एक काम-नाच्युत पूर्ण नारी है। कवि ने D.H. Lawrence की काम भावा, काम भाव, काम विचार, --- सभी को स्वीकार कर अभिव्यक्त किया है।

"कवरी के फूलों का सुवास, जांघुक्ति अक्षरों का अम्पन
 परिवर्त - वेदना से विशीर कंकित अंग, लघुमल नयन"

जादि लारेंस की भावा के सौपान हैं।

अब यह भी जायज है कि कवि के किये गये यह शिल्प वर्णन पर विचारही किया जाय। उर्वशी के यह शिल्प सौन्दर्य का वर्णन कवि ने शास्त्रीय परम्परा के अनुसृत नहीं किया है। यह-शिल्प सौन्दर्य में कवि-जन सम्पूर्ण शरीर के अंगों का

वर्णन भारतीय पद्धति में चरणों से प्रारम्भ कर तिर तक करते हैं ये। कवरी
पद्धति में यह क्रम उल्टा था। प्रसाद जी जैसे भारतीय संस्कृति के शोधक भी आदि में
कवरी ढंग पर शिष्ट - विश्व में वर्णन कर गये। दिनकर ने उर्वशी के रूप-सौन्दर्य
के वर्णन में इसी पद्धति को अपनाया है, बल्कि यह कहना अधिक संगत होगा कि
कवि को जो अंग जहाँ कहीं अच्छा लगा उसी का वर्णन करने लगा है। विशेष रूप से
यह - सौन्दर्य की सीमा के पार कवि जा ही नहीं ^{सक} ~~कर~~:-

हम कपोलों की लज्जा देखते हैं '

और अधरों की रंजी यह कुन्द ली चुकी-कली ली '

गौर चम्पक-रसिह सी यह देह रत्न पुष्पाभरण से

स्पर्श की प्रतीक्षा करता है स्वप्न-साहि में दली ली ।

---- अंक 3 पृष्ठ 47

परम्परा परम्परागत सौन्दर्य वर्णन में उर्वशी और रूपक अतिशयोक्ति सम्मिलित है किन्तु
कवि ने ^{यह} सुम-धर्म के आधार पर अधर की रंजी, कपोल की लज्जा और देह की रत्न
कह कर महीन प्रतीकों से अभिव्यक्त किया है। और अन्त में कहना यह कि कवि ने
नारी के स्पर्श की रंजित सन्ध्या कह कर अपना अन्त-रस प्रकट किया है:-

यह तुम्हारी कल्पना है, प्यार कर लो

स्पर्श नारी प्रकृति का चित्र है सब से मनोहर

---- अंक 3 पृष्ठ 47

यह नहीं कि कवि एक बार ही उर्वशी आत्म के सौन्दर्य वर्णन से मनमुट हो गया हो,
यह बार बार उसी भाव की चिन्तित करता है। या यह उन्हें कि दिनकर उस रूप में
कहना प्रभावित हैं कि उस का वर्णन कर चुकने पर भी उन्हें यह अपूर्ण लगता है।
उर्वशी का रूप लाक्षण्य असाधारण है --- नाटकीय शैली में यह वर्णन प्रत्यक्ष सा प्रतीत
होता है:-

यह लोचन, जो किसी अन्य जग के मग के दर्शन हैं
ये कपोल, जिन की कल्पित में तेरती किरण लजा की
ये किरण - ते अन्ध, माझा दिन पर स्वयं मदन के
रोती है कामना जहाँ पीड़ा है पुकार करती है
ये कृतियाँ जिन में कड़ुओं के क्षुब्ध बिन्दु करते हैं
ये बाँहें जिन्हें के प्रकाश की दो महीन किरणों ली
और कल के कुसुम-कुंज सुरमि विधान मदन में
जहाँ नृत्य के पवित्र तहर कर नाचि दूर करते हैं।

--- अंक 3 पृष्ठ 97

केवल ये ही चीज़ें ऐसी हैं जिन में कतिपय जगहों का गल-धर्म के परिवर्तन में सौन्दर्य वर्णन किया गया है। इस वर्णन को चाहें तो विशद-नष्ट वर्णन कहें या चाहें तो उच्च काव्य-सौन्दर्य। यह सत्य है: ऐसा सौन्दर्य वर्णन अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।

गर्भवती उर्वशी का सौन्दर्य प्रभा पूर्ण है। जब शंकर प्रसाद ने इस गर्भवती महामाँह लिये "केतकी तपुस प्रीत वर्ण" का प्रयोग किया है। दिनकर ने उर्वशी को चित्रण कात में अधिकारी ने ही अभिव्यक्त किया है। उर्वशी की "देव कान्ति वीतिमा-युक्त" है, उसके पदों के कात में गति नहीं है।

पंचम अंक तक जाते जाते भी कवि सौन्दर्य के रोमान्टिक भाव को हिरोजित नहीं कर सका है। पुनः कवि का कथन है:-

जलज अक्षर, रचितम कपोल, धूम्रमातङ्ग कूर्ण मंथनों में
जामेजल कि-तना जलज माया-ममोज प्रतिमा का
प्रीति में आकटि समस्त उन्मत्तित शिला मदन की
असौखिन उन्मत्तित असीमा - ती सम्पूर्ण दृष्टि में
वही प्रतीति प्रमत्त जिन पर तो मुँह खड़े हुये हैं
विजली जितनी जल-सागरी में उठती हुई लहर सी।

----- अंक 5 पृ० 142

प्रायः हम अक्षर वर्णनों की दृष्टि से प्रतीति होता है कि कवि बार बार अक्षर, कपोल, प्रीति, जल, आदि जगहों का वर्णन कर रहा है। इन के प्रतिरिक्त कहीं भी मैत्री, नास्तिक, प्र, करीबी, विष्णु आदि का जिन का वर्णन और गाथा कात से वर्तमान कात तक बराबर किया जाता रहा है, वर्णन नहीं है। अतः यह नष्ट किन्तु वर्णन अपने आप में अवर्ण और उद्देश्य रहित प्रतीति होता है।

इमें का० विमल कुमार जैन के अतः से सङ्गत होना पड़े गा:-

"ऐसा प्रतीति होता है कि कवि प्रेम के गन्ध मादन की सुरभित
कुँजों में विचार कर हुआ है और मादक सौन्दर्य का रसास्वादन
सर्वतः से हुआ है, अन्यथा कतना या ललित किन्तु उद्दाम
और मादक वर्णनसम्भव था"

महा काँव दिनकर: उर्वशी का अन्य की

कृतियाँ पृष्ठ 254

यह सत्य है कि दिनकर ने उर्वशी के रूप-चित्रण में सौन्दर्य की समस्त सीमायें प्रस्तुत कर एक असीम्नित सौन्दर्य को ही प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। यह कह कर कवि ने उर्वशी के सौन्दर्य को चिरन्तन बना दिया है:-

मैं तेरा कात के परे चिरन्तन नारी हूँ।

उर्वशी देश काज की सीमा में आबद्ध नहीं की जा सकती, ठीक एवीन्ग की
उर्वशी की भाँति ही उर्वशी युग सुगन्धर तक सौन्दर्य शास्त्रिणी है आवाद-मसक
दिव्यता का स्वयं है।

.....

0000000

...

...

:- उर्वशी --- टोपीर --- जेठप्री जमुवाच पन्ना 4:

From age to age thou hast been the world's beloved
A unsurpassed in loveliness, Urvashi!

प्रकृति प्रियता

जगत माना स्वात्मक है और प्रकृति उसको रेतो व्यवस्था है जिस में मनुष्य अपनी कृति - भूमि का सृजन करता है। प्रकृति और मनुष्य का सम्बन्ध अनादि काल से अविच्छिन्न रहा है जिसे सृष्टि जगत् का के माध्यम से और कवि अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त करते रहे हैं। यह सम्बन्ध इतना कोमल, कमनीय और रस पूरक रहा है कि आज भी इस सम्बन्ध की स्मृति का काव्य में विशेष रूप से वर्तमान युग के गीत - काव्य में सुन्दरतम स्थान मिला हुआ है।

प्रकृति का स्वभाव:-

भारतीय काव्य में प्रकृति विविध रूप से वर्णित है। शास्त्रीय शब्दों में इसे आत्मजन्य रूप और उद्दीयन रूप कहते हैं। प्रकृति प्रेमी कवियों की सुसुप्त प्रेम - भावना की स्फूर्ति का कोश में अनुभव करती है

और जागृत - भावों को उद्दीयन कर गीत या कविता बना देती है। स्वयं रूप से किया गया प्रकृति वर्ण आत्मजन्य के अन्तर्गत और सहायक रूप किया गया प्रकृति - विवर्ण उद्दीयन के अन्तर्गत अध्ययन किया जाता रहा है। शब्द के माध्यम से गृहीत अर्थ शास्त्र, और गृहीत विवर्ण काव्य होता है। रचना में आत्मजन्य रूप में प्रकृतिप्रकृति के अंगत और विवर्ण रूप दोनों की दिष्टि मिले गये हैं:-

सूर्य रूप आत्मजन्य:- नीचे पृथ्वी पर जलन्त की कुसुम बिभा शर्ब है,
ज्वर है चन्द्रमा प्यादगी का निर्मल भग्न में ।
कुली नीलिमा पर विकीर्ण तारे जो दीप रहे हैं,
चमक रहे हैं नील चीर पर, कुँ ज्यों चाँदी के।
या प्रसीत, निस्सीम जलधि में जैसे सरल चरण पर
गीत धारि को फौड़ ज्योति के कङ्कीर निकल जाये हों। ।

विवर्ण रूप आत्मजन्य:-

प्रकृति का वर्ण एक नये विवर्ण को जन्म दे कर हमारी आँखों के जागे उस ताकास्ता का धिक्क धिक्क कर देता है जो हमारी भावनाओं को

के स्तब्ध बनाने में सुरुज का कार्य करती है:-

१:- उद्धृति: १/१

भ्रममल-भ्रममल सरिरसलिल वह उभा की जाती है
 हाथों पर बिजली - बिजली जाभा वह रखत - किरण की
 चक्क - चक्क उठना वह चिह्नों का निरुद्ध धूर्तों में,
 अकिन्तव्यर सौन्दर्य धूर्त नखर हल मथा मनी को।

भ्रममल, बिजली - बिजली, उभा की जाती, चाकुन बिजली हैं और चक्क -
 चक्क उठना तथा कणन कणन सन, ग्रहण इन्द्रिय जमित नाद - सौन्दर्य। इसी
 प्रकार सारा में कवि ने "मुद्रित चादि की अलंकार धूमों" का प्रयोग किया है, वृत्त में
 "लहे गन्ध पर या बह कर धूलों को गले लगाये" अथवा रस पान में ५ धुंधादुर
 "मर्य मनुज किना मधु रस पीता है" जादि सविद्य आत्मजन कवि के प्रकृति प्रेम के
 उदाहरण हैं।

प्रकृति के वे अनेक सविस्तर स्वल्प दिनकर के हिमालय शीमा में मरे दूटे हैं—
 ठीक कालिदास के कुमार सम्भव में किये गये हिमालय के चित्रण के अनुरूप:-

चन्द्रमा चमा, रजनी झीली, हो गया प्रात
 पर्वत के नीचे से प्रकाश के आसन पर
 आ रहा सूर्य कैसी दार्ढ्यने लीला
 शिखर गया ज्योति से, वह देखी अलगाव शिखर
 हिमालय सिद्धा अलारी - पुष्करिण की देखी, उ० ३/१६

प्रकृति वर्णन:

उद्दीपन:

उद्दीपन रूप में प्रकृति मानव साक्षी
 होती है और भावनाओं में उत्तेजना
 उत्पन्न करती है। पुरुष का आचरण
 लोक में उद्दीपनी संरक्षण करना चाहते

हैं और इस आलिंगन - परिरक्षण - कास

में रति-पुरुष के अतीथानन्द के लिये उर्काई काम-केमि के निवेदन के साथ ही प्रकृति की
 और पुरुष का ही सम्बन्ध करना चाहती है:-

ना, यों नहों, अरे देखी तो उछर बड़ा कीतुक है
 मग्नति के उत्तुंग समुच्चल, हिम-भुजित धूर्तों पर
 होन नई उज्ज्वलता की तुनी फेर रहा है? उ० ३/६।

उज्ज्वलित पुरुषा तारे और चन्द्रमा की पुरुष - शक्तिता के सौन्दर्य से भर दूटे हैं:-

और गमन में जो अलंकार आने लगे हैं

तभी हैं अपने अरण्य में हीरों के कूपों से,

चन्द्रभक्ति - निर्मित विमर्श के बगल रहे शावदल में

या मध के रन्ध्रों में स्तिता बाराकत के मध में

कल्पद्रुम के कुसुम या कि ये परियों की बाँहों में' ३० ३/६२

उत्तरी पुस्तिका के पुस्तक को उद्घोषित करने के लिये उन्हीं तारों में सप्रयोजन

पुस्तिका - कल्पना करती है ताकि वह रति - सुख का और अधिक आनन्द ले सके:-

ये जो टीक रहे उजले उजले से नील गमन में

हीनतमान, स्तिता सुख रम्युमय देवों के आनन्द हैं। ३० ३/६३

देवताओं के मूर्ति नहीं होतीं --- उत्तरी किन्तु पुस्तिका के पौलव की प्रतीति कर

"रम्युमय आनन्द" का सप्रयोजन प्रयोग करती है।

प्रकृति

प्रकृति वर्णन:

अलंकरण:-

प्रकृति चित्रण एक अनुपम अलंकार सौन्दर्य है।

प्रकृति सौन्दर्य स्वतः ही अलंकारों में पूर

निष्कला है जो मूर्ति - सौन्दर्य को बाँधे

देता है। अलंकार ही तो काव्य की सीमा

है। पुस्तिका, उत्तरी और आयु के

सौन्दर्यपूर्ण सौन्दर्यान्वय में कवि ने अलंकारीय उपमाओं का आश्रय ले कर उपमा,

स्वक, उत्प्रेषण, मानवीकरण आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। पुस्तिका का रूप

उपमाओं से सुसज्जित है:-

कारितकिय तम दूर, देवताओं के गुरु - तम शानी,

रति तम लेख्यन्त सूर्यरति के सदा प्रतापी मानी,

कनक सदा सौखी, लोभमय मुक्त, जल-धनिध रयागी

कुसुम सदा मधुमय, मनोह, कुसुमायुध से अनुसारी ।

उत्तरी मन्दन तम की रूपक - कल्पना है --- यह मानवी रूप में देखी जाभा है:-

रति की मूर्ति रमा की प्रतिभा सुजा धिक्कमर मर की

विष्णु की प्राणेश्वरी, जास्ती - विद्या काम के कर की ।

और उत्तरी - पुस्तिका पुत्र "आयु" अपने सौन्दर्य में कवि - कल्पना की सुन्दरतम

उत्प्रेषण है:-

उरु-वज्र परिपुष्ट, मधुवृक्षा, पृथुज, प्रलम्ब भुजायें

का रक्त उन्मत्त, प्रताप जितना सुभय सगता था

उजा-विभाषित, उदय रीत की, मानो स्वर्ण विद्या की ।

३० ३/६३०

प्रकृति चित्रः

सौन्दर्यः -

उत्तरी में सौन्दर्य के अनेक सौधान हैं। क
सांस्कृतिक यात्रा सौन्दर्य से मानसिक और
आध्यात्मिक सौन्दर्य तक के विविध चित्र इस नीति-
नाट्य में प्राप्त होते हैं। रेखा चित्र, तैल चित्र,
रंग चित्र, मिश्रित चित्र आदि के अनेक उदाहरण
उत्तरी में उपलब्ध हैं। राज्यों द्वारा ऐसी

अभिव्यक्ति दिवस के द्वारा की सम्भव है।

१. रेखा चित्रः -

उत्तरी की धर देव स्वप्न की विधा प्रसन्न-उपवन की
उचित हृदय की या कि समन्वित नारी की विभूति की
कुसुम - कलेवर में प्रदीप्त आभा ज्वाला मग्न मन की
चमक रही थी नम्र काँति उसनों में उन धर तन की।

उ० २/२९

२. रंग चित्रः - इस रेखा चित्र में ही रंग भी मये हैं और एक सुन्दर से प्राकृतिक
चित्र-कला पर रंगों की कृषि के से कदुमि चित्र का निर्माण किया
गया है:-

नम्र पति के कदुमि कदुमि चित्र भुवि प्रगो पर
कोन नई उपलब्धता की सुग्री सी फेर रहा है
कुछ कृषि के हस्त मीन पर, कुछ वस्त्रों से उन धर
जान देव भीये दृग्गति की किरने सेट नई हैं
जोड़े ध्रुव ऊँच की चाली अपनी ही निर्मिति की
सम्राट्ट है किङ्कम, मौन सारे जन - कुछ ऊँच हैं
पिताम्हारे उज्ज्वल आँखें धर छाया तप - कदुमि हैं पर
चमक रही कदुमि ध्रुव दिग्गुणों के ज्ञान पर
रजनी के अंगों पर कोई चन्दन लेव रहा ही।

उ० ३/६१, ६२

३. तैल चित्र कला पर लेख, चरा, रघुमल, साक्षा, श्रीकृष्ण, कर्पूर-धारा
और चन्दनी रंग से रंगी प्रकृति - सांस्कृतिकता की सम्मान न लेगी?

४. तैल चित्रांकनः - उत्तरी में अतिप्रचलित कहे ही मिश्र और विमोहक है।

उत्तरी का प्रकट हीना उस चित्र की विमोहन शक्ति का सब से
सुन्दर उदाहरण है। उसी हैं तप में सम्मोहन शक्ति होती है-
उत्तरी में भी ऐसी ही है अथवा यह उपमा भी अनुपम है:-

प्रकटी सब उत्तरी चोदनी में ह्रस्व की छाया से
समा, तप के मुह से जैसे मणि बाहर निकली ही।

और उस के तम की कानि की भिन्न बिलाली थी:-

दिन कम-मिन्न-सुख-सम उज्ज्वल अंग अंग भलमल था

मानो अभी अभी उस से निकला उत्कृष्ट कमल था।

रेखी बरों की विभा, कमल की सिन्धु कोमल पावना, तप की चिकनाई और
मणि की कानि सभी उज्ज्वली की पद सेल चित्र के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

३

उ. प्रसार चिन्ता:- प्रकृति-परिचय में अनेक चित्रित चित्र के अनुमान मिल जाये
हैं/ जैसे कि अनेक राजाओं ने अपने राज महलों में बरतों
करा रखे हैं। उज्ज्वली में वे वर्ण मय चित्र उसका वर्ण बनाने
में समर्थ हैं:-

तम्बे तम्बे चीड़ जीव अम्बर की और उठाये
एक चरण पर छड़े तपस्वी से हैं ध्यान लगाये
दूर दूर तक विहरे दूर दूरों के नन्दन लम है
जहाँ देखिये यही लला, ललाओं के मुख भजन हैं।
विहरी पर दिन राति और नीचे आनों का बानी
बीचों बीच प्रकृति सोयी है ओढ़े निचोली धानी।

80 2/58

प्रकृति और उपदेश:-

दिनकर की प्रकृति के रूप में उपदेश करने की
प्रेरणा तुम्हारी से प्राप्त हुई। दिनकर ने "सामान्य"
का भी अध्ययन किया है और सम्मेलन: ~~अध्ययन~~
अध्ययन की वजहसे भी पढ़ा है। तुम्हारी
के वर्ण वर्ण में हर दूसरी-तीथी अज्ञानों में

उपदेश है और वर्तमान तो प्रकृति की ही शिक्षा मानता है। दिनकर में यही
प्रकृति प्रकृति समुद्र लोक की कुछ शिक्षा लकी है --- दिखी लकी है:-

विहरी में दो मोम, यही आनों में गरम रहा है
जब किन की ज्योति, दिया है यही गर्म के तम में।

प्रकृति और प्रतीक:-

दिनकर ने प्रतीकों का जो भी प्रयोग किया
है चाहे वे सुख के लिये हो या संसार के
लिये या कि जामा-धारम के लिये वे सब
प्रतीक प्रकृति से ही उद्भूत हैं। दिनकर के

काय प्रतीक अधिक सफल हैं जिन: अत्यधिक प्रभावी हैं:-

1:- One impulse from the vernal wood
May teach you more of a man
Of moral, evil or of good
Than all the sages can (Woodsworth)

कुल जाता है समय, धार मधु की जलने लगती है
 वैदिक जग को जोड़ करों हम और पहुँच जाते हैं
 मानवी मायाकरण एक क्षण मन से उतर गया हो
 क्या प्रकृति वह नहीं?

उ० ३/८२

प्रकृति का मानवीकरण:-

जीन्ही की "टेनीसन" ने करने में प्रकृति के
 एक स्याही सत्य का उद्घाटन किया है।
 तबसुत्य ही दिनकर ने "समय संहिता" को
 करने की शक्ति किया है जब कि वह एक

नवी सज्जी। दिनकर के दार्शनिक सिद्धान्त प्रकृति के माध्यम से मानवीकरण में
 दृष्टे हैं। प्रकृति का मनोवारी रूप भी उर्खी के "काम-विज्ञान" की और सुधार के
 कथन में शक्ति है:-

सारी देह समेट निविड आसिम्भ में भरने को
 मान हीन कर जाँच। विष्णु धनुष पर भुका हुआ है।

सम्भवतः दिनकर ने जहाँ जहाँ प्रकृति विज्ञान की सुविधा देखी है वहाँ मानवीकरण
 और उद्घाटन किया है।

जिन्ही न किन्ही रूप में उद्घाटन का गया है। सम्पूर्ण उर्खी का एक में मानवीकरण की
 अद्भुत उदाहरणों का एक विशाल संकलन भी है। एक माध्य माधन पर्यंत का कर्म की
 प्रकृति के मानवीकरण की समस्त भूमिका में समाप्त है:-

और माध्य माधन का वह अनगोत्र भवन फूलों का
 भुग ही नहीं, विष्टर भुग भी फिलाने सजीव जगते के
 वन वन की प्रजनन का जटिली केने सुनती थी
 सुख भिन्न, पूरा घास हमारे दुष्कर्म कल-कलन का
 भुग जाती थी, जिस प्रकार कानियाँ हमें भुने को
 रोज़राज मानो अपने में काहें बढ़ा रहा हो।
 जिस प्रकार विचलित हो उठते थे प्रभुन हृद्यों के
 मानो माध्य पूर्ण साक्षों को हम भी जाये थे।
 केन केन होती वह उर्मित उर्मियाली रिश्वरों की,
 प्यार काँध, जिस भाति बादलों को भुने उठती थी
 केने के टहनियाँ उज्जली हुई सुहाव विज्ञा पर
 हमें देख जाने लगती थी और अधिक बढ़ता कर।

उ० ४/११९

:- Man may come and man may go
 But- I go on for ever..
 Tennyson

प्रकृति और आध्यात्म:-

प्रकृति रहस्यमय है, इसे न तो कोई पूर्ण रूप से जान सकता है और न ही जान सकता है, किन्तु, प्रकृति मनुष्य के जीवन की

उपास, सम्भार तथा संभल जानने में सदा का कार्य होती है। संसार में सुख-दुःख,

उत्साह - विवाद, उन्नति - उद्वनति भोगने में मनुष्य जैसे नहीं है, प्रकृति उसे जागृत कर उसके साथ सदानुप्रति रखती है। उर्वरिणी का स्वभाव देवी है, जब विनकर ने इसे महानारायणी/कल्याण के द्वारा प्रकट कर जो स्वर्गिक सुखा का चित्रण दिया है उस से ही हम उस विराटसत्ता को कल्पना कर सकते हैं जो जो "एकीर्ण महारामः" में उल्लेख होती है:-

यही सत्य ही, तुम समुद्र के भीतर से निकली थी?
या कि समुद्र से प्रकट हो गई सदासी कीर भजन की?
अथवा जब अत्यन्तमा को स्थापित करने को
जबि सौन्दर्य अगाधि बाँधि, तन्मय हवि के चिन्तन में
छेदे थे निश्चेत, तभी नारी का निकल पड़ी तुम
नारायण की महा - कल्पना से, एकात्म मन से?

यथोक्ति मनुष्य ही देवत्व को और अपनी अन्तःशैलना से कावर्जित होता है और यह विराट सत्ता अर्ध माद्विबर है जो पुरुष और नारी, नारी और पुरुष की एक ही सत्ता है। "एकाकी नारयैति" के कारण ही नर-नारी की सत्ता को महा कल्पना यह समझ है:-

जिस की धाँडा या उभार भूतल, पाताल, मग्न है
दौड़ रहे नम में अमन्य कन्दुक जिस की लीला में
अनर्णित सज्जता सोम, अविरमित ग्रह उदु मण्डल बन कर
नारी का जो स्वयं पुरुष को उल्लेखित करता है
और ऐश्वर्य पुरुष - कान्ति का पूज्य पुरुष नारी का

सं 2/87

यह विराट सत्ता प्रकृति ही है।

विनकर ने उर्वरिणी काव्य में प्रकृति के विविध रूप काव्य की सुन्दरतम सुझा से प्रस्तुत किये हैं। यह निर्विवाद है कि जब जब हम उर्वरिणी में प्रकृति के मनोवहारी रूप का चित्रण करते हैं मन अतीव आनन्द एवं शांति का अनुभव करने लगता है। यही प्रकृति का सत्य सन्देश है या निमग्नन है। लेकिन "युद्ध मनुष्य यह भी न जानता है ही स्वयं प्रकृति है?"

0000000000000000

दर्शनी में चित्र योजना

संक्षेप - रचना :-

चित्र का जीवोपार्थक्य Image है जिससे हरिभाषा कहती है कि चित्र की कृत्रिम-अनुकृति, स्वर, छाया, प्रतिभाषा आदि की सकती है।
 है: चित्र-प्रतिभाषा भाषा को काव्य-रस की

मूल कि- आभिव्यक्ति के लिये आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने भी रसानुकृति में आभिव्यक्ति माना है।

कला और साहित्य के क्षेत्र में चित्र की सौन्दर्य प्रधानता विस्तृत क्षेत्र में बतलाने वाली है किन्तु है। चित्र के व्यवहार में वैचारिकता, संवेदनाओं और संभावनाओं अपने जो प्रभाव चित्र मन-व्यक्ति पर डालती हैं उन से चित्र निर्माण होता है।
 कला और साहित्य के क्षेत्रों में चित्र रसानुकृति करता है।¹

रोगाच कीकाह "भौतिक जगत्" और "वैचारिक जगत्" में अन्तर करते हुए वैचारिक जगत् को केवल व्यक्तिगत मानता है और रस ग्रहण उस वैचारिक जगत् के भौतिक जगत् की चित्रात्मक प्रतिरूपता करता है।² शीघ्रता से मन-व्यक्ति की इस सौन्दर्य दृष्टि से ही वैचारिकता को सम्भावना मानी है। यही सौन्दर्य-सम्बन्ध कल्पन-प्रकृत विचार सम्बन्ध है जो कला-चित्रों के आधार है।³ इस प्रकार चित्र के तीन मूल रूप आधार स्पष्ट हैं:-

- 1:- चित्र भौतिक जगत् की चित्रात्मक प्रतिरूपता है,
- 2:- वैचारिक काव्यनिष्ठा विचारों की जन्मी है। और
- 3:- कलात्मक काव्यनिष्ठा धारण रखती एवं भावनात्मक प्रति प्रियाओं का संग्रह है।⁴ काव्य-कला में शब्दों में निहित चित्रात्मकता से चित्र-चित्रों और

1. Reynold Peacock - The Art of Drama Page 3.
2. Russel Brain - Mind, Percept and Science.
3. Reynold Peacock - The Art of Drama Page 11
4. Ibid Page 30

कल्पना अन्य अन्य बाह्य-बिम्बों का निर्माण होता है जिस से कि काव्य बाह्य के साथ साथ हम अन्तर्दृष्टियों से विविध स्वप्नों, व्यक्तियों, स्थानों, दूरियों एवं कालांतरिक अन्य मन्दों को प्रत्यक्ष होते देखते हैं। ये जैसे स्वयं बिम्ब रहना में बहुत सहायक होते हैं।¹ अतीव गति की दृष्टि, आंतरिक और जैसे प्रकृत कथियों ने बहुत प्रकार निर्मित बिम्बों को "आध्यात्मिक संवेदना" *Spiritual Sensations* कहा है। जो सम्पूर्ण आत्मा को त्रैल मंडालित कर देती है। कल्पना शीलता होती भी त्रैल रूपों न हो प्रभावकारी होती है।² यह स्वयं प्रातिम ज्ञान *Intuition* अथवा दृश्य ज्ञान जगत् और अनुभूतियों की बाह्य प्रति-क्रिया स्वयं आकार ग्रहण कर बिम्ब योजना करती है। जसा हमी जगत् की व्याप्त अन्य वाक्यांशों का परस्पर सम्मिलन क्रिया प्रतिक्रिया का रूप है। इसी रूप से भाव, काव्य, अथवा काव्य-बिम्बों की रहना होती है। ये बिम्ब अन्ततः स्पष्ट हैं, बिम्बों का अपना असंग से कोई अतिशय नहीं, किन्तु जब ये बिम्ब एक दुसरे में मिल मिल कर काव्य-प्रतिभावा कल्पे हैं तो एक स्पष्ट का स्वरूप बनाते हैं।³ ये बिम्ब मोन्दर सविता में ही रह कर काव्यकला को उत्कृष्ट बनाते हैं, यही बिम्ब कथाजोर पायों के सन्दर्भ में बिम्ब और स्वप्न - मन्दों की रहना करते हैं।⁴ जैसे ये हमी आधार पर कहा है कि कल्पना अधिक बिम्ब अस्तः-करण में कल्पे हैं और तर्क ^{अनुमति} तर्क तर्क दृश्य-जगत् विचार बनाते हैं।⁵ दार्शनिक जगत् ने ज्ञान के जो श्रेष्ठ --- मन्दमजोर बिम्ब बनाये हैं।⁶ ज्ञानार्थ राम भद्र शुद्ध के ज्ञानानुसार कल्पना जगत् और और तर्क जगत् मन्दमजोर और स्वयं प्रकार ज्ञानानुसार के ज्ञान से जगत् की बिम्ब रूपों न हो अभिव्यक्ति को जोड़ कर नहीं कर सकते।

बिम्ब का रूप बहुत व्यापक है, हमारी सीमायें कल्पना और तर्क के जाने जान-भाव, स्वप्न, और इस चेतना तक व्यापक हैं। जगत् बिम्बों को अत्यंत मन की सृष्टि मानना है कि जगत् में स्वप्न में सृजित वाक्यांश गटनायें भी सु-दूर स्वप्न से कर छिटित होती हैं। अद्भुत और कल्पनाशील गटनायें भी हमारे स्वप्न की सृष्टि हैं अथवा वह अद्भुत कल्पना जोड़ का बीच हमारे मन में पड़ने ही से है जो हमारी रागादयः कृतियों की सन्वेदनाओं को काव्य में शब्दों से अभिव्यक्ति करता है।

कविता के लिये बिम्ब भाषा की आवश्यकता होती है। प्रभाव जो ने भी कहा है:-

"कवित्व सर्व मयः किञ्च न ज्ञो तर्गाद्य भाव पूर्ण संगीत भाषा करती है।"⁶

1:- Reynold Peacock - The Art of Poetry - 56 2:- Ibid Page 61 3:- Ibid P. 217-18

4:- Ibid - 231-32

5:- Benedote Croce - Aesthetics ch. 1

6:- प्रभाव:- कल्पना गुण 1 - 3 - 20

चित्रात्मक भाषा का महत्व सभी कवियों ने स्वीकार किया है। दिनकर ने छंदाल की भूमिका में लिखा है:-

" कविता और वृत्त को चाहे न करे, किन्तु, कियों की
रचना वह अवश्य कल्लोहेवैवै करती है।"

आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने इन्द्रिया, स्मृति और कल्पना के रूप विधानों को कल्पना ही के तीन स्तर बताये हैं जिन में से कल्पना रूप विधान ही काव्य चित्रों को जन्म देता है। चित्र की सफलता हमारी रागैन्द्रियों को प्रभावित करने में है। वह इस प्रकार चित्र में कल्पना, संवेदना, भावना, आवेग, अनुभूति व ज्ञान के साथ साथ ऐन्द्रियिकता भी होती है, किन्तु, यतका आधार मूल रूप संवेदन ही होता है। इस व दृष्टि से चित्र के दो भेद होंगे:-

१:- प्रत्यक्ष-वृत्त रूप चित्र।

२:- अप्रत्यक्ष रूप चित्र।

उर्वशी में व्याप्त चित्रों की सर्वां रूपों दो वर्गों में करना अभीष्ट है।

उर्वशी में प्रत्यक्ष - वृत्त चित्र:-

उर्वशी के प्रारम्भ में सुन्दर - नटी

प्रकाश सम्पूर्ण वातावरण कीव दृष्टि करता

है+---ऐक्यतावरण ही जिसे भ्रम में सबल ही

देखा है, अनुभव किया है। अतएव कल्पना

उन चित्रिका - विभीषण रात्रि का सबल ही निर्माण कर लेती है जहाँ 'व्यापकी' का अनुभूति अपनी चित्रिका विधीर्ण कर रहा है --- शक्ति, चन्द्र मति, धरती - जल आकाश के मिलन शक्ति, वृत्त की गम्भीर देखा में प्रभावित जगत् की मादकता का एक जीमल चित्र है। उगी क्षण क्षणवात्मक मूल वातावरण में व्याप्त ही गई है:-

शक्ति-शक्ति सब और, किन्तु, यह रक्षण कक्षण सारं कहेता

मूल आनन्द-उर में कैले गुप्तर भक्त रहे हैं'

X X X X

कलकल करती हुई न तिल सी गाती धूमधवाती

अम्बर से से नीम कमर प्रतिमाये उतर रही हैं'

उड़ी का रही छूट चुहुन चालारियां उल्लङ्घन से

या देवों की वीणा की रागनियां भट्ट झ गई हैं' ।

१:- दिनकरः३ उर्वशी पृष्ठ ६

अनन्य वचनम रघुनि, कत कत रघुनि और नूर - मंदारकनात्मक कोष्ठ *onomatopoeic*
Sound से सौन्दर्य रचना करने में समर्थ है। पहले अंश के तीसरे गीत में
 भी सही ऋग्व्यात्मकता *onomatopoeia* गूँझी रहती है। । ती स्पष्ट
 देखा देखा जा सकता है कि इस गीत पर कविवर सुमित्रक मन्दन पंत के शोधनों का
 नृत्य शीर्षक कविता की ऋग्व्यात्मकता काई पूर्व है --- उनकी वक्ति मिला ज देखे:-

तो उन उन उन उन उन उन उन, और
 पुन पुन पुन, पुन पुन ।

पंत जी की काव्य वक्ति में सहकता है, दिनकर की माँति विचार अन्य शृङ्खला नहीं।

पुरातनक विम्ब रचना में तो सम्पूर्ण उर्वशी काव्य विम्बों का ही संकलन है।
 प्रथम अंश का प्रथम गीत --- "पूनों की नाच बजाओ रो, यद रात लबली आई"
 एवं अष्टम अंश का "रमली का धमन" विम्बों की श्रृंखला पर मन्दन की जाली
 है।" लबली भाव से विम्ब एक रेखांकन है। येनका रमली महत्त्व का नाटकीय
 सम्वाद विम्ब विम्बों की एक पगो खोपिका है कि वृत्तों के देव गीत तक की कल्पना
 मन्दनमनु से अनन्तर तक की विम्बा, लम्बी लम्बी और सुन्दर के अनेक विम्ब दिव्य हैं।

उर्वशी में लीला विम्ब :-

इस मौलिक जगल की रूप रचना के उपरांत
 कवि दिनकर उर्वशी के मौलिक सौन्दर्य पर आकर
 टिक जाते हैं। उर्वशी क्या है, कौन है, उसका
 स्थापन ही महीप्रभाव की सौन्दर्य कोष्ठ से पूर्व है:-

"हमी जिसे तो सती, उर्वशी जना मन्दन पुन ही
 नूर पुर की कोमुनी, कविता काव्यका हन्ट के मन की
 'सिद्ध' विरागी की समाधि में राग जगाने वाली
 देवी है शोचिन में मधुवन आन बनाने वाली
 रति की मूर्ति रमा की पुतिमा सुपा विश्वमय घर नर की
 विशु की प्रानेवरी, जातनी-विद्याकाम के कर की।"

उर्वशी के मन में जात्रा प्रेम का मौलिक धरातल विम्बा मजीध है, विम्बा भावक है
 कि उस का प्रत्यक्ष विम्ब अपना प्रभाव जीते बिना नहीं रहता --- स्वरजम्बा का
 कथन है:-

" लकी उर्वशी की कुछ दिन से है लीक लीक ली
 लम से लगी, लम्पके लुंनों में मन से लीयी ली
 लड़ी लड़ी लम्पकी लीकले लुई लुलु पंशुरिया
 लिनी लयान में लड़ी लवाँ लैनी लीकली पर लीकली " १

1:- दिनकर: उर्वशी - पृ० ७

2:- उर्वशी पृष्ठ 13

3:- उर्वशी पृष्ठ 13

उर्वशी की 'यों', समस्त अप्सरायें ही भागर आत्मजा हैं; अतीम^{ही}, उन्मूल हैं। इन्होंने
हथकाओं की अमिता तरंगों में रंगित हैं, रंगित हैं। ये अप्सरायें भी --- मेनका,
उर्वशी, --- मानवों की मातायें हैं। मातृत्व का चिम्ब दिनकर ने बहुत ही सुन्दर
प्रस्तुत किया है:-

" स्वभावी भी सही, मुझसे यही श्रिया लगती है
जो मोदी में लिये क्षीरमुह शिशु को लुना रही हो
अथवा सही प्रसन्न मुख का बलना लुना रही हो । 1

जाया और जन्मी के दो रूप स्वल्प अविस्मरणीय हैं और इनका प्रभाव हम सम्पूर्ण
काव्य पर छाया रहता है। किन्तु यह मातृत्व प्रधान उर्वशी-जाया और जन्मी-सो
सौन्दर्य के समस्त सोपान लार्थ कर अतीम सौन्दर्य शालिनी हो गई है:-

महीं तबकी नारि नहीं, आभा दिनचित्त मुलन की
रूप नहीं निरुक्तुम कल्पना है मृष्टा के मन की। 2

इसी अर्थ से उर्वशी का रसिकता रूप में रूप की ओर चल रहा है। दूसरे अंक में
निषुजिका उर्वशी के रूप सौन्दर्य को उपमाओं में ढाल कर वर्णन करती रहती है।
उसी अंश - अरीचिका उर्वशी को महाराज वृत्तवा ने मोह में उठा अपनी बागों में
लपेट लिया है:-

महाराज ने देह उर्वशी को अक्षीर आमुना कर
आगों में भर लिया, छोड़ मोदी में उसे उठा कर । 3

लेह लेकिन हम के क्षिरहीत औसीमरी का झोड़ भी दर्शनीय है। सौन्दर्य और झोड़क
ऐसे वर्णन करने वाले पात्र के प्रसंगों में कवि दिनकर की अनुभूति तीव्रता का वीरुतक
दखौतन करते हैं। अगर वृत्ति की सुखीमल भावना के साथ झोड़ और सुगुप्ताका का
चित्रण एक सजीव चिम्ब है। पतिवृत्ता औसीमरी को सपत्नी जैव हयो न हो
एक भारतीय नारी का आदर्श वातिवृत्त धर्म--- पुर पुर ही रहा है। उस दर्प दीप्त
नारी की कुंठा की अभिव्यक्ति कितनी मार्मिक है:-

जाने वह गजिका का मैं मैं क्या अहित किया था
कह किस पूर्व जन्म में उस का क्या सुख लीन लिया था
जिस के कारण प्रमा हमारे महाराज की नति की
हीन ने गई अधम पापिनी मुख से मेरे पति को। 4

यह आक्रोश स्वाभाविक है, इस लिये प्रिय भी। यही नहीं, गजिका, अठन, पापिनी,
प्रवीचका, व्याधिनिद्या आदि शब्दों का प्रयोग उनके निहित व्यंजना के सटीक स्वल्प
है। इन शब्दों में जो रूप, गुंज और रंजार लिये हुए हैं वह पाठकों या श्रोतकों में
ऐसी अनकही चिम्ब छोड़ देती है कि पाठक की समस्त सम्मेलनी उनके साथ चूड़
जाती है।

1:- उर्वशी: पृ० 19

2:- उर्वशी पृ० 24

3:- उर्वशी पृ० 30

4:- उर्वशी पृ० 32

सूत्र विम्बः -

उर्वशी के प्रथम दो अंक एक प्रकार से सूत्र विधान के अन्तर्गत आते हैं। कार्य-गहन वैचारिक और अनुभूति के धरातल पर तीसरे अंक में ही है। जब से

पुरुषा - उर्वशी का मिलन हुआ है तब से उर्वशी फूट निःसी है। सूत्र विम्बों का निर्माण भी तो मन के अन्तः प्रान्तरों में होता है। उर्वशी के लिये पुरुषा का नहीं रक्ष मात्र किताना अनुभूति जनक है बसकी कल्पना कीजिये:-

वह विद्वन्मनसा साक्षि तिमिर है, पाकर जिसे स्वप्न की
मौद दृष्ट जाती, हैक रोमों में दीप्त जल उठते हैं
वह आलिंगन आश्रय है, जिस में छंद जाने पर
हम प्रकारों के महा सिन्धु में उतराने लगते हैं। 1

पुरुषा का यह आलिंगन प्राप्त करने के लिये तब तक चलता रहता है जब तक कि वह स्वप्न की कल्पना में पुरुषा का स्पर्श नहीं होता है। उर्वशी की यही विवशता है कि तब तक चलता रहता है जब तक कि वह स्वप्न की कल्पना में पुरुषा का स्पर्श नहीं होता है।

तब से मुझको छोड़ दूँगे अपने दूर आलिंगन में
मन से, जिससे विषय दूर तुम कहां चले जाते हो
करना कर वीर्य प्रेम का आँसू ही आँसू में
मुझे देखते हो कहां तुम जा कर हो जाते हो। 2

उर्वशी मन की पीड़ा है उर्वशीजित मारी है, ऐसी मारी जो धृष्ट धर्म का जीने के लिये दू लोभ में आ गई है। राजा पुरुषा की आलिंगन है उसी उर्वशी पर है जो केवल एक दिवस का है। --- वह लये से पूजा है:-

"हम कभीकों की लताई देखते हो"
जो अंधों की हंसी यह हँस ली, चुली-जली ली
गौर सम्मेलन-विष्ट ली वह रोक प्रत्यक्ष पुरुषावरण से
स्पर्श की प्रतिभा बना के स्वप्न साक्षि में डली ली
प्रिय तुम्हारी कल्पना वैचारिक कर ली
मरती मारी प्रकृति का चित्र है तब से मनोहर। 3

और फिर वह उर्वशीरासीय कल्पना जहां:-

फिर धृष्टि कीर्ति अतिथि आकाश देता,
फिर अंध-मृदु धीमे लगे अंध को
कामना ए कर स्वप्न की फिर जगाती है
रंगने लगे सबको साधे लोभ के लहर में।

कैतना रस की लहर में डूब जाती है।⁴ कहना न हो-गा कि यह कल्पना दिव्यर को रोसापीयर के "वीनस और एडोनिज" काव्य से प्राप्त हुई है।

1:- उर्वशी: पृ० 44

2:- उर्वशी: पृ० 44

3:- उर्वशी: पृ० 47

4:- उर्वशी: पृ० 49

Touch but my lips with those fair lips of thine

में भी अगर अड्डों की छीच में आकुल हैं। रोसनीवार तो दिनकर से भी अधिक सुंदर हैं।

*Here come and sit where never serpent kisses
And being set I will smother thee with kisses. 1*

जैसे सम्भाव्य रोसनीवार के वीर्य और यडोंनित काव्य में हैविते ही सम्ये सम्ये स
सम्भाव्य उर्वशी के सुतीय अंक में हैं।

पुरुषवा का पौल्येय विम्व तो एक ही वीर्य में व्यापक है:-

"मर्य ममान्य की विम्व का सुय्य हूं मैं।

उर्वशीकपने समय का सुय्य हूं मैं।

सोम यंत्री येन पुरुषवा सुय्य-कान्तिसे वीर्य है जो वायव्यों की शीत पर सुय्यन्दन जला
सकता है, अंड सम के मात पर वायव्य जला सकता है परन्तु एक रमणी क सात्विक
ज्युप्त करने के लिये ज्ञान-विद्वद वशी की कांति प्रेयसि के ज्ञान पर शीत-रक्तकर करने की
एवं वृत्त पौल्य के समान प्रार्थना के गीत गाने की कामना करता है। पुरुषवा की वृष्टि
में उर्वशी क्या है? एक रंजीत स्वप्न सुन्दरी --- एक यजिष्ठिम प्रतिमा।² उर्वशी
स्वप्नित, ज्युप्त वक्ताओं की वृष्टि का लक्ष्य है उर्वशी। सुन्दरी और उर्वशी स्वयं
वृष्टि और रक्त में सुम्ना करती सुय्य विचार से मायना की, तर्क से जावेन-सविन की
महत्त्वपूर्ण ज्ञा रही है। रक्त की संवेदना वृष्टि के तर्क से ज्ञाती है क्योंकि "मिरी
वृष्टि की निर्मितियों निष्ठान्त हुआ करती हैं।" यह स्वयं मायिका मैदों के स्व-विम्वों
की प्रत्युत्तर कर देती है:-

वासक सज्जा:-

या वासक सज्जा कीर्त वृत्तों के सुय्य मयन में ,
यद्य जोवती सुय्य सविन तन्म वृष्टि करने की
उड़ी समुद्रसुख पद्मराम मयि - नूर ज्ञा रही की।

विजुतज्जा:-

या कीर्त स्वती उन्मना केटी ज्ञान रही की
प्रणय सेव पर, विविध -वास, विजुत की अमरार्थ में
तिर की और चन्द्रमा मन्म-विज्ञाकला ज्ञा कर।

समानमप्रिया:-

वृत्ति यह पर उत्तम रवार्थ का स्वयं और अड्डों पर
रत्ना की सुन्दरी, अवीर्य विविध के वीर्यवासे में
रक्त-वासी, मन्दकी उर्वशीयों की संवरण रवार्थ पर
वस निष्ठु वृत्त का आरंभ वृष्टि समक सकती है।³

1:- Venus and Adonis - Shakespeare

2:- उर्वशी: पृ० १४

3

3:- उर्वशी: पृ० १६

किन्तु मानसिक विम्व की वास्तवता तब केवल तभी तक ही सीमित है ^{नहीं। १६६} जहाँ मन के मुख्य कौशल तक भी व्याप्त है। यही हम द्वारा अल्प ऊँच का दर्शन है। यही ऊँच का भाव-उन्नयन *Sublimation* है। इस विम्व कुमार केन ने दिग्दर्शक के रूप में विम्वों को उन्नयन कर लिखा है:-

"यैसा प्रतीत होता है कि ऊँच के ^१ उन्नयन की सुरक्षा सुँचों में विचार कर चुका है और मादक लीनियर का रसास्वाद सक्त: से चुका है, अन्वया स्तना वास्तविक किन्तु उद्दाम और मादक कर्म अत्यन्त ही।"

यस काम प्रक्रिया का एक भावनात्मक विम्व स्तना मानता है कि सुन्दरी स्वामी कलक --- काम सुँचासुर उर्वशी --- महाराज पूरुषा की भी काम कला की प्रक्रिया समझती रही है, मानो पूरुष पूरुषा इस काम कला से निराला अनभिज्ञ हो। फिर भी काम केतना ही, जिसे प्रवृत्त "सिद्धि" कहता है, यह एक सचीव चित्र है:-

को रही वह बली भाँति, उर-बीज आनिमल में
और जलाते रही अर-पुट को अर-पुष्प से
किन्तु आह। यों नहीं, तनिक तो सिद्धि करी बाहों को
निवेदिता मत करो!.....
ना, यों नहीं, आदि।

विचार विम्व:-

पूरुषा सुँच काम से सर्व जन्म विचार विम्वों की रक्षा रचना करता है और उर्वशी उर्वशी विचार विम्वों को वाचना, आवेग, सविग, सविदन से समन्वित कर विम्व की पूर्णता को चिन्तित कर देती है। उर्वशी-कार ने शैलजीवर के स्वर को उर्वशी उर्वशी काव्य में यत्र तत्र ज्यों का त्यों मुद्रित कर दिया है। उर्वशी के लिये पूरुषा प्राप्ति, ज्ञान-गुरु, सहा, मित्र सहचर *Friend Philosopher & guide* है। पूरुषाद्वारा जय शंकर प्रसाद के गीत "जीन सुम" संकृति जलनिधि तीर तरंगों से बँधी मणि पथ की प्रतिकृति दिग्दर्शक नाटकीय गैली या कदमा/दाहिने "मदारी देली" में व्यक्त की है किन्तु --- काव्य की उद्धारसमानता को गर्व प्रतीत होती है।

उर्वशी:- जीन पूरुष सुम'

पूरुषा: सुमसुमसुम

जो अनेक उर्वशी के अविद्यासे में

सुमे होजाया फिरा

उर्वशी:-

और जीन में'

पूरुषा:-

ठीक ठीक यह नहीं जाता सकता है।

1:- उर्वशी उ पूरुषा अन्व सुतिया: पुष्प 234

2:- उर्वशी पु० ६।

यह ही मयारी - समुद्र का डेल कैसा विम्व है जो रसाहास करता है। कभी
पुलकित वैचारिक स्तर पर उसी उर्वशी के मादक लीन्य को चित्रित करने में मजबूत
हलना - विम्वों को चित्रित करता है। कवि दिनकर का यह भाव उन्नयन

Sublimation है। उर्वशी के लोचन मय के दर्पणों, कपोलों में उन्मा की द्युति है,
किरीटों के से अक्षरों पर मदन नाचता है, कृतियों में अङ्ग विन्दु करते हैं, बाँहे विन्दु
हैं प्रकाश की किरणें हैं, छा के सुन सुन सुरमि विनाम मदन हैं "जहाँ मृत्यु के बलिष्ठ
ठहर कर शान्ति दूर करते हैं।" और उर्वशी मानवी नहीं है तो फिर क्या ये
उपमेय और उपमान व्यर्थ हैं। यह तो वैसीय है जिस पर सदा एक रहस्य मय
मिलमिल आचरण बड़ा रहता है।

दिनकर की उर्वशी पर रवीन्द्र की उर्वशी के विम्व आरोपित किये जा सकते हैं।
रवीन्द्र की उर्वशी नाम-नाम हीन है --- न उन्मा है, न मज्ज है, न माता है, यह तो
मन्दन वासिनी उर्वशी है ---

अवसेन प्राण की प्रभा, चेतना के जल में
में स्व-रंज-रस-मन्द पूर्ण साकार सकल है।²

यह अवह हलना है। उर्वशी की आरमा-स्वीकृति है:-

"मैं नहीं सिन्दु की सुता
तलातल-जल-विमल-वाताल जोड़
नीले समुद्र की केशु सुझमल केनायुत में प्रदीप्त
नाचती-बर्बियों के तिर पर
मैं नहीं महातल से निकली।"

यह रवीन्द्र की उर्वशी है --- दिनकर की नहीं:-

*from the shoreless unfathomed deep wilt thou rise again
with wet locks?*

दिनकर की उर्वशी --- " कामना तरंगों से अक्षरी जब विम्व पुलक का दृश्य सिन्दु
आलोक्ति, भुक्ति बलिष्ठ हो कर अपनी समस्त यज्वांज कण्ठ में भर कर मुझे कुशाता व
है तब मैं अर्ध यौवना पुलक के निमृत्त प्राण सल से उठ कर प्रसारित करती निर्विकल
युद्ध केमल शान्ति, कलना लोड से उतर कुमि पर जाती हूँ।" ऐसी उर्वशी रवीन्द्र
की ही है दिनकर की नहीं/ हो सकती। रवीन्द्र कायु लिखते हैं:-

आदीन ज्ञान्त प्रात उठि चौते मन्थित सागरे
 उम होते सुधा बात्र, धिब माणुजोये बात्र कोरे
 लहेरींगत महा सिन्धु, यत्र शान्त मुलमे रमतो
 बोड़े चितो पद प्रान्ते उच्छलित वन लक्षिता कोरे अवन्ति
 दुन्द राउ नम कान्ति सुरेन्द्र मन्दिता
 सुमि अमिन्दिता ।

यस प्रकार के अनेक उन्द उर्वशी के चित्रण में रवीन्द्र बाबू की उर्वशी के चित्रण की प्रतिष्ठाका मात्र है या यह कहें कि दिनकर ने केवल अपने नाम से निर्दिष्ट हेर वेष के साथ उर्वशी शब्दों और भावों को पैसा की लिक दिया है।

और दिनकर की यही उर्वशी "देव काल से बरे है।" इसके विषय में ही दिनकर ने अपनी बुद्धि में लिखा है:- "मेरी दृष्टि में पुरुषा सनातन नर का प्रतीक है और उर्वशी सनातन मारी का।" किन्तु, पुरुषा न तो सनातन नर का प्रतीक है और न ही उर्वशी सनातन मारी का। जो सुन्दर - सुदय समन्वित सर्व-मायना संयम स्थापन वर मूल प्रकृतियों का, विशेष कर काम प्रकृतियों का --- दूधोत्पन्न कर रहा है वह समस्त प्रकृत प्राणी मात्र में समान है। सनातनता में विद्यता है तो पुरुषा पुरुष है और उर्वशी अप्सरा। इनका मिलना एक प्रतीकात्मक अर्थ होता है।

उर्वशी में सर्व विषय:-

सर्व विषयों को "सम्बन्धित आक आर्ट सम्वरी" कहा गया है।² निम्नानुसार ने ज्ञान को ही "सांस्कृतिकता को मानसिक विषयों में प्रतिबिम्बित प्रस्तुति कहा है।"³ इन मानसिक

विषयों में सर्व-विषयों की कल्पना भारतीय कृतक पुराण साहित्य में वर्णित मिलती है।⁴ विशेषी साहित्य में भी वर्णित में ज्ञान ने सर्व का स्व कारण कर "ईश" और पदम को ज्ञाता था, कवि मिलन ने, किन से दिनकर बहुत प्रभावित रहे हैं, अपने काव्य "वैराग्य साह" में सर्व के स्व में ज्ञान की ही प्रस्तुति किया है जो ईश, प्रपंच, शोका, विषयगत शांत, कृतकता का प्रतीक बन गया है। उर्वशी में और दिनकर के अन्य काव्यों में भी यह सर्व यही प्रपंच, उत्त, कृतकता/कावि के प्रतीक रूप में चित्रित हैं। उर्वशी में सर्व विषय अपने अनेक रूपों में वर्णित है। सर्व काल का प्रतीक है। काल अनन्त है, सर्व की सम्भावना है, सरलता है --- काल भी सरलता है --- निःशब्द। उर्वशी के सुतीय अंक से ही सर्व विषय प्रारम्भ हो जाते हैं:-

१. शेर - ३६१ - ३६२ वर

२. Reynold Peacock. The Art of Drama P. 15

३. A. N. Cole. British Drama P. 1

सर्प बिम्ब काल प्रतीक है

यह है हम तुम मिले, न जाने, क्या हो गयासमय को,
सब होता था रहा मनुष्यमति से अतीत मरुत में,
किन्तु, बाप, जब तुम्हें देखें मैं घुरघुर को लौटी थी,
यही काल अजगर-समान प्रानों पर बैठ गया था।

उर्वशी भारी मन लौटी थी। अजगर से भारी और कोई सर्प नहीं होता। भारी मन की भारी अजगर में कल्पना करना कवि की उर्वर कल्पना शीलता का द्योतक है। अजगर भी तिल तिल सरकता है --- अपने जोर से --- भारी मन भी तिल तिल कर ही अपने जोर को बलका करता है।

किन्तु, घुरघुरा का पौलौष स्वर उर्वशी की चिन्मत्ता से त्रिन्न है। घुरघुरा को अपने पौलष पर गर्व है, इसे अपनी कुजाओं की शक्ति ज्ञात है, एक बार वह काल-सर्प को भी घुमाती हैने का उद्घोष कर सकने में सक्षम है। उसके ---

"सामने टिकते नहीं बनराज, पर्यंत ठोको हैं,
काँधता है कुँडली मारे समय का व्याल।" 2

उर्वशी समय सीमा को मामों के सम्बोधन से जानती है। वह पल, दिवस, मास, सम्प्रसार, क्षण, मूर्ध्ति, स्फाब्दी, आदि की काल-संज्ञा का प्रवाह मात्र मानती है जो निःसंख्य सरक रहा है। घुरघुरा इस काल प्रवाह को समस्त संवत्सर में उठा अर्धमासी संवत्सर में प्रतिष्ठित करते हैं। चन्म-मरम, वरतमान-भूत-अविष्यत्की काल के एक क्षण में लिमटे बैठे हैं। यह न समाप्त होने वाली उर्वर काल - मति है:-

"कहीं" समापन नहीं है उर्वर-मासी जीवन की मति का
काल द्योनिमिथ में विडाल का कोई झुल नहीं है,
कहीं कुँडली उठते हैं मार बैठ जाओ व्याल - निजय में। 3

सर्प बिम्ब माया है

जीवन - इस माया का है। माया बुद्धि से संघातित है। बुद्धि सर्व प्रज्ञान है, अर्थात् बुद्धि स्वार्थ-साधन है अर्थात् जो मुँही है। विनवर भी इस माया कल्प संसार में बुद्धि की विविधजायगी मानते हैं:-

प्रकृति नहीं माया, माया है नाम प्रकृति उसकी का
बीचों बीच सर्प-सी जिस की चिन्ता पटी हुई है।

1:- उर्वशी: पृ० 40

2:- उर्वशी: पृ० 50

3:- उर्वशी पृ० 50, 63 - अरविन्द की कल्पना का प्रभाव ---

Time like Snake coiling among the stars.

यहाँ भी दिनकर ने पत्नी चित्ता कर कर सुन्दर की निमित्तियों को निरुपेक्ष,
निष्ठावान ही करने की चेष्टा की है।

काल कृष्ण की यह अनन्तता और माया का यह सुन्दर वैचारिक कल्पना एक
सर्व-विश्व के रूप में एक उदात्त-सौन्दर्य कल्पना है। उसे सौन्दर्य कल्पना से
सादृश्य है ऐसे काल सर्व विश्व से जो एक ओर वास्तविक रूप में अमृत-सद प्रीति
जीवन लक्ष्मी देवीर दूसरी ओर विश्व भाण्ड का सार्वभौमिक रूप में विनाश का प्रतीक।
यह दोनों के बीच माया है। प्रेम - माधुर्य और विरक्ति विनाश-कृष्ण के प्रतीक रूप में
भी सर्व विश्वों का प्रयोग दिनकर ने कृत किया है।

प्रेम और काम के सर्व विश्व:-

शेक्सपीयर के कल्पना रंगों में रंगे दृश्य-चित्र
दिनकर भीमल और कोरिन्थी-कैथरिन्स
में वर्णित प्रेम और प्रेमियों के अनन्त-सुख

दूरियों को उर्वशी और वृत्तवा के स्वरों में प्रतिबिम्बित कर रहे हैं:-

फिर अन्ध-बुढ़ छोड़ने लगते अन्ध की
कामना पू कर रवचा को फिर जगाती है
रंगने लगते लहरों साँसों के लहर में
प्रेमना रस की लहर में डूब जाती है। 2

शेक्सपीयर का भी ऐसा ही चित्र है:- Touch my lips with fair lips of thine
Here come and sit where never serpent kisses,
And being set I will smother thee with kisses

कवि दिनकर इस वैचित्र्य स्तर की जातता से उठ कर काम की अद्भुत शक्तियों की ओर
ओर उठते हैं। उर्वशी तो देव भाव की केवल प्राप्ति करती है।³ वह सम्पूर्ण रूप से
अवस्थ है, जन जन के मन की मधुर वस्तु है, वह नारी की चरम कल्पना है, और नर
के मन में निवास करती है। वह स कामना है:-

"विचर के मन पर अमृतवर्षि" है। 4

मन्त्र-प्रेमना वादी प्रणवत सुंम और एकर के वैज्ञानिकों ने भी काम की अन्तर-प्रेमना
की उर्ध्व माना है। यही काम वृत्ति समस्त कार्य व्यापारों को सम्पादित कराती है।
दिनकर ने इस काम वृत्ति को सर्व रूप में व्यक्त किया है। मिन की महारानी
लिलयोवेदा के मुह में सर्व की ^{आकृति} अमृत है और वह काम धृष्ट से प्रीति नारी सर्व का
ही उपयोग करती है एन्टोनी की मृत्यु के लिये। कहना न होगा कि एन्टोनी और
लिलयोवेदा की प्रेम क्या विश्व साहित्य की अत्यन्त निधि है। यह लिलयोवेदा भी
उर्वशी के समान अद्भुत सौन्दर्य की स्वामिनी है जिसे उठ नहीं व्यापती।⁵ दिनकर ने

1:- एन्टोनी नाथ टैमोर --- उर्वशी

2:- उर्वशी: पृष्ठ 49

3:- उर्वशी: पृष्ठ 89

4:- उर्वशी: पृष्ठ 91

5:- Age cannot wither her nor custom stale her infinite variety.
-Shakespeare

उसका कामिनी उर्वशी के साथ कंचन का भी समावेश किया है जहाँ लीडर में सोने के स्थान रंगोले हैं।

सर्प की गति सदा एक वैश्व नहीं है, मानव-मन की कामनाओं की वजह नहीं है। दिनकर ने काम प्रतीक रूप में कुछ सीमा जिसे प्रस्तुत किये हैं जिनमें से उर्वशी में भी के एक चिह्न है --- जो वही "नील कुसुम" और "लीपी और गंध" में है। नील कुसुम में सब से पहले "सोने के साथ" की कल्पना की गई है जो कि ने चिह्नित की है:-

"सुख में सुगंध का वही वही के फूल सी कविता

सुख में रंगोले लगे वजारी साथ सोने के।"

उर्वशी में भी वही वजारी में --- "रंगोले लगे लज्जों साथ सोने के लीडर" में यही भाव अभिव्यक्त है। जबकि "लीपी और गंध" में यही वास्तव की गाँठ है:-

मगर हसना करो

लेखित --- सारी दुख --- वास्तव की गाँठ मत छोड़ो

--- काँगड़ी: पृ० 42

दिनकर के इस प्रकार सर्प चिह्नों का प्रयोग न केवल रत्न, प्रपंच, कृतकता के ही रूप में किया है अपितु काम-संरंगों के लिये भी लक्ष्मी में जो आलोचन-विद्रोह होता है उसके लिये सर्प-चिह्न से अधिक सुन्दर और कोई चिह्न ही नहीं सकता था। काम रत्न दिनकर के स्वयं के लोभ से सत्य के अधिक निकट है अथवा अधिक वास्तविक है इस लिये मांसल व भौतिक होते हुए भी सुख और उच्च उर्वर मायी है।

000000000000000000

.....

उर्दूगी में प्रतीक विधान

प्रतीक का अर्थ:-

प्रतीक का अर्थ जानने के पूर्व सम्दर्भित कल्पना, स्वक और प्रतीक का सम्बन्ध जानना आवश्यक है। कल्पना विम्व - रचना में सहायक होती है और जो भी मानसिक विम्व है वे किसी न किसी सविग के प्रभाव में ही निर्मित होते हैं। विम्व भव्य और चतुर् नही होते। विम्व रचना का मूल आधार चतु-प्रतीक और भावनात्मक आवेग का मिश्रण होता है। किसी विम्व को जब कवि अभिव्यक्ति प्रदान करता है तब स्वक का आशय होता है। स्वक में उपमा भी होती है और प्रतीक भी। कविक यह कल्पना अधिक संगत हो गा कि प्रभाव रीति प्रतीकारम्भता द्वारा संकुचित उपमायें ही स्वक रचना करती हैं। गीत माध्य में गीति सत्य चन्दों प्रतीकारम्भिता स्वकों द्वारा संगीत-ध्वनि से प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करते हैं। गीत में से यदि अभिव्यक्ति को हटा दिया जाये तो केवल प्रतीक हीरेज ज्यों में जो भावनात्मक आवेग को प्रकट करते हैं और यदि गीत में से शब्द योजना को प्रकट कर दें तो केवल संगीत के ध्वनि - तय विम्वों के प्रतीक ही बचते हैं।¹

प्रतीक की प्रतीति:-

सामान्य साहित्यिक अर्थ में प्रतीक का अर्थ प्रति स्थापन से है। संस्कृत साहित्य का उपलक्षण शब्द प्रतीक का समानार्थी कहा जा सकता है। अभिव्यक्तिमान समीक्षाकार उपलक्षण के स्थान पर उचित है विम्वक Symbol शब्द के सम्बन्ध में प्रतीकारम्भक बोध से अभिव्यक्ति - धोषण को प्रकृता देते हैं। इस प्रतीकारम्भता का अर्थ विम्व, कल्पना, स्वक और संगीत के सम्बन्ध में ही जाना जा सकता है। निम्न के गीति माध्य उर्दूगी में विम्वों की प्रकृता है। स्वेक अत्यय प्रतीकारम्भक अर्थ भी उर्दूगी प्रतीकों में निहित है। इन लक्षणों पर परीक्षण करने से यह प्रतिपादित करना अभीष्ट हो गा कि उर्दूगी में अर्द्ध अर्द्ध अर्द्ध अथवा अर्द्ध सत्ता को मूर्त रूप देना प्रतीकारम्भक अभिव्यक्ति है क्योंकि जब कोई पदार्थ प्रतीक बन जाता है तब वह साधारण होते हुए भी असाधारण अर्थ - न्योति का विस्तार करता है। निम्न उर्दूगी में इसका जीवम महत्त्व है।

1. Reynold Peacock - The Art of Drama - Page 48-49

कविद्वय दिनकर ने स्वयं स्वीकार किया है:-

भूत-रस

" उर्कती राज्य का को-मल अर्थ होगा इरकट अभिभासा,
अपरिणित वासना, दण्डा अर्थात् कामना। और
पुस्तका राज्य का अर्थ है वह व्यक्ति जो नाना प्रकार के
का रस करे, नाना प्रकार के दानियों से आकाश हो।"

इसी सन्दर्भ में कवि दिनकर ने यह स्पष्ट रूप से स्थापित किया है कि:-

" पुस्तका समासन मर का प्रतीक है और
उर्कती समासन नारी का।"

आख्यान की दृष्टि से भी दिनकर ने इसी भूमिका में यह भी स्थापना करने
का संकल्प किया है कि:-

" मनु और हनु तथा पुस्तका और उर्कती, ये दोनों ही
उभारों एक ही विषय की व्यक्ति करती हैं। दृष्टि-
विकास की जिज्ञा प्रक्रिया के उत्पन्न वस्तु का प्रतीक मनु
और हनु का आख्यान है, उसी प्रक्रिया का भावना-वस्तु
पुस्तका और उर्कती की कथा में उदात्त है।"

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण में कवि दिनकर ने माना है:-

" उर्कती मनु, रमण, प्राण, रस और श्रोत की कामनाओं
का प्रतीक है, पुस्तका स्व, रस, मनु, रस और राज्य
से मिलने वाले सुखों से उत्पन्न मनुष्य।"

पुरुष के भीतर एक और पुरुष, नारी के भीतर एक और नारी, पुरुष और
नारी का संयोग, वैदिककाल से बड़े प्रेमकी दुर्लभ समाधि, नारी का जी-जीवा के
बार वरुण की व्याकुलता, वरिष्ठ - वारा में वरुण अतिशय कर वनिष्ठ से
अतीन्द्रिय सुख, प्रेम की व्यापारिक सविज्ञा काटि छोटी प्रतीति हैं जो केवल प्रतीकारण
व्यारा ही अभिव्यक्ति किये जा सकते हैं और उर्कती में यही रस आनन्द वायक है,
रस मय हैं।

उर्कती में प्रतीक अवधारणा:-

काम और प्रेम:-

उर्कती की अभिव्यक्ति और रचना काम के अराजक से
प्रारम्भ होती है। काम वासना का प्रतीक है और
प्रेम की उन्नत स्थिति का भी। उर्कती में कामकी

प्रतीक रूप के रूप में जिसकी स्थितियों में कवि ने प्रस्तुत किया है उसका किसी अन्य
वृत्ति में नहीं किया है। प्रेम की वैदिक वासना के अराजक से मानसिक स्थिति में

!!- उर्कती: भूमिका

स्थापित किया गया है:-

पहले प्रेम स्पर्श होता है, तत्पश्चात् चिन्तन भवे
प्रथम प्रथम मिट्टी कठोर है तब सायक्य गमन भी।

अंक ३ पृ०

“मिट्टी कठोर सायक्य गमन” का अर्थ और कल्पना लोक के सुख के प्रतीक हैं।

प्रेम नर और नारी के हिन्दु सुख से प्रारम्भ हो कर हिन्दुवादीत आनन्द का स्थायी स्वरूप है। परिदृश्य पारा के हिन्दु जन्म सुख की साक्षात्ता जब अतीन्द्रिय आनन्द की कामना के धरातल का स्पर्श करती है तभी आश्चर्य की आभा प्रभावित होती है। यह आनन्द स्थिति अनिर्वचनीय है। वर्तमान मनोवैज्ञानिक भी इस से सहमत है कि प्रेम केवल दैहिक साक्षात्ता की ही सृष्टि नहीं है, वह आश्चर्य की भी स्पर्श करती है। प्रभावित जितने विविध कहता है वह मात्र साक्षात्ता नहीं है, वह प्रेम भी है। कौटिल्य स्तर काम और आश्चर्य के मध्य में स्थित है। बुद्धि धर्म-वर्धिका की प्रेरक भी है और काम-अर्थ की सृजक भी। अतएव अर्थ - काम की अवधारणा बुद्धि के कारण ही है। मनुष्य के अर्थ क्षेत्र में बुद्धि का सर्वाधिक योगदान है तथापि काम-सुख के लिये भी बुद्धि अनेक योगों का संधान करती है। काम - क्षेत्र में मनुष्य को बुद्धि ही तरंगित करती है। उर्वरी के तृतीय सर्ग में पुरुषा - उर्वरी -मिशन के सम्पादक सभी प्रतीकात्मक एवं कल्पना पूर्ण हैं:-

“पुरुषा:- जबसे हम तुम मिले, तब के अगम, फुलकामन में
अनिमिष मेरी दृष्टि किसी विषय में रुक नहीं है।

उर्वरी:- और मिले जब प्रथम-प्रथम तुम विद्वत्त बनक उठी थी
बन्धु धनुष बन कर मखिया के नीले अध्यासे पर।”

आनन्द, प्रसन्नता, श्रितिक विषय तथा सुख मय मखिया की प्रभा जादि के प्रतीक स्वरूप इस कथन महत्वपूर्ण हैं। ये कथन बुद्धि - संशोधित हो हैं। यहाँ जहाँ प्रथम उपमा, स्वयं, उत्प्रेक्षा होगी, यहाँ कौटिल्य - प्रयास अवसर हैं।

उर्वरी के मन पर पुरुषा के वीर्य और सौन्दर्य का चलना प्रभाव था कि प्रथम दर्शन के उपरान्त सुरपुर लौटने पर उसके मन प्राणों पर जलमर बैठ गया था, वह दिन जीतता था न रात, अहर्निश वह कामाद्भुत के सकेते सने उत्तम रक्ती रही है।

उर्वरी: अंक ३, पृ० ४०

बौद्धिक प्रतीक:-

पुरुषवा और उर्वरी दोनों ही तर्क के माध्यम से बौद्धिक-विवाद में लगे रहते हैं। पुरुषवा काम की दैवीय स्व ही मानते हैं अनासक्ति केवल दमन पूर्ति नहीं है। यह प्रेम की भी प्रभावित करती है। उर्वरी इसी बौद्धिक तर्क से छिन्नमना हो गई। जो निर्द्वैत भाव देव लोक में था वही उसे पुरुषवा में मिले तो वह सर्व पुरुषवा के प्रति आकर्षित हो क्यों है? वह तिमिर ग्रस्त (विद्यधा ग्रस्त बुद्धि) पुरुषवा के बुद्धय पर शासन करने की कामना करती है। जिस दिन पुरुषवा की विद्यधा मिट जायेगी तो उन का वियोग निश्चित है:-

.....-यह तक बुद्धय तुम्हारा
तिमिर ग्रस्त है, तक तक ही मैं इस पर राज करूँगी
और जलाओ-गे जिस दिन तुम बुझे हुए दीपक को
बुझे दयाग दो-गे प्रभात में रजनी की माला ली। अंक 3/44

तिमिर, प्रभात, दीपक, रजनी आदि शब्दों के विम्वारमय चित्र और स्वकाव्यमय अर्थ प्रतीक ही है। तिमिर के ज्ञात विद्युत्, जालिम का अधिकार होना, प्रकार का महासिन्धु, तिमिर का घुल और चूला को ग्रंथियाँ सभी प्रतीक हैं।

पुरुषवा अपनी विद्यधाओं में ग्रस्त ऐसा मानव है जो प्रेम और धर्म का एक साथ निर्वाह कर पाने में असमर्थ अपने ही तर्कों में उलझ चुका है। ऐसा मनोवेगानिक व्यक्तिस्व का निमार्ण करना दिनकर के लिये ही सम्भव था --- यह ही साध स्व की आराधना का मार्ग क्या है

भावना प्रतीक:-

"स्व की आराधना का मार्ग जालिम नहीं है।" यह निश्चय है और "स्व की आराधना का मार्ग जालिम नहीं तो और क्या है" विद्यधा है।
विद्यधा ग्रस्त बुद्धि का अनुगामी पुरुषवा तर्कों से अपने

आप तिर गया है:-

"और फिर वह सोचने लगता, कहाँ, किस लोक में हूँ?

.....
कौन है यह देश, जिस की स्वामिनी मुझ की मिर-भर
वाली की छार से नहला रही हैं?
कौन है यह जल, समेटे अंक में ज्वालामुखी की
घड़िनी कुम्हार कर बहला रही है?"

वाली की छार, ज्वालामुखी, घड़िनी का महलाना-बहलाना सभी प्रतीकात्मक हैं-इसे अर्थ की व्यंजना करती हैं। पुरुषवा का अर्थ "उर्वरी अपने समय का सूर्य हूँ मैं"

II:- उर्वरी: अंक 3/44

हमों को रोना देता है। यही पुरुषवा अपने ही हत-बोली की व्याख्या करता है:-

" मैं तुम्हारे मार्ग का लीला हूँ कम हूँ
 तब पर धर सीता करना चाहता हूँ
 मैं तुम्हारे साथ का लीला कम हूँ
 प्राण के सर में उतरना चाहता हूँ।"

सं 3/44

उत्तरी जन्म सुख है क्यों कि वह मानवी नहीं है। वह तो मानवी रक्त - उत्तरी के किंचित अनुभव के लिये पुरुषवा के साथ सहवास करती है। इस सम्पूर्ण प्रसंग का केवल यही प्रतीकारमक अर्थ है कि हम भौतिक जीवन से ऊपर उठ कर परमारीय तत्त्व को जान सकते हैं :-

"परमारीय जग भिन्न नहीं है वह गोचर जगती से
 बली अपावन में अक्षय वह पावन बना हुआ है।"

उत्तरी काव्य में अर्थ और धर्म की व्याख्या है। अर्थ और काम जैविक है, कि धर्म आध्यात्मिक। पुराणों में भी अर्थ-काम को धर्म से देय समझा गया है। इस जैविक धरातल से उठ कर आध्यात्मिक का स्पर्श करना ही मानवी उत्तरी - काव्य का उद्देश्य है। अतः अर्थ काम और धर्म प्रतीक रूप में स्थान स्थान पर उद्घुष्ट हुये हैं। जलन, जलन, भवन आदि अर्थ हैं जो राजा पुरुषवा को प्राप्त हैं, उत्तरी भी एकजुट उन से अलक्षित है, औरानीरी भी उन का पूर्ण भोग करती है। उत्तरी की सम्पूर्ण काव्य-कला समाज निर्देश है अतएव अर्थ की दृष्टि से सम्पूर्ण समाज सुखी है ऐसा मानना चाहिये। काम साहित्य और सौन्दर्य का प्रतीक है। उत्तरी काव्य निरन्तर तल्लि और सौन्दर्य - सौन्दर्य - पूर्ण है। बुद्धि अर्थ और काम दोनों का संयोजन कर मनुष्य को सौन्दर्यमानि बनाती है और प्रकाश-निराशा को प्राप्त कर स्वयं समाप्त हो जाती है:-

" रक्त - बुद्धि से अधिक बलि है और अधिक जानी भी
 क्यों कि बुद्धि सौखी और सौखी ही अनुभव करता है
 निरी बुद्धि की निर्मितियां निप्राण हुआ करती हैं। 1/55

आध्यात्म प्रतीक:-

विमल ने अपने उत्तरी काव्य की भूमिका में स्पष्ट स्वीकार किया है कि "पुरुषवा समासन नर का प्रतीक है, और उत्तरी समासन नारी का।" । अर्थात् उत्तरी में प्रतीकारमकता हमों को औरों पर देना अधिक

संगत है। कामना तरंग में पुरुषवा विवक्षा प्रसन्न है। बुद्धि के देय को रक्त का भोजन बनाने की चर्चा, उन की आराधना को आतिथ्य रूप में स्वीकार न कर करना उसकी उन्नत भौतिकता एवं बोधिवृत्ता के आशय से आध्यात्म की ओर संकेत

!! - भूमिका नाम: पुस्तक ४

उत्पत्ति में सौन्दर्य विज्ञान

सौन्दर्य का अर्थ और परिभाषा :-

को कोई
सौन्दर्य राज्य केई सौभा
नहीं। "समे तेन सुन्दर मीन
के अनुसार सौन्दर्यसम्पद -
सावैश है। सौन्दर्य पर

भारतीय मनीषियों एवं पाश्चात्य विचारकों ने पर्याप्त विचार किया है। साहित्य में सौन्दर्य का स्थान तब से और अधिक महत्व पूर्ण एवं चिन्तनीय हो गया है जबसे इंग्लैंड का सौन्दर्य शास्त्र साहित्यिक - अध्ययन की विषय बन्ना लगा है। भारतीय मनीषा एवं आधुनिक वैज्ञानिक विचारक एवं समालोचक पण्डित रामा स्वामी ने अपने "इण्डियन एथेटिक्स" में सौन्दर्य का स्थान भारत की आत्मा में माना है। इसके वै भौतिक अस्तित्व में नहीं। आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने भी यूरोपीय सौन्दर्य का समीक्षा के सन्दर्भ में लिखा है, "सौन्दर्य बाहर की चीज नहीं, मन के भीतर की वस्तु है" महा कवि माह ने सौन्दर्य को भावोन्मेषपूर्ण माना है जो अपनी एक भाव से बह बह भाव - तरंगों को तरलित करने में सक्षम है:-

"शरीरं शरीरं यन्मनुष्याभ्युपेतिकं तदेव त्वं रमणीयताया" जैसे सूत्र से महा कवि विचारों का जाल के "अक्षर छिंदे कूर" हो गये हैं। वर्तमान युग के दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक चिन्तक सिगमंड फ्रायड ने सौन्दर्य का सम्बन्ध काम (Sex) से जोड़ा है। वे सैक्स और सौन्दर्य को अग्नि और ज्वाला के समान एक ही समझे हैं।

(Sex and Beauty are one thing like flame and fire)

काम जैसा फ्रायड का यह विचार उत्पत्ति के भौतिक सौन्दर्य और लौकिक लाभों की व्याख्या करता है। दूसरी ओर विचारक विहङ्गकार का मत है:- "सौन्दर्य सुकृत सुखानुप्राप्ति का स्व है, जब हम मानसिक आनन्द को किसी वस्तु पर केन्द्रित करते हैं, वही वस्तु सुन्दर हो जाती है और बाह्य वस्तु के अन्दर प्रत्यक्ष आनन्द भाव को उद्दीप्त कराती है। सौन्दर्य-सृष्टि, ज्ञाना-केव, विषय और विषयी की अर्ध-वस्तु मान कर ही की जा सकती है, भले ही व्यावहारिक दृष्टि से दोनों में भेद विद्यमान हो वही लौकिक वस्तु का लोकोत्तर आनन्द है।

मानव मन की मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं:- जिज्ञासा, चिर्कीर्ण, एवं सौन्दर्योत्साहना जिन्हें कामावली कार ने ज्ञान क्रियावीर कहा है। यही ज्ञान, कर्म और सौन्दर्य भाव है। "प्रसाद" जी ने काम जैसा से उठ का ज्ञान लोक के अन्तर्गत आनन्द

कहे प्राप्ति में जीवन-सौन्दर्य माना है, जोत जगत् में जो विडम्बना है रस-जगत् में वही अकण्ठ आनन्द मान है।¹ दिनकर अपनी उर्ध्वी में काम तरंगों और सौन्दर्यरूप की सीमा से आगे चौडियक तर्क-वितर्क से आध्यात्म का निरूपण तो करते रहे पर आनन्द की उपलब्धि न तो सुलखा की दुर्ध और न ही उर्ध्वी की कल्प दोनों कि विचोणी ही कर एक दूसरे से मिलन हो गये। सुलखा उदासीन हो कर परिष्कारक बन गये और उर्ध्वी देव लोक की दुःखी - मन लौट गई। अर्थात् सम्पूर्ण काव्य काम सौन्दर्य की सीमा को पार हो नहीं कर सका।

प्राकृतिक सौन्दर्य:-

उर्ध्वी में प्रकृतिगत सौन्दर्य के अगुने स्वरूप के दर्शन होते हैं। उर्ध्वी काव्य का प्रारम्भ ही सुप्रधार और गटी के सम्भाव से प्रारम्भ होता है जिसे में अव्यक्तित तो अन्तर तक चदिनी के

व्यापक सौन्दर्य का प्रसार है जो प्रथम काव्य के लिये एक उपयुक्त भूमिका है। व्यापकी की ज्योत्स्ना - स्नात रात्रि में स्थान स्थान पर ज्योति और रक्त-कान्ति के दर्शन होते हैं। सर्वत्र शान्ति है:-

शान्ति शान्ति सब और, मधु, मानो चन्द्रिका सुदूर में
प्रकृति देख अपनी रीभा, अपने को भूल गई थी। (301/8)

ऐसे समय में ही गगन चरी अकण्ड अप्सरायें कुलों की लक्ष्मियों के समान सुगन्ध भुजा और विधु-प्रेयसियों के समान सौन्दर्य शान्तिनी भू लोक में नील गगन से उतर रही हैं। सम्भवतः स्वर्ग में भी ऐसा मनोरम प्राकृतिक सौन्दर्य नहीं है।

प्रकृति-सौन्दर्य बल्लुग है। उर्ध्वी ने ही स्वर्ग में यह सौन्दर्य क्यों देखा जो धरती को प्राप्त है --- धरती पर प्रकृति का सौन्दर्य अविनाशर है:-

यह धरती, यह गगन, मुनों से भरी दुर्ध जटायो यह
ये प्रभु ये वृक्ष, स्वर्ग में बहुत याद आये मे
मलमल मलमल तरितलिल यह ऊना की तीली से
राश्यों पर बिजली बिजली आभा यह रक्त किरण की
चक चक उठना यह चिहनों का निरुज पृथ्वी में
स्वर्ग शान्तिनी में ऊँचा से ममस्कार करती हूँ।

अविनाशर, सौन्दर्यपूर्ण, नरवा वस महा मही की। (304/118)

दिनकर की की धर्षराज हिमात्म्य का प्राणिन सदा सुभासा रहा है जहाँ निर्भीर स्वतंत्र रूप से प्रकाशित है। विराट कल्पना के लिये ऐसा उपमान ही अष्टाय भी है। सागर-खल की गगन मेघ की कर पीयूष वर्ण की एक मधु, कल्पना है। स्त्री

:- "उपयुक्त वरदान देना का, सौन्दर्य जिसे सब करते हैं।" प्रसाद:कलाकवी

हसी भाव को मनोवांछा से संयुक्त कर कवि ने यह अमूर्ती स्थिति का चित्रण किया है:-

देह कांक्षित वीरिण्या-युक्त गति नवों पदों के छा में ,
 चल देती है किन्ही भाति पीकर उस मेधावी - सी
 जो समुद्र का चल पीकर मन्धर जगमगा रही है। 4/110

पर्यंत - कल्पना से कवि ओत - प्रीत है। जो कभी " मेरे प्रथम मन्मथि मेरे विराज" में मूर्तमान था वह अब सजग और प्रेरक सौन्दर्य है। यही प्रयोजनकारी लक्षणा का सौन्दर्य है:-

तुम पर्यंत, मैला तुम्हारी कलकरतर जाधों मे
 विह्वल रस-आकुलित, समय मैथुनित उठ जाऊं नी ।

"विभक्तिरि के उत्तुंग रिश्ता" को कवि दिनकर ने और अधिक सुन्दर समुच्चयन स्वरूप दिया है --- मन की सौन्दर्यानुभूति शब्दों से उतर कर नये विम्व प्रसिमान प्रस्तुत करता है:-

मन्मथि के उत्तुंग, समुच्चयन, विम्व भूक्ति प्रीति पर ,
 कोम नई उच्चयनता की तुली सी फेर रहा है।

ऐसे अनेक विम्व दिनकर की ने उर्कती काव्य में स्थल स्थल पर चित्रित किये हैं। प्रकृति का आत्मक रूप जब सर्वोपम बन जाता है तब पुरुषवा-उर्कती मानवी सुख्या में स्वरूप पाते हैं जिसे हम लौकिक - मानवी सौन्दर्य कह सकते हैं।

मानवी सौन्दर्य:-

दिनकर मानवी सौन्दर्य के मांसल रूप के अद्भुत चित्रकार हैं। उर्कती के रूप सौन्दर्य का चित्रांकन उन्होंने ने अनेक स्थलों पर किया है।
 रूप वर्णन करने में अप्सरा/सहजन्मा ने उर्कती का

देव-दुर्लभ स्वरूप चित्रित किया है:-

हसी लिये तो लकी उर्कती, उभा मन्दन मन की
 सुरपुर की लीकड़ी, कलित कामना हनु के मन की
 सिद्ध विरागी की लमाधि में राग जमाने वाली
 देवी के शीर्ष में मधुमय आग लमाने वाली
 रति की भूर्ति रभा की प्रसिमा सुधा विषमय नर की
 विधु की प्राणेश्वरी, आरती-विहीन काय के कर की। 1/82

उर्कती का रूप "रति की भूर्ति रभा की प्रसिमा" आगे चल कर प्रचलित जगन्मनों के आधार से पुरुषवा द्वारा अभिव्यक्त है --- उर्कती का यह रिक्त - नर वर्ण छाया वाली प्रचुरित का अभिव्यक्त द्योतक है:-

ये लोचन, जो किसी अन्य जग के मग से दर्पण हैं
 ये कपोल, जहाँ किसी द्युति में तैरती ठहरण जगा की
 ये किसलय से अक्षर, माझा दिन पर स्वयं मदन है
 रोती है कामना जहाँ पीड़ा पुकार करती है
 ये श्रुतिवाँ दिन में उल्लूकों के अक्षु धिन्दु भरते हैं
 ये बाहें जिधु के प्रकार की दो नवीन किरणों की
 और यक्ष के सुहृद-द्वेष सुरमित विज्ञान भवन ये,
 जहाँ मृत्यु के पथिक ठहर कर शान्ति दूर करते हैं। 3/85

सुन्दरी उर्झी स्वयं अपने सौन्दर्य से अभिभूत हैं। वह खींचती है—
 न माता, न कन्या, और न पशु। उस से ऊपर देता ज्ञान की सीमा से परे ब्रह्म
 चिरन्तन नारी है उर्झी:—

मैं देता काल से परे चिरन्तन नारी हूँ।
 मैं जादूकर्त्री जीवन की निरर्थक नवीन प्रभा
 लपती अमर में चिर-युवती सुसमारी हूँ।

सुन्दरी भी सौन्दर्य का ऐसा पौख्य स्वस्व है जो कनक पर्यंत से तराश काट कर
 ज्योतिर्मय रूप में प्रस्तुत किया गया है। ऐसे स्वस्व पर 'स्वर्ग-सुन्दरियाँ' यदि लुब्धा
 हों तो आश्चर्य ही क्या।

"यह ज्योतिर्मय रूप" प्रकृति ने किसी अन्य पर्यंत से
 काट पृथ्वी प्रसिद्धा किराट, निज मन के आकारों की
 महा प्राण से भर उसको, फिर ध्रुव पर गिरा दिया है
 स्यात् स्वर्ग की सुन्दरियों, परिणों की ललचाने की।"

बौद्धिक सौन्दर्य:—

दिनकर ने "हँसोरी जाफ हम्मेथी" के काव्य
 से सौन्दर्य का अद्भुत सा साक्षीय विवेकपूर्ण
 प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। दिनकर के

बुंगार - निरुपण में मनोविज्ञान, जीव विज्ञान,
 काय-विज्ञान/आदि की उत्तममक अभिव्यक्ति है जिसे दिनकर में ही, 3/85 एच
 नारेन्द्र के प्रभाव से, जेय धारातल मिल सका है। उर्झी जिसकी ही काम लक्ष्यमा पर
 निर्मुक्त करे पर दिनकर ने उसके मातल क काम-योग की अवाप्तल कलाभिव्यक्ति
 की है:—

इस री यह माधुरी, और यह अधरचिह्न 'पूलों' से
 ये नवीन पाटल के दल, जानन पर एक पिमते हैं
 रोम-रूप जाने, भर जाते दिन पीयूष कणों से

और निमित्त ही कठोर बाहों के आलिङ्गन में
 बदल एक पर एक उल्लास उमियाँ तुम्हारे तन की
 मुक्त से कर संकुम्भ प्राण उनमस्त बना देती हैं।
 सुसमायित पर्यक्त-सामान तब लगी तुम्हारे तन से
 मैं पुनर्जित विजय, प्रसन्न - मुक्ति होने लगती हूँ। 3/72

और उर्वरता का केवल तन की सीमा में न रह कर ज्ञान - विज्ञान, जीवन-दर्शन,
 जीव-जगत्, आत्मा-अरुम के अनेक धारातलों पर अभिव्यक्त हुआ है। बुद्धि भी सर्प
 की भाँति विचित्रता धारणी है --- तर्क प्रधान। अर्जन - वर्जन का चेत ही तो
 बुद्धि की सार्थकता है। बुद्धि के आगम से उठ कर कवि दिनकर ज्ञानम आनन्द
 की व्याख्या करने लगते हैं जो कवि की गीता - ज्ञान से प्राप्त है। कवि की भावना है
 कि निरी बुद्धि की निर्मितियाँ निष्प्राण हुआ करती हैं। अतएव कवि ने तर्क के
 स्थान पर ज्ञान की प्रतिष्ठा की है। पुरुषवा और उर्वरता दोनों ही गीता का ज्ञान
 का उद्घान करते हैं। गीता का अन्त वाक्य है:-

‘या निता सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।

यस्यां जागर्ति भूतानि तां निता पर्यतो मुनेः ॥ गीता 2/69

पुरुषवा वसी भानोपदेश की योग और पुण्य के संबन्ध में कहते हैं:-

निता योग-जागृति का धन है और उदग्र पुण्य की

एकात्मिक समाधि, काल के सभी मास के नीचे

भूमा के रस - पथिक समय का अतिश्रम करते हैं

योगी वही ज्ञान प्रेम में, पुण्यी आलिङ्गन में । अंक 3/ 64

मास्तीय चिन्तकों के एक आदर्श ग्रंथ गीता के अनुसार जगत् की अस्थिरता, भूतल-
 पाताल-मग्न का भ्रमालय, सुख, शोक-विषय, समस्त चराचर जगत् की गति का निर्यास
 एक ही चर है। वसी विचार की कामायनीवार जय रंजित प्रताप ने भी गुरुण डिक्या है:-

स्वित देव सत्विता या पूजा, सोम मस्त चंचल पवमान

सत्त्व जाति लज दूग रहे हैं जिस के शासन में अस्मान ।

कामायनी --- आत्मा सर्प

विश्वित बम्हीं बाहों का प्रयोग कर कवि दिनकर ने पुरुषवा के धन में अतिश्रम का
 अभिव्यक्त किया है:-

जिस की चण्डा का प्रसार भूतल पाताल गगन है

दौड़ रहे नभ में तनक उन्मुक्त जिस की सीला के

अवशित सत्विता सोम अपरिमित गुरु उद्भूतल जन कर ।

प्रताप जी के ध्यान में काव्य की परकृष्टता है, दिनकर जी की भाषा अपेक्षाकृत
 बौद्धिक अधिक है जब कि गीता में सभी आकाश उस विराट प्रभु की सत्ता का

पुस्तक करता है जो स्वयं महा पुरुष श्री कृष्ण है:-

आदित्यागामर्षं विष्णुं च्योतिर्जां रविसंयुजाम् ।

मरीचिर्मस्तामसि नक्षत्राणामर्षं हरिम् ॥ गीता: 10/21

पुस्तक ही नहीं उर्ध्वी भी अकाम आनन्द की व्याख्या गीता के ही अनुस्य करता है । गीता में कहा गया है कि--- अव्यक्त मन वाले तथा लोगों में जासक मनुष्यों में मधुर वाणी भी निश्चयात्मक बुद्धि उत्पन्न नहीं करती:-

भोगैरक्षयं प्रसक्तानां तेजायुतदेतन्नाम्

स्यसत्यायादिमहा बौद्ध समाधौ न विधीयते । गीता: 2/46

इसी के आधार पर निष्काम कर्म की प्रेरक बन कर उर्ध्वी पुस्तक को प्रबोध करती है-

यह अकाम आनन्द भोग सन्तुष्ट शान्त उस जन का

जिस के सम्मुख कष्ट कलासक्ति मय कोई उद्देश नहीं है।

उर्ध्वी: 3/75

उर्ध्वी के माध्यम से कवि दिनकर ने बौद्धिक - मानसिक विचार - चिन्तन के अनेक रूप प्रस्तुत किये हैं और इसी स्तर से ऊपर उठकर वह विराट् ब्रह्म के रूप को भी प्रस्तुत कर देती है। गीता के अनासक्ति योग की महिमा और कर्म की महत्त्ववस्था -- जो कलासक्ति से निरवैश है --- सर्वत्र ज्ञात है:-

कर्मव्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।

मा कर्म फल हेतुर्भूमां ते मां ज्ञेयस्यैव ॥ गीता: 2/47

"योग, कर्मसुखोपपन्नम्" का हेतु रहने वाले निष्काम है। उर्ध्वी ने यही भावभावनासक्ति के कर्म का दूषित होना कहा है:-

कलासक्ति दूषित कर देती क्यों समस्त कर्मों को

इसी भाति यह कामकृच्छ्र दूष्य मा दूषित और मलिन है।

यह यही उर्ध्वी है जो कामातुरा है थी, जो कामोजित पुस्तक के कठोर अध्यात्मिक धारा को किञ्चित् कलात् जान पर कहती थी: कि "तनिक तो विधिज करो कष्टोपशेध बाधों को" अथवा काम कला की शिक्षा देती थी:- "मा यो नर्तय" यही काम लीलुप उर्ध्वी जब दारिद्र्य मनीषी बन कर चराचर जगत् को "परिवर्तननि संसार" के भाव में समझ, अन्तर्देहमायावी बन गई है। एक स्थिति ऐसी आती है जबकि देह-काम की सीमाओंका अन्धन नहीं रहता। कवि ने महारुण्य को ही प्रेम का उत्सव माना है और चेतना भी उसी के मूल को हू कर प्रकाशमान होती रहती है। उर्ध्वी भी उस "अज्ञ, अज्ञान, पूर्ण, सुवर्तिज्वार अन्धर में सीमा छींचती कहा" "देता काल से घरे" उस निरुद्ध आकाश की निर्बिकल्प सुनवा में दे कर नारी किसी एक मूल का सत्ता के मात्र प्रतिमान बन कर रह जाते हैं। उस विराट् सत्ता को देख लन के अतिप्रमाण से ही बाधा जा सकता है। यह परिवर्तीय सत्ता इसी मोचर जगती में समाधी पूर्ण देखते हम प्रकृति और पुरुष के सङ्गत में देखते हैं --- वस्तुतः हमें ज्ञात

भाव है ही नहीं। पुरुषवा ही पुरुष है और उर्करी प्रकृति। प्रकृति अथवा चिन्मयी
रक्त त्रिकाल सुन्दरी उर्करी पुरुषवा - पुरुष की विश्व-शक्ति है। इस त्रिकाल
सुन्दरी का स्वयं हमें "प्रसाद ही" की त्रिपुर सुन्दरी में मिल सकता है।

"तुम त्रिकाल-सुन्दरी अमर आमा अकाल त्रिभुवन की।"

यही विराट कल्पना है, ठीक वैसी ही जैसी गीता में "मामों राखण्ड" में कही
गई है:-

सत्य स्यात् , केवल आत्मार्पण, केवल राखणमति है
उसके बाद पर, जिसे प्रकृति तुम- में खरखर करती है।

उर्करी: ३/८३

यही अलौकिक सौन्दर्य की परम अनुभूति है।

कला सौन्दर्य:-

उर्करी में कला - सौन्दर्य भी परिष्कार है।

यह कला सौन्दर्य मूर्ति - कला में लचीलता से

उत्कीर्ण है। उर्करी समस्त सौन्दर्य से युक्त

ऐसी नारी मूर्ति है जो अनगढ़ पाजाओं की कला

में उत्कीर्ण है। सम्भवतः कवि ने छपुराही, भुवनेश्वर अथवा दक्षिण भारतीय कलाओं का
का मन्दिरों में उत्कीर्ण देखकर कहा है। उर्करी में उसी सौन्दर्य केन्द्र की कल्पना कर
कवि दिमकर ने देखा है कि यही:-

पाजाओं के अनगढ़ अंगों की छाट - छाट

में ही निविड़-लन-लता, मुड़ित मधुमा

मदिरलोचना, काम सुनिता नारी

प्रसादरूप कर भंग

तौड़ तम को उन्मत्त उभरती है। ३० ३/९२

कवि ने मूर्ति कला के अतिरिक्त भी कला सौन्दर्य को काव्य भाषा के नायिका स्त्री में
अभिप्रेक्ष्य करने की चेष्टा की है। यह स्वयं एक कला-चेतना का मधुमा प्रच्छन्न
झोत है। उसकी भीम्यायें तरंगित ललितता, लीला, लहर आदि तम की, क
प्रकाशित रंगों में उभर कर कला के विभिन्न रूपों में व्यक्त हुई है। निविड़लन-लता
नायिकाओं का रूप आकार भास की मूर्ति - कला के क्षेत्र में आज समस्त देशों के
चर्चकों का आकर्षण केन्द्र बनी हुई है। मदिर लोचना नायिकायें गान्धार-कला,
मधुमा कला, लंगल और राजस्थान की कला कृतियों में व्याप्त है। मिथुन मूर्तियाँ
पाहे से छपुराही में ही अथवा भुवनेश्वर में भारतीय योग अथवा तन्त्र साधना युग
का परिचय देती है। उर्करी, काश्मीर से कामरूप तक व्याप्त नारी सौन्दर्य की
साकार तथा मानसिक भावों की प्रति कृति प्रतीत होती है।

काव्य में अनेक प्रकार की नायिकाओं का वर्णन है। कवि "दिनकर" ने भी "चित्र और प्रसिद्धाओं में प्रीति की लहर" देखी है। वहीं पर "पूलों के कुँव भवन में वासक सज्जा नायिका है जो पद्मरागमणि - मुरुर बजा रही है" अथवा कोई स्वप्नी विपुलका नायिका की भाँति उन्मत्त बैठी जाग रही है। मुग्धा नायिका के रूप में कवि ने एक स्थिति का वर्णन भी किया है --- क्षुब्ध पट पर उत्सप्त रवास का स्पर्श, अंधारों पर रसना की गुदगुदी और रसनाती भटकती उँगलियों के सुहरण का अनुभव करना आरम्भ मुग्ध बोध का ही रूप है।

या वासक सज्जा कोई पूलों के कुँव भवन में
पद्मरागमणि मुरुर बजा रही है।
या कोई स्वप्नी उन्मत्त बैठी जाग रही है

या क्षुब्ध पट पर उत्सप्त रवास का स्पर्श और अंधारों पर
रसना की गुदगुदी अदीपित निशि के जीधाले में
रस-माती, भटकती उँगलियों का सुहरण तबका पर
हम भिन्न दुःख का आरम्भ क्षुब्ध समझ सकती हैं।

JO 3/58

और सब के अन्त में एक भावात्मक कान्ति है जो कवीन्द्र रवीन्द्र की वाणी के ही की
मुँह अनुभूति का वर्णन - सौन्दर्य है --- उनकी का कथन है:-

मैं अदृष्ट कल्पना जिसे तुम देह मान बैठे हो
मैं अदृष्ट, तुम दृष्ट देख कर मुझको समझ रहे हो

अथवा "प्रान्ति यह देह - भाव की दारानिक कल्पना उसे "रस-रंग-रस-गन्ध-रस
साकार कमल" बना रही है। उनकी रवीन्द्र के तब में " कामना भी साक्षा
वार्थक्य" है।

कामना वहि की शिखा मुक्त में अनवरुद,
मैं अतिष्ठत, मैं दुर्निवार
मैं सदा पृथ्वी विनती हूँ।

किन्तु, यही मानवी, देवी, दारानिक मारिह चौथे अंक में केवल एक दुर्लभ अज्ञात बन
जाती है --- सामान्या मात्र। यही हम काव्य का अभूतपूर्व सौन्दर्य है।

00000000000000000000

उर्दू में गीत योजना

सुख - दुःख के भावात्मिकी अवस्था विशेषों का गिने चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना गीत है।¹ सुखानुभूति में गीत की तब उत्साह के बजाये से कल्पना छोड़े लोक के निर्माण में स्वर साधना करता है। उर्दू में सुखानुभूति का काव्य है। सुख के न रहने से उत्पन्न वेदना कल्पना के बजाये गीत बन जाती है। विनोद जी के अनुसार "कविता की भूमि केवल दर्द को जानती है, केवल बेचैनी को जानती है, केवल वासना की लहर और लक्ष्मी के उत्साह को पहचानती है।"² उर्दू में यही दर्द, लहर और उत्साह है।

यों तो समस्त उर्दू काव्य गीत-नाद है, काव्य संपूर्ण रूप में गीत ^{व्याप्त} व्यक्त होना किन्तु गीत के विषय में जो भी रीति-रिवाज विचार किया गया है उसे हम दो भागों में बाँट सकते हैं। परम्परागत गीत में आध्यात्म संयोजित है। ज्योत्सव दूत गीत भौषण्य में राधा-कृष्ण चित्रण आध्यात्म है, कालिदास दूत मेघदूत में यश-शिरस का दुःखमय रोदन है। इसी प्रकार अमर-वसन्त में शक्ति के परकाया प्रकाश पर प्रति-रात्रि लिखा गया एक सौन्दर्य गीत एक उत्कृष्ट सतता है जिसका संदर्भ भी ~~आध्यात्मिक~~ एक अध्यात्म से सम्बद्ध है। दूतवा-उर्दू आध्यात्म का सौन्दर्य भी गीत - माधुर्य से ही सुन्दरतम रूप में अभिव्यक्त हो सकता था। इसी लिये आज तक इस ^{विषय} पर जो भी रचनाएँ हुई हैं वे काव्यात्मक ही हैं। इस दृष्टि से देखें तो समस्त उर्दू - काव्य गीतात्मक है।

प्राचीन भारतीय साहित्य में आध्यात्म - रचित गीतात्मक काव्य रचना नहीं हुई। नाटकों में भी जो नादी-बाध होता था उस में भी नाद-कथा का निर्देश रखा था। सम्भवतः "गीत-गीतिका" ही ऐसी रचना है जिस में "गीत" शब्द का उल्लेख हुआ है। जो भाषा-भाव-नाद-आध्यात्म के अनुसृत साहित्य और माधुर्य का सृजन कर सका है। हिन्दी साहित्य में गीतावली, में भी राम-रागीनियाँ से सम्बन्धित दूर के मेघ पर्वों में भी "गीत" निहित हैं। वर्तमान युग के हिन्दी साहित्य में "गीत" एक उत्कृष्ट विधा के रूप में आयावाद-काल में विकसित हुआ है। जिस के साथ कोई अध्यात्म या आध्यात्म संयोजित नहीं है। आयावाद काव्य के गीतों में बिम्ब और नाद-सौन्दर्य की प्रयुक्तता थी। उर्दू में जिसे ^{कथा} कथि-अन्कार *Quomalopoea* कहा जाता है आयावादी काव्य में ऐसे शब्दों का प्रयोग

1:- महादेवी चर्चा: पृष्ठा: ५० २

2:- सुमित्रा: ५० "ब"

अधिक मिलता है। सुमित्रा नन्दन रीत, महा कवि निराशा और प्रसाद की कविताओं की जिज्ञासा नाद-सौन्दर्य ही रही है। कोई कारण नहीं कि इन कवियों के गीतों का प्रभाव भी दिनकर पर हो।

उत्कृति में गीत-योजना का भी एक सुन्दर नियोजन है जिसे :

- 1:- सम्वाद गीत
- 2:- स्वयं गीत और
- 3:- सम्बोधन गान

के रूप में देखा जा सकता है।

सम्वाद गीत:-

उत्कृति में सम्वाद-गीत की अवधारणा सम्पूर्ण गीति-
नाट्य में है किन्तु प्राचीन - भारतीय परम्परा के
अनुसृत नाटक के प्रारम्भ में अति सूत्र धार और नटों के
प्रस्तुत कर जित रैली का उपयोग करता है उस गीत-

रैली ही है और यह भी सत्य है कि इस संदर्भ में दिनकर जी ने उत्कृति-सूत्रावली आठव्यांश
का प्रारम्भ भारतीय परम्परागत रैली में ही किया है। सम्वाद-गीत की योजना इस
गीति-नाट्य में दो रक्तों पर मिलती है:-

1:- सूत्रधार और नटी सम्वाद में तथा

2:- सहजम्पा, मेनका और रम्मा के सम्वाद में। सूत्रधार और
नटी प्रकृति की गोभा-सुखमा को देख कर विस्मय और आनन्द से अभिभूत हो उठते हैं।
प्रत्येक पंक्ति में तीन तीन शब्दों को यति पर गीत का संधान किया जाना ही उनकी
संभात्मकता का द्योतक करता है:-

सुनी नीलिमा पर, तिलोत्तमा तारे यों दीप रहे हैं
चमक रहे भों, नील चौर पर दूटे ज्यों जादी के।

प्रथम अंक में ही कवि ने सहजम्पा मेनका और रम्मा जैसी प्रतिष्ठित चरित्रों का गीत-
सम्वाद प्रस्तुत किया है जिस में ये तीनों अम्बारों के कुल तीन अन्तर्गत अन्य गा कर
छोड़ देती हैं। इन गीतों का स्थायी --- " जो करता है" जैसा पद है जो अन्तरा के
महत्त्व और उसकी गीतात्मकता को और भी बढ़ा देता है। मेनका तो स्पष्टतः
गीत सुनाने का संकल्प कर लेती है:-

आज राग मे ही हम तो भीतर से बरी-बरी हैं
तन्हा है आकण्ट गीत के जल से भरी भरी है

जो करता है, पुलों को प्राप्ति का गीत सुनाये।

किसी पद अथवा शब्दों की पुनरावृत्ति से दिनकर ने गीत-ध्वनि को गुंथित करने का
प्रयास अपने काव्य में किया है। उनकी अनेक रसवन्ती कविताएँ इसी पद-आवृत्ति से

अत्यधिक गीतात्मक बन गई हैं। इसी वद आवृत्ति का आश्रय लेते हैं। उर्कती में भी लिखा है। दूसरी ओर के प्रारम्भ में ही कवि की उत्पत्ति में गीत-सम्वाद आवृत्ति-सौन्दर्य में अभिव्यक्त हुआ है --- पुत्रवा और उर्कती दोनों ही एक ही वद की आवृत्ति करते हैं:-

"यस ते हम - तुम मिले"

वद की तीन बार आवृत्ति हुई है।

अदि राखों की छोड़ दें तो "रक्त कुण्ड से अधिक कटि कती है", "हरि प्रसन्न यदि नहीं सिद्ध बन कर तुम क्यों आई हो" (तीन बार) और "पुत्र और पति नहीं पुत्र या केवल पति पाओ गो" (तीन बार) जैसे वदों की आवृत्ति से कथानक और अधिक प्रभावोत्पादक बन गया है --- यही इन गीतों की सफलता है। दूसरी ओर में ही पुत्रवा-उर्कती दोनों ही दो दो पंक्तियों के गीतों में सम्वाद बोलते हैं जैसे जो छः छन्दों में भी एक नया स्वरूप उत्पन्न कर देते हैं। ये छः छन्द ही उर्कती काव्य की नील-रत्न की अमूर्त सत्य है:-

उर्कती:- रीम रीम में कुल, तरंगित, केवल परिवर्तन पर
कही हुई आकाश और मैं कहां उड़ी जाती हूँ (आत्म विमुक्ति)

पुत्रवा:- देह दुखने लगी अलस मन के अकल सागर में
किरने के अलस रूप को लहर छींच रहा है (आश्चर्य)

उर्कती:- करते नहीं स्वर्ग क्यों पञ्चम गुरित और प्रसार का ?
सत्तम उज्जल अब वायु कहां है ? हम इस समय कहां हैं ? (उन्माद)

पुत्रवा:- हूट गई धरती नीचे, आभा की प्रकाशों पर
बड़े हुये हम देह छोड़ कर मन में पड़ चुके हैं। (योग)

उर्कती:- पुत्रों का सम्पूर्ण जीवन सिर पर, बस सरव उठाये
अदि परत का शृंग मुविहार हम की क्यों घेर रहा है ? (मर्मस्पर्श)

पुत्रवा:- अकल पुत्रों से ये प्रश्न क्यों हो खिलते जाये हैं
नित्य जोड़ते श्रृं पक्ष हमारे बनी महान् मिलन का (आश्चर्य)

हम छोटे छोटे वदों में नील-रत्न रीमांचक मानसिकता की अभिव्यक्त करती हैं।

स्वर्ग गीत:-

उर्कती में प्रथम स्वरूप नील जीवनीयता का है जो अपनी कला-सिद्धि स्थिति में हमारे मन में अत्यन्त रूप और दया-भाव का सुख करती है। पुत्रवा ने लक्षित किया है कि जीवनीयता पूजा-स्त रहे, धर्म-शास्त्र न

हरे और स्वर्ग पुत्रवा की धर्मशास्त्र में निहित हैं। 'प्रेम के उन्माद में पुत्रवा मिथ्या भाव कर रहे हैं:- वस्तुतः ये उर्कती के साहित्य में भी माधव परत पर प्रणव-विहार मान्य है। जीवनीयता एक अन्तर्मुखी नारी के सुख-दुःख का प्रतिरूप मान्य

रह जाती है, उसे यह सब कहाँ प्राप्त है जो एक नारी को चाहिए होता है:-

सब कुछ है उपलब्ध, एक सुख नहीं मिला है
जिस से नारी के अन्दर का मान-बद्ध चिन्ता है।

यही नारी-सुख के अभाव से उत्पन्न उदासीनता को औरीनारी जग और बहुत
से संयुक्त कृष्ण से भर कर प्रकट करती है:-

हाँ, अतीवृद्धि साधन है

हाँ, जगदीश साधना है

अपारा के संग रमना ही ही आराधना है

पुत्र पाने के लिये विचार करें वे सुख - मन में ,

और मैं आराधना करती हूँ तुम्हें मन में

चिन्ता विमल न्याय है । (राजा का)

कोई न बात उपाय है।

अवसर है सब की, मगर नारी बहुत अन्धकार है। अंक 2/39

यस गीत में राजू कवि मैथिली शर्मा युक्त की काफी गूँज रही है "अन्धकार
जीवन काय तुम्हारी यही कहानी" किन्तु औरीनारी के अँधारे में सुख है ही कहाँ
आँधी का पानी भी मानों राजा पुरुषवा के झर - उद्गम भी जगनों में सुख का है।
क्यों कि पुरुष प्रधान समाज के कर्णधारों और पुरुष के अँध में सदा धोखा की है

"नारी। उसे जो सुख मन में जीव पर लाओ नहीं।

यस गीतों के रूप में पुरुषवा और उर्जा के दो लम्बे लम्बे भाग न हैं
जिन्हे उन्हीं ने गीत-रूप में व्यक्त किया है। पुरुषवा का गीत एकात्म - गीत
है जिसे अँग्रेजी में *Sohlogy* कहते हैं और यह गीत भी उन्हींका ही नहीं है। यस
गीत में लय और आरोह अवरोह के माध्यम से कवि ने विचार प्रधान गद्य
उत्पन्न की है:-

यस चन्द्रमा को हाथ से धर कर बिछोड़ी,

पान कर लो यह सुख, मैं रोना हूँ भी

अब उठते आगे कभी उद्गम हूँ भी ।

पुरुषवा का यह अन्तर्जात्मिक गीत मानों दिनकर सूर्य की चिन्ता की प्रकट करता
है। बार बार कवि एक विचार की उत्पन्न करता है फिर उसी का उद्गम-य उद्गम
करते लगता है:-

दृष्टि का जो वेग है, वह रक्तको भोजन नहीं है

स्व की आराधना का मार्ग आतिथ्य नहीं है।

और यस का ही विरोध यह कर रहा है --- "स्व की आराधना का मार्ग
आतिथ्य नहीं तो और क्या है?" आठ पृष्ठ का यह एक-गीत प्रार्थना के गीत
माने से समाप्त होता है जिस में रक्त की भाषा प्रकट है:-

हैं तुम्हारे रक्त हैं लहर लहर

मे तुम्हारे रक्त के रंग में समा कर
प्रार्थना के गीत गाता चाहता हू।

वही संदर्भ में उर्दगी के सौन्दर्य प्रस्ता में पुरखा ने पहला गीत प्रस्तुत किया है
जहाँ पुरखा कह उठता है— "तुम मेरे बहुरंग स्वप्न की मणि दुर्लभ प्रतिमा हो।"
पुरखा का विजतीय गीत भी सुनीय अंक में पूर्ण स्वर्ण है। यह गीत प्राकृतिक सौन्दर्य
से परिपूर्ण योग-योग की मीमांसा करता है जिस में गीता - ज्ञान की छवि निहित
रही है --- यह निम्न सर्वज्ञानार्थ तत्त्वां जगति संयमी।

वही प्रकार उर्दगी के गीत - भाषण हैं जिन में उस ने दर्शन, ईश्वर, माया,
मिथ्य, मुक्ति, मोह, राग-विराग, गीता-ज्ञान, अकाम आनन्द, पलासिका,
अन्तःक्षेमा वाद, काम-सिद्धांत, गुण-दोषों, का भेद, मनोबोध, ईश्वरार्थ, कर्म,
और अनेक कथा-पुराण सन्दर्भों को अनेक मिथकों के सहारे दस पृष्ठों में गाया है।
बड़ी विराट गीत-कल्पना है:-

जब तक रोम प्रकृति जब तक जब भी बसते जायेंगे

जीता मय की लहर, रागिनी, आनन्द मयी द्वारा में।

उर्दगी का विजतीय गीत देह-भाव के की प्राप्ति से प्रारम्भ हो कर कवीन्द्र रवीन्द्र
की भावार्थक उर्दगी के स्व-चित्रण और सौन्दर्य भाव में विजय प्रिया कल्पे पर
समाप्त होता है। वही गीत में दो पंक्तियाँ और भी अधिक गीतात्मक हैं,
सम्भवतः अत्यधिक रोमांचक भावना प्रधान भी:-

परिरम्भ पार में लीं हुये, उस अम्बर तक उठ जाओ रे।

देखता प्रेम का सोया है, चुम्बन से उसे जगाओ रे।

उर्दगी के वही अंक में वही पुरखा के दो गीत और समाये हुये हैं जो उर्दगी काव्य
में था ही नहीं सके थे। कवि ने वही स्वर्ण रूप से लिखा अक्षय्य हो ॥ अक्षय्य परन्तु
काव्य में संयोजित नहीं कर सका है। कवि इनका मोह भी छोड़ नहीं पाया है
अतएव "पुरखा के दो गीत : उर्दगी के प्रति" स्वर्ण रत्ना के रूप में प्रकीर्णित
कर चुका हो सका है। इन गीतों की प्रकारण विधि भी उर्दगी काव्य के प्रकारण
के ग्यारह वर्ग बाद की है।

पुरखा के दो गीत : उर्दगी के प्रति

:-

मे तुम्हारे लीनों से रहित भूतन देखता हूँ
जो न देखा था कभी, इस स्वप्न का तन देखता हूँ
देख कर तुम की विचार भी,
दुष्ट करता हूँ तुम में
हर तरफ मिलता हूँ ---
सौन्दर्य पूर्ण के ज्ञान में

तारकों में भिन्न भिन्न होती जाति की सुतली तुम्हारी
और धूलों में तुम्हारा निरुद्ध आनन्द देखता हूँ।

स्व के जल से बगों के
लौह सारे धुल गये हैं
जब ये जो 'ज्वाला' गौहर के पारे
ये धुल गये हैं -----

जब मही सुन से जिन्नी है, सात परदों की रिश्ता भी
सिंधु का लीला, बालिल, रेश का मन देखता हूँ

एक ही है ज्योति, फैले,
कामिल कम, चाहे 'गमन' में
या मही पर फल अधका
कामिली कम कर धुलन में

जोड़ कर हरपासियाँ, लीला जहाँ लीला हुआ है
में इसे तुल में जहाँ साकार ज्ञान देखता हूँ।

2

स्व ही तुम जब जिसे कवि कल्पना परधानती है
सत्य ही जिसे की कला मन्त्र-मन्त्र अपना मानती है।

नीलिमा के पार वाली निरुद्धों की, कौन ही तुम'
कुलकुलाने और जहाँ से भरी ही कौन ही तुम'

भाषना की दीखती निरुद्धों की ज्योति तुम में
कल्पना ज्योति की आभा तुम्हें अनुमानती है।

याद क्यों जाने जहाँ हुआ हुआ इतिहास मेरा'
बादलों में तारकों पर चाँद पर आकाश मेरा'

देख कर तुम ही न जाने जैसा क्यों ज्योति ही कर
अन्य जन्मों के निरुद्धों की धीमों की जन्मती हैं।'

वायु कह कर कभी न कह पायी, जिसे वह नामहीन तुम
सिंधु की सुतली तरंगों की कथा अनिराम ही तुम
देख कर तुम ही न जाने चाँदनी क्यों याद आती'
कल्पना मन में चंदीचा पूल का क्यों जानती है'

3

सिंधु से निकली तरंगों की रिश्ता पर नापकी तुम
या किलन के तार पर तुम लेकती उतरी गमन से'

चाँदनी के साथ जाँचों में, मरा प्रत्यक्ष भी है
चाँदनी के ज्वाला में लहरा रहा प्रीत्यक्ष भी है

जब ललितता से समझ कर भी देखे जा रही है
मन मनाती सादिका जिसे भाँति अनन्दीयता वचन से

2

जन्म से पहले सुना जाने कहाँ, वह मान ही तुम
 पदम कम में छेती रवि - रविम की मुखाग्र ही तुम
 सात कर देती मही को, सातिमा पद से दुख कर,
 तुम जहाँ होती छड़ी, जाकारा भर अस्ता सुनने से

3

सुष्टि रीतों की करेगा स्वर्ग का सुर-वापन कर
 और नदियों में बड़े-बड़े स्वर्ण मणि - मुक्ता पिछल कर
 मैं तुम्हारे पाँव पर मैथिल्य बन कर के चढ़ूँगा
 देखती जाओ वसी पिछि और रिक्त, बहिरम नमन से।

बीधा गीत

तुम मुझे अपने क्षितिज से घेर कर खन्दी बना लो
 मैं तुम्हारे ज्योम की भँकार होना चाहता हूँ।

पैलने को हैं बिकल मेरे हृदय का सिन्धु भर कर
 छौंठ कर लल का गर्भ हैं, जाड़ में आत्मा समझ कर
 जोलतो दुनियाँ सीमाओं, ज्वार जाकुल फूटता है
 तुम्हें का मैं व्यग्र हावाकार होना चाहता हूँ।

छोजता है लय तुम्हारे ज्योम में व्यक्तित्व मेरा
 दुख जाना चाहता है, सिन्धु में अक्षित्व मेरा,
 जीन कर लो प्राण प्राणी में, हृदय अपने हृदय में,
 मैं तुम्हारे साथ एकाकार होना चाहता हूँ।

चारि मीनों से भरा रंगों भरा तुम्हण से कर
 कायना जलती हुई, सुलने हुये वरमान से कर
 जर्जना को जा गया मैं, पाँव तो अपना बहावो
 मैं प्रभा मय पदम का उपहार होना चाहता हूँ।

हिन्दी एक सेक्टर, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, स्वर्ण दिनकर की द्वारा सुर्भ
 यो पद प्रकाशित — " दिनकर के गीत" पुस्तक से बहुत बहुत से गीत उर्दगी में जाने
 से रह गये। पुस्तक के ये गीत उर्दगी के किस अंक में समाते, नहीं कहा जा सकता।
 सुतीय अंक ही ऐसा अंक है जहाँ कोई भी भावनात्मक गीत गाया जा सकता है या,
 किन्तु ज्ञान-विज्ञान और तर्क-वितर्क से परिपूर्ण हल अंक में पुस्तक द्वारा गाये जा कर
 ये गीत केवल पद मीली ही लगते और उर्दगी के तर्क-प्रवाद में व्यक्तित्व बन जाते।
 जो उनमें केवल वहाँ पढ़ कर ली मायिका को समाने का मनुहार भर प्रतीत होता है
 जो पुस्तक की प्रकृति नहीं है, सायब दिनकर की भी नहीं थी।

00000000000000

समयगत गान:-

दर्शनी के प्रथम अंक में तीन समयगत गान हैं। सभी कुल समयगत - गीत हैं। "समयगत गान" को अंग्रेजी में कोरस कहते हैं। अंग्रेजी नाटकों में विशेषतः रॉक्सबोरो के नाटकों में कोरस एक पात्र के रूप में कथा - चित्रात्मक में एक मुख्य सूत्र है। दिनकर के समयगत गान किसी कथा सूत्र को चित्रित नहीं करते। ये तीनों समयगत गान परिवर्तों द्वारा गाये गये हैं। इन में प्रथम दो सहजम्भा, एक हम्भा और मेमका ने गाये हैं तीसरे गीत में चित्रलेखा भी सम्मिलित हो गई है। मट्टी और सुनकार परिवर्तों के प्रवेश का संकेत कर कथा के प्रथम चरण का प्रारम्भ कर छाया में अक्षय हो जाते हैं और परिवर्तों आनन्द विहार करने के लिये खडकी रात का स्वागत करती हैं:-

"दूनों की नाच बहाओ री, यह रात खडकी आई।"

इस गीत में केवल तीन अप्सरायें हैं और "टेक" के रूप में "यह रात खडकी आई"। दिया गया है कि इससे यह प्रतीत होता है कि यह गीत परम्परावादी स्वरों में को मुखरित कर रहा है।

दूसरा समयगत गान कविवर सुमित्रा नन्दन पन्त के "छोकियों का गीत" शीर्षक कविता से प्रभावित नाद-सौन्दर्य का गीत है। पन्त जी का गीत स्वर अंग्रेजी के ६वर्ग अक्षर *Onomatopoeia* का सुन्दरतम उदाहरण है जिस में गीत के बीच नृत्य की ६वर्ग की ६वर्ग करती है:-

तो, उन उन उन उन उन उन उन

धिरक मुखरिया हाँसी मन ---

इसी आवृत्ति को दिनकर जी ने परिवर्तों के समयगत गान में विविध भिन्न किन्तु उसी ६वर्ग में प्रस्तुत किया है। यह तो दिनकर जी स्वीकार करते हैं कि उन पर पन्त जी के काव्य और ६वर्गियों का प्रभाव पड़ा है। दर्शनी काव्य का समर्पण कुछ है भी "अप्सरा लोक के कवि श्री सुमित्रा नन्दन पन्त के योग्य" है। अतएव यदि दिनकर ने उसी ६वर्ग का उपयोग भी किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं:-

हम गीतों के प्राण सञ्च

हम उनन् उन् हम उनन् ।

इस गीत में भी तीन अप्सरा हैं और इनकी छ टेक भी "हम उनन् उन, हम उनन्" की है। श्री मेधनी शरण गुप्त के समान इन में भी अन्तस्वयानुनास का आग्रह की अधिक है --- विभुवन, भवन - भवन, रत्नवन के साथ हम उनन् उनन्हम उनन् । " की गति और नाद की एक स्पष्टता इस में नहीं मिलती। अतएव इसकी गीतात्मकता प्रभावोत्पादकता प्रतीत होती है। हम उनन् उनन् में नृत्य की ओक्षा की जा सकती है पर अप्सरा के साथ संगीत नहीं बैठ पाती।

तीसरा समयगत गान चार परिवर्तों ने गाया है। इस गीत में पूर्वोक्त संगीत भी है। रीमा ने किसी स्तन उठाने का संकेत किया है और यह गान सम्बोधन के स्वर में गाया गया है:-

बरस रही मधुं धीर मगन से, वी से यह रस रे ।

उमड़ रही थी बिभा, उसे बड़ बावों में कस रे ।

.... ...

रस रे रस मिल मिल प्रकाश, चाँदनियों में कस रे ।

कुल छः पंक्तियों के इस सम्बोधन समवेत गान में एक जीवन्तता प्रकट हो रही है।

यथार्थ यह है कि समवेत गान यूनानी अथवा ग्रीकी नाटकों में पात्र-स्य होने से अपना विशेषीकरण महसूस रखती हैं। हिन्दी की यह प्रकृति है कि नहीं। फिर उस में ग्रीकी अथवा यूनानी कला को बरकत रखना काव्योक्ति प्रतीत नहीं होता। सत्य तो यह है कि हम गीतों का उद्योग सौन्दर्य - ध्वनि छद्म की दृष्टि से तो उचित प्रतीत हो भी जाये पर गीति-नाट्य के मध्य में बाधक प्रतीत होता है।

संक्षेपः गीत मानव प्रकृति है। अनादि काल से गीत का मानव पर स्पर्श प्रभाव रहा है और संसार के सभी धर्म ग्रन्थ गीतात्मक ही हैं। सामवेद तो गायन - ग्रन्थ ही है। इसी प्रकार बार्हस्पत्य की काव्यों को वर्ण कहा गया है। गीत का प्रभाव स्थायी होता है अतः गीत ऐसी सम्पूर्ण उर्वरी काव्य में प्रभावहीन है।

0000000000000000

उर्दूगी में रसात्मक बोध

रस की सर्वमान्य परिभाषा भरत मुनि के सूत्र " विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद रसनिष्पत्तिः " में निहित है। काव्य में जो भी नव्य कथा कथ्य है वह उस से सद्बुद्ध पाठक या श्रोता के मन में विभाव अनुभाव और संवारी भावों से अभिव्यक्त आनन्द ही रस है। यह आनन्द मूलतः मूल प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति है जो साहित्यिक क्षेत्र में नव रस कहो गई है। उर्दूगी गीति नाट्य में केवल सात रसों की ही अभिव्यक्ति है। इस काव्य का मूल और आधार रस भृंगार है, वीर, अद्भुत, भयानक, उल्लास, रौद्र, और रसान्त रस अन्य किन्तु गौण हैं, बाक्य तथा बोधरस रस का इस गीति नाट्य में अभाव है।

भृंगार रस =====

भृंगार रस के दो भेद हैं:- संयोग/संभोग भृंगार और वियोग/ विप्लव भृंगार।

संयोग भृंगार:-

मूलतः उर्दूगी भृंगार रस का काव्य है। भृंगार के दोनों चक्षों, संयोग और वियोग, का सुन्दरतम निर्वाह उर्दूगी में किया गया है। संयोग काल का सुख "उर्दूगी" के द्वितीय अंक से प्रारम्भ हो कर चतुर्थ अंक में समाप्त होता है। द्वितीय अंक में लड़के भी संयोग सुख सुख है जिसे वाली निमृण्डा ने महारानी औरमिनी की सुनाया है। स्वर्ग से आई उर्दूगी सब रेंडों की ओट से सब मणि के समान कान्ति विकीर्ण करती निकली, उस समय सब ज्योतिर्मयी नर के लीला में आम लगाने वाली कामिनी के समान प्रतीत हो रही थी। और राजा दुलखा ने उसके कई उम्मीदवार मयनों और महम-केण्टाओं से अभिप्रेत हो उसे दौड़ कर बाहों में उठा लिया और वे पकाकार हो गये।

महाराज ने देह उर्कगी को ज़हीर अक़ला कर
बाहों में भर लिया दीड़ गोदी में उसे उठा कर
सगा गर्भ उर-बीच अप्सरा सुख-संसार-सना सौ
वर्त के पंखों में तिमटि गिरिमल्लिका ज़ता सी।

"आषाढस्य प्रथमम् दिवसे" का स्मरण कवि दिनकर ने भी उर्कगी-पुस्तका प्रेम प्रसंग में इसी वस्तु-मात्र का प्रयोग किया है। पुस्तका प्रार्थना प्रिया उर्कगी को "प्राणों की मणि, मनोमय मोहनी" जैसे विशेषणों से सम्बोधित करते हैं, कभी ध्यान धर कर "पुष्पन की कल्पना" से अंगों में सिहरन अनुभव करते हैं और कभी आजीवन विचारण करते हुये मिलन-सुख को निरत्य ही वरण करने की कामना करते हैं। दो प्रेमियों के मिलन-योग में पुस्तक पूर्ण समर्पित हो कर प्रेयसी के शृंगार संधान में लगा रहता है:-

जिधर जिधर उर्कगी फुसती, देव उधर चले हैं
तनिक ज्ञान्त यदि हुई, व्यक्त वस्तव-दल से भले हैं
निश्चित देह की गाढ़ दृष्टि के पथ से मन्जित कर के
अंग अंग विखण्ड, पराग, फूलों से सज्जित कर के
जिह दुरन्त कहते4 " ये भी तो ठीक नहीं जेते हैं
भाति भाति के विविध प्रसाधन बार बार रहते हैं। उ० 2/32

उर्कगी का संयोग शृंगार सुतीय अंक में अपनी चहग सीमा पर पहुँच जाता है। संयोग काल के प्रेम-प्रवर्तन की अवस्था संयोग तक में परिवर्तित हो जाती है। मिलन, स्पर्श, आलिंगन, चुम्बन, और परिरम्भन के कोमल और सखिदन रीति, उल्लेखक और कामोद्दीप्तक अनेक चित्र उर्कगी में अभिव्यक्त हैं। प्रणय-विहार में समय की गति रुक जाये और रुकी रहे यही तो प्रणयी-युग्म की अभिलाषा है। यही समय अकसर के समान भारी हो कर उर्कगी के वियोग को स्वर्ग - लोक में अत्यधिक दुःखदायी बना रहा था। उर्कगी की कामना थी कि उसका कपोल उसके चिक्कन के वक्ष पर टिका रहे, आलिंगन उर-बीड़ हो और चुम्बन निर्व्यक्ता से उसके अधराधर हो जाता रहे। उर्कगी अप्सरा से मानवी बन कर इस लोक में सामान्य नारी की भाँति जीने के लिये आर्ष है:-

पर मैं बाधक नहीं, जहाँ भी रही, भूमि या नभ में
वक्ष रत्न पर, इसी भाँति, मेरा कपोल रहने दो
कसे रही, वक्ष, इसी भाँति, उर-बीड़ आलिंगन में
और जताते रही अधर-पूट को कठोर चुम्बन में।

उ० 3/61

इसने मात्र है यह अप्सरा कब लुप्त होती' यह काम डीढ़ की प्रशिक्षण की काम - कला का निर्देशन भी करती है:-

किन्तु जाह । यों नहीं, तनिक तो शिक्षित करो बाहों की

और परिदम्भन की कठोरता को सहन न करने पर बिन्दु रति-सुख को निरन्तरता
जमाये रहने की कामना की से कर काम-सुख का समय बढ़ाने के लिये स्तर-विषयों में
मन लगाने का संकेत भी करता है:-

ना, यो नहीं, जरे, देखो तो उधर, बड़ा जीतु है।

उत्तरी वस सुख-सुखना को कहां समेट कर धरे' संयो-गी अनन्तरता की काव्य की
महत्ता है।

संयोग का दूसरा चित्रण सुकन्या-ध्यान की गीत उधा में उल्लिखित है जहां
तपोनिष्ठ हजि ध्यान का क्रोध भी तपोनिष्ठ होने पर सुकन्या के सौन्दर्य से प्रभावित
हो तिरछित हो गया है। हजि ध्यान अपने तपोधर्म की तपस्व्युति नहीं
मानते बल्कि उसे देवताओं का वरदान मानते हैं कि सुकन्या उनके लिये सिद्ध बन
कर आई है। स्वयं सुकन्या हजि ध्यान के दर्शन मात्र से उनकी ओर आकृष्ट हो गई:-

लगा मुझे, सर्वत्र देव की पवरी टूट रही है
मिलत रही है स्वचा तोड़ कर दीपित नग्री स्वचार्य
चला आ रहा फूट अंतल से कुछ मधु की धीरा सा
हरियाली से मैं प्रसन्न आकृष्ट भरी जाती हूँ।

और सुकन्या का प्रणय-परिणय युक्त जीवन सदा सुख पूर्ण रहा है।

विधोग संसार:-

नायक - नायिका के परस्परानुराग में मिलन-
निरास की विपुलम्भ है। उत्तरी में विधोग का
का चित्रण, पहले, दूसरे और चौथे अंक में विचार
कर्त्तव्य है। प्रज्ञा की एक अवस्था का सन्दर्भ
सुतीय अंक में भी मिलता है। विधोग का

विपुलम्भ की अभिलाषा, विरह, संघर्ष, प्रवास एवं शाप के रूप में माना है। उत्तरी
में अभिलाषा, प्रवास, और शाप हेतु विधोग का वर्णन है कि जिस में से शाप हेतु
विधोग केवल उत्तरी में ही है सोम की उत्तरी और पृथ्वी की दोनों के चरित्र में प्रवास
है। अभिलाषा हेतु विधोग उत्तरी के सन्दर्भ में प्रथम अंक में सुकन्या की एक
उक्ति में स्पष्ट है:-

सही उत्तरी भी कुछ दिन से है छोड़ छोड़ तो
तन से जगी, स्वप्न के कुंजी में मन से छोड़ तो
छड़ी छड़ी अनमनी तोड़ती हुई सुख पंहुँडियां
जिसे ध्यान में बड़ी छावी देती शक्ति पर छड़ियां।

उ० 1/14

प्रवास हेतु के सन्दर्भ में सुकन्या उत्तरी यदि अपने अन्त पृथ्वी का अंक न पा सही
तो निश्चय ही शरीर त्याग कर साधना बन जायेगी। उसे अब स्वर्ग - सौन्दर्य

1:- आचार्य सम्मत: अस्तु अभिलाषा विरहसंघर्ष प्रवास शाप हेतु रति पंचविध:

काव्य प्रकार 4 रस प्रकार

का आकर्षण बाध कर न रख सकेगा। यह चित्र-सेही से कहती है:-

"धैरे भी हो मुझे आघ प्रिय के समीप पहुँचाओ।"

यह भी उसना ही सत्य है कि राजा पुत्तवा को उर्करी के उपवन में होने का ज्ञान है, वे भी व उस से मिलने की इच्छा की लिये हुये हैं।

विद्योग अन्य कला विप्रलम्भ का एक मुख्य भेद है।¹ आचार्य किकनाथ ने पूर्व राग, मान, प्रवास, और रक्तों को विद्योग द्वार के अन्तर्गत माना है।² उर्करी के विद्यतीय अंक में महारानी औरानी की चरित्रांकन कला सिलत है। उर्करी - पुत्तवा का आजीवन साथ रहना ही औरानी के लिये मरण तुल्य है:-

आजीवन वे साथ रहेंगे तो अब क्या करना है।

जीते जी वह मरण भेदने से अच्छा मरना है।

उ० 1/31

यह मिलन मेराय ही कला काय है। यह अलहाय नारी पाँचवें अंक तक विद्योगिनी बनी रही। उर्करी के अन्तर्धान होने के उपरान्त यदि पुत्तवा के सामिध्य की कोई आशा किरण रही भी हो तो वह महाराज के परिजनों होने से तुरन्त समाप्त भी हो गई। और कालिदासीय काव्य-कौरव से कामायनी के पुत्र मानव-बड़ा सामिध्य को समानान्तर रख कर औरानी - आयु की वरजल वास्तव्य का निर्वह करना पड़ी है।

आचार्य किकनाथ ने विद्योग की दस काम दशाओं का वर्णन किया है: १।

अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुण कथन, उद्योग, प्रताप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण।

मरण दशा का चित्रांकन वर्जनीय है।

1:- अभिलाष:- पुत्तवा के कथन में उर्करी को दैत्य केरी से उन्मुक्त कर स्वयं वापिस लौट जाने का परचारण एवं अनुमन करने की अभिलाषा बनी रहती है:-

उर्करी:- जिस का ध्यान प्राण में मेरे यह प्रबोध भरता है उस से बहुत निवृत्त हो कर जीने की जी करता है।

पुत्तवा:- सुधा लौट जाया उस दिन उज्ज्वल मैघों के वन से नीति-भीति, लंछन-वर्णन का ध्यान न एक लान्कधा मुझे ब्रूता उस तपने के पीछे पीछे जाना था।

उ० 1/29

2:- चिन्ता:- प्रिय के मिलन के उपाय की छोटी चिन्ता है। प्रिय का भोग भी चिन्ता का विषय है। इस दृष्टि से उर्करी और औरानी दोनों

1:- किकनाथ:- "स च पूर्वरागमान प्रवास कलात्मक रक्षुर्वा स्यात्"

साहित्य दर्पण: 2/188

11:- अभिलारिचिन्तास्मृति गुं कथनो ज्येष्ठ प्रतापारध

उन्मादीय व्याधिर्जिता स्मृतिरिति आत्र काम दशाः । साहित्य दर्पण: 3/190

की चिन्ता का है:-

उत्पत्ति:- सुप्त नहीं अब मुझे सांस भर-भर सोरम पीने से
उब गई हूँ दबा कंठ नीरव रह कर बीने से

उ० 1/21

औरीनरी:- ऐसी भी मोहनी कौन सी करियाँ कर सकती हैं
पुत्तों की धीरता, एक पल में यो हर सकती हैं
जना अप्सरा ने तबामी को जिव से या मायासे

उ० 2/29

3:- स्मृति:- पूर्व सुख की कल्पना और विम्व स्मृति के आनन्द से नवीन सुख की
सृष्टि करती है --- विद्योग में भी स्मरण - सुख आनन्द दायी होकर उभ

सगता है जोई शोणित में स्वर्ग सरी होता है
रह-रह मुझे उठा अपनी छाछों में भर लेता है
कौन देखता है, जो यों छिप छिप कर खेल रहा है
प्राणों में रस की अल्प माधुरी छुल रहा है ।

उ० 1/21

4:- गुण कथन:- सुन्दरता का कथन उत्पत्ति की प्रतीति में उसकी वियोगजन्य कला को
और अधिक उल्लेखित करता है:-

एक मूर्ति में समा गई किस भाँति सिद्धिदया सारी
उब था ज्ञात मुझे बतानी सुन्दर होती है नारी ?

उ० 1/24

5:- उद्योग:- उद्योग बुद्धि की वह अवस्था है जिस में निश्चय वाचक कुछ नहीं
संघापि मिलनातुला सदैव धनी रहती है:-

धिर होते --- " जाने अब तक परितोष प्राण पायें मे ?
अन्तराग्नि में बड़े स्वप्न अब तक जलते पायें मे ?

उ० 1/24

6:- प्रताप:- उद्योग की अत्यधिक उत्तेजना प्रताप है। जिस में निराशा का भाव
अधिक है:-

मेरे अबु बीस बन कर कल्पद्रुम पर छाये मे
पारिजात - धन के प्रसून आदों से दुन्दुताये मे।

उ० 1/25

7:- उन्माद:- उद्योग - प्रताप से और आगे की स्थिति उन्माद है जिस में स्वतन्त्र
का ही विस्मरण हो जाता है।

दुम से भाले हुये अबु का ज्ञान नहीं होता है
आया-गया कौन दल का कुछ ध्यान नहीं होता है।

उ० 1/14

8:- व्याधि:- आरम्भ प्रपीडन उठे ही व्याधि है जिस में सामान्य सौन्दर्य भी क्षी-
वीन हो जाता है:-

मुक्त - सरोज मुक्तान बिना आभा - विहीन लगता है
 कुल मोहिनी श्री का चन्द्रामन मनीन लगता है ।

उ० 1/14

9:- चक़ता:- सखिदन-हीनता ही चक़ता है:-

वे नूपुर भी मोन बड़े हैं निरानन्द सूरपुर है
 देव सभा में लहर लास्य की जब वह नहीं मधुर है ।

उ० 1/14

10:- मरण:- साहित्य में मरण की स्थिति वर्णनीय है, किन्तु पुरुषवा की चक़ता
 यही है कि वह मर कर भी उर्कती को यदि तन से नहीं तो क्या मन से
 प्राप्त कर ही रहेगा:-

----- " या फिर देव छोड़ में ही मिलने जाऊँ गा मन से । "

शृंगार रस की प्रमुक्तता के साथ उर्कती में अन्य रसों का --- साथ ही छोड़ कर ---
 भी परिपाक हुआ है। वीर रस और कल्याण रस की प्रतीति हमें काव्य के पाठने में
 निरन्तर बनी रहती है, किन्तु अन्य रस का भी निर्वहण वस ग्रंथ में हुआ है।

वीर रस:- "वीर रस" का धर्म उत्कर्ष उर्कती के पंचम अंक में उर्कती के अन्तर्धान
 होने पर प्रकट हुआ है। ^{उर्कती की} ~~उत्कर्ष~~ पौलव भरत-राय को जान और भी
 दुकार कर उठा है:-

लाजो मेरा धनुज, सजाओ मगन जयी इसल स्यन्दन को
 लखा नहीं, कम राहु स्वर्ग - दूर मुझे जाय जाना है
 और दिखाना है दावकता जिस की अधिक प्रकट है
 भरत राय की या पुरुषवा के प्रकण्ड बाणों की ।

उ० 2/138

श्रीर रस:- वीर रस के उत्साह के साथ क राहु के प्रति शोध का भाव शीघ्र रस का क
 है। अपने अमान की पुरुषवा भवन नहीं कर सकते और न भरत राय
 उनके लिये चुनौती है। उनका शोध सारे स्वर्ग में जाग लगा सकता है :-

लाजो मेरा धनुज, यहीं से जाग साध इस अम्बर में
 अभी देवताओं के मन में जाग लगा देता हूँ
 पैर प्रहर, प्रखलित अग्निमय चिरिछ दृप्त मध्या की
 देता हूँ मैवेद्य मनुज के विरुद्ध संगर की। उ० 2/138

अद्भुत रस:- अद्भुत रस का चित्रांकन उर्कती के पंचम अंक में स्वप्न दृश्य में हुआ है।
 महाराज पुरुषवा ने स्वप्न में अपने ही पुत्र जायु को देखा है और
 वह सभासद ब्रह्म स्वप्न का फल-निर्णय करने के लिये एकर होते हैं सभी
 सुकन्या जायु को ले कर राय-सभा में प्रवेश करती है। यही वह क्षण है

जब पुरुषवा आरच्य - विस्मरित मैत्री से स्वप्न की सजीवता को प्रत्यक्ष करता है:-

महाराज्य, अष्टम उटना। अद्भुत अर्ध सीता है
यह सब सत्य यथार्थ था कि फिर सपना देख रहा हूँ।

उ० ३/१३४

उत्कृष्टी के लोप होने की सूचना भी पुरुषवा की आरच्य में उल्लेख होती है। महाभारत की पुष्टि है कि उत्कृष्टी अब वहाँ नहीं है:-

महाराज्य। आरच्य। उत्कृष्टी देवी यहाँ नहीं है।
कहाँ गई? यो छुट्टी अभी तो यहाँ निकट स्वामी है।

उ० ३/१३५

भयानक रस:- भयानक रस भय की स्थिति से उत्पन्न होता है। उत्कृष्टी में यह स्थिति सुकन्या - कथन प्रसंग में और उत्कृष्टी - आयु - दर्शन प्रसंग में मिलती है। सुकन्या ने सपना-रत इति वर स्वप्न की पलक छींच ली थी और उनका कोप भाग्य बनती। उस सम्भावित कोप से वह संज्ञा-सूच्य भी छुट्टी रही:-

रश्मि मात्र भी विलीन नहीं, निष्कम्प चेतना-हीना
छुट्टी रही उस भय-सम्भ-योद्धा अर्ध मुनी की
जिस की मृत्यु समझ छुट्टी हो, मुनीरु की जाँचों में।

उ० ४/१०५

दूसरा प्रसंग पंचम अंक में उत्कृष्टी की भय वातावरण स्थिति है जब जब आयु के दर्शन का स्वप्न - विवरण सुनती है और भरत राय की सत्य होते देख उसकी मनःस्थिति आत्म-भय से पूर्ण प्रतीत होती है:-

दुर्धर्मा। दुर्भाग्य। अपाते। तनिक और पानी है
उमड़ प्राण से कहीं कण्ठ में गला जटक गई है
लगता है आज ही प्रलय अम्बर से फूट पड़ेगा।

उ० ३/१२९

कला रस:- उत्कृष्टी काव्य में कला का प्रसार द्वितीय एवं पंचम अंक में हुआ है। द्वितीय अंक में औशीनरी की दोन - हीन अवस्था के पर यही औशीनरी अपने कला जगत में पंचम अंक में उपस्थित होती है। द्वितीय अंक में पुरुषवा के प्राप्त होने के बाद की एक क्षीण अवस्था थी भी। पंचम अंक में पुरुषवा के परिव्राजक बनने से यह भी समाप्त हो गई। आयु की कठ से से वह अपनी कला का प्रसार एवं उन्नयन कर लेती है।

भूल गये यहाँ दक्षिण, बाय, उस नीरव निभूत मित्र में
बैठी है कोई अछूत प्रेमयी समाराधन में
अधुनकी माँगती यह ही सीध-.....

उ० ३/१२०

वीरभक्त रस:- वीरभक्त रस का परिपाक उर्वर्गी काव्य में नहीं हुआ है किन्तु भू लोका के प्रति प्रजापति का भाव सहजान्या के कथन में प्रकटता सा प्रतीत होता है:-

उफ! ऐसी है धृष्टि भूमि' तब तो उर्वर्गी हमारी
सन्मुख ही कर रही नरक में जाने की तैयारी।

उ० १/१७

शान्त रस:- उर्वर्गी के अन्तर्धान होने पर जो रौद्र पुस्तका में जागृत या प्रारब्ध के प्रबोध करने पर वही शान्त रस में बदल जाता है जो र पुस्तका सन्वासी हो जाते हैं:-

मृगा बन्ध विह्वल - विलास का मृगा मोड़ माया का
इन वैदिक सिद्धियों, कीर्तियों के कल्याण में
भीतर ही भीतर लिपट में कितना रिक्त रहा हूँ।

उ० ५/

निष्कर्ष:- उर्वर्गी एक दुर्गार-रस प्रधान काव्य कृति है। "दास" को छोड़ कर अन्य रस और व्यङ्ग्य/काव्य में पूर्ण उत्कर्ष के साथ चित्रित हुये हैं यद्यपि ऐसे रस कम ही हैं। काव्य का अंगी रस दुर्गार ही है जो सम्पूर्ण कथा में व्याप्त है।

000000000000000000

उर्दू में काव्यात्मकता

१३। कलागत विशेषताएँ

उर्दू की भाषा:-

क शब्द बिम्ब

उर्दू काव्य में शुद्ध हिन्दी खुरी बोली का प्रयोग किया गया है। दिनकर जी भाषा के छद्म कवि हैं, हिन्दी भाषा पर उनका पूरा अधिकार है। यह कहना अधिक संगत ली-गा कि उनकी शब्दावली अपेक्षाकृत अधिक सम्पन्न है और वे प्रत्येक शब्द को उसके बिम्ब रूप में पूर्ण अर्थकता के साथ प्रयोग करते हैं। भाषा-शुद्धि, शुद्ध प्रयोग, रमणीयता और प्रभावशालिन्ता भाषा के कतिपय गुण हैं और दिनकर जी का यह कर्तव्य है कि भाषा उनके भावों के अनुस्यू चली है। कहीं कहीं तो पकावरी शब्द ही व्यञ्जना के लिये पर्याप्त होता है। दिनकर जी में शब्दों के सहारे काव्य में माद-सौन्दर्य उत्पन्न करने की क्षमता अविद्यतीय है। "कल्ल - कल्ल - कल्ल" मृगों की "कल्ल" नाम बिम्ब प्रस्तुत करते हैं। परियों के गीत में "कल्ल कल्ल कल्ल" शब्द की जाहूति मृत्यु के खड्गों की प्रवेष्टियों के माध्यम से सुन्दर बनती है। इसी प्रकार आधुनिक बिम्बों के निमार्ण में कवि ने कल, कल, कल-कल, भिलमिल, आदि शब्दों के प्रयोग से काम लिया है। उर्दू के रूप सौन्दर्य के चित्रण में "रति की मूर्ति रमा की प्रतिमा, सुजायिदमम मरुकी" जैसे पद में जो ललित गति सौन्दर्य है वह अनूठा है। "तमातल-जल - किलत पातल" जैसे पद में कवि ने गहराई का केवल जल के बिम्ब से प्रस्तुत किया है। अतएव कवि शब्दों के माध्यम से बिम्बों के निमार्ण में अविद्यतीय साध्य रखता है।

१:-

शब्द नहीं हैं, यह गुंन का स्वाद जगोहर सुख है
प्रणय प्रव्यक्ति उर में जितनी भक्तियाँ उलती हैं
कह कर भी उन को कह पाते, कहां सिंह प्रेमी भी
भाषा स्वादिष्ट, अल्प है यह तरंग प्राणों की ।

उ० ३/७०

। छ । आकृति और सम्बोधन

कवि दिनकर ने उर्दू में शब्द, पद छन्द और पदों की आकृति से प्रभावोत्पादकता उत्पन्न की है। "कुसुम कुसुम", "साधु! साधु!", "जब से हम तुम मिले", "स्व की आराधना का मार्ग", "रक्त के दुःख से अधिक कली है", "तम का अतिश्रमण", "यह अतिश्रान्ति विषोग नहीं", "हरि प्रसन्न यदि नहीं तिहिय का कर तुम क्यों आई हो", "पुत्र और पति नहीं, पुत्र या केवल पति पाओ-गी" ऐसे शब्द और पदों ने काव्य में एक और प्रभावोत्पादक कवयः गोतात्मकता की बढ़ाया है, दूसरी ओर प्रसंग की भी प्रभावोत्पादक बनाया है।

यदि गोतात्मक तब और ध्वनि, अपनी आकृति में काव्य की सुन्दरता को बढ़ाती है तो सम्बोधन ने उस में नाटकीयता का चरम उत्कर्ष उत्पन्न किया। ये सम्बोधन दो प्रकार के हैं। एक नाम स्पर्शों को पुनः पुनः संयुक्त कर और दूसरे सम्बोधन शब्दों अथवा ध्वनियों का प्रयोग कर काव्य में चमत्कार और सौन्दर्य उत्पन्न किया गया है। "रुमे: सदा रिशु के स्तम्भ में खड़ा हो जाते हैं।" "रुमे" शब्द स्नेह वाचक है। इसी प्रकार चमत्कार का सुझाव के लिये "सोम्ये" शब्द आदर वाचक है। इसी सुझाव को चित्र लेखी "सुकन्ये" कह कर सम्बोधित सम्बोधन करती है। परस्पर वातावरण में आदर और स्नेह बनाये रखने के लिये देवि, सोम्ये, रुमे, देव, लखी, प्रणेतारी, प्रानों की मणि, स्वर्ग लोक की सुखे आदि छन्द सम्बोधन प्रयुक्त किये गये हैं।

एकाक्षरी सम्बोधन ओ, तो, री, रे भावों को प्रकट करते हैं। इसी प्रकार भावों की व्यञ्जना करने वाले सम्बोधन नाटकीयता और अनुभावों की सुश्रुति करते हैं। "नही" प्रतीति वाचक है, "ऊँ" (पृष्ठ 17) प्रतीति वाचक है तथा पृष्ठ 72 व 109 पर आश्चर्य वाचक है। "दुः" मान दुःख और "जरी" तथा "पगली" मेहदय को प्रकट करते हैं। "हा । हन्त।" वैदीय विपरित्त का सूचक है।

मारी नाम स्पर्शों की भी दिनकर ने सम्बोधनों में परिवर्तित कर अपनी आश्चर्योत्पत्ति सिद्ध की है। आश्चर्यान्त नामों को "र" में बदल कर जो सम्बोधन छन्द उत्पन्न किया है उस में काव्य-सौन्दर्य में नाटकीय भाव की सुन्दर सुगंध है। सुकन्ये, रम्ये, चित्र लेखे, सुकन्ये, आते इसी प्रकार के सम्बोधन हैं। चित्र लेखी का नाम तो सुकन्या ने केवल चित्रे पृष्ठ 106, 122 कह कर सम्बोधित किया है। रास समा के वदाधिकारियों को समासदे, मंथियों, तथा महाराय कह कर सम्बोधित किया गया है। परिवर्तित सम्बोधनों में सात:- (वायु के लिये) और (माँ) और गीमरी के लिये प्रयुक्त हुये हैं।

कुछ स्व सम्बोधनों में ओ गमनकारी, सुखीसे, पतिपत्नी केर कई कारियाँ । शब्दों का प्रयोग किया गया है। "समय सारिसे" सम्बोधन में आरम्भ कथन की वास्तविक प्रयुक्त है।

न हिन्दी में बतर शब्द

दिनकर ने हिन्दी से बतर शब्दों का प्रयोग कम किया है किन्तु बतर भाषाओं के अनुवाद करने से ये नहीं बूझें। ओत-ऊन के लिये 'राज्यम' शब्द का प्रयोग उन्होंने ने बड़ी सार्थकता से किया है। "केवली", "उपमाती", "उफ" शब्द भी हिन्दी से बतर शब्द हैं।

यह सत्य है कि दिनकर ने संस्कृत निष्ठ बड़ी बोलती हिन्दी का प्रयोग किया है किन्तु कतिपय शब्द तो इतने कटित और सर्व सुप्रसिद्ध नहीं हैं कि उन का आस्वादन किया जा सके। अवस्थान्त, महोष्ठ, अधित्वका, ज्ञायातय बुद्धिज, विपत्तीककककक आदि ऐसे ही शब्द हैं।

दिनकर जी ने कुछ "अन्य शब्दों" का भी प्रयोग किया है यद्यपि ये शब्द सन्दर्भ-सार्थक हैं, तथापि पाठक बड़ी बेरामी से उन्हें स्वीकार करता है। जीसनीय है किसी सुनीला गुलामी नारी के मुँह से उरुगी के प्रति, भीम और क्रोध में भी, गणिका, प्रवीणिका, अधम, पाणिन, व्याधिन, सर्वेभ्या, आदि शब्द शोकायिक नहीं लगते।

मासुत्य के एक बहुत सुन्दर प्रसंग को दिनकर ने न जाने किस मोड़ में पड़ कर कुछ बन्दी का ही आग्रह रखा जो था --- असुन्दर बना कर दिया है --- रीति ने अप्सराओं को मानवी जीवन में मासुत्य के रूप में लेह कर देह के गठन पर जोर आक्षेप किया है:-

पहिने-गी कंठकी क्षीर से क्षम क्षम गीली गीली
मेढ लगाने गी मनुष्य से "देह करे-गी दूनी"

"देह करे-गी दूनी" ग्राम्यत्व दोष जैसा प्रतीत होता है जिस में अधिकार और अधिन्य प्रतीत होती है।

दिनकर ने जीसनी कवि और नाटक कार रोक्तापीयर के अंतर बाक्यों का सुन्दर प्रयोग किया है और उनके अनुवाद प्रस्तुत किये हैं। विज्जन, चर्कसर्प और जीसनी कथावर्तों का प्रयोग भी अमूर्त है:-

दिनकर:- कवि प्रेमी एक ही सत्य है, तन की सुन्दरता से पृ०

रोक्तापीयर:- जीस, फिलसिफर एक ही क्युनेटिक कार ऑफ द डेटेगरी सेम
Poet-philosopher and lunatics are of the category same

दिनकर:- तुम मेरे प्राप्ते। ज्ञान-गुरु, सखा, मित्र, सचचर जो पृ० १।

रोक्तापीयर:- फ्रेंड, फिलसिफर एक ही गाइड
Friend philosopher and guide

दिनकर:- मेरा गुणों का नहीं मेरा है मात्र दुष्टि का मन का

रोसामीर:- देवर बहुत नहीं गुड और बैड, बट थिंकिंग मेक्स इट सो
There is nothing good or bad but Thinking makes it so

दिनकर:- जिस पर चढ़ाकिरीट का कुछ समाज शासन का पृष्ठ 148

रोसामीर:- उन हथुड़ी लाइव इ बैड बैट थिंकिंग य फ्राउन
Uneasy lies the head that wears a Crown

दिनकर:- कोई लेख नहीं उम्मा भीतर के अमम सलिल पर

कोदस:- मेम रीस बी रिट जान, वाटर्स
My name shall be writ on waves.

दिनकर:- गुमे सदा रिगु के स्वल्प में हरवर हो जाते हैं

ब्रह्मवर्ध:- बट द ट्रेनिंग क्लाउड्स ऑफ मोरी इ वी डम प्रोम गाड
But the trailing clouds of glory do we come from God who is our home.

दिनकर:- वाणी का वर्तन रक्त है किन्तु मोन अदम है

कहावत:- *Speech is Silver but Silence is Gold.*

इस के अतिरिक्त रोसामीर के धीमा और एडोनिश काव्य की अनेक परीक्षाएँ, मिन्टन की बंद का एडम के प्रति व्यवहार उर्कती में और नीरोग तथा प्रसन्न प्रभाव के एतन वादस्त तथा ध्योरी ऑफ ड्रीम्स के सिद्धान्त उर्कती में यह सब अनेक स्थलों में अनुचित हैं।

उ रमणीय भाषा

उर्कती काव्य में हुंमार रस की प्रधानता है और अन्य रसों का भी विवेचन किया गया है किन्तु तो उर्कती काव्य की भाषा का भी तथान हुआ है। अतः रसानुसृत भाषा भाषाओं का सुजन कर उन्हें प्रभावी बनाती है। भाषा की रमणीयता को चार उन्धों है ही बात ही जायेगी जो भाषा की लौन्दर्य के साथ सहायक वैचारिक लौन्दर्य की प्रस्तुत करती है। रसागम्य मातृत्व का एक चित्र है:-

मिलती है हिम रिक्ता सत्य है मरुत देव की ही कर
 पर, हो जाती वह आगीय विज्ञानी पथीयनी हो कर।

उत्कृष्टी के रूप की कल्पना में भाषागत उत्कृष्टता और स्वयं के अनेक प्रतिमान हैं:-

बसो लिये तो सखी उत्कृष्टी, उजा मन्दन बन की
सुरपुर की डोमुदी, कलि का मना बन्दू के भन की
सिद्ध विरागी की प्रसन्नता में राग जमाने वाली
देवी के शीर्ष में मधुसूदन नाम लगाने वाली
रति की मूर्ति/मा की प्रतिमा, तुजा खिन्न मन नर की
विष्णु की प्रकृत प्रणेश्वरी, आरती सिद्धा काम के कर की।

उ० १/१३

च. प्रभासोत्पादक भाषा

महाराजा पुरुषोत्तम वीररत्न की सत्कथा हैं। उनका शीर्ष देव लोक तक विद्यमान है, उसका ही विद्यमान वह उत्कृष्टी को दिताते हैं:-

मर्य नामक के विजय का सूर्य हूँ मैं
उत्कृष्टी। अपने समय का सूर्य हूँ मैं
और तब के भाग पर पायक जलाता हूँ
बादलों के नीचे पर स्यंदन चलाता हूँ। उ० ३/३०

कतिपय महीन प्रयोग कति^{के} अपने हैं। परम्परागत प्रतीकों अथवा उपमाओं में संशोधन न होते हुए भी उन की योजना अधिक मधुर है। कुछ पद तो अपनी महीनता में जीवन प्रयोग लिये हुए हैं। मधु के नये भग, उज्ज्वल मेघों के घन, हीरों के रूप, देह की मधुरी टूटना, अस्फुट मर्मर कीरोध लक्षण का स्वा, रोम रोम में छुल आदि अनेक महीन प्रयोगार्थक सिद्ध हुए हैं। "रोमरोम में छुल" की कल्पना "छल पाउण्ड" से भी मर्म के प्रतीत होती है जिसे दिनकर ने भारीकी से अपना आ कना दिया है।

दिनकर की उत्कृष्टी की रचना के प्रेरण स्रोत चाहे कम् वैदिक आख्यायन रहा हो अथवा पौराणिक या लौकिक संस्कृत साहित्य अथवा अरविन्द या जैत देवी की उत्कृष्टी, यह प्रतीति मकारी नहीं जा सकती कि दिनकर भी प्रसाद की "कामावनी" भाँति ही ऐसा काव्य ग्रंथ लिखना चाहते थे जो उन्हें या और कीर्ति प्रदान करे और प्रसाद के कथा सुन और काव्य पंक्तियों का उन पर बतना प्रभाव पड़े कि वे उसे बिना लिखे रह नहीं सके। "काम" की कल्पना प्रसाद की कामावनी में साकार है। उत्कृष्टी ओगीनरी का युग प्रदा-वडा में देखा जा सकता है—आपु और मानव में भेद नहीं है। पुरुषा और मनु दोनों ही पौलौय और वीर प्राण्य हैं।

श्रद्धा जगत्में के लोक व्यवहार से दूर धर्माधारण कर सम्बल है तो उर्ध्वी लोक-
व्यवहार त्याग कर अन्तर्धान की हो गई है। उर्ध्वी लोक का प्रभाव जो
इसे विभिन्न भूमिका में दिनकर का धरातल सत्य, रस, मन्त्र, राक्ष, स्वर्ग पर
प्रभावित है, पुत्रवा इन से उद्भूत पुत्र है, उर्ध्वी बात का आशय है,
धर्म, रक्षा, प्राण, शीत और त्वक् की प्रतीक। कामायनी कार में रहस्य में यही
उद्घाटित किया है:-

"राक्ष, स्वर्ग, रस, त्व, मन्त्र, की पारदर्शिता सुख
पुत्रलिया।"

जहाँ तक पद साम्य का प्रश्न है तो उसे निम्न प्रसंगों में देखा जा सकता है:-

उर्ध्वी:-

यहाँ यहाँ कैलारा प्रान्त में विद्यु प्रत्येक पुत्र है
और शक्ति वायव्यो रिवा प्रत्येक प्रणयनी नारी।

कामायनी:-

मनु ने हुए मुझ्मा कर कैलार् प्रान्त दिखलाया
और "देखी कि यहाँ पर कोई भी नहीं पराया।

उर्ध्वी:-

जिस की बच्चा का प्रसार भूतज पाताल गगन है
दौड़ रहे मम में उन्मुक्त जिस की जीता है

कामायनी:-

अर्थात् दयिता-सौम अर्थात् प्रव उन्मुक्त बन कर
जिन्त देव लक्षिता या पूजा, सौम मल बँडल पत्रमान
वाण जादि सज हुए रहे हैं जिस की के गगन में अस्तान?

उर्ध्वी:-

माँ हतारा मत हो, भक्तिय वह चाह उर्ध्वी जिन्ता हो,
में जाया हूँ अग्रदूत बन, उर्ध्वी स्वर्ग जीवन का -----"

कामायनी:-

माँ, मत हो हतानी हतारा, क्या हूँ मैं तेरे पास।

उर्ध्वी:-

परिरम्भ पारा में भी हुए उस अम्बर तक उठ जाओ रे,
देवता प्रेम का सोना है दुम्भन से हते जगाओ रे,

आदि:-

परिरम्भ दुम्भ की मदिरा निवास मलय के भीचे

उर्ध्वी:-

त्रिमा। धाव, उलना मनोम वह, पुत्रमन्त्र जीता है,

आदि:- उलना थी, सब भी मेरी, उस में जिन्ता बन था।

उर्ध्वी और मुहावरों का प्रयोग

उर्ध्वी काव्य में उर्ध्वी और मुहावरों का प्रयोग यथा स्थान और प्रकृति
व्यवस्था में हुआ है। दिनकर जी उर्ध्वी कह कर मुहावरों का प्रयोग नहीं करते बल्कि
अपितु लघुवाक्य मुहावरों को प्रयोग करने में भी वे कोताही नहीं करते। उर्ध्वी में
यद्यपि मुहावरों और उर्ध्वी ने कम ही स्थान लिया है तथापि उनका प्रयोग
सौंदर्य है।

"मिट्टी के माछी" को दिनकर ने ग्रामीण जीवन में घटा कर
विश्व नागरिक और मोहक बनाया है --- जो मोहक है वह सहजसा द्वारा
मनका के प्रति व्यंग्य में निहित है:-

"मिट्टी का मोहन कोई अन्तर में जान आता है? उ० 1/11

"सुन्दरा की उठरी" दिनकर का अपना प्रयोग है जैसे "ठठरी बना देने" का अर्थ है
/ सौन्दर्य बिहीन हो नगी, पौन-बिहीन भी कर देना है। "सर का दीपक" पुत्र के अ
अर्थ में प्रयोग होता है। दूसरे अर्थ में राजा पुरखा के सन्देश में औरतियों को
"अपने गृह में क्या दीपक नहीं जले गा" कह कर एक और पुत्र-हीनता का भान कहना
कराया गया है, दूसरी ओर अपने उर्ली-भंग विहार-विनोद का व्याप सि ६५
किया गया है। "साथ की सरह कुली मार कर कैला" इसका प्रयोग "यही काज
जगत् सयान प्राणी पर कै गथा था" के रूप में प्रस्तुत है। बच्चों की भोली भाली
एकाग्र दृष्टि के लिये "दुकर दुकर लहना" कहते हैं और इसका प्रयोग दिनकर ने
हीरे अंक में उर्ली पुत्र जाय की दृष्टि में देखा है। उर्ली अपने ही पुत्र को
"हाती से क्यों न चुड़ाये" "सिर पर सतवार लटवना" के अर्थ में दिनकर "सर
धुरिका झूलती है" प्रयोग करते हैं। इसकी तो कवि को छूट रहती है कि कवच
प्रसंगानुसृत और काव्य-शिल्प के सौन्दर्य के लिये दहाक और गुहायरी में कवित्त
परिवर्तन कर दे ने, दिनकर ने भी यही किया है। इसी प्रकार "बाग से धर कर
बिखरे-बूटे मिचोड़ी" 2/103, "रेलवे जगते सहरों साथ 3/49" / "सब खेने
की बातें हैं 4/99", "संग बांध लो तारे 4/103", आदि ऐसे पद हैं जहाँ
दिनकर ने कवि स्वातंत्र्य का उपयोग किया है और जो सुन्दर भी है।

01000000000000

उत्पत्ति में शब्द शक्तियाँ

भाषा में शब्द का महत्वपूर्ण योगदान है। दार्शनिक दृष्टि से शब्द ब्रह्म का ही प्रतिरूप है--- ब्रह्म अनिर्वचनीय है तबलेखि तथापि उस को प्रतीत होती है। काव्यामन्द ब्रह्मानन्द ही है और उस का आस्तादन माध्यम शब्दोद्भूत शक्तियाँ हैं जो कवि के मन्त्र-तक हमें पहुँचाती हैं एवं हम उस का आस्तादन करते हैं। भाषा में प्रयुक्त शब्दों को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं --- अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना।

अभिधा वाच्यार्थ है। लक्षणा वाच्यार्थ से भिन्न किसी अर्थ की गुणवत्ता के आधार पर अभिव्यक्ति - कोरल है। एक ही शब्द प्रयोग और प्रयोजन से विभिन्न अर्थों को व्यक्त करते हैं। निश्चित वाच्यार्थ को व्यञ्जना से व्यक्त किया जाता है। आशय इन शब्द शक्तियों का भी महत्वपूर्ण प्रयोजन काव्य के अन्तर्गत किया गया है।

अभिधा प्रयोग:-

दिनकर ने उत्पत्ति में अभिधा शक्ति का प्रयोग स्थावरण सज्जन, उदयमान, कोज्ज्वल अर्थ, व्यवहार, साहित्यिक आदि अनेक प्रसंगों में किया है।

स्थावरण सज्जन अभिधा में समास-पद रखे जा सकते हैं। कहीं पर शब्दों के प्रयोजन से समास पद बनाया गया है तथा ---
 हिमवन्त - सिकत - सुख - सम उज्ज्वल अंग अंग प्रसन्न था। कहीं पर उपसर्ग कुबोध प्रत्यय लगा कर शब्द की रचना की गई है। परि-रम्यन् (परि+रम्य+उ)
 इसी प्रकार का शब्द है। "सुख सरोव आभा - विहीन लगता है" पंक्ति में उपमान प्रधानता है। "पूजों की उड़ि लगे अपने अधरों की सुधा पिनातुनी" पद में सुधा शब्द का अर्थ अधरामृत के ही अर्थ में है। संस्कृत वगुण शब्दों जैसे अयस्कृत, सुख, विरा-
 किर्ति, सुवृत्ति, अयमा, आदि^{का} अर्थ संस्कृत - विन्दी कौल से ही जाना जा सकता है। आपू वाक्यों का प्रयोग भी दिनकर ने अनेक स्थानों पर किया है जिस के परिधि

एक वर्ण है और उन्हीं केवल उसी अर्थ में ग्रहण किया जा सकता है। ऐसे वाक्यों में शब्द इतने सरल रूप में होते हैं कि अर्थ सहज ही बोधगम्य हो जाता है ----

दोनों हैं प्रतिमान, किसी एक ही मूल भरता है

देह-वृद्धि से परे, नहीं जो नर अध्या नारी है।

अभिधा का अर्थ दूर से जाने की वस्तु नहीं सीधे समझ में आने की उला है।

लक्षणा प्रयोग:-

लक्षणा शक्ति, अभिधा के वाञ्छित होने पर सप्रयोजन किसी अन्य अर्थ की ओर नाम-गुण-धर्म आदि के लक्षणा पर इंगित करती है। ऐसे शब्द ~~इति~~ ^{वैदिक} मातृर्य द्वारा रस ग्रहण में सहायक होते हैं।

प्रायः शब्द की अभिधा शक्ति में लक्षणा का आरोप किया जाता है। जिन्हें लक्षणा की अवधारणा होती है। स्वयं उर्दगी का कथन है:-

तुम पर्यंत में लता तुम्हारी कलवत्तर बाहों में

विह्वल, रस, आकुलित, भाग में मुर्झित हो पाऊंगी।

पुलकवा वर्तत नहीं है, किन्तु पर्यंत की दृष्टा के सादृश है और न ही उर्दगी लता है किन्तु वह लतावत् लोचन है। यह प्रयोग सप्रयोजन है अर्थात् कथन में प्रयोज्यवती लक्षणा है। इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण पर:-

"भू की जो आनन्द सुलभ है, नहीं प्राप्त अम्बर ही जो"

नृ नहीं, भू के निवासि आनन्द भोगते हैं, अम्बर में तो निवासी हैं ही नहीं।

अतः निवासी के अर्थ नृ और अम्बर का प्रयोग लक्षणा ही है। उर्दगी में लक्षणा अन्तः पर ऐसे अनेक लक्षणा प्रयोग हैं जिन में हम गीत-वादय का मातृर्य तदु न वा है।

व्यङ्गना शक्ति:-

व्यङ्गना शक्ति होती है अतः प्रवृत्ति व्यङ्ग्यार्थ के साथ उसे व्यङ्ग्यार्थ भी कहते हैं। उर्दगी विद्वतीय अर्थ में जोरतीवरी एक गमन-वृद्धा नारी ~~हो~~ है। इसे लक्षणा है कि महाराजा पुलकवा ~~पुलकवा~~ पुलकवा पुल-प्राप्ति के शिरो मन्द मादन पर

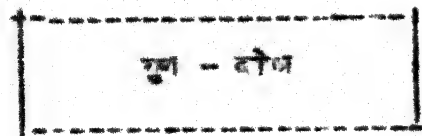
साधना रत हैं और निवेद है कि महारानी जोरतीवरी की पूजा-रत हैं। ^{अर्थात्} उर्दगी जानती है कि राजा मिथ्या धारण कर रहे हैं अर्थात् ^{अर्थात्} व्यंग्य कथन करती है:-

हाँ, अनोखी साधना है

अपरा के तम रमना की की आराधना है।

"रमना" शब्द में "रमण" --- परिवर्तन --- का भाव ध्वनित हो रहा है जिसे महाराजी औरगिनी के तबल करें' इस लिये साधना' अनोखी ही है जो कभी न तो देखी - सुनी गई और न ही देखी-सुनी जायेगी। ऐसे व्यक्तियों पूर्ण अनेक स्थल हैं जहाँ ध्वन्यार्थ के कारण काव्य सौन्दर्य में भी वृद्धि हुई है।

इस के साथ यह भी कहना आवश्यक नहीं है कि संस्कृत-निष्ठ शब्दों के कारण अर्थ-बोध कठिन हो गया है। "निःशेषित मत् करो" पद में "निःशेषित," स्थान, मात्र धाम आदि प्रयोग रसानन्द में बाधक हैं फिर यह जितने भी शब्द सज्जित हैं ही उद्योग क्यों न हों।



काव्य कारों के काव्य में गुण और दोषों का भी विधान किया है। काव्य - रसों का आस्वादन गुणों से उत्पन्न उत्कर्ष द्वारा होता है। इसी लिये गुण को रस-धर्म माना गया है। सत्य काव्य में ही गुण होते हैं --- कर्णों शब्दों अथवा मोरस तक कान्दी में गुण नहीं होते। गुणों की व्याख्या करते हुए आचार्य काली ने दस शब्द परक और दस अक्षरपरक गुणों की गणना की है किन्तु आचार्य भक्ताने ने उन्हें केवल तीन की संख्या में सीमित कर दिया है:- जोर, माधुर्य और प्रसाद।

जोः-जोः:- उर्वरी माधुर्य और प्रसाद गुणों से परिपूर्ण कृति हैं। क मोति-नादय के लिये झड़ी गुण सर्वदा उपयुक्त भी है किन्तु पुरुषार्थ पौष्ट्य - प्रकरण - प्रहस्य में जोर गुण के भी दर्शन होते हैं। उर्वरी में जहाँ वीर, ह्रीर और किञ्चित् भयानक रस की अभिव्यक्ति हुई है वहाँ जोर गुण प्रधानता है। पुरुषार्थ की मूर्तिवर्तियों में जोर गुण प्रमुख रूप से दो स्थानों पर लक्षित है:-

तिष्ठ ता उद्दाम, अस्वार मेरा कल उहाँ है ?
 मृगता पित शक्ति का सर्वत्र जगत् जगत्
 इस अटल संकल्प का संकल कहाँ है ?
 यह रिझा जा तब, के चट्टान भी मेरी कुलाये
 सूर्य के जालीक से पीपित, समुन्मत्त भाव
 मेरे प्राण का सागर अमल उत्साह, उन्मत्त है।

सामने टिकते नहीं कतराव पड़ते होते हैं
 दावेता है बुझी मारे समद का व्यास,
 मेरी जाँच में मरत, मरु, मरत का कत है।

मरत जायज की विजय का सुयं हूँ मैं
 उरगै : जयने समय का सुयं हूँ मैं
 उरगै के भात पर बाधक जाता हूँ
 बाधकों के शीश पर स्वन्दन खाता हूँ। 50 3/30

जोड़ गुन में ४ वर्ग, ४ वर्ग, ४ वर्ग, लघुकाधार, समाप्त पदों की प्रधानता होती है।
 उक्त पद में उद्गम, शीघ्र, सर्म, जट, संवत्, सम्पत्, का, चटान, समुन्त,
 इतरात, इतरात, टिकते, कोकते हैं, दावेता, बुझी, व्यास, मास्त, मरुड,
 मरत, मरु, सुयं, बाधक, स्वन्दन आदि शब्द सब जीध से अथवा बिम्ब बोध के
 जोड़ गुन सम्पन्न है किन्तु मे न केवल पूरवका के पोरव की अभिव्यक्ति होती है
 अपितु वीरता साकार प्रतीत होने लगती है।

जोड़ गुन का दूसरा प्रतीक उरगै के पदम अंक में उरगै के अन्तर्धान होने पर
 अभिव्यक्ति हुआ है। उरगै का देव-राज-का को विद्वत् होना पूरवका को
 स्वीकार नहीं है:-

साजी मेरा छत्र सजाजी गमन जयी स्वन्दन कही
 लडा भरी कन धनु, लर्म-दुर मुझे अभी जाना है।
 जोर दिखाना के दावेता किन्तु ही अधिक प्रकाश के
 मरत - राय को या पूरवका के प्रपु बाणों की।

50 3/138

यह सम्पूर्ण अन्त ही जोड़ गुन प्रधान है जो कव्य के मौल्यों में व्याप्त है।
 अन्तिम पद में पूरवका का राय-दुरी की स्वीकार कर उत्साह पूर्ण आह्वान
 करते हैं:-

उठो, जवाजी पटव कुन के, कद की धीर जनों से
 इनका प्रिय लडा, स्वर्ग से कैर ठान निकला है
 साथ चले, किन्तु की जित भी प्राण नहीं प्यारे हों।

50 3/139

राय-प्रता उरगै अपने पुत्र जाय को देख कर सम्भाषी विधीन प्रपीकृत को
 आह्वान को करते हैं:-

दुर्धारा । दुर्धारा । जयने। तनिक और पानी है
 उरगै प्राण के कहीं कठ में जवाजी अटक गई है
 लडा है, जाय की प्रता जम्बर से फूट पड़े गा।

50 3/140

का. माधुर्य:- उरगै माधुर्य-लघु गुन की जीम है। 3अह्वान यह काव्य संगीत-
 स्वर्ग और स्व-रुनी के सौन्दर्य में प्रसार - स्थापित है। प्रमुख रूप
 से प्रसार, कल, और साम्प्रदाय के अन्तर्गत यह अभिव्यक्ति रहता
 है। प्रसार तो माधुर्य का प्राण है। जोड़ में जो वर्ग-विन्यास अनेकता है माधुर्य में

[illegible]

उक्तों का अर्थ है प्रारम्भ में सन्त रत्न में अंगार रत्न को छोड़ी थी जोरज से काँच में पिघाल दिया :-

साथी को लगे, निर्दिष्ट, जातिंगम में भ्रम हो

जाना होता कर यदि विपुल कल्याण पर भूत हुआ है।

इसकी प्रकाश व्यवस्था सूचित है :-

“शांति शांति सब को, किन्तु यह व्यवस्था सत्य - सत्य बात”
 “आत व्योम-गर में ये को सुदूर भ्रम रहे हैं”

समस्या है नाकामी हुई जपसारायें क्यों से झरती पर उतर रही हैं। यह निम्नात्मक
सौन्दर्य की माधुर्य का लक्षण है। समस्त नाम में भी "तुम जनम तुम" की छवि
(onomatopoeic) होने से जीव अतिशय सुन्दर लगती है।

उत्तरी का अधुनामीय ली-वर्ड "सुरपुर की ली-वर्ड, कलित लामना हनु के मम
ली" अथवा "रति ली वृत्त रमा की प्रतिमानुषा जिहवपु नर की" ऐसे वद हैं
जिन में ली-वर्ड-रामना के साथ ली-वर्ड की अति-लक्षणीय लक्षणरणा है। और
उत्तरी की अधुनामीय ली-वर्ड के लिये ली-वर्ड ने जो लक्षणरणा दिया है वह लक्षणरणा
की लक्षणरणा है:-

नदी, जहाँगी नारि नदी, काथा के निहित सुन की
 लय नदी, निजल्लु उल्लना के लुटा के मन की॥

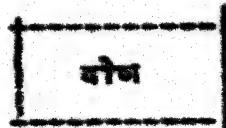
80 124

अंगार रत्न के आस्थापन के लिये कवि का यह समस्त काव्य ही ऐसा मधुर
पाठ्य है जिस की श्रेष्ठा श्रुति: सिद्ध है। विष्णुवत्सल लीलाय कावे के लीलायक
धाराधन पर ही कावे मानसिक अथवा आध्यात्मिक स्तर पर उनका मोहक होना ही
उनका माधुर्य है। लीलाय केवल श्रुति में ही नहीं है, वह औरगीनारी के कर्ण
उत्पन्न दिव्यगीत स्वर में भी और अधिक प्रभावी है। सुकन्या देवी का चरित्र एक
सम्पूर्ण माई-रत्न - कर्ण की सुन्दर कल्पना है। कवि-म्याय की दृष्टि से श्री भी
विष्णुवीय जी की उन्नेत औरगीनारी का कावे के अन्त में सति से विमुक्त होने पर ही
ऐसा ही दृष्टि के निमित्त काव्य की पा का अन्त्य है। श्री मैथिली शरण की श्रेष्ठा

मौप्य अनीधरा की भाँति अपने राहुल जायु के साथ अपनी प्रति-विधौ की स्थिति'की की भूल होती है औरानीरी। इस प्रकार प्रथम अंक में शान्ति, विद्यतीय में कल, सुतीय में प्रेमास्तीर वीर, चतुर्थ में प्रेमा और शान्त पंचम में वीर, अदभुत, कल और शान्त रस का जो परिचाय हुआ है उसकी भाव-कल्पना में दिनकर की अपनी कोमलता है।

ग-प्रसाद - प्रसाद पुन सर्वगी में किंचित व्याघात से जाने बढ़ता है। व्याघात भी भाषाभाषा है, दिवार भी नहीं, चिन्तन प्रगत है। नाटकीयता का प्रसुत पुन के प्रसाद पुन किन्तु सर्वगी एक नीति-नाट्य है अतएव उस का वात्सायन मानसिक मंच बना कर ही किया जा सकता है। नीति-नाट्य भी जन-साधारण के लिये सबब ग्राह्य नहीं है। कथानक की दृष्टि से तो जन-साधारण की भी इस वीरानिष्ठ अधः शैविक आख्यायन की पवित्रे से ही जानना चाहिये तो इसे सबब प्रसन्न प्रकन कर सकने में सब समर्थ हो सकता है। जामायादी प्रभाव होने केके के कारण काव्य की कल्पनायें, स्वक और विम्व जिज्ञा भाँति मिथक में गुंथि हैं उस से कथानक की सबब ग्राह्यता साधारण पाठक के लिये सुग्राह्य प्रतीत नहीं होती। किन्तु दिन सत्तों पर नाटकीयता प्रभावी है तो सबब और सरल भाषा में स्वतः ग्राह्य हो उठे हैं। इस दृष्टि से विद्यतीय और मूक्य अंक बहुत सुन्दर बन पड़े हैं।

"मा'। में वीर पुन - प्रिगीर, पहले तेरा केटा हूँ" उक्ति सबब ग्राह्य एवं प्रभावकारी है। हाँ, यह सत्य ही कि दिनकर की भाषा का सब विचित्रता पाठकों के ही योग्य है। सामान्य पाठक के लिये उस में प्रसाद-पुन की कल्पना करना दुस्वता होना है।



दोष दृष्टि से सर्वगी सर्वथा दोष मुक्त नहीं है। सर्व प्रथम दिनकर जी की संस्कृत - मिष्ठ भाषा की अपनी दुस्वता है जो अतुलीय के कारण केवल लीपि क विचित्रताओं का ही प्रिय विषय हो सकती है। यह साकेत की भाँति सरल कथाभा नहीं है। साथ ही इस संस्कृत परित्त सही होती के काव्य में प्रय भाषा के प्रयोग की वात्सायन में व्यवधान उत्पन्न करते हैं। "जाने" शब्द का प्रयोग उनके प्रय-भाषा के अनजाने प्रयोग से उत्पन्न है --- "जाने अब तक परित्तोय प्राप्त पाये है" -

दिनकर जी के विराम - चिह्नों के प्रयोग में प्रायः दोष पाये जाते हैं जहाँ विचित्रतादि भाव लोभक चिह्न की आवश्यकता ही नहीं है वहाँ भी उस चिह्न का

प्रयोग है। प्रत्येक वाचक जिसे भी पूर्ण स्वतंत्रता के साथ यत्र तत्र लगा दिये गये हैं, वहाँ भी वहाँ उनका प्रयोग दोष पूर्ण है:-

महाराज । आश्चर्य । उरुगी तेवी यहाँ नहीं हैं ?

कहाँ गई ? श्रीं छड़ी अभी तो यहाँ निकट क्लामो के ?

उक्त पद में परीक्षाओं के अन्त में प्रत्येक वाचक जिसे भी आवश्यकता ही नहीं है किन्तु भी प्रयुक्त है जो भाव प्रत्येक में वाचक है। इस प्रकार के विराम चिह्नों के दोष पूर्ण प्रयोग उरुगी में प्राप्त है और ये अर्थ बोध के दोष हैं।

व्याकरण दोष में त्रिं प्रयोग में भी दोष है --- कौटिल्य का प्रयोग हिन्दी में श्री त्रिं के रूप में होता है जिसे दिनकर ने पुर्तग में प्रयोग किया है "हुं हुं में जमे हुये कौटिल्य इन्दन करते हैं।" में "जमे हुये कौटिल्य" बहुवचन श्री त्रिं है। "रुते हैं" के स्थान पर प्रिया "करती हैं" प्रयोग होना चाहिये था।

अतुल्य दोष के अन्तर्गत उत्पन्न शब्द अचानक और अयोग्य हैं।

निकटस्थ, निकटस्थ, आन, प्रविष्ट, स्वर्ण, कैथान, मुनिस्तम्भ, महीप्र, अधिपति, समुद्र, लाहि शब्दों का प्रयोग, जो के बिना, अर्थ बोध में दुर्बलता उत्पन्न करते हैं। दूसरी ओर संस्कृत के शब्दों को संयोजक के माध्यम से संयुक्त शब्द बना कर वहाँ प्रयोग किया गया है वह भी उन दोषों में है यथा --- पुष्परेकु-मुनि, वन-मुनि, उर-वीर-परिरम्भ-वेदना, मुक्ति-महाम्बर, पवनान्योसित निधिरुक्तमन्त्रा, लौह-विशिष्ट, निधिरुक्तमन्त्रा आदि शब्द। कुछ शब्द ग्रामीण भी हैं --- सुन्दरता की छतरी, देह की भी छतरी, शब्द इस कोमल काव्य के रूप में प्रयुक्त प्रतीत नहीं होते।

एक स्थान पर दिनकर जी ने तो और तो में कोई अन्तर ही नहीं किया है जिस से प्रतीत और अर्थ में संशय नहीं पैदा होता। सहजान्या इसी विचार मात्र से दुःखी है कि उरुगी की स्वर्ण शोभा छतरी की छिन्नी पर पहुँच कर धूल में मिली जायेगी। रीति इसे आश्चर्य से भी प्रत्येक करने पर आपत्ति के स्वर में बोलती है:-

तो क्या, अब उरुगी उतर कर नू पर सदा रहेगी ?

इस पद में "तो क्या" के स्थान पर "तो क्या" इस वाचक "तब" के अर्थ में प्रयोग होना चाहिये था। "तो जो हो" काव्य में नाटकीयता का सूचक करते हैं पर सहजान्या सदा ही ऐसा लिखा कलाव प्रयोग नहीं करती।

दिनकर ने उरुगी में पुनर्लोक दोष भी किया है। वहाँ प्रभावोत्पादक के लिये शब्द अथवा पद की आवश्यकता हुई है वहाँ वह काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से किन्तु वहाँ कई कई पदों में शब्द या पद लिखे गये हैं --- वे दोष में ही गिने जायेंगे।

इस में प्रामेय, ज्ञान-गुरु सदा मिल सकते हैं।

इस पद में "सखा, मित्र, सहचर" पर्यायवाची शब्द हैं जो एक ही अर्थ का बोधन करते हैं। इन से वाक्य की तथ्य-वृत्ति मजबूत होती है जो पर अर्थ की पुनर्वक्ति के कारण इन का वाक्य महत्व क्षीण हो गया है। इसी प्रकार अटकल - अनुमान शब्द का प्रयोग है:-

"यह स्थिर नहीं, सखी अटकल - अनुमान सबूत लगता है"

उ० ३/५९

इन दोनों शब्दों का एक ही अर्थ है। "वास" शब्द के लिये दिनकर ने "वास" शब्द का जो प्रयोग किया है वह काव्य, व्याकरण, उच्चारण आदि सभी दृष्टियों से मन-बोध को स्वीकार नहीं है।

परिचय - वास में कभी हुए इस अम्बर तक उठ जाओ रे ।

"वास" शब्द के लिये हमें से गति, यति, तथ्य, धर्म आदि में भी कोई अन्तर न पड़ता और वर्ण - विन्यास भी सुदृढ़ रहता।

दिनकर की उक्त वाक्य दोष अवैधात्कृत कम हैं जिस से यह वृत्ति अधिक सुन्दर बन पड़ी है।

वृत्तियाँ:-

विशेष पद - रचना की वृद्धि को वृत्ति या रीति कहते हैं। आचार्य व्यास ने इसे "विरिक्त पद रचना रीति" कहा है और इसी को सभी काव्यशास्त्रों में विविक्त पद-परिवर्तन कर स्वीकार किया है। आचार्य विश्वनाथ ने इसे "पद-संछेदना रीति" कहा है। इस-

विश्ववृत्ति के लिये निम्न वर्णों की योजना को वृत्ति कहा गया है। श्रृंगार - कर्म और रस के लिये क्रमशः वर्णों से कने शब्दों का प्रयोग होना उचित है तथा चरित्र की रीति के लिये कठोर वर्णों से कने शब्दों का प्रयोग। वर्णों के अनुसार ही उपनागरिका (देवर्षी) वरुणा (मोड़ी) और क्रमशः (वाणिजी) वृत्तियाँ साहित्य में माधुर्य और प्रभाव वर्णों की वृद्धि होती है।

उपनागरिका:-

उक्त में मधुर वर्णों में ही सम्पूर्ण रचना हुई है और कहीं कहीं भी "ट वर्ण" वर्णों का प्रयोग हुआ है इन से इस में व्यापार नहीं पड़ता। अनुपातित वर्णों से उपनागरिका में लोभ्य वृद्धि होती है - 'इस जलजल जेगों के जाने रतिन रागिनि सारी है

इस भर की उम्माद सरन पर धिस्ता बलिहारी है।'

पुस्तक:-

पुस्तक वृत्ति में संयुक्त वर्ण का प्रयोग अधिक सुंदर होता है। और माधुर्य का लोभ्य वर्णों में संयुक्ताक्षर प्रयोग मिलते हैं। उक्त में ऐसे प्रयोग नहीं मिलते जिस में "क वर्ण" अथवा "ह वर्ण" के संयुक्त वर्णों का प्रयोग हो। यद्यपि शब्द ऐसे "विरिक्त" का प्रयोग

अक्षर-य मिलाता है यही:-

"मन से, किन्तु, विकल्प दूर हृदय कहाँ चले जाते हैं?"

पद्यों की वृत्ति की, लोह और भयानक रक्त-सिद्धि के लिये उपयुक्त है जिसका उर्वरी काव्य में अभाव है।

कीमती वृत्ति:- कीमती वृत्ति कीमती क्यों उपाय स्वर व्यंजनों से शब्दों का

संगठन करती है। य, र, ल, व, स, ह, म आदि वर्ण जब समास पदों या समास रहित शब्दों की रचना करते हैं तब काव्य में कीमती वृत्ति मानी जाती है। शृंगार - शान्ति और अद्भुत रस के लिये यह वृत्ति उपयुक्त है।

उर्वरी में शृंगार और शान्ति रस ही प्रमुख हैं:-

नारी द्विधा नहीं, वह केवल क्षमा, शान्ति कला है
वसी लिये, प्रतिभा-पटुता यही निहट नारी के
हो रहता वह जल, या कि फिर कविता बन जाता है।

ड० २/१९६

उर्वरी में यज्ञोक्ति

यज्ञोक्ति का अर्थ:-

आचार्य दत्तात्रेय का कथन है:-

"यज्ञोक्तिरेव वैदिक-यज्ञोक्ति अर्थात् यज्ञोक्ति कथन की विशालता है। जो

इसे परिभाषा के रूप में इस प्रकार कह सकते हैं:-

"यज्ञोक्ति कवि कर्म की कुशलता से उत्पन्न होने वाले समस्तकार के स्वर होने वाला कथन प्रकार है।"

ड० नगेन्द्र का अर्थ है कि यज्ञोक्ति वृत्ति-य कथन से भिन्न विभिन्न अर्थों का अर्थ वर्ण होता है।

१:- भारतीय साहित्य शास्त्र: पृ० २२३

व्योक्ति कर्ता - विन्यास जनित भी हो सकती है। सभी शब्दात्मक वसी व्योक्ति के लक्ष्य अन्तर्गत आते हैं। अनुशास और समक में यह विशेष रूप से लक्षित है साथ ही यह प्रभाव पुन मुक्त होना चाहिये। उर्दगी में व्योक्ति की विशेषता है अनुशास में:-

"कमल ऊपर दुर्लभ ले, कुटज से।"

पद्य - पूर्वावस्था के अनेक रूप संज्ञा पद्य, वर्णाय पद्य, विशेषण - संज्ञा आदि हैं। व्याकरण के इन रूपों से ही कथन सज्जा उत्पन्न होती है। पुरुषदा अनेक नाम, रूपों, गुणों में वर्णन किया गया है। उल्लेख लिये प्रयुक्त "पुरुष रत्न" शब्द ऐतिहासिक व्यंजना है:-

"पुरुष - रत्न को देख न रह सकी आप अपने में"

उर्दगी काव्य में प्रत्यय - दृष्टा व्याकरण सम्मत न होने पर भी लौन्धर्य सृष्टि करने में समर्थ है। प्रयोग है छड़ी पर छड़ी बीतना। दिनकर ने अनुपम प्रयोग कर "छड़ियों पर छड़ियाँ बीतना" प्रयोग किया है:-

किसी ध्यान में पड़ी नैवा देती छड़ियों पर छड़ियाँ।

उर्दगी काव्य अपनी समतकारिक दृष्टियों के लिये विख्यात है। ये दृष्टियाँ प्रकरण-प्रधान भी हो सकती हैं और प्रबन्ध प्रधान भी। प्रकरण में विभिन्न संघटनाओं का समावेश किया जा सकता है और प्रबन्ध की कला में व्योक्ति संघटित हो कर सूक्ति में बदल गई देखते हैं जो सर्व कालिक सत्य के रूप में प्रकट हुई है। परिणों का उत्तरना, महाराज पुरुषदा - उर्दगी विज्ञान का प्रकरण, बीरीमरी व्यथा, गंध माकन पर पुरुषदा - उर्दगी विचार, अथर्व - सुकथा प्रकरण, आयु की राख - दरसारे में उपस्थिति, उर्दगी का अन्तर्धान होना, आयु का राज्याभिषेक और पुरुषदा का परिष्कार होना उर्दगी काव्य के प्रकरण हैं जिन में कथन की अपूर्व कला है। प्रबन्ध पद्यता के लिये कवि ने मर्कटी उर्दगी, अथवा आयु के वास्तव्य के अनेक मनोहारी रूप प्रस्तुत किये हैं:-

"देव कान्ति पीतिया युक्त मति नहीं पदों के छाँ में
बल देती है किसी भाति भी कर उस मेघाली सी"

सम्पूर्ण उर्दगी काव्य साहित्यिक चमत्कारों का भंडार है। कहीं कहीं पर कथन की सर्व व्यापकता मौखिक है:-

"तन का काम बहुत किन्तु यह मन का काम भरत है।"

यह प्रकार की अनेक दृष्टियाँ हैं जो काव्य को वास्तव प्रदान करती हैं। एक शब्द में सम्पूर्ण उर्दगी काव्य व्योक्ति का उदाहरण है और बिना व्योक्ति के तिर-हस्त कवि हैं।

0000000000000000

उत्कृति में अलंकार

काव्य में शीघ्र उत्पन्न करने की कला अलंकरण है। यह अलंकरण शब्द और अर्थ दोनों माध्यमों से सम्भव है। यह भी सत्य प्रतीत होता है कि माना स्वात्म्य और रंग - सुसज्जित प्रकृति के लिए जो लक्ष्य पर मानव ने प्रगति की महत्ता दी हो और उसे अलंकार आभूषण कहा हो —---- यही अलंकार - सज्जा वह शब्द - अर्थ - छानि रूपों में अभिव्यक्त होती है तो उसे काव्य भाषा में अलंकार कहा गया है। आचार्य दण्डी ने काव्य अलंकार की परिभाषा करते हुये लिखा है:-

"वाक्याभाकरानुष्ठानं अलंकारान् प्रचक्षते।"

आचार्य वामन ने इसे और अधिक सरल किया:-

"शैले सौन्दर्यमलंकारः"

सदोषरान्त सभी आचार्यों ने काव्य सौन्दर्य को अलंकार ही माना है। रीति काल में काव्य में अलंकार - विभूषण एक अनिवार्यता बन गई थी। जिस से शब्द सौन्दर्य अथवा अर्थ सौन्दर्य में आश्चर्य एवं अद्भुत - कला का समावेश हो गया किन्तु यह स्वाभाविक रसानुभूति से किञ्चित् दूर हो गया। कवि दिनकर की उत्कृति में अलंकारों का प्रयोग सायास बिम्बुल नहीं है। दिनकर जी शब्द - सौन्दर्य को स्वाभाविक भाषा में चित्रित करने में सिद्धहस्त हैं अतः उनके कर्ण - कटु अक्षर भी माधुर्य - भाव को उत्पन्न करने में समर्थ हो जाते हैं। दिनकर जी में शब्दों से छानि, नाप - सौन्दर्य और बिम्ब बनाने की अद्भुत क्षमता है। अतः उनके काव्य उत्कृति में अलंकारका प्रयोग योजना बद्ध नहीं है बल्कि स्वाभाविक है।

दिगडू जी ने शब्दालंकारों में अनुप्रास, रत्न, और यमक तथा सम्बोधनों से एक नवीन सौन्दर्य का सृजन किया है। अर्थात् उनके स्वाभाविक रूप का चित्रण करते हैं। साहित्य के विद्यार्थी को शास्त्रीय - नाप - सोख के लिये

विभिन्न विधि प्रयास करना पड़ता है किन्तु इनमें सबसे ही यह होकर अलंकार उपलब्ध हो जाते हैं। उनका अनुपास कोशल बड़ा मोहक और प्रकृति जन्य है:-

- क साध्यालंकार:-
- 1: अनुपास
 - 2: यमक
 - 3: रत्नेज
- ख अर्थालंकार:-
- 1: उपमा
 - 2: लोकोक्ति
 - 3: रूपक
 - 4: सन्देह
 - 5: प्रतिमान
 - 6: अव्युक्ति
 - 7: अतिशयोक्ति
 - 8: उत्प्रेक्षा
 - 9: व्यतिरेक
 - 10: अर्थान्तरन्यास
 - 11: अतिशक्ति
 - 12: विरोधान्तर
 - 13: लोकोक्ति
 - 14: तद्वस्तु
 - 15: समासोक्ति
 - 16: व्याख्यस्तुति
 - 17: वीणक

क साध्यालंकार:-

1: अनुपास:-

सज्जी-सज्जी अममनी तोड़ी हुई हृदय - पृथ्वी का किसी स्थान में पड़ी यथा वैसी छड़ियों पर छड़ियाँ।

इन में से प्रथम में त का और द्वितीय में ड का अनुपास है।

2: यमक:-

करते रहते सभी रात भर दीर्घ-विदीर्घ की।

द्विर्घ के अन्त्य रूप को ऊपर छींच रहा है।

इन में से प्रथम में दीर्घ और विदीर्घ में तथा द्वितीय में अन्त्य और रूप में यमक अलंकार है।

7:- अतिशयोक्ति:- मेरे अबु जोस बन कर कल्पद्रुम पर जायेंगे,

पारिजात उन के प्रभुन जाधों से बुझतायेंगे ।

इस में कल्पद्रुमपर जाधुओं का जोस बन कर राजाने का राज

जाधों से पारिजात - कुसुमों के बुझताने का दर्शन है अतः

अलम्बन्ध में सम्बन्ध का कथन करने से अतिशयोक्ति अज्ञकार है।

8:- उल्लेख:-

विमल-सिद्ध-कुसुम-सम उज्ज्वल जग-जग भस्म धा,

मानों, अभी-अभी जब से निकला उत्पुलक कमल धा ।

जहाँ भी विमलितते जग में मूलन कमल की कल्पना की गई है।

9:- व्यतिरेक:-

कुसुम और कामिनी, बहुत सुन्दर दोनों होते हैं,

पर, तब भी नारियाँ केठ हैं वहाँ का न्त कुसुमों से,

क्योंकि पुष्पों में मूँ और स्वामी बीज सकती है।

सुम्न मूँ हीन्दू और नारियाँ सदाक सुम्न हैं।

यहाँ उपमेय नारियों की उपमान कुसुमों से केठ कलहाया का भया

है और साथ ही वह हेतु दिया क्या है कि से सजाई है।

10:- अर्थान्तरन्यास:-

गलती है विमरिणा, सत्य है, गहन देह कीड़ेकर,

पर, हो जाती सब असीम किन्ती पर्यास्वनी की करे

यहाँ "विमरिणा देह की गहन की कर पर्यास्वनी के स्वेमे

परिणत हो जाती है" इस विशेष बात से "हाँ जब कर स्त्री देह

गहन तो ही होती है परन्तु पर्यास्वनी ही जाती है" इस सामान्य

बात का समर्थन हुआ है अतः अर्थान्तरन्यास है।

11:- अतिशयोक्ति:-

मेँ अवश्य, निर्दोष, विचारा यह क्यों नहीं की मेँ

जहाँ किसी ने और कुछ का मिरा किसी के तिर का ।

यहाँ कारण और कार्य विग्रह दोनों में विग्रह है अतः अतिशयोक्ति

अज्ञकार है।

12:- विरोधाभास:-

यह अज्जीवन, कुल कथन की पित से एक जाती है,

प्रोढ़ा पाकर जिसे कुमारी सुखती बन जाती है।

यहाँ प्रोढ़ा का सुखती बन जाना विरोध है परन्तु वास्तव में

"यह कुमारी-भाषों से सुखती होती है" यह भाव है अतः विरोध

का आभास मात्र होने से विरोधाभास है।

13:- लोकोक्ति:-

शब्द नहीं हैं, यह भूँ का खाय, अगोचर सुख है ।

अज्जीवन है पुन जाने काशिका की मेरी जानन पर ।

इस में प्रमा: "भूँ का खाय" तथा "जानन पर काशिका का

पुनना" इन प्रसिद्ध मुहावरों एवं लोकोक्ति का प्रयोग दोनों से

साधोक्ति अज्ञकार है।

14:- व्युत्पत्ति:-

कुल गाँ सुखुर की सोया मिट्टी के तपने में।

14:- तद्गुण:- ब्रह्म सर्व सुरपुर की शोभा मिट्टी के सपने में ।
यहां सुरपुर की शोभा के के मिट्टी के सपने में "ब्रह्म कर तद्गुण हो"
जाने में तद्गुण अलंकार है।

15:- समासोक्ति:-

यौवन का ब्रह्माक्षेप वह तक फिर कैसे रहे गा'
यहां देव मन्दिर में भी तक तक ही जन जाते हैं ,
जब तक हो-भो, मृदु है पल्लव प्रसून तोरण के ।
इस में "ब्रह्माक्षेप यौवन का न खना " प्रस्तुत बात है तथा
"देव मन्दिर का तभी तक खना जब तक तोरण पल्लव-प्रसून हो-
भो है" अत्रस्तुत बात है। इन दोनों में से प्रथम में द्वितीय के
आधार का आरौप किया गया है अतः समासोक्ति है।

16:- व्याजस्तुति:-

पर, नर के मन को सदैव का में रहना दुकर है,
पूनों से सब मही पूर्ण है और जबल मङ्गल है।
यहां मङ्गल के समान मनुष्य की स्वतन्त्र रूप रूप को मङ्गल कर
उस ही कामुकता रूप निन्दा सब व्योक्ति की गई है अतः
अव्योक्ति गणित व्याजस्तुति अलंकार है।

17:- दीपक:- क्षम-क्षम प्रकटे, दूरे, छिपे, फिर-फिर जो घुम्कन से कर
ने समेट जो फिर जो फिर के शुद्धिक जक में दे कर।
इस में एक प्रमदा का प्रकटे, दूरे तथा छिपे आदि अनेक द्विधाओं
से सम्बन्ध जोड़ा गया है अतः दीपक अलंकार है।

00000000000000
=====

उर्दू की रीली और अभिव्यक्ति

रीली तब कवि के भावित्व की अभिव्यक्ति है। अपने मनो भावों के अनुसृत शब्द स्वतः अभिव्यक्ति होते हैं जो और एक रचना प्रसृत हो जाती है। कवि की भाव - विवक्षिता सौन्दर्यों को जो अभिव्यक्ति प्रदान करती है उस का शब्द विधान, माद-सौन्दर्य, रचना धीरे-धीरे स्वतः मार्ग बना लेती है। इस में कवि के अनुभव, इस बार पड़े हुए स्थाई प्रभाव, अध्ययन और अभ्यास अधिक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

उर्दू की रीली नाट्यात्मक है और भाषा गीत - प्रधान। अतएव यह एक गीति - प्रधान नाट्य रीली में संकीर्ण कार्य है। प्रथम अंक में कवि ने परम्परागत मन्दी और सुखधार की अवधारणा ली है जो गीत पर होने वाले शब्द के प्रकरण की दृष्टि करने के लिये प्रकृति परिवर्तन का चित्रण करते हैं तथा परिवर्तनों के आकार विवरण से धरा पर अवतार होने का उल्लेख करते हैं। इसी में "उर्दू" के अर्थ अर्थात् सौन्दर्य का वर्णन करने के लिये अपहरणों का आतर्लाप संकीर्ण है। और दृष्टि से यह भी उल्लेख है कि इस गीति-नाट्य में सुलता-उर्दू की कथा का स्थान दिया जाना है। यह एक परम्परागत रीली है जो संस्कृत नाटकों से कवि को प्राप्त है।

प्रथम अंक ही में कवि ने अपहरणों के आतर्लाप के बीच में ही एक ही गीत और सम्यक् गान भी लिखे हैं। सम्यक् गान संस्कृत का एक परम्परा में उपलब्ध नहीं होते। हिन्दी के नाटकों की भी यह धन नहीं है। है "सम्यक् गान" को कल्पना-साकारता कवि को परिश्रमी नाटकों के प्राप्त है। यूनानी नाट्य साहित्य में और अंग्रेजी नाट्य साहित्य में जिसे औरत कहते हैं उसे सम्यक् गान के रूप में कवि ने विशेष भिन्नता के साथ प्रस्तुत किया है। रोसापीयर के रोमियो - युलियट की प्रेम-कथा का प्रारम्भ औरत से हुआ है। रोसापीयर के अन्य नाटकों में काल सत्य सम्यक् गान का विशेषण एक-विशिष्ट बात के रूप में किया गया है। दिनकर ने रोसापीयर के नाटकों का अध्ययन किया है। अतः उनकी नाट्य-कथा का रूप पर प्रभाव बढ़ना स्वाभाविक था जिस के पक्ष स्वल्प उर्दू की प्रथम अंक में तीन सम्यक् गान दिये गये हैं। इस के पूर्व भी दिनकर ने अपने गीति - नाट्य मण्डल अभिजा में नागरिकों का औरत दिया है और "नील कुल" में संग्रहित "हिमालय का सौरा" में तीन सम्यक् गान दिये गये हैं। अतः यह कोई नवीनता नहीं कि उर्दू गीति

नाट्य में दिनकर ने सम्यक्त मान का कोई अभिव्यक्ति प्रयोग किया है। किन्तु उक्त कोरस या सम्यक्त मान "अथ मयि" या "विनाश का देश" में पाये हैं। उर्दू में वे स्वतंत्र गीत के रूप में हैं। इन गीतों को केवल वातावरण गुणित में सहायक माना जा सकता है और यदि इनके कुछ भी कर दिया जाय तो काव्य की शास्त्र में कोई व्यवधान नहीं पड़ता। गीति-नाट्य का यह अर्थ नहीं है कि नाटक में गीत संयोजन अवश्य किया जाय। गीत का प्रयोग संपूर्ण होना चाहिये।

इसी प्रकार ही दो स्वतंत्र गीत भी उर्दू में मिलते हैं--- एक प्रथम अंश में रसी - मेनका सारा भाषा गया और दूसरा द्वितीय अंश में जौलीनरी द्वारा। रसी - मेनका द्वारा गाया गया गीत एक सन्वाद्य है किन्तु, उसके सुरमय बहाने के बाद ही सम्यक्त मान प्राप्त करने का कोई औचित्य प्रतीय नहीं होता।

जौलीनरी का गीत संपूर्ण है जिसे वह में उस की उच्चारण भाषा गुणित है और यह निर्देश भी है कि पुनरा - उर्दू का विचार आसन्न है। इस के साथ ही उर्दू - जौलीनरी के नारीत्व बकीया - परकीया मात - को भी ध्वनि व्यक्त है।

दिनकर जी ने उर्दू के द्वितीय अंश में रसी के मने प्रयोग किये हैं। इस अंश में पुनरा का अनुदात्त गीत आठ पंक्तियों में व्याप्त है। जिसे उर्दू मिश्रण के "रन कान लावन" Run-on-line की शैली में लिखा गया है। इसी प्रकार का तर्जिल गीत उर्दू का भी है जो विचार विचार कर प्रस्तुत किया गया है। पुनरा का यह गीत अंग्रेजी के एकल गीत (Soliloquy) की भाँति है जो "होने के अंधा, इसे मैं भी नहीं देख सकता हूँ" के आत्म चिंतन से प्रारम्भ हो कर "प्रार्थना के गीत माना जा सकता है" की शक्ति पर समाप्त होता है। उर्दू के कथन में भी ऐसा ही चिंतन प्रधान भाव है जो कहती है:- "पर, क्या शीर्ष" क्या उर्दू" शक्ति यह देख भाषा। और पात्राणों में गली वृत्तियों में से अन्ततः उमर कर उत्पन्न होती है। सम्प्रति: दिनकर का कवि मन इस शैली में रमा नहीं।

द्वितीय अंश में ही दिनकर ने एक नवीन प्रयोग किया है जो काव्यानुस्य न ही उर झोंका ही गया है। जिस तात्पर्य से मिथ्याकरण गुण में अपने लक्ष्य में सम्पाद रखें हैं इसी सुराई के दिनकर भी रसना चाहते थे और जिस गायों का प्रयोग प्रसाद जी ने काव्यानुस्य में किया है उनका गीत भी दिनकर ने छोड़ दिये।

"प्रसाद" जी ने अनु-प्रसाद के परिचय में ऐसे कुछ प्रश्न किये हैं :-

प्रश्न:- कौन तुम 'संस्कृति' का निधि तौर
तरीकों के कैसी मणि एव
कर रहे निजि का धुंध धाव ,
प्रसा की छारा से अभिषेक ' -

उत्तर में अनु ने भी प्रश्न का परिचय प्राप्त करने के लिये ऐसा ही सुन्दरता - सुन्दर प्रश्न किया है:-

जीन को तुम जानते है दूत
विरत पतञ्जल में अति सुखानार
उन निमित्त में चपला की है
तपन में रीतिन सन्द कमार ।

इन से प्रभावित होना दिनकर की है लिये स्वाभाविक ही था। दिनकर जीने
उत्कृष्टी का रूप में ही जहाँ उत्कृष्टी का परिचय भी पुरुषता से ही पूजा है जो बहुत
चित्ताकृति प्रतीत नहीं होता। उत्कृष्टी पुरुषता के विषय में परिचय प्राप्त करती है:-

उत्कृष्टी:- जीन पुरुष तुम

पुरुषता:-

जो अनेक जगहों के जीधारे में

तुम्हें छोड़ता फिरा तेर कर कारखाने नाल को ।

उत्कृष्टी जहाँ अपना परिचय भी पुरुषता से ही पूजती है:-

उत्कृष्टी:- और जीन में

पुरुषता:-

तीन तीन या नौ के बता सकता हूँ ।

इसके का तात्पर्य यह कि वह उत्कृष्टी उत्कृष्टी पुरुषता से ही परिचय प्रदानों में
एक तो अर्ध भाव प्रकट होता है दूसरी मातृकीयता में अवस्थितों के भाव भी तपन
प्रतीत होने लगता है।

दिनकर की उत्कृष्टी में चौथे और पाँचवें अंश के सम्बन्ध अपेक्षाकृत अधिक मातृकीय
हैं। इन में अभिन्न प्रभावता होने से प्रभाविततावस्था भी अधिक है। सम्पूर्ण गीति स
माध्य में सम्बोधन का प्रयोग मातृकीय सौन्दर्य में अभिव्यक्ति करता है। तथा पद और
पद-समूह की आकृति से मिली भन्धर्भ श्रित्त का महत्व भी बढ़ जाता है।

उत्कृष्टी गीति माध्य का अन्त मातृकीय है और तात्पर्य में उस का अन्तर्भाव है
है। जीतीनारी के प्रति जो उत्कृष्टी में ही यह तात्पर्य प्रकट होता है उन जाने पर और
आयु, जो कौ-वृद्धि का कारण है और जिसका सौष्ठव विद्यतीय अंश में मिल चुका है
के मिलने से परस्पर कलक है मातृत्व की भावना में बदल गई है जहाँ कालिदास का
प्रभाव प्रतीत होता है।

अभिव्यक्ति - कौशल में दिनकर अभिव्यक्ति शक्ति ध्यान कवि हैं। समस्त चराचर
जगत् में जीव, माया, बुद्धि, स्वर्ग, नरक, आकाश-माताल, इन्द्र, प्रकृति, योग-योग
दत्त आदि की कवि ने इस माध्य कथा में बड़े कौशल से पिरोया है। यह सत्य है
कि हमने सारे जगत् और दार्शनिक सिद्धांतों की विवेचना के लिये एक एक पुरुष
ग्रंथ की रचना की सकती थी किन्तु वह ही हन्दी में अनासक्ति - योग की ^{अथ} स्वर
में ही व्याख्या कर दी गई है, जीव, जगत्, इन्द्र, माया आदि के औपनिषदीय
चिन्तन को स्पष्ट दिया गया है और धरती पर नारी के जाया - जगत् - प्रेयसी
त्व की चिन्तन करने तथा स्वर्ग - नरक की व्याख्या करने में दिनकर का कवि-
कौशल सिद्ध है ।

अभिव्यक्ति एक कला है। वैदिकान्तिक पक्ष में स्वयं-प्राप्तिम पक्ष सर्व-प्रधान ज्ञान तथा व्यावहारिक पक्ष में जीवन के कार्य-व्यापार आते हैं। स्वयं-प्रकटीकरण ज्ञान कल्पना प्रसूत है अतः व्यक्तिगत भी है। सर्व प्रधान ज्ञान समाज सापेक्ष होता है। कला में कल्पना और तदुत्पन्न विम्वर महाभिव्यक्ति करते हैं जिस में कला के मूल रूप अपनी रमणीयता में उद्भासित होते हैं। उत्कृष्टी काव्य में पद्य पद्य पर कल्पना प्रिय होती है विम्वर बनते हैं। सर्व-प्रधान अथवा बौद्धिक और वैचारिक काव्य होने के कारण उत्कृष्टी के तृतीय अंश अभिन्न भिन्नी प्रकार के ज्ञान - विज्ञान - दर्शन पर जो बौद्धिक सर्व - चिन्तित होता है वह भी ही पुराण - उपनिषदों की परम्परा ही पर एक मनो हारी साक्षात्करण अथवा उच्च प्रसूत कर देता है। अतः नीति-न्याय के स्तर पर उत्कृष्टी समग्र काव्य उपादानों से युक्त एक साकार अभिव्यक्ति है। उत्कृष्टी ज्ञान में उत्कृष्टी - पुराणा के प्रणय - परिणय को अपनी लेखे सविनाओं में ग्रहण किया है और अपने अन्तर्मन से उसे अभिव्यक्ति दी है। इसी को अभिव्यक्ति कह सकते हैं वह हैं। अन्तर्मन के भाव जब अभिव्यक्ति हो कर शब्द रूप ग्रहण कर लेती हैं कि वह व्यावहारिक रूप में सदा जीवित रहता है --- यही कला की चिरन्तनता है।

कला और रस का संतुलन

उत्कृष्टी नीति नादय है अतः उस की कला योजना नीति के अनुस्यू भव है।
उत्कृष्टी में कला का संयोजन कला प्रियता के लिये भी है और नीति के लिये भी। कला का जीवन - समाजीकृत सम्बन्धी उद्देश्य क्या इस से पूरा होता है यह विचारणीय है। कला के दो उद्देश्य य और हैं जीवन में प्रवेश के लिये अथवा जीवन से पलायन के लिये।

कला वादियों का एक आन्दोलन है कि कलायें केवल कला-अभिव्यक्ति के लिये हैं। साक्षात्, सौन्दर्य, शोभा और शिष्टाचार जित् अलाकृति में हो गा वह लचकर प्रतीत होगी ही। कला का मूल सौन्दर्य वृत्ति है। कवीन्द्र के अनुसार "सौन्दर्य का खोष हमें विश्व की विभूतियों में आनन्द की प्रतीति दे कर हमारी कला की अधिक सुन्दर और सम्पन्न बनाता है।" सौन्दर्य वाद्यों नहीं है आन्तरिक है अतः आनन्द प्रेरक है। जब रसिक प्रसाद ने काव्य कला के सम्बन्ध में लिखा है:-

"काव्य आत्मा की संस्कारमय अनुभूति है जिस का सम्बन्ध विवेक, चिन्तन, या विज्ञान से नहीं है।

वह प्रेय - मयी प्रेय रचनात्मक ज्ञान - धारा है।"

अतः कला का मूल सौन्दर्य वाद्यों न हो कर आन्तरिक है। मनोविश्लेषण वादी शैलिक प्रवृत्ति ने मानव - चेतना का आधार काम की माना है। उन का मतव्य है कि मनुष्य जब सामाजिक मर्यादा और प्रसातनिक बन्धनों के कारण अपनी कामनाओं को व्यक्त नहीं कर पाता है तो वे दमित वासनाएँ और झुलझाए या तो स्वप्न में या फिर कला में अपनी अभिव्यक्ति पाती हैं। महर्षि चारुसाधन ने भी "काम-सूत्र" में शीतल कलाओं का वर्णन किया है। अरिमान युग के उपन्यासकार विष्णु कवि जी० एच० शर्मा ने भी "काम" को एक बृहत् मर्यादाहीन उत्कृष्ट कला माना है। कोई कारण नहीं कि दिनकर पर हम काम वादी आचार्यों के कला-मूल्यों को का प्रभाव पड़ा हो और उत्कृष्टी में काम-से आध्यात्म तक की यात्रा का कलात्मक विवेचन है। उत्कृष्टी में अपराधी के सौन्दर्य के माध्यम से शरीर और देह जीव के मानवी और देवी सौन्दर्य के स्वरूप की खोज है। यदि देवी सौन्दर्य अगर है तो वह बन्ध की सीमा के पर नहीं जा पाता है वह कि मानवी रूप भी ही ही काम का

हो पर "धेक धेक कर" किया जाता है। दिनकर की उर्की का यह प्रारम्भ बिन्दु है जिस के अनेक बिन्दुओं और धरातलों पर धरती की सुप्ता और प्राकृतिक सौन्दर्य को ले कर कवि ने अनेक कलात्मक स्वल्प निर्मित किये हैं। अप्सरा का रक्षस मय जन्म, उस का अयोनिजा स्वल्प, मानवोन्मुख आकर्षण, स्व गर्व और चिरन्तन ^{असि} माम्भीर्य आदि ऐसे आशय हैं जहाँ कवि ने कल्पना से मूर्त रूप प्रदान कर दिये हैं। काम रचना की तरफ "स्व" की आराधना का मार्ग आतिथ्य नहीं है/1- आतिथ्य नहीं तो और क्या है?" काम की आतिथ्य --- "को रही छा दसी भाति हर पीठ अङ्गीकृत आतिथ्य है"। काम से विरक्ति---"पर क्या बोधु क्या बधु? प्राति यह देह भाव।" अनातिथ्य और देह काज से परे चिरन्तन का नारी का सौन्दर्य उर्की है।

उर्की का सौन्दर्य चित्रण काव्य की नीति - कला में अभिव्यक्ति है अथवा यह कहें कि उर्की का समस्त सौन्दर्य विधान शब्दों की लय में परसर्जित है। दिनकर के सौन्दर्य चित्रण में मात्रिक कृत की लयको मेयता अमूल्य है। कवि पदों में जिसे सार-उन्द भी कहा गया है दिनकर का अधिकार है। 28 मात्राओं वाले इस उन्द में लय गति और मेयता का अभाव नहीं है:-

पर मैं कही नहीं तरुण बावक हनि के नयनों का
परिणत होने लगा क स्वर्ण रीतल मधु की पलना में
मानों प्रमुदित अनेक न्याय बावक में खदत रहा हूँ तो
मनोरस पर, नहीं कोप से, ^{आसुव} अविश की लाली से ।

उ० 4/109

दिनकर के मात्राओं का जहाँ व्यवहार रक्का है वहाँ पंक्तियों पर कार्य बन्धन नहीं है यहाँ तक कि सात पंक्तियों का भी उन्द उन्हीं ने लिखें जाता है। कतिपय उन्द अनुष्ठान भी हैं। सुतीत अंश में पुलक और उर्की हैं लम्बे लम्बे भाषण कुमुदान्त हैं और अनेक उन्दों में तुक का आग्रह भी व्यतिरिक्त से है। यदि सार एक उन्द है तो कहना उचित होगा दिनकर ने इस 28 मात्रा वाले पंक्तियों का ही प्रयोग किया है। मुक्त उन्द के रूप में भी उनकी अभिव्यक्ति संगीतारमक है:-

यह सुन्दरी कल्पना है प्यार कर लो
स्वप्नी नारी प्रकृति कर चित्र है सब से मनोहर
औ मग्न चारी। यहाँ मधुमात आया है
भूमि पर उतरी
कवल, ऊपर, झुंझ से, झुंझ से
यस अलस सौन्दर्य का प्रसार कर लो।

यह लो है दिनकर की कला में नीति-नित्य और उन्द विधान।

दिनकर की उर्कती उर्कती सौन्दर्य प्रधान कलाकृति है। अतः उस में शृंगार रस का प्राथम्य स्वाभाविक है। अप्सराओं के विभिन्न शृंगार की साकारता है। अप्सरा शब्द ही शृंगार - विभक्त है। फिर उर्कती, औशीनरी और सुडन्या, चित्र लेखा, रत्ना और सहजन्धा सब की सब नारियाँ हैं। सम्पूर्ण काव्य नारी प्रधान और नायिका उर्कती केन्द्रित है। अतः रस की दृष्टि से सौन्दर्य चित्रण की कला और शृंगार रस का अद्भुत मिश्रण उर्कती काव्य में मिलता है। नाट्य - प्रभावी होने के कारण चतुर्थ अंक की अभिनेयता सम्पूर्ण गीति नाट्य से अत्युत्तम सौमनीय है। उर्कती का तृतीय अंक रस-स्रजन की दृष्टि से सर्वाधिक सुन्दर है तथापि नाटकीयता की दृष्टि से चतुर्थ एवं पंचम अंक का महत्व नकारा नहीं जा सकता। तृतीय अंक की शृंगार प्रधानता, चतुर्थ की कला और पंचम के उत्साह चर्चित वीर का अवसान शान्त रस में ही कर काव्य की सही स्थान निता की ऐसा प्रसाद की कामाक्षी जैसे के अन्त में है:-

समरस थे वा जड़ जैसे या जैन
सुन्दर साकार बना था
जैनता एक विलसती
आनन्द अछूट बना था

उर्कती में भी यही व आनन्द वीर्यवर्मा के समान सुख दायी है:-

"वरस गया वीर्या, दैयि। यह भी है धर्म किया का।"

इस प्रकार दिनकर ने अपनी कला में रस का सन्तुलन निरन्तर बनाये रखा है। कला और रस की इस जीम और जीम भाव से बड़ी समझ रखते हैं। रस तो जीम है -- शृंगार - कला और वीर की यही है कला इन्हीं की मुख्य अभिव्यक्ति है और उर्कती में यह संगति सर्वत्र देखी जा सकती है।

अध्याय पाँच

उर्वशी में
नाटकीयता

उर्वशी में नाटकीयता

- रूपक काव्य और काव्य रूपक
स्थापना और निर्वाह
- परम्परागत भारतीय शैली
सूत्रधार और नटी
- पाश्चात्य शैली का प्रभाव
समवेत गान
- भारतीय एवं पाश्चात्य शैली का समन्वय
- गीत नाट्य की योजना का प्रतिफलन
- दृश्य एवं सूच्य विधान
- रंगमंच नेपथ्य
- पात्र नेपथ्य
- वातावरण
- संकलन त्रय का निर्वाह
- अभिनय कौशल
- काव्य एवं नाट्य का समन्वय
एक सफल गीति नाट्य

उत्कली में नाटकीयता

000000000

स्वयं काव्य एवं काव्य स्वयं

स्थापना पूर्व निर्धारित

उत्कली एक नीति नाट्य है। नीति नाट्य स्वयं काव्य और काव्य-स्वयं परस्पर को सुविधा रखते हैं कि उन्हें प्रत्यक्ष आसक्त में देखता कहिये। उत्कली वैदिक काव्यीय

कथानक में आज की मानसिकता का दृष्टिकोण है। कवि अपने इस काव्य-कथानक में वर्तमानक का स्वर देना चाहता है या जो वह - तब ही संयोजित है।

स्थापना:-

कविहर विनहर ने उत्कली की धूमिका में उत्कली के स्वयं तत्त्व पर विचार किया है। उनकी दृष्टि में "उत्कली चक्षु, रत्ना, प्राण, रस, तथा श्रोत्र की कामनाओं की प्रतीक है।" वह मूल रस कविताओं से खीर व्याप्त एक काव्य-वाच है। इसी प्रकार पुराणा कवियों मूल कवियों का

सूत्र परिभाषा है। पुराणा चक्षु से रस, रत्न से रस, प्राण से गन्ध, रस से रस और श्रोत्र से शब्द और इनसे मिलने वाले सुगंध से उत्पन्न मनुष्य है। विनहर ने केवल वर्तमान में ही पुराणा - उत्कली की अवधारणा की है। वे शब्द "पौराणिक नाम की उत्कली मातृ धारण किये हुए हैं। यहाँ की कविताएँ रसावली के पुराणा उत्कली हैं जो पौराणिक सिद्धान्त, ज्योती कवि कलादीपों और सापेक्षा वाद द्वारा निर्दिष्ट बात है चक्षु आवासीय स्तर पर भी जीव लगे हैं। पौराणिक आदमान ने विनहर की उत्कली के काव्य रस की सुरक्षित रखने के लिये अंगूर के पतले लिहके का काम किया है।"

विमल ने दुरवा और उर्ली की अन्धोक्ति बरकत को स्वीकार किया है।
 इस संदर्भ में हमका कथन है:-

- " इस कथ को लेने में वैदिक आचमन की दुरावृत्ति अथवा वैदिक प्रतीक का प्रथाक्रम मेरा अन्तर्गत रहा है। मेरी दृष्टि में दुरवा समासन नर का प्रतीक है और उर्ली समासन मारी का।" ।

विमल ने वही मारी को अन्ध अन्ध कथितानों में और अपने विचारों में भी बहिष्कार का प्रयत्न किया है।

- " विचारों में हम जिस मारी का अन्तर्गत करते हैं वह किसी की डेटी, बदन या भाव नहीं होती, वह तो अनात्मिका, अतीत कल्पना की प्रतीक है, जिस के अंग पर उग्र के दान नहीं लगे तो सर्ग से घरे लगे हमारे लक्ष्यों पर राख करती है।" 2

यह रवीन्द्र का प्रभाव है।

विमल की उर्ली काव्य की मारी है, किन्तु, हमारे मानस पर जिस पौराणिक उर्ली का लव संस्कारका समाया हुआ है वह आधुनिक मारी के समासन स्वल्प स्वीकार करने में एक अविज्ञान बन जाता है। उर्ली को समासन मारी का प्रतीक मानने से मारी की महिमा छट जाती है क्योंकि कि उर्ली तो, ऐसा कि हम स्वीकार करते हैं, बन्ध के बाजार की रिक्तता अथवा अज्ञानता " अथवा कामादुरा सोरवाधिनी " अथवा है। काव्यज्ञान तक की उर्ली रसि रसस्य में पारंगत थी, निरुता, बदन-विदग्धा और स्वयं सुती थी। विमल की उर्ली भी 'दुरावृत्तमोचना' नहीं है और न ही " न होता जाना हमने दुरावृत्त-मुक्ति " है। विमल की उर्ली निष्ठावान प्रेमिका है। अतः वह समासन मारी का प्रतीक बन सकती है। विमल - पूर्व उर्ली की भी प्रेम निष्ठा वस से व्यक्त होती है कि वह बन्ध, मन्थन या अर्जुन के प्रति आकृष्ट रह कर भी वृद्ध से केवल दुरवा की ही रही है, अतः वह निष्ठावान प्रेमिका है, पकारिता है। यह नाम लव जीवा या कामादुरा नहीं है। यह उर्ली वास्तविक लक्ष्यों से युक्त निष्ठावानता, मुक्ति मुक्तता, महिमा लोचना और काम मुक्तिता अथवा उर्ली वीसे हुई भी मर्य लोच के राखा दुरवा की भाव्य कपी और देव की मन्त्र की कर बहिष्करी बनने जाती माँ की:-

1:- उर्ली: मुक्ति

2:- अर्थ के वैधर्म्य और विज्ञान — विमल पृ० 32

गुलती

समझी है किम रिता सत्य हेमलन देह की की कर
पर हो जाती वह असीम जितनी वयस्विनी की कर ।

४० १/१९

यह उर्दीगी केवल स्वर्ण नहीं, धरती भी है, ऐसी भारी है जो धरती और स्वर्ण की
जोड़ी जाती है। अतः दिनकर की उर्दीगी जगत् की ओर आश्चर्य की ओर,
दोनों की दृष्टिकोण से पूर्ण है।

निर्वाह:-

निर्वाह की दृष्टि से उर्दीगी का रचना विधान विधि
विशुद्ध है। यह अर्थों में विभाजित व्यवस्था है पर कथोपकथन की
अवस्था नाटकीयता से दूर है। इस की नीति नाट्य कला
का मूल है पर महाकाव्यत्व के गुणों से यह परिपूर्ण है। रि
तिनाम के विवाद की हटा कर यह भारी भाषा प्रतिपादित

दिखा जा सकता है कि विषय वस्तु, उद्देश्यक श्रेष्ठता और सामर्थ्य की दृष्टि से
यह एक महत्त्वपूर्ण है जिस के निर्वाह में सम्पूर्ण परिवर्तन समीचीन हो गया है।

परम्परागत भारतीय नाट्य रीति

सुझाव और नती:-

दिनकर ने एक भारतीय परम्परागत
रीति में उर्दीगी नीति नाट्य को लिखने की चेष्टा
की है। भारतीय नाट्य रीति में पूर्व रस नाम्नी
पाठ और सुझाव नती का जो विधान है, यह

यद्यपि नाटक का मूल भाग नहीं होता तथापि नाटक के विषय को श्रेष्ठों के समक्ष
प्रस्तुत करने का उद्देश्य करता है।

साहित्य दर्शन के अर्थों परिलक्ष्य में नाटकीय व्यवस्था का पूर्ण सामर्थ्य
विवरण दिया गया है जिस के अनुसार नाटक के पूर्व की व्यवस्था में पूर्वरंग की
व्यवस्था है:-

सम पूर्व पूर्वरंग: समाप्ता सतः परम्
अर्थों की संज्ञा के नाट्य व्यवस्था सुझाव ४/२।

अर्थात् नाटक के पूर्व क्रिया: पूर्व रंग, विधान, सदनम्भर रंग सभापूजन, सार्वभौम
नाटक कवि या नाटक के नाम का संकीर्ण और अन्त में आमुख अथवा
प्रस्तावनाविधि।

1. पूर्व रंग

पूर्व रंग का सारभर्य है नाट्य मन्त्र की विध लोभित या मन्त्रारोपित जिसे
नाट्य के पहले मन्त्रों द्वारा प्रकट मन्त्र मायन से प्रकट किया जाता है। इस
प्रक्रिया में अनेकानेक मायन - वाचन क्रिया कलाओं का विधान है तथापि "मान्दवी
मायन" का अनुष्ठान आवश्यक है।

2. मान्दवी

मान्दवी क्या है? देव, निम्न, नृप आदि की स्तुति नीति की मान्दवी है।
इस में रंग - सामाजिकों की शुभाशुभा का अविश्वस्य वर्णित रहता है।

3. सुवधार

"मान्दवान्ते सुवधार" जिस का अर्थ है मान्दवी के बाद सुवधार का प्रयोग।
कालिदास के रङ्गमञ्चा, विश्वमोक्षगीयम् आदि नाटकों में "देवान्तेषु यथा दुरित
पुण्यम्" आदि नाटक का रचित मान्दवी का उल्लेख हुआ है। इसके बाद
"मान्दवान्ते सुवधारः" का निर्देश किया गया है। इसका तीर्थ अर्थ यह है कि
मन्त्र मायन के उपरान्त "देवान्तेषु" अर्थात् आदि आरणीयम् या कर सुवधार कवि के
नाटक की उद्घोषणा करता है।

4. स्थापक

"सुवधार" के मंत्र से उत्तर जाने के बाद इसका समस्त मन्त्र नाटक की स्थापना
करता है। जो सामाजिकों की नाटक की मन्त्र, पात्र आदि की सूचना देता है।

संविधान काल में मन्त्रा रक्षा और मान्दवी अब प्रकटन से हटा दिये गये हैं।
सुवधार की स्थापक का कार्य सम्पादित कर देता है अथवा इसके साथ मिलकर नाटक
की स्थापना करता है।

उत्तरी नीति नाट्य के प्रकटन में पूर्व रंग और मान्दवी का विधान हटा दिया
गया है। सम्भवतः इस लिये भी कि आज के युग में उत्तरी जैसे नीति नाट्य का
इस मन्त्र उदा' की या अब कि मंत्र की प्रकट रति रति सम्पादना होती या रही है।

पूर्व रंग और मानवी की इहद्वैती उपयोगिता आज भी है किन्तु यह केवल राम-सीता के मंच पर देखी जा सकती है। दिनकर ने इहद्वैती नीति नाट्य का प्रारम्भ सुनकार और नटी स्थापक की सहायता से ही किया है जो प्रतिष्ठानपुर के साक्षात्कार का निर्माण करते हैं और अप्सराओं का प्रवेश स्थापित करते हैं। जिस में एक इहद्वैती भी थी जिस का अवलोकन हो गया है। सुन कार और नटी के युग की छाया में सुनकार होते ही अप्सराओं का अवलोकन और सम्भाव प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार इहद्वैती में परम्परागत भारतीय रीति का अनुकरण उत्तम तक ही दिनकर को प्राप्त है जो आज की मानसिकता के अनुकूल हो सकता है।

वारचार्य रीति का प्रभाव:

समवेत गान =====

वारचार्य रीति के नाटकों में "समवेत गान" का विशेष स्थान है। रीक्षणीयर ने नाटकों में समवेत गान (Chorus) मात्र गाया ही नहीं है वह एक पात्र-युग्म का स्थान भी है, जिसका एक पात्र भी है। रीक्षणीयर के कुछ नाटकों का प्रारम्भ ही समवेत गान से हुआ है।

दिनकर की इहद्वैती एक नीति नाट्य है अतएव "समवेत गान" का इसमें एक विशेष स्थान है। दिनकर के समवेत गान इहद्वैती के प्रथम अंक में ही एक के बाद दूसरे, तीसरे अनेक गानों के रूप में प्रस्तुत हैं।

बसन्त समवेत गान "पुलों की नाच बजाती री" है जिस में स्वरों के अन्तरे पर उत्तरों का अथवा स्वरों की श्रृंखला से स्वरों की श्रृंखला का सम्बन्ध स्थापित किया गया है। है। तीसरे अंक में ज्योति अहनि के सम्बन्धों के साथ "ऊन ऊन ऊन" की ध्वनि संगीतारम्भ साक्षात्कार का निर्माण करती है जो नीति नाट्य की माधुर्य प्रदान करता है।

चौथा समवेत गान प्रथम अंक के अन्त में है जहाँ अप्सरायें इहद्वैती की पुरस्का के

सांख्य में जोड़ कर आकाश मान में स्थिति दी जाती है। उर्ध्वी - पुरुषा के कम
कथा - सुन को प्रारम्भ होती वह में प्रत्यक्षित होता है।

उर्ध्वी में करने की सम्मेल गान हैं। रोहतपीयर के नाटकों में "सम्मेल गान
(Chorus) नाटक के किसी भी अंक में जा कर उसे गति प्रदान करते हैं क्यों कि
यह एक पात्र के रूप में करना का संकेत करते हैं। उर्ध्वी में बीच में क्यों के भी
सम्मेल गान नहीं है क्यों कि उर्ध्वी के सम्मेल गान करना सुक नहीं है, वे वातावरण
के निर्माण में सहायक हैं।

भारतीय धर्म धारधार्य
रीति का समन्वय

दिनकर ने उर्ध्वी नीति नाट्य में
भारतीय धर्म धारधार्य नाट्य रीति का
समन्वय करने पर प्रयास किया है। धारधार्य
नाट्य रीति में :

- 1- वस्तु
- 2- चरित्र चित्रण
- 3- कथोपकथन
- 4- अभिनेयता
- 5- नीति और
- 6- भावा रीति

वः अंग माने गये हैं। भारतीय नाट्य शास्त्र में इन छः अंगों को केवल एक वस्तु,
मैत्रा (चरित्र चित्रण, कथोपकथन और अभिनेयता) और रस (प्रभावान्विति - नीति
भावा) - रीति और आनन्द) तीन अंगों में वर्णित किया गया है।

उर्ध्वी में उर्ध्वी - "पुरुषा की प्रणम - कथा" वस्तु है। चरित्र चित्रण की दृष्टि
से पुरुषा, आयु, उर्ध्वी, जीर्णमरी आदि का चरित्रांकन है। कथोपकथन, अभिनेय,
भावा आदि से यह नीति नाट्य पूर्ण संवीत प्रचार कोन है और राज्य के अधिक
मिष्ट बन गया है।

रीति की दृष्टि से यद्यपि भारतीय परम्परा में अवस्थित सुझाव यह है
प्रारम्भ कर यदि दिनकर ने सम्मेलों के रूप में राज्य का प्रस्तुत किया है तथापि
पाँचों अंग की नाटकीयता और प्रभावान्विति को कम नहीं किया का सकार। उर्ध्वी
और पुरुषा के विभिन्न सुझाव और अनुमान का रूप रूप तथा मिष्टन की नीति का
निरासा के अनुमान नीतियों की भाँति इन के समे समे राज्य सम्मान एक नये
प्रभाव की प्रवर्णन करते हैं। सम्पूर्ण उर्ध्वी का समन्वय करने पर इन धारधार्य

परिष्ठा में भारतीय संस्कारों की प्रश्रुति पाते हैं जिस में देशी या अविदेशी का भेद नहीं रह गया है।

भारतीय नाट्य जीवन
का प्रतिपक्ष

हिन्दुओं का जीवन प्रसन्न रहता है। उनके समाज का जीवन में विविधता ही एक विधा बन कर उभरी है। उनकी के प्रणयन में भी उच्च विविधता प्रसन्न रहा है। एक और यह होते हैं कि वे स्वयं के रूप में प्रश्रुति करना चाह रहा है था,

दुसरी और उलटा उच्च बन रहे महा का जीवन का परिष्ठा देना चाहता था। स्वयं की अवधारणा करते समय की उनके मन में विविधता है — यज्ञ, भारतीय संस्कृति और नाट्य कला के अनुसार भारत युनि का प्रकाशित संस्कारण, सुनकार और मदी के प्रकाश से नाटक प्रारम्भ किया जायक था कि वास्तविक नाटक कारों की भाँति सोचे कोरस सम्पन्न मान ले। और इन दोनों रूपों के विविध विधान से उनकी का प्रारम्भ भारतीय नाटक परम्परा के रूप में प्रश्रुति है भी और नहीं भी है। प्रत्येक प्रारम्भ में संस्कारण का अभाव है परन्तु एक के पूर्व "विश्वमोक्षीयम्" से यह प्रश्रुति करना महा उच्च का विधान के प्रति समन है और फिर प्रत्येक का एक के प्रारम्भ में संस्कृत पर लिखने का साधन देव माना की पूजा की है। अतः, विष्णु, वास्तव्य का भी मोक्ष सर्वथा रचना नहीं बना है। पहले ही अनेक अनेक सम्पन्न मानों की योजना, वास्तव्य देशी प्रतिपक्षित की रही है। अतः यह सम्पन्न मानों का अन्तर्गत विचार है अतः ही नीति की दृष्टि से ये महान पूर्ण भी हैं।

उत्तरी के दूसरे अनेक जीवनी की कला - कथा है। यहाँ एक और विविधता और महानका के सहयोग से कथा के विधान में अनेक के बीच अन्तर्गत न की नीति लेते हैं यहाँ एक के अन्त में महाराज दुसरा का प्रकाश देना गया अन्त - सति। अन्तर्गत की सीकता के साथ जीवनी के दुर्भाग्य की कला भी देता है। एक और महाराज दुसरा अन्तर्गत में उत्तरी संन रचना करते हैं, विचार करते हैं तो सुनरी और जीवनी की जो कला सुन दृष्टि के लिये अन्तर्गत का अन्तर्गत भी प्रकाश करते हैं। जीवनी केवल कला ही नहीं है:-

का अन्तर्गत साधना है
अन्तर्गत के संन रचना की का साधना है ।

सुतीय अंक के प्रारम्भ में प्रमुख विद्या क्या मन्त्र है :-

पुनरावः । पुनरावर्त परीच,

पुनरावर्त वात क्या वमिष्य ।

वस्तुतः वत अंक का प्रतिफल भी यही है। इन्हीं पुनरावर्तों को पुनरावर्त है। यह काम सुनिश्चित मारी बन कर विद्यामर का अन्तःस्थापना होने के बाद से होती है और यह बात है कि विद्यामर मारी बन कर पुनरावर्त रचना सुम-आधारम बन गई। किन्तु मैं वत माध्यम से वस्तु से बन कर प्रथम तक जाने के लिये "व कामाधारम" का प्रतिफल प्रस्तुत किया है।

इन्हीं का बीधा व अंक 'वस्तु' - सुकामा की प्रथम अन्तर्ध्या का द्योतक है और प्रतीक क्या है इन्हीं की मुख्य क्या है संयोजन किन्तु का प्रतिफल परीचों अंक में क्या है। भक्त-भाव क्या, अन्तरावर्तों का संयोजन को वस्तु से कर वातम न करना, वस्तुधरा रंगा पुनीमा आदि अन्तर्ध्याओं से संयुक्त मुख्य क्या का प्रतिफल वस्तुओं के अन्तर्ध्या और पुनरावर्त के सम्बन्ध में परिलक्षित होती है। मनीषिज्ञान वस्तु है "द्वेय में स्थापना होने की परिणति किन्तु मन्त्र रूप में छिटित होती है। और प्रवर्त, बीसीमरी इन्हीं - पुनः आदि की मुख्य से बना कर अपने रावमाता के अर्थ को सुष्ट हो कर लेक लेती है किन्तु मारी के रूप के रूप में यह अन्त तक होती - होती है। सम्पूर्ण नीति माध्य का प्रतिफल क्या क्या --- मात्र क्या कि भारतीय मारी अन्तः विद्या और अन्तः मनीषिज्ञान से परीच जाती है। वीच समस्त ज्ञान - विज्ञान एक लक्ष व वस्तु सुष्टि वात से अधिक कुछ नहीं है।

सुप्त धर्म
सुप्त विज्ञान

का लक्ष्य वात से वस्तु के ही विभाग किन्तु है :-

सुप्त और सुप्त। शास्त्र कारों ने सुप्त और सुप्त की परिभाषा की है :-

मीरसीअनुष्ठातव संयुक्ती वितरः ।

सुप्तसु मधुरीवास्त रत भाव निरन्तरः ॥

क्या का यह भाव जो मीरसी और अनुष्ठात है वह संयुक्त है। यह क्या में संयुक्त है और यह भाव जो मधुर, उदारता और भाव पूर्ण है, जो प्रवर्त है यह भी वही पर अभिनीत होता है यह सुप्त है।

इन्हीं में सुप्त रत्न, सुप्त रत्न से अन्तर्ध्या बन है। सुप्त विज्ञान में केवल के प्रतीक हैं जो वीच की सुष्टि से मन्त्रपूर्ण हैं। ऐसे सुप्तों में निम्न लिखित प्रवृत्त हैं :-

सुप्त का लक्ष्य वात से वस्तु के ही विभाग किन्तु है :-
(1) सुप्त के लक्ष्य वात से वस्तु के ही विभाग किन्तु है :-

- 1:- ^{द्वार} कुल और पट्टी काता ॐ १
- 2:- अक्षराओं का अक्षरिण से धरती पर उतरना ॐ १
- 3:- प्रतिष्ठापनपुर के राज भवन में महारानी जीगीमरी और लक्ष्मियों की काता:- ॐ २
- 4:- मन्त्र मादन पर पुस्तका और हकीमी कातालाप ॐ ३
- 5:- अक्षराभन में सुकम्पा - चित्तोडा - हकीमी - संवाद ॐ ४
- 6:- अ पुस्तका के राज प्रताप में पुस्तका द्वारा ॐ ५
- सम्पन्न की प्रशुति ॐ ५
- अ हकीमी का सवरावट में पानी मृगमा ॐ ५
- स विजयना का सम्पन्न विजयना ॐ ५
- द सुकम्पा, आयु और पुस्तका संवाद, हकीमी अक्षरिण हेन ॐ ५
- य पुस्तका का कीप ॐ ५
- क मेवध्य से पुस्तका की प्रारम्भ - ध्वनि ॐ ५
- ख पुस्तका का निष्कर्ष और जीगीमरी का पदाकीपन ॐ ५
- द जीगीमरी - आयु संवाद ॐ ५
- व जीगीमरी - आयु - सुकम्पा की अक्षराव पूर्ण मुद्रा ॐ ५

सम समस्त कुल - विधान में केवल बाईसे ॐ में मादकीयता की दृष्टि से भी कुल हैं जब कि प्रथम चार ॐ में केवल एक ही कुल है। अतः प्रथम चार लक्ष्मी प्रधान का काव्य प्रधान ॐ हैं जब कि बाईसे ॐ में अक्षरिण की प्रमुख दृष्टि है। विनकर ने बाईसे ॐ को अक्षरिण प्रधान बनाते हुए भी आचार्यमठ मन्त्रीयता को बनाये रखा है।

सुलभ विधान

कथा का यह भाग, जो नीरस है, अनुचित है।

तथा अक्षरिण से लक्षित है, यही सुलभ है।

सुलभ प्रतिपादन के साक्षीय सत्त्वों में

विजयना, प्रेताक, पुस्तिका, अक्षरिण और

अक्षरिण का विधान है।

साधारण या मध्य बाईसे के द्वारा कुल या भावी अक्षरा की सुलभ यही की जाती है जब कि अक्षरिण कीता है। प्रतीक में यही सुलभ नीच या मध्य बाईसे

ज्वारा की जाती है। भूमिका यह मुख्य स्थिति है जहाँ रात्रि वहाँ के पीछे से किसी रात्रि का स्थिति करते हैं। अंशान्त यह मुख्य स्थिति है जहाँ रात्रि प्रत्येक के के अन्त अन्त में आगामी अंक की सुचना देते हैं। यह भाग मुख्य जहाँ के प्रत्येक प्रकाश में पीछे का कार्य करता है। अंशान्तर में पूर्व व अंक की सुचना के अनुसार आगामी अंक के रात्रि सीधा अभिप्रेत करने लगे हैं।

उत्तरी गीति नाट्य में मुख्य स्थिति किसी गीतगीत स्थिति में निरूपित है नहीं है किया गया है तथापि निरूपित और प्रत्येक के रूप देते की स्थिति हैं। उत्तरी में मुख्य स्थिति की प्रभावशालिता है और इसी मुख्य स्थिति और पूर्व अन्त अन्तों अन्त आगामी में उत्तरी में यह भाग प्रत्येक की सुचित किया है। ये मुख्य स्थिति की मुख्य अन्त आगामी की निरूपितता को बनाये रखी हैं।

अंक ४:-

अंक १।

अंक एक में की मुख्य अंशान्तों उत्तरी अन्त का मुख्य आधार हैं। इसमें उत्तरी के उत्तरी का अवधारण किया है। सुचना अन्त आगामी ज्वारा की जाती है:-

नहीं जानती की कि एक दिन हम सुनेर के घर से
सीट रही थी जब, उसने मैं एक व देरम ऊपर से
दुटा सुन्य स्थिति - ता हमको बात अवधारित दे कर
और सुन्य हट गया उत्तरी को बाहों में ले कर। ४० १/१२

उत्तरी का अवधारण, रात्रि सुन्य ज्वारा अन्त आगामी, रात्रि सुन्य के पीछे और सीटवर्क का अन्त, उत्तरी की आगामी, रात्रि के प्रति अन्त प्रत्येक भाग और अन्त आगामी सभी मुख्य अन्त आगामी हैं।

इसी अंक में स्थिति में अन्त आगामी अन्त आगामी को "उत्तरी" के अन्त आगामी वहाँ पर पहुँचाने की सुचना की है। उत्तरी रात्रि सुन्य के आगामी के लिये आगामी - आगामी है। यह उत्तरी है:-

"जैसे भी की सुने आगामी अन्त के अन्त आगामी।"

बघों कर
किर भजा चित्र लेता हूँ और अधिक व्यक्ति करता हूँ। उसने अपनी सही
अपसरानों को समेट कर दिया कि स्वयं सब उर्वरी को राजा पुरखा के उपवन
में छोड़ आर्य है।

आप सार्व को ही उसको बूझों से चुन लया कर
सुद दूर से बाहर से आर्य सब को आर्य बना कर
उत्तर नई छोड़े - छोड़े चुनके फिर मर्य चुनन में
और छोड़ आर्य हूँ उसको राजा के उपवन में । उ० १/२१

वसी प्रसंग में उर्वरी के रूप - सौन्दर्य के का वर्णन है, जिस उक्त से यह प्रतीत होता है
कि श्रीकृष्ण और स्वयं राजा पुरखा और "निर्दिष्ट चुनन की आभा, सुन्दर
निर्दिष्ट चुनन की आभा" उर्वरी दोनों का मिलन और इनका संयोग इत्यादि
क्रम को और अज्ञातित करेगा। यह मिलन मुख्य भाग को आधार बना है।

अंक २

सम्बन्ध - क्या सोचनी और चन्द्रमा के प्रेम प्रसंग को ले कर निम्नलिखित में
राजा पुरखा की व्याख्या महाराणी जीर्णनरी को यह सुचना दी है कि उर्वरी
महाराजा पुरखा से मिलने के लिये स्वयं से छटा पर आर्य है और सभी महाराणी
जीर्णनरी के लिये सुटिल निम्नलिखित का रोच है:-

सभी मान्य पर देखिए। आप के सुटिल निम्नलिखित सुसकार्य
महाराज से मिलने की उर्वरी स्वयं से आर्य । उ० २/२८

निम्नलिखित और महानिका दोनों ही जीर्णनरी की वास्तविक हैं। दोनों ने ही
उर्वरी के मादक सौन्दर्य का ऐसा वर्णन किया है कि कोई भी व्यक्ति उसके रूप पर
आकर्षित हो सकता है। रूप की ऐसी चका-चौंध पर यदि राजा पुरखा मुग्ध हो कर
उसका आसक्ति करने को व्याकुल हो उठे हों तो आश्चर्य क्या? वन दोनों लड़कियों
ने सुचना दी है:-

महाराज ने देख उर्वरी को अक्षीर अक्षुता कर
आर्यों में भर लिया, छोड़ मोदी में उसे हटा कर
समा नई कर - बीच अन्धारा चुन - समार - म्हात ली
पक्ष के पक्षों में निम्नलिखित निरी मल्लिका बना ली उ० २/३०

निम्नलिखित यह भी सुचना देती है कि वे यह सर्व सर्वम्व में मान्य पर निम्नलिखित कर
यह महाराज पुरखा कर लोटे में सब के निम्नलिखित मान्य रूप उक्त कर ली है। और
यह सब - अर्थात् के लिये जीर्णनरी देवी को जीर्णनरी बना है।

वही अंक में प्रयोग किये जाने की सुझाव दी है कि महाराणी जीसानीरु पुत्र
प्राप्ति की कामना के लिये साधन करती रहीं। महाराज स्वयं भी ऐसा ही
कृत होय की कामना करते हुए अन्तर आराधना करेंगे। अतः महाराज पुत्रप्राप्ति
उपयोग के प्रयोग में अपने स्वयं की मिला देने के लिये व्याकुल हैं। वही अन्त
माय जीसानीरु के लिये पीड़ा कारण है।

उपरोक्त के मुख्य अंक में प्रमुख विधान का अभाव है।

सुप्रीम अंक

उपरोक्त का सुप्रीम अंक महर्षि अथर्व के शास्त्र में विद्यमान और सुकन्या के लिये
संवाद है प्रारम्भ होता है। अतः वही अंक में सुकन्या और पतिव्रता के आदर्श की
स्थापना की गई है और सम्पूर्ण अंक में देवी सुकन्या अपनी और महर्षि अथर्व की
पुण्य - साधना का वर्णन करती है। महर्षि अथर्व की पुण्य कथा भी सम्पूर्ण में वही
अंक में प्रमुख है। अथर्व अथर्व ने भी स्व - पुत्र होने पर भारी मनोस मानी थी।

सुकन्या की यह भावना थी कि जिसने उपरोक्त के प्रत्यक्ष प्रसंग की सुकन्या
विद्यमान की दी है। महर्षि अथर्व के पतिव्रतायुक्त आत्म का सुन्दर वर्णन भी
वही अंक में वर्णित है।

विशेषातः महर्षि अथर्व के मन में यह ही चिन्ता है --- भक्त मुनि का साध।
भक्त मुनि के शीघ्र की कथा बहुत पुराणों में लक्ष्मी स्वयंवर के आख्यान में वर्णित है।
जिस में लक्ष्मी के रूप में अविनाश करने वाली उपरोक्त ने "पुण्योत्सव" के आयोजन पर
पुत्रप्राप्ति का दिया था और भक्त मुनि द्वारा अभिवादन प्राप्त थी। यह कथा
सर्वत्र रूप में प्रमुख है --- उपरोक्त का अन्तर्भाव है :-

दिल्ली नहीं सजती तुम का मुँह अपने ही स्वादी की
म ही तुम के लिए लीव स्वादी का तब सजती हूँ।

पृष्ठ 4/115

और भक्त मुनि का वाक्य साध विचार की है तथा सुझाव है :-

"तुम और व पति नहीं, तुम या केवल पति पावती थी।"

पृष्ठ 4/115

प्राचीन अंक

हर्षा की का प्राचीन अंक अभिनव कोरल के सर्वथा उपयुक्त है। अक्षय संवादी में समस्त नाटकीय विधानों का संग्रह होना स्वाभाविक है। पंचम अंक में नाटक की चरम सीमा भी वैदिक पर्याप्तता भी। महाराज का पुत्रवा ने इस अंक का उद्घाटन अपने स्वप्न की सुचना से किया है।

“समा सदी इस रात स्वप्न में मैं विचित्र देखी है।”

यह विचित्र स्वप्न है जायु के जन्म का जिसमें एक पावन भीर - अट, पुत्र - विचित्र विरिष्ठ कुलराजनी होना आदि से अभिव्यक्त किया गया है और जो अन्त में सत्य सिद्ध होता है। अक्षयान्त के निरुद्ध ही सखरा - गंगा - के तीर पर एक स्रज सातक शास्त्र भाव से प्रत्यक्षा भाव रहा है:-

और बास ही एक दिव्य सातक प्रसाद के आ

प्रत्यक्षा साक्षी थीर - कर - सोभी किसी अनुज की ।

बास कई गया, सब कुमार किसी सुभय लगता था ।

४० / १२९

विश्व महाराज ने स्वयं अपने लिये अक्षयान्त, उड़ गया, छोड़ अक्षयान्त स्रज गमन में कहा है। यही स्वप्न उनके उद्घाटन की नैतिक सम्मति की महिमा का द्योतक आता है।

हरी बीच सुकन्या का प्रवेश कर यह सुचना देना कि महर्षि अक्षय के आदेशानुसार आज के दिन कुमार जायु की उनके माता पिता के पास जाया है अतः यह प्रतीति - पुत्रवा - पुत्र जायु को ले कर कहा उपस्थिति पूर्व है। यह सातक ठीक स्वप्न - विचित्र कुमार के ही अनुज है सुन्दर है।

हर्षा ने भी महाराज के सम्मुख स्वीकारोक्ति में सुचना दी है कि १६ वर्ष पूर्व पूज्य विष्णु यज्ञ के काल में इसी अक्षयान्त में जायु की जन्म दिया था:-

अब है सोलह वर्ष पूर्व, पूज्य विष्णु यज्ञ पावन में

देव। आप पवित्र विचित्र जीवन सब कित्ता रहें

अक्षयान्त की सभी भूमि में, सब सभी जायु की जन्मा था

सुख में स्थापित महाराज के तेजस्व पावन से ।

४० २/१३

इस प्रकार हर्षा की नीति नाट्य में सुख कहा की नीति प्रदान करने में विश्व भावाभिव्यक्ति की आवश्यकता है यह इस नीति नाट्य के सुख विधान में पर्याप्त है। नव नाट्य रीति में विश्व सुख विधान के अनुसार पूर्व - प्रतीति की अक्षयान्त की जाती है --- विचित्र कर विचित्रों में --- इसी पूर्वपर प्रतीति करने स्वप्न की जाती है कि क्या इस में एक प्रावाहिक संयोग की पक्षपक्ष की जाती है। भाव

सुचनाओं से प्रेस के मन में इन प्रश्नों के प्रति एक विज्ञानापूर्ण रह जाती है।
 अतएव समस्त माध्यम विज्ञान में प्रत्यक्ष के प्रत्यक्षिकरण से अधिक महत्त्वपूर्ण अनुसंधान
 की अभिव्यक्ति है।

००००००००००००

रंग मंच मेध

हकीमी एक गीति नाट्य है ^{अति} अतिशय भी है और उस के मंचन के लिये एक व्यवस्थित है रंग मंच की आवश्यकता है। गीति नाट्य संगीत, संचालित, मृत्यु और नायक से समन्वित होता है। अतएव रंग मंच पर उस व्यवस्था का होना अपेक्षित है। जहाँ पर संगीत संचालन और मृत्यादि का प्रयोग और विकास सरल हो सके। मंच प्रदर्शना की दृष्टि से प्रथम अंक में केवल "प्रतिष्ठानपुर" के समीप एकान्त पुरुष कामल, सुकल पक्ष की रात, नटी और सुवधारचान्दनी में प्रकृति की शोभा का पान कर रहे हैं। " वैसे किसी भी तरह से मंच सज्जा अथवा मंच निर्देश नहीं कहा जा सकता। इसी अंक में आसमान से खम्बाओं और नूपुरों की ध्वनि सुनाई देती है। बहुत सी अप्सरायें एक साथ नीचे उतर रही हैं। नटी और सुवधार के अदृश्य होते ही अप्सरायें पृथ्वी पर उतरती हैं तथा पूज्य हरिद्यात्री और भक्तों के पास रुम कर गायत्री और आत्मज्ञ प्रदान करती हैं। एक बार चित्र लेखा का प्रवेश होता है और अन्त में सब आकाश में उड़ कर विलीन हो जाती हैं।

दूसरे अंक में मंच सज्जा नाम मात्र की है। प्रतिष्ठानपुर का राज भवन, पुरुरवा की महारानी अपनी दो सौधियों के साथ मंच पर हैं। अंक की समाप्ति के अवसर पर केवल कंधुको के प्रवेश का निर्देश है। राज भवन के अनुपूल मंच सज्जा का केवल अनुमान करना पड़ता है। यह स्पष्ट नहीं है कि राज भवन का यह प्रतीक किस उद्देश्य से है लिये प्रयुक्त होता है, अ यह कि अन्तःपुर है या कि सामान्य प्रतीक। इस अंक में कार्य व्यापार या कतना न होने के कारण मंच पर केवल जर्तारालय गीति नाट्य में गौरवता उत्पन्न करता है।

तीसरे अंक में नाट्य निर्देश के नाम पर केवल "गन्ध मादन पर्यंत पर पुरुरवा और हकीमी" भर उल्लिखित है। इस सम्पूर्ण अंक में न तो मंच सज्जा है और न ही मंच निर्देश। यह अंक केवल वाग्दलास का अंक है जिस में काव्यात्मकता अधिक है नाटकीयता है ही नहीं।

चौथे अंक में महर्षि च्यवन के आश्रम का स्वल्प है जहाँ रुचि पत्नी सुकन्या हकीमी-पुत्र आयु को गोदी में ले कर खड़ी है और चित्र लेखा प्रवेश करती है। इस अंक में कतिपय नाट्य निर्देश है। हकीमी का प्रवेश, सुकन्या द्वारा उस के पुत्र की गोद से लेना और बोल्के जाना हकीमी और चित्र लेखा का प्रस्थान" का तीन ही निर्देश से यह मंच जाना गया है।

पाँचवें अंक में मंच निर्देश उचित व्यापक है। "पुरुरवा के राज प्रस्ताव में

पुरुषा, उर्कगी, महाभारत, राज परिश्रम, राज - व्योतिशी, अन्य सभासद, परिचारक और परिचारिकायें तथा स्थान बैठे या खड़े। राजा की मुद्रा अत्यन्त विचित्र। आरम्भ में, कई क्षणों तक कोई कुछ नहीं बोलता। इतना ही मंच निर्देश है। इसमें महाराजों और नरों का कोई स्थान नहीं। सोलह वर्ष की अवधि में उर्कगी पदम सज्जकी बन गई है और औरगीनरी एक सामान्य। स्वप्न विचार के समय उर्कगी को छत्राई हुई अनाता बान्नी देती है। उर्कगी पानी पीती है। उसे दाह अनुभूति होने का भाव अनुभव होने लगता है। प्रतिहारों का प्रवेश, सुकन्या और आयु का प्रवेश अन्य नाट्य निर्देश है। आयु द्वारा पहिले उर्कगी को प्रणाम, फिर पुरुषा के को प्रणाम करना, पुरुषा द्वारा उर्कगी को हाथों से लगा लेना। अद्वैतपूर्ण नाट्य - निर्देश नहीं है। "उर्कगी का अद्वैत होना" हीन करने की बात नहीं थी यह अनाटकीय भी है। इसी प्रकार पुरुषा का आयु के अलग होना, मेघदूत में दो बार आता-जाता पुरुषा का निष्कर्मण और महाराजों औरगीनरी का प्रवेश, औरगीनरी का आयु को हृदय से लगाना मंच निर्देश के योग्य प्रतीत नहीं होता।

"उर्कगी गीति नाट्य में मंच प्रकृति का निर्देश नहीं मिलता है। गीति और नृत्याभिनय को प्रथम दो अंकों में तो स्थान मिला है --- प्रथम अंक में परिवर्तों के नृत्य में सम्यक्त भासन में और निरन्तर अंक में औरगीनरी के अंतिम गीत में ---, किन्तु अन्य अंकों में न तो गीत है और न ही नृत्याभिनय। प्रथम दो अंक तुलान्त अन्वों में और शेष तीन अंक अतुलान्त पदम में लिखे गये हैं अतः वेद काव्य का तो आनन्द देते हैं गीति नाट्य का नहीं। इसे संवाद-मध्य-नाटक के रूप में जाना चाहिये। रत्न शिखर, सोवर्ण जैसे गीति नाट्यों को श्री सुमित्रानन्दन पंत ने "नाटक न कह कर कगोपकथन प्रधान काव्य काव्य" का संज्ञा दी है।

दूसरी और रंग - सिल्वी की वीरेन्द्र नारायण सिंह ने उर्कगी के नवन के लिये कतिपय सूत्र तब भी लिखे हैं। उर्कगी में स्वप्न - सुकन्या की कथा गीति नाट्य की दृष्टि से अर्थ हीन है। "पुरुषा, उर्कगी, ऐल कर्कशायु, उसका जन्म, जालम पालन, राज्याभिषेक और सब अन्तः औरगीनरी का आयु के रूप में पुत्र पाकर राजमाता बनना, मेरे नाट्य प्रदर्शन का कथा सूत्र है। इस लिये नाट्य का अन्त भी मैं ने वहीं कर दिया है जहाँ औरगीनरी आयु को हाथों से लगा लेती है।" अप्सराओं के स्वर्गावतरण के समय सम्यक्त मान, नारी के विभिन्न रूप, पुरुष की वेदना, स्वर्ग-धरा का अन्तर इस गीति-नाट्य में स्थान हीन व अर्थ हीन है। अप्सराओं द्वारा उर्कगी और पुरुषा के प्रसंग के उपरान्त तीसरे अंक का उर्कगी - पुरुषा विकास चित्रण अधिक प्रभावशाली होता जहाँ पुरुषा कहता है:-

मैं तुम्हारे कक्ष पर और शीघ्र करना चाहता हूँ

औरगीनरी और पुरुषा की सम्मान कामना का दूर्य भी इसी के साथ मंचन किया जा सकता है। उर्कगी और पुरुषा का उर्कगीनरी संवरण करने की संवादात्मक प्रस्तुति "तत्त्वधार की धार है।" न तो इसे विकास अन्य स्थितियों में प्रस्तुत किया जा सकता है

और न तोड़ मरोड़ कर उसकी मूल भावना का सम्बन्ध ही नष्ट किया जा सकता है।

अन्त - सुकन्या/आख्यान एक स्वतंत्र कथा है और अन्त का जोरगीनरी - सुकन्या सम्बाद की अतिरिक्त प्रतीत होता है।

उर्दू की मूल रूप में एक रीति थी। दिनकर जी ने यह स्वरूप स्वीकार किया था। उन्होंने ने डा० राँगा से कहा था :-

"शायद आप का यह सोचना ठीक हो कि अकबूद होने के बदले काव्य यदि सर्गबद्ध हुआ होता तो मुझे 'स्वतंत्रता' अधिक रहती।" --- भुज्ज की मनोभूमि पृष्ठ १११

तीसरे अंक के पुरुषदा - उर्दू के ज लम्बे लम्बे सम्भाषणों ने नाटकीयता भंग की है जिस पर डा० देवी शर्मा अवस्था का मत है:-

"पढ़ते पढ़ते ऐसा लगता है कि सामने भावगोष्ठी जहर छड़छड़े रक्खा है और आगे सामने दो चोटियों पर उर्दू और पुरुषदा छड़े हो कर अपने अन्तिम विस्तार के चोंचों पर धारा प्रवाह ओती चले जा रहे हैं।"

यह नवीन दुर्लभ है।

०००००००००००

पात्र नेपथ्य

पात्र नेपथ्य का तात्पर्य है — पात्रों का तब विचारण, व्यञ्जककरण गति, गूढ़ार्थ, संवाद के साथ भाव भंगिमाएँ आदि। उर्दू में पात्रों की संख्या भी अधिक है। पुरुष पात्रों में प्रमुख महा राजा पुरुषा हैं और नारी पात्रों में उर्दूगी, जोसीनरी और सुकन्या। अप्सरायें केवल प्रथम अंक में जाती हैं और दोरे अंक में केवल निवृत्ति लेती। सुदमिका और निपुजिका दूसरे अंक में ही समाप्त हो जाती हैं।

कवि ने ऐसा मान लिया है कि वे विन्यास जका व्यञ्जककरण के लिए प्रकृत भावक तब्यं उत्पन्न कर देंगे कि पात्रों की वेष्ट भूषा क्या होगी चाहिये अतः कवि एक विन्यास के लिए मौन है।

पुरुषा महा राजा हैं, प्रतिष्ठा नगपुर उनके राज्य की राजधानी है, उसी की प्रतिष्ठा के अनुस्य राजा की भी वंश भूषा की भी सर्वप्रथम या यदि मंचन किया जाए तो राजा पुरुषा की क्या वेष्ट भूषा होगी इसका कोई निर्देश उर्दूगी में नहीं मिलता। राजा पुरुषा वीर, श्रमर और निर्दोष भाव से अनेक वीरों - स्तार में शीघ्र हैं। उस युग में राजा मुकुट धारण करते थे।

"प्रतिष्ठा नगपुर अस्मिन् है सङ्ग मुकुटों पे।"

अथवा

"नहीं कदां कभी हाथ पर के स्वाधीन मुकुट पर"

वीरियों से राज भूषा में मुकुट धारण किया जाता है था। यही मुकुट पुरुषा वायु के शीघ्र पर रख कर उसे राजा घोषित करते हैं। अन्यथा का विन्यास की कहीं और कोई चर्चा उर्दूगी में नहीं है। राजा हाथी पर सवारी करते थे, वनों में जाड़े जाबीद प्रमोद करते थे, रथों पर चढ़ कर युद्ध भूमि में जाते थे।

महर्षि एक च्यवन एक दधि हैं जिनकी वंश भूषा हम अपनी उत्पत्ति से सुचित करते हैं। वे भी च्यवन का सम्पूर्ण चरित्र सूच्य है प्रत्यक्ष नहीं। "वायु" भी दधिकूल का कुमार है अतः उसकी वेष्ट भूषा दधि कुमार के उपयुक्त ही होनी चाहिये।

उर्दूगी तबसी अप्सरा है जो मानवी बन कर पुरुषा की भार्या बनी। उसका तब की रति की मूर्ति रमा की प्रतिमा है। तबसी नारी तो संसार का सब से मनोहर चित्र है चित्त में पुरुषा की धीर सम्भीता की भी मध डाला है। जोसीनरी राजरानी

वा ता व र ण

उत्तरी काव्य में 'देवीय और पार्थिव वातावरण' का चित्रण हुआ है। देवीय वातावरण केवल सुख है जब कि पार्थिव वातावरण दुःख। उत्तरी के प्रथम अंक में देवीय जीवन, अपेक्षाएँ, अभिलाषाएँ, वर्णित हैं। पार्थिव वातावरण एक जीवनी शक्ति है जिसे मनुज भोग रहा है। पौराणिक आख्यान में वर्तमान का स्वर आरोपित वह एक अभिनय शक्ति रचना की गई है जिसे कुमार विमल के पाठ्यों में कहा जा सकता है।

"उत्तरी अथवा सुसुखा और पौराणिक ज्ञान पर इतना विचार करना कि उस के और तब जाति सम्बन्ध निकली निकली, व्यर्थ है। कारण, "हुम्बेल" के सुधीकरण और भीष्म की तरह की एक काव्य की उत्तरी और सुसुखा भी पौराणिक भाव की कही धारण किये हुए हैं। यहाँ तो जीवनी वातावरण के पुरुषा और उत्तरी हैं जो क्वास्तम सिद्धांत, लाइबेन्स की उत्तरीवाक अनसर्गिकता और प्रापेक्षिकवाद द्वारा निर्दिष्ट काल के बहुत आवागमिक तथ्य पर भी मोह सकते हैं।"

उत्तरी और पुरुषा सुतीय अंक में एक इस काल - चिन्तन का अलंकार कर लेते हैं।

उत्तरी के प्रथम अंक में सुसुखा और उत्तरी के माध्यम से एक स्वर्गिक सौन्दर्य का वातावरण निर्मित किया गया है जहाँ ज्योतिष्मता स्नात नीलाम्बर अपने समस्त दीपित सौन्दर्य से गगन वरुणा पर विरुद्ध करने में क्षिप्त है। वरुणा का प्रतीक अपने आप में पूर्ण है। इसी सौन्दर्य दीप्त अम्बर से अनुरागें सुष्मा मण्डित हो पृथ्वी पर पहुँच रही हैं। ये स्वर्ग लोक की ^{अनुरागें} अनुरागें, काम के भन की कामनाएँ हैं जो सुसुखा छोड़ कर हो गए हैं। इसके साथ ही स्वर्ग लोक और मृत्यु लोक की तुलना प्रारम्भ हो जाती है, किन्तु सत्य यह है कि देव लोक और मृत्यु लोक दोनों ही अपूर्ण हैं, अभाव ग्रस्त हैं। दोनों ही अपने अपने में भोग पूर्ण भी हैं। कौन सा लोक क्रेतु है नहीं कहा जा सकता है। एक कामना ही है जो मृत्यु लोक से देव लोक तक ले जाती है और देवताओं को भी तन धारण करने के लिये धरणी पर ले आती है। यह कामना ही प्रजल है।

अपसरायें परस्पर बोहिकद हँसते विवाद करती हैं --- देव लोक अमर है, देवता मध्यायी हैं, उसके जाने वे नहीं जा सकते। मनुज में छेद बिजलीका है, वह छेद छेद कर जीता है, उस में कैवानर है, वह इन्द्रिय जनिता भोग को पार्थिव से पा कर जीता है। मनुज प्रेम समर्पित जीवन का भोग करता है, सुख और दुख की मायकता और दुःखता को पहचानता है। धरती पर प्रेम - साम्राज्य किसी भी स्वर्गिक आनन्द से बड़ा है। धरणि पर जीवन की सर्वकता है।

उत्तरी के दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें अंक में पार्थिव वातावरण का ही चित्रांकन है। महारानी जीगीनरी अपने राज प्रासाद में समस्त देवदर्य - भोग करती है।

परन्तु उसका प्रति महाराजा पुरखा उर्वरी के प्रथम भाग में आया है, इसे उसका नारीत्व स्वीकार नहीं करता। यही समस्या तो आज के युग की है तब पुरुष परन्तु - प्रिय वन कर अपनी आस्था पत्नी की अवहेलना करने लगा है। तिस्रो नारी जीवन की वर्तमान व्याधा को कवि ने पौराणिक परिवेश दे कर इसे आतावरण की दृष्टि की है वह आज के सामाजिक व्यवहार में प्रत्यक्ष है।

तीसरे अंक में कवि दिनकर ने प्रकृति मूलक भोग प्रधान संगम को उर्वरी और पुरखा के साध्यम से अभिव्यक्त किया है। उर्वरी का तीसरा अंक ही मुख्य है। जिसके पात्र मनुष्य के दर्श, बेचैनी, कामना, और उद्वेग का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रेम का आदेश, आस्था का उद्घाटन, आदेश, शारीरिक सम्भोग, आलिंगन, धूमन, परिवर्तन का विरोधी उद्घाटन, जीवन - पाण्डु की दीप्ति, रक्त - क्षुब्ध का आकर्षण, - प्रिय वन आदि अनेक ऐसे आशय हैं जो मुख्य रूप से पारिषद हैं और वास्तव में आदेश में मुख्य क्षुब्ध - विवेक को ही कहते हैं। और फिर काम में आश्चर्य को दृष्टि, समय का चतुर्थ आशय, वैदिक से वैदिक आतावरण की निर्मिति एक नवीन दृष्टि है।

"प्रेम यदि है किञ्चित् और तब भेटाभिषिक्त होता है।"

यही दिनकर की मान्यता है और यही चिन्तन ही उर्वरी का तृतीय अंक है जिसे कवि ने आतावरण कहा है। उर्वरी: प्रेम की यही नारीरिक्ता है कारण पुरखा ने प्रारम्भ में उर्वरी को देव - रूप के भाव से देखा है मुख्यतः देव स्वरूप पर।

सन्तानादन पर्व पर प्रकृति का जीवन से स्पर्श देव - भाव को और भी आकर्षक बनाने में समर्थ रहा है। जो कि उर्वरी, रक्त, सुख और जीवन सौन्दर्य की प्रत्यक्षता आज के युग की सामाजिक भूया है जहाँ प्रेम का प्रारम्भ होता है/प्राप्त पर्याप्तान राश्री - सुख के आशय में ही होता है जिसे हम उर्वरी के पारिषदों में पाते हैं।

उर्वरी के चौथे अंक में पारिषद - जीवन का आतावरण है। सुकथा चयन की कथा एक सम्पूर्ण युद्ध के सामाजिक - पूर्ण जीवन की कथा है। यह एक सामाजिक आदर्श है। वर्तमान नारियों की भाति नारी - स्वातंत्र्य के दम्भ से पर - पुरुष समाज का ^{केवल} विवेक मूलक एवं दृष्टि है --- सुकथा यही विवेक चित्र तैयार की देती है:-

मसी नित्ये उर्वरी पूँ सब सक हरण भरा वषट्क है
किन्हीं एक के संग साँझ लो वार निश्चित जीवन के
म तो एक दिन सब हो गा जब मल्लि मान लीगों पर
क्षण भर को भी किसी पुरुष की दृष्टि नहीं विरमेगी

गृहस्थ जीवन, पति - पत्नी, का एक निष्ठावान भाव, परस्पर प्रेम और विश्वास, जीवन - संरक्षण का आधार और दाम्पत्य आदर्श का वातावरण आज के समाज के लिये विशेष कर महा नगरीय संस्कृति के लिये, एक संदेश है।

उर्दू की 'चाँचवाँ अंक नाट्य' - कला की दृष्टि से संपन्न कहा जा सकता है। राज दरबार के अभिजात्य का यह एक अच्छा उदाहरण है। स्वप्न और स्वप्न - कला आज की फ्राइड जादी मनोवैज्ञानिक वृत्ति का चित्रण है। बौद्धान्तिक आधार पर उर्दू की अन्तर्धान होना महत्वपूर्ण नहीं है महत्वपूर्ण है प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर आध्यात्मिक बनना चाहिये। उर्दू और पुरुष का राज्य - त्याग एक उदात्त आदर्श है। औरंगजेब का राजमाता बनना निर्वर्णित सीता का राज प्रवेश है। औरंगजेब जो स्वयं माता नहीं बन सकी वह राज माता के पद से सन्तुष्ट हो गई है।

दिनकर ने कथा को सुखान्त बनाने के लिये कोई आरौपित छेड़ छेड़ नहीं की है। भारत के शाप को यथावत् रख कर, जैसे ही पुरुषा अपने पुत्र को देखेगा, उर्दू की हनु लोक चली जायेगी, उसे पुरुषा का योग्य हो गा। और इस प्रकार दिनकर का यह काव्य व्योगान्त कहा जायेगा जिससे काव्य की प्रभावोत्पादकता और बढ़ गई है। यही वैदिक सत्य है:-

पुरुषतः । पुनरस्तं परेहि, दुरायमा वात इवाहमस्मि ।

००००००००००००

संकलन त्रय का निबन्ध

संकलन त्रय का सिद्धान्त जरतू के काव्य - शास्त्र में वर्णित है। जरतू ने नाटक में कार्य, स्थान और समय की अन्विष्टि पर बल दिया है। कार्य - संकलन पर विशेष बल देते हुए जरतू का मत था कि नाटक में केवल उन्हीं घटनाओं और कार्यों का वर्णन होना चाहिए जिन्हें जो प्रमुख घटना की पोज़क हों। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये काल और स्थान का भी परीक्ष रूप से महत्व है। यह कार्य - संकलन घटनाओं के कार्य-कारण सम्बन्ध में और एक लक्ष्य की पूर्ति के निबन्ध में सम्पन्न होता है।

स्थान संकलन से तात्पर्य है कि कार्य - व्यापारों को ऐसे स्थान पर नियोजित किया जाय जहाँ पर निर्विष्ट समय में नाटक के सभी पात्र अपने व्यापारों के प्रदर्शन में समर्थ हो सकें।

समय संकलन से जरतू का तात्पर्य था कि नाटक की घटनायें सूर्य के एक संक्रमण में पूरी हो जाए। इस का अर्थ विद्वानों ने 12 घंटे से 30 घंटे तक लगाया है।

उर्बेगी में कार्य - व्यापार प्रतिष्ठानपुर, गंध मादन पर्वत और च्यवन वागम में सम्पादित किए गए हैं। इन तीन स्थानों को प्रस्तुत करने के लिये मंच पर तीन ठीक-ठीक विभिन्न प्रकार के मंच की स्थापना करनी पड़ेगी। प्रतिष्ठानपुर में अप्सराओं का अक्षरण, नृत्य, सम्वाद, गीत, और तृतीय अंक में राज प्रासाद में जोशीनरी का क्षोभ प्रदर्शित है। गीत - नृत्यादि से सम्बन्धित इन दो अंकों में कार्य - व्यापार गतिशील है। तृतीय अंक की प्ररचना गंध मादन पर्वत पर विचार ६ वन में है जहाँ पुरुषा - उर्बेगी कामानन्द में मग्न हैं और जोषिदक विचार मग्न करते हैं। काम कला के दुरय --- आलिंगन सम्बन्ध, परिष्कृत आदि मुख पर प्रस्तुत करना हमारी सांस्कृतिक अपेक्षाओं के विपरीत है। यह अंक कार्य व्यापार की दृष्टि से स्थिर है। इसी प्रकार चतुर्थ अंक में सुकन्या - चित्र लेखी सम्वाद गृहस्थ जीवन के उपदेशों का प्रबन्ध है। उर्बेगी के प्रवेश से विनिश्चित नाटकीयता प्रस्तुत ही जाती है। पाँचवें अंक में कार्य व्यापार में गतिशीलता, भावाभिव्यक्ति और नाटकीयता अपेक्षाकृत नादानुकूल है।

स्थान की दृष्टि से दूसरे अंक का राज प्रासाद राज सभा के रूप में पाँचवें अंक में प्रस्तुत है। अन्यथा मुख रचना में प्रतिष्ठानपुर का उद्यान, राज भवन, गंध मादन, च्यवनाश्रम, और राज सभामें पाँच स्थल हैं जो पाँच अंकों की सज्जा पूरी करते हैं। राज की मुख रचना में यह कार्य कठिन है नहीं है। अतएव मुख रचना में स्थान एक ही राज्य के मुख्य केन्द्र पर ^{आदि} केंद्रित है। "प्रासाद" के नाटकों की भाँति दूरस्थ स्थानों पर घटनाएँ घटित नहीं हैं।

समय संकलन की दृष्टि से सोलह वर्ष की छटनाओं को उपयुक्त पाँच स्थानों पर छिटित किया गया है जिस में एक वर्ष की अवधि गंध मादन पर कटी है शेष पन्द्रह वर्ष चौथे और पाँचवें अंक में व्यतीत हुए हैं परन्तु पन्द्रह वर्ष के काल का निरूपण कवि ने केवल च्यवन - सुकन्या - चित्र लेखा - उत्कर्षी के गृहस्थ सम्वादों में शीघ्र ही काट दिया है जिस में एक व्यतीत प्रतीत नहीं होती। चौथे अंक में भी उत्कर्षी केवल शिशु को हृदय से लगाती है। इस समय - अवधि के लिये कुछ छन्दों की और आवश्यकता थी जिसे आयु के विकास का पता लगता। केवल स्वप्न में ही आयु को सोलह वर्षों का मान लेना और तत्काल ही उस का वर्ति नाटकीयता से व्यजिहीन है। कालिदास ने भी भारत के विकास में शेर के दाँत गिनने के प्रसंग को डाल कर आयु बोध कराया है। उत्कर्षी नीति नाट्य को अधिक से अधिक दो छ छी तीस मिनट में अभिनीत किया जा सकता है। यही उसकी सफलता है।

००००००००००

अभिनय कौशल

अभिनय ही नाटक की प्राण कृत विशेषता है। नाटक का अर्थ ही अनुकृति या अभिनय है। अभिनय सामाजिक चित्ताकर्षण की समुच्चैः दृष्टि से आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक चार प्रकार का कलासाया गया है। अंग संचालन, गीत - सम्वाद आदि को भूषण और सज्जा और अनुभाव अन्य स्वेद, स्तम्भ, रोमांचादि की ही अभिव्यक्ति इन चारों प्रकारों को संयोजित और अभिव्यक्त करती है।

अभिनय कौशल नाट्य रचना और रंग - शिल्प पर निर्भर रहता है। नाट्य रचना में रूप, आकार, दृश्य विभाजन, रस साधारणीकरण, क्रिया व्यापार अनुभावों और सात्त्विक भावों का प्रकाशन, कथोपकथन सौष्ठव, गीत व नृत्य, भाषा और वर्ण्य दृश्यों की अनुकृति आती है। रंग - शिल्प में मंच सज्जा, उपयुक्त आलेखन, परिधान, अलंकरण, प्रकाश, ध्वनि, प्रेक्षागृह, तथा नाटक में रंग - निर्देश आकाशिक है।

उर्वर्गी में केवल पाँच अंक हैं --- दृश्य है ही नहीं। अतः नाट्य रचना में अनाकाशिक विस्तार नहीं है। अंगार रस में निहित यह गीति नाट्य आकर्षक और प्रेक्षकों की मनोकलता में ही रहित है। पहिले ही अंक में सुत्रधार और नटी के प्रवेश से रोचकता बढ़ जाती है। तथा अप्सराओं के नृत्य और उसी स्वरों में गीत - गायन इसे और अधिक प्रभावशाली बना देता है। तृतीय अंक की बोद्धिक तार्किकता इसे साधारणीकृत नहीं होने देती। वस्तुतः यह गीत नाट्य है भी साहित्यिक सौच सम्पन्न, भाषा विद बोद्धिक सामाजिकों के लिये। क्रिया व्यापार मन्द मन्द गति से चलते हैं अतः प्रेक्षकों का धैर्य परीक्षण हो जाता है किन्तु उसकी बोद्धिकता कुछ जगों को बाँधे रहती है। कथोपकथन की दृष्टि से उर्वर्गी नाटक में केवल पुरुषा और उर्वर्गी के समूह वक्तव्यों या सम्भाषणों के अतिरिक्त, उसकी प्रभावशीलता को सर्व सम्मत स्वीकार जाना चाहिये। गीत - नाट्य के रूप में प्रारम्भ उसके तीसरे अंक से गीत गीत और नृत्य दोनों ही विस्तृत कर दिए गए प्रतीत छिछी होते हैं। सम्भवतः विवक्षा प्राप्त विनकर इसे प्रारम्भ करते समय तो गीत - नाट्य की कल्पना कर सके थे पर बाद में अपने कवि को नाटक ठार से मिला कर प्रस्तुत नहीं कर पाए। भाषा की दृष्टि से भी काव्य नाटक केवल बोद्धिक और साहित्यिकों के ही लिये है। यहाँ तक कि काम कला का वर्ण्य रूप भी यही भाषा के आवरण में प्रस्तुत किया गया है कि इस में आसीलता नहीं आती:-

कैसे रहो कस इसी ककड़ भाँति, डर - पीड़ेक आलिंगन में
 और जलाते रहो अधर - घुट को कठोर चुम्बन से
 किन्तु, आह! यों नहीं, तनिक तो विधिल करो बाहों को
 निष्पेक्षित मल करो, यद्यपि इस मधु निष्पेक्षण में भी
 मर्यान्तक है शान्ति और आनन्द एक दास्य है ।
 तुम पर्यंत में लता, तुम्हारी कलकर साहों में
 विचल, रस - आकुलि, क्षम में मूर्छित हो जाऊँगी
 ना यों नहीं, ----- ।

रंग निर्देशन में भी मूच सज्जा के निर्देशों का अभाव है। जिसका प्रभाव अभिनय पर अत्यन्त बड़ा है। पात्रों का प्रवेश किस प्रकार हो, गीत - वाद्य - नृत्य आदि की कदा पर आवश्यकता है, पात्रों के विकास का निर्देश तथा विभिन्न भाव - मुद्राओं में वाद्य के स्वर आदि के विचार में कवि मौन है। पात्रों के परिवर्तन और अलंकरण के विषय में केवल कल्पना करना पड़ती है---उत्की का वस्त्राभरण केसा बोसा, औशीनरी की वैज सज्जा और सुकन्या का शुभ वस्त्रा होना आदि अभिनय, रस और साधारणीकरण में सहायक होते हैं। इस निर्देश का अभाव छटकता है। प्रकाश - व्यवस्था, विभिन्न रंगों के द्वारा प्रकाश से उत्पन्न राग, विराग, क्रोध, प्रेम, वात्स अभिजाजा, उत्साह, डर, निराशा आदि भावों को अभिनय शक्ति मिलती है। तथा प्रेक्षकों को भी तदनुकूल अपनी साधारणीकृत दृष्टि में आना पड़ता है। इस प्रकार के निर्देशों का भी अभाव उत्की में है। इसी प्रकार ध्वनियाँ भी हमारे मनोभावों को प्रभावित करती हैं कि दिनकर के अन्य गीति - नादय ---- हिमालय का सन्देश, या मधु मधिसा में प्राप्त होती है।

000000000000

काव्य और नाटक का समन्वय

एक सप्त गीति

नाट्य

0000000000

उर्दू की एक रूप काव्य है। नाटक शैली में रचित होने तथा गीति भ्रम होने से इसे गीति नाट्य कहा जाता है। उर्दू में नाटक के सभी लक्षण हैं। इस का नायक वेद पुराणों में प्रसिद्ध एक प्रतापी तथा ज्योतिषज्ञ राजर्षि है। अंगार रस और पाँच अंकों के क्लेश में यह नाटक अधिकारिक कथा का प्रणयन करता है। डा० नगेन्द्र, चबारी प्रसाद विद्वेदी जैसे विद्वानों ने भी इसे गीति नाट्य माना है। श्री आर० के० कपूर ने इसे एक अद्भुत एवं श्रेष्ठ कृति माना है। गीति नाट्य के गुण इस काव्य में विद्यमान हैं। जिन्हें स्तिम में देखा जा सकता है:-

1:- यह काव्य पाँच अंकों में, सामान्य दृश्य निर्देश सहित, विभाजित है। इस काव्य में प्राचीन शैली के अनुसृत सूत्रधार और नटी का प्रवेश है।

2:- नाट्य में पात्रों का प्रवेश और प्रस्थान भी वर्णित है। अप्सराओं का उतरना, चित्र लेखा का आ पहुँचना, केंदुकी का प्रवेश, अप्सराओं का गाते गाते आकाश में विलीन होना, उर्दू की व चित्र लेखा का प्रस्थान आदि नाटकीय निर्देश भी उपलब्ध हैं।

3:- आकाश भाषित के रूप में चन्द्र कुल के प्रारम्भ की ध्वनि है।

4:- रंग मंच स्थापना यथा एक ओर से पृष्ठभागा का निःक्रमण और दूसरी ओर से महारानी और गीतरी का प्रवेश भी नाटकीय तत्त्व है।

5:- नाटकीय स्तर --- कथा वस्तु, यस्तु, पात्र, चरित्र चित्रण, कथोपकथन, संकलन श्रम, शैली शैली और उद्देश्य रस आदि का पूर्ण परिपाक है।

उपर्युक्त स्तरों सहित सम्पूर्ण ग्रन्थ जिस गीति - शैली में लिखित है उस से इसके गीति-नाट्य कहने में पूर्ण औचित्य है।

उर्दू में महाकाव्यत्व के भी लक्षण हैं। यदि प्रेक्षकों को कामायनी के पाठकों की भाँति, जीवितक वर्ण का मान कर चले, जैसा कि कवि का मन्तव्य भी रहा हो भा तो उर्दू की साधारणीकरण के आधार पर एक रस निरुद्ध काव्य है। अनेक विचारकों ने इसे नाटक शैली का महा काव्य कहा है भी है। यहाँ तक संगीत का प्रयत्न है नाटक में

उसे शिथिल होना हीमज़ता है। मेयता के भाव को यदि छोड़ दें तो उर्वशी काव्य में गरीलाहमकता के भाव का अभाव नहीं है। नाटकीय सम्बोधन के प्रयोग में मेयता को स स्थान नहीं दिया जा सकता। इस दृष्टि से उर्वशी को नाटकीयता बिना किसी पुरन के चिन्ह के स्वीकारी जानी चाहिये। भाषा, रस, उदात्त चरित्र, अलंकार और उद्देश्य की प्राप्ति कामाध्यात्म की दृष्टि से उर्वशी का ऊँचेर महा काव्य के ही योग्य है।

उर्वशी विवेचन का उद्देश्य यही है कि महा काव्य के आयामों में निधारित और गीति-नादय शैली में प्रस्तुत उर्वशी एक सफल गीति नादय है।

0000000000000000

अध्याय छः
उर्वशी में
संस्कृति निरूपण

देव संस्कृति
दैत्य संस्कृति
मानव संस्कृति
व्यक्ति एवं समाज परक
उर्वशी में भारतीय संस्कृति का निरूपण
भौतिक स्वरूप
आध्यात्मिक स्वरूप
उर्वशी में लौकिक और सामाजिक संस्थाएँ
स्वर्ग लोक
भू लोक
(परिवार, विवाह, राज्य और आश्रम संस्थाएँ)
उर्वशी में एषणायें
लोकेषणा
दित्तेषणा
पुत्रेषणा

उर्कगी में संस्कृति निस्सर्जन

उर्कगी में देव, दैत्य और मनुज संस्कृति का निस्सर्जन हुआ है। किन्तु, न तो देव - संस्कृति और न दैत्य संस्कृति का ही पूर्ण विवरण उर्कगी में चित्रित है, यत्र तत्र कतिपय गुण - लक्षणों अथवा प्रसंग सन्दर्भों में यद्विर्कीर्त उल्लेख से इन संस्कृतियों का आभास होता है।

ऋषय प्रजापति से अदिति से देव, दिति से दैत्य और दिनु से दानव उत्पन्न हुये।^१ देव संस्कृति का संक्षिप्त परिचय उर्कगी, मेनका, रम्भा आदि अप्सराओं के चरित्र से पता लगता है, दैत्य संस्कृति की झलक उर्कगी के अपहरण कर्ता दैत्य के चरित्र से और मानव-समाज का ज्ञान हमें पुरुषा - जोशीनरी - सुकन्या तथा अन्य प्रजा जनों से प्राप्त होता है।

देव संस्कृति:-

उर्कगी में देव - संस्कृति विषयक तथ्य प्रथम और चतुर्थ अंक में प्राप्त होता है। नटी ने आकाश - लोक से उतरने वाली अप्सराओं के विषय में कहा है:-

"कलकल करती हुई सलिल - सी गाती घूम मचाती
अम्बर से ये कौन कनक प्रतिमायें उतर रही हैं।"

ये वाष्पमय शरीर धारी अप्सरायें रूप कती होती थीं, चाहे जहाँ भ्रमण कर सकती थीं तथा उनके देवता इन्द्रकुबेर वरुण होते थे जिन के राज दरबारों में ये नृत्य-गीत आदि से उनका मन मोहती थीं। ये ही अप्सरायें "पृथ्वी पर जा पहुँची सुषुमायें अम्बर की।" इन सुषुमा युक्त अप्सराओं का जीवन सदा सुरमि रहने वाला है:-

जब-तक खिलते फूल, वायु ले कर सुगन्ध फैलती है
छिली रहूँगी मैं, शरीर में सौरभ यही रहेगी।

उप 4/103

चित्र लेखों के इस कथन की पुष्टि सुकन्या भी करती है:-

सो केवल इस लिये कि तुम अप्सरा, सिद्ध नारी हो
विगलित कभी कहाँ होता यौवन तुम अप्सरियों का¹

उ० 4/104

ये अप्सरायें देवताओं की क्लान्ति को अपने मंदिर नयनों से हर लेती हैं। देवता अमर हैं अतः अमर - लोक वासी हैं।¹ यह सुर लोक भी अमर है। इन देवताओं का शरीर अमिट, स्निग्ध, निर्धूल - शिखा समान प्रभावान है।² देवता केवल गन्ध पायी हैं, रस भोगी नहीं। देवता गन्धों की सीमा से आगे नहीं जा सकते।³ वे रूप भोगी हैं, केवल मन से अथवा तृष्णा भरे नयन से। श्रवण से केवल स्वर-माधुरी का ध्यान कर तृप्ति अनुभव करते हैं। अर्थात् जो ज्ञानेन्द्रियाँ हैं देवता उनका भोग न कर उदासीनता से लालायित रहते हैं। उन्हें केवल समीर-सौरभ का ध्यान ही निर्दिष्ट है:-

ये रूपवती अप्सरायें सामान्या होती हैं और कभी कभी वीर, पराक्रमी, सुन्दर, रूपवान नरों पर मुग्ध हो कर उन की भायर्थि बन जाती थीं, मानस की संततियों को जन्म देती थीं, यद्यपि उनका लालन पालन नहीं करती थीं। मेनका-किशकिमित्र की पुत्री शकुन्तला, उर्वशी - पुलस्त्य पुत्र आयु, उपरिचर - अद्रिका से मत्स्यगन्धा⁴, किशक्य - मेनका से प्रभञ्जरा आदि अनेक पुत्र पुत्रियाँ अप्सराओं की मनुष्य पालित सन्तति हैं।

अमर लोक में अभिस्वार होता था। चित्र लेखी उर्वशी को अभिस्वार के लिये राजा पुलस्त्य के उद्यान में भेज आई थी। इन अप्सराओं में परस्पर स्नेह होता था और ये विलासिनी भी होती थीं। त्रेम उन अप्सराओं की झीड़ा मात्र है। नृत्य, गीत, वाद्य आदि इनके आनन्द साधन हैं। उन्हें उर्वशी के सुरपुर छोड़ कर जाने का भी श्रौभ है। समस्त संगीतादि श्रौ विहीन हो जाने की आर्त्ता है:-

ये सुर भी मोन पड़े हैं, निरानन्द सुरपुर है
देव सभा में लहर लास्य की अब वह नहीं मधुर है
क्या होगा, उर्वशी छोड़ जब हमें चली जायेगी⁵

उ० 1/14

इस से प्रतीत होता है कि इन्द्र लोक में ललित कलाओं की समृद्धि थी। कुवेरादि शीर्ष देव गण संगीतादि से सम्मन थे:-

हम तो हैं अप्सरा, पवन में मुक्त विहरने वाली
गीत-नाद, सौरभ - सुवास से सब को भरने वाली।

1:- उर्वशी: 1/7

2:- वही: 1/10

3:- वही: 1/11

इन अप्सराओं के मुक्त भोग को मानवी कभी स्वीकार नहीं करती इसीलिए औशीनरी ने इन्हें गणिका, अधम, पापिनी, प्रवीचकार्ये, व्याधिनिघो और स स्वर्गमा जैसे अप शब्द कह दिये हैं जो केवल मानवी अनुभूति हैं।

कभी कभी देवताओं को भी मानव-वीर-पुंगवों की सहायता की भी आवश्यकता होती थी ताकि वे दानों मिल कर दैत्यों का सामना कर सकें। पुरुरवा ने अपने पौत्र - उद्घोष में देवताओं की शारीरिक क्षीणता को प्रकट किया है:-

भूल गये देवता, ^{भूल} भूल शक्तता, अम्ल अमुरों की,
कितनी बार उन्हें मैंने रण में जय दिलवाई है।

उ० 5/139

किन्तु, यह सब दुर लोक नहीं है और न ही देव - वृद्ध संस्कृति के समस्त लक्षण। इस से केवल देव लोक की अप्सराओं की के चिर-यौवन-सौन्दर्य, देवों के गन्ध पायी (पुराण में) प्राप्त पायी विलास मग्न गीत-संगीत प्रेमी और तन से क्षीण - बल होने का आभास मात्र मिलता है। इसे संस्कृति का पूर्ण विवेचन नहीं कह सकते।

दैत्य संस्कृति:-

अथप्रजापति की पत्नी दिति से दैत्य हुए। ये बड़े जीर, पराक्रमी और क उद्धत होते थे। अपने पौत्र से किसी भी सुन्दरी का अपहरण कर लेना उनके लिये सरल था। ये मनुष्यों से अबध्य तथा देवों से दुर्जेय थे। देवासुर संग्राम में भी इनका विनाश नहीं हो

सका था। ये भी विविध रूप धारण करने की क्षमता रखते थे तथा देवों की ही भाँति राज - दरबार लगा कर रहते थे। नारी उनकी दुर्बलता थी और सुन्दरियों का अपहरण कर लेना उन्हें सरल था। उर्वशी जब कुबेर के सहा से लौट रही थी तभी दैत्य केशी ने उसका मार्ग में ही अपहरण कर लिया था:-

नहीं जानती हो कि एक दिन हम कुबेर के घर से
लौट रही थीं जब, हतने में एक दैत्य ऊपर से
टूटा सुब्ध स्येन-सा हमको त्रास अपरिमित दे कर
और तुरन्त उड़ गया उर्वशी को बाइलों में ले कर।

उ० 1/12

इसी अप्रकृत उर्वशी को राजा पुरुरवा ने बचाया था। इस से अधिक दैत्य संस्कृति के विषय में उर्वशी में कुछ नहीं मिलता। शायद हतने से अधिक दैत्य संस्कृति के विषय में कोई नहीं जानता।

मानव संस्कृति:-

क--- व्यक्ति परक दृष्टि

उर्करी में मानवी संस्कृति कुछ व्यापक रूप में चित्रित की गई है। यद्यपि पूर्ण मानव - संस्कृति यह भी नहीं कही जा सकती। विचार दृष्टि से मानव समाज की राज कुल जीवन पद्धति और राज कुल की आश्रम - पद्धति का विचार ही उर्करी काव्य का में किया गया है जिस के सहारे सामाजिक नैतिक मूल्यों की स्थापना की गई है। व्यापक समाज की विभिन्न समस्याओं और उनके निराकरण का इस काव्य में स्थान नहीं है और हो भी नहीं सकता था। नारी जीवन की समस्या का विवरण इस में अव्यक्त चित्रित किया गया है। व्यक्ति परक संस्कृति का यह एक परिचय है जो निम्न लिखित दो भागों में वर्णित है:-

1:- राज कुल का जीवन

2:- अजि कुल का जीवन

1:- राज कुल का जीवन:-

राज कुल में महाराजा पुरुरवा, महारानी औरीनरी, महामात्य, विवमना, सभासद, कंधुकी, और निपुणिका - भद्रनिका आदि सखियाँ - दासियाँ हैं। महाराज पुरुरवा एक वीर, धर्माचारी, और प्रजा पालक जन - स्वामी हैं। वे रूपवान और लम्बे मनो मुख कारी, ज्ञानी, तेजवन्त, प्रतापी, मानी, दानवीर, और त्यागी धीर - वीर पुरुष हैं --- निपुणिका का कथन है:-

कार्तिकेय सम शूर, देवताओं के गुरु - सम ज्ञानी

रवि - सम तेजवन्त सुरपति के सदृश प्रतापी मानी,

छन्द - सदृश संग्रही, व्योमक्त् मुक्त, जलद - निभ त्यागी

कुसुम सदृश मधुमय, मनोज्ञ, कुसुमायुध से अनुरागी।

उच 2/35

ऐसे वीर नर - पुरुष के लिये भला कौन नारी समर्पित न होगी? औरीनरी तो उसकी पत्नी ही है, उर्करी जैसी अप्सरा भी उसके चरणों पर अर्पित हो गई।

यह वही राजा पुरुरवा है जिन्होंने दैत्य केरी के हाथों से अपकृता उर्करी का विमोचन किया है। यही उर्करी उन की प्रणयनी बनी। यही उर्करी महाराज पुरुरवा के रूप - वीरत्व से अभिभूत हो 'गिरिमल्लिका लता' के समान उनके वक्ष स्थल में 'सुख - संभार - नता' हो समा गई थी।

महाराजा पुरुरवा को अपने पौत्र पर गर्व भी है --- वे यह नहीं झुके हैं कि वे मानव हैं तथापि वे आकाश पर भी शासन करते हैं:-

मर्त्य मानव को विजय का सूर्य हूँ मैं
उर्वी अपने समय का सूर्य हूँ मैं
अन्ध तम के भाल पर पावक जलाता हूँ
बादलों के शीस पर स्य/न्दन चलाता हूँ।

उ० ३/५०

राजा पुरुरवा ने किसी के दूसरे के स्वत्व को नहीं मिटाया है। उनका प्रतिष्ठान्तर इसी लिये वन्दना - योग्य है कि उन्होंने ने किसी की धरती पर हाथ नहीं बढ़ाया है और न किसी को हत - विरोध किया है:-

नहीं बढ़ाया कभी हाथ पर के स्वाधीन मुकुट पर
न तो किया संशय कभी पर की वसुधा हरने को।

निष्कर्ष यह कि राजा स्वेच्छा चारी नहीं होते थे, अत्याचारी नहीं थे। वे प्रजा - पालक, धीर - वीर - गम्भीर होते थे।

दूसरी ओर राजा जोखित^{अनुरागी} और रसिक होते हुये भी अपनी पत्नी का अपमान नहीं करते थे। यद्यपि औशीनरी ने उर्वी को बहुत अनेक अप शब्द कहे हैं तथापि --- पाँचवें अंक में वही राजा पुरुरवा के गुण गान करती है:-

महाराज, कितने उदार, कितने मृदु, ^{भूषण} ~~भी-प्रणय~~ थे
मुझ अभागिनी को उनने कितना सम्मान दिया था।

उ० ५/१४९

राजा में कौकुलाभिमान होना स्वाभाविक है। राजा पुरुरवा भी पुत्र के लिये व्याकुल हैं और उर्वी-पुत्र आयु को अपने समक्ष देख कर उनका उत्साह इस लिये बढ़ गया कि उनके राज्य का उत्तराधिकारी उन्हें प्राप्त हो गया है:-

पुत्र । देवि। मैं पुत्रवान हूँ' यह अपत्य मेरा है ।
जनम चुका मेरा भी ब्राता पुं नाम नरक से ।

.....

यल को के महा मंच पर नया सूर्य निकला है

और राजा पुरुरवा इसी आयु को राज-मुकुट पहिना कर पुत्रव्या ग्रहण करते कहें:-

ऐल को का मुकुट आयु के मस्तक पर धरता हूँ ।

उपयुक्त विवरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि राजा धर्माचरण में अनुरक्त वीर पराक्रमी और प्रजावत्सल थे।

राज दरबार में गुणज होते थे। महामात्य और सभासद राजा को सत्कारार्थ देते थे। महामात्य का उत्तरदायित्व बड़ा छोटा था। वह राजा के शीम, ओष, और आकाशियों का क्लेशक होता था। विवमना राज दरबार के देवत - ज्योतिषी थे जिन्होंने ने स्वप्न विचार कर राजा के पुत्रव्या -योग की सूत्र किया था।

राजा के पारिवारिक जीवन के क्षेत्र में महारानी औरानीरानी स्त्री एवं पतिव्रता की मर्यादा का महत्व जानती है। वह मन की कसक को मन ही मन में दबा कर रोहिणी - चन्द्रमा के अनुरागी जीवन दिवास पर तल सकती है। वह जीवन में पति और दूधदायका में पुत्र के अधीन है। वह अदृष्ट मातृत्व भाव रखती है साथ ही में प्रजा पालन के लिये राज्य दायित्व भी संभालती है। औरानीरानी आदर्श भारतीय नारी जीवन की प्रतिभूति है।

2:- राज कुल का जीवन:-

महर्षि च्यवन आश्रम वासी वानप्रस्थी हैं। उनका जीवन तपोनिष्ठा का जीवन है। वे ऐसे महर्षि हैं जिन्हें प्रसन्न सुकन्या जैसी राज पुत्री अपने भर्ता के रूप में ग्रहण कर सकती है। वे वस्तुतः योग-तपश्चर्या, अलौकिक आनन्द और अर्द्ध गामी संवरण के प्रतिनिधि हैं। वे उदार और प्रेम भरे हैं और नारियों पर उनकी अगाध श्रद्धा है।

आशु एक मातृ-पितृ-भक्त आज्ञाकारी पुत्र है जिस ने भाता उर्वशी धातु सुकन्या और विमाता औरानीरानी का स्नेह प्राप्त किया है।

उपर्युक्त विवरण से यह भी स्पष्ट होता है कि उस काल में वर्णाश्रम व्यवस्था समाज में प्रचलित थी।

ख:- सामाजिक दृष्टि

समाज के स्तर पर उर्वशी में एक राज कुल की कथा की समाज परक स्थिति का अवलोकन करना भी अभीष्ट है। समाज में राजा और प्रजा के सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ होते हैं। जिस प्रतिष्ठानपुर के राज्य में राजा पुरूरवा यज्ञादि के अनुष्ठान में लगे रहते हैं, वहाँ सामाजिक जीवन शान्ति पूर्ण व्यतीत होता है। पुरूरवा एक नैतिक मूल्यों के व्यक्ति हैं अतः उनके राज्य में भी नैतिकता का प्रसार है। प्रश्न है कि राजा पुरूरवा फिर क्यों उर्वशी की ओर आकर्षित हो कर व अपनी राज रानी औरानीरानी के प्रति तल ददम का व्यवहार करते हैं। उत्तर सरल है। उस युग में समाज में बहु पत्नी प्रथा का प्रचलन होना प्रतीत होता है। वहाँ एक "नया बौद्ध शीमन्त प्रेम का करते ही रहते हैं।" परन्तु इतने पर भी, समाज में मातृत्व और नारीत्व की महत्ता बनी हुई है। अतएव उत्पीड़ित नारी की सुरक्षा का दायित्व तो राजा पर भी है। उर्वशी रक्षा स्वयं राजा पुरूरवा करते हैं। मातृत्व के भाव की सुरक्षा तो अम्सरार्य और मानवी निरन्तर करती रहती हैं। मैत्रिका स्वयं मानवी की माँ है अतः वह स्वीकार करती है कि माँ बनते ही प्रिया वहाँ से उहाँ पहुँच जाती है। यही और अपर्या का भाव निरन्तर समाज में बना हुआ है।

राजा भी इस से अपना नियुक्त करते हैं। उनके राज्य में सुखा, सुख, विजय-सिद्धि आदि गुणों के कारण राज्य सोमा स्वतः बढ़ती रहती है।

समाज की रचना काम कदम से प्रारम्भ होती है। काम सभी की प्रभावित करता है चाहे वह रंक हो या राजा। उर्वशी में भी काम की महत्ता को स्वीकार किया गया है परन्तु, काम ही मानव के जीवनका उद्देश्य नहीं है। जीवन का मुख्यार्थ मोक्ष-सिद्धि है। काम से आध्यात्म तक की दौड़ उर्वशी में वर्णित है। अर्थ और धर्म की विवेचना उर्वशी में लगभग नहीं है। काम व्यक्ति परक है और आध्यात्म भी व्यक्ति परक है। अर्थ का सम्बन्ध सामाजिकता में है; धर्म भी समाज के आदर्श का प्रतिमान है। जब राज्य में आर्थिक सुख-समृद्धि है तो अर्थ और धर्म का विचार कवि के लिये गौण हो गया है।

समाज में शक्ति-मुनियों का स्थान आदर और श्रद्धा योग्य है। वे पूजनीय एवं वन्दनीय होते हैं। राजा भी उन्हीं के कर्तृ भूत हैं, उनकी आज्ञा से ही वे शासन करते हैं। उर्वशी में राजा पुरुषा महर्षि ज्येष्ठ के प्रति पूर्ण सम्मान भाव रखते हैं। राजा ने स्वप्न में देखा है कि लोग कहीं से बह बट-वृक्ष का आरोपण कर रहे हैं, राजा भी क्षीर तट से उसका सिंघन कर रहा है। यह प्रजा जनों का वृक्षा रोपण है और स्वप्न फल के अनुसार "सुवराज" के जन्म का प्रतीक है भी। क्लिप्तमत्ता स्वप्न - दुष्टा भविष्य - ज्ञाता ज्योतिषिण हैं। उनकी गणित बह में किसी को भी अक्लिवास्त नहीं। "सुवराज जन्म" का अर्थ राजा का पुत्रत्वा ग्रहण है। दिनकर एक और प्रवृत्ति परक समाज के गार्हस्थ्य - धर्म की महत्ता स्वीकार करते हैं तो दूसरी ओर राजा के निवृत्ति परक सन्वास को। सम्भवतः दिनकर के मानस में उर्वशी का पंचम अंक लिखते समय गौतम बुद्ध के महाप्रनिष्क्रमण प्रकरण का प्रभाव रहा होगा और कालिदास की शकुन्तला की भाँति वे आयु को भी राज दरबार में भेजने की कामना करते रहे होंगे। एक विचित्र योग से दोनों का निर्वाह इस में दे कर रहे हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

उर्करी में भारतीय संस्कृति का स्वरूप

प्रत्येक कवि अपने देश की संस्कृति और उज्ज्वल अतीत के माध्यम से वर्तमान में व्याप्त असंगतियों - विसंगतियों को अभिव्यक्त कर संतोष प्राप्त करता है। तथा किन्हीं आदर्शों की स्थापना करने का प्रयास करता है। यह एक वास्तु-स्थिति है कि आज के युग में राष्ट्रीय कवि और सांस्कृतिक आन्दोलन कारियों की भाँति दिनकर ने अपने महाकाव्यों और गीति नाट्यों के माध्यम से भारत के गरिमामय अतीत और संस्कारों का वर्णन कर राष्ट्रीय चेतना जागृत करने का प्रयास किया है। "उर्करी" स्वातंत्र्योत्तर भारत की उद्दाम-धेग को वाँणी देने वाली कृति है। बौद्ध कालीन संस्कृति का निवृत्ति परक जीवन, पुराण-इतिहास काल की उज्ज्वल कीर्ति, महापुरुषों के जीवन - अर्थात् भारतीय संस्कृति का मेरु-दण्ड है। "उर्करी" काव्य भी इसी क्रम में एक सांस्कृतिक धरोहर है।

उर्करी काव्य में दिनकर ने पाँच सहस्र वर्ष पूर्व की कथा में वर्तमान भारत की समस्याओं और संवेदनाओं का वर्णन किया है। उर्करी समाप्ति पर लिखी गई मूर्ति-तिलक में यह संग्रहीत अविता में उनकी यही वाणी मुखरित हुई है:-

कहने भर की प्राचीन कथा
पर इस इकित की मर्म कथा
आज के विलोल हृदय की है
सब की सब इसी समय की है।

पृ० 58

उर्करी - पुरुषा आख्यान एक प्राचीन प्रणय - कथा है। अकेली उर्करी ही ऐसी अप्सरा नहीं है जो मानव के साथ प्रणय - परिरम्भन कर सकी हो, मेनका ने किवामित्र के साथ और प्रम्लोच्छ ने महर्षि कण्ड को रति - दान से कृतार्थ किया था। शकुन्तला की भाँति प्रम्लोच्छा को भी पृथ्वी रत्न मारिजा का जन्म हुआ, वह स्वेदज थी। उर्करी ने भी "आयु" को जन्म दिया। अप्सरा तो भोग्नी हैं, सन्तान को जन्म देती हैं परन्तु उसके पालन - पोषण, उसे कभी सरोकार नहीं रहता। प्रम्लोच्छा की मारिजा, पूताची के लह, मेनका की शकुन्तला का उनकी अप्सरा जन्मियों ने नहीं वरन् औरों ने पोषण किया था। फिर भला उर्करी के पुत्र

आयु का पूजा क्यों कर अवसर बनता। और इस सब से सृष्टि हुई ऐक्यवैदिक मिथुन की, पुरुषवा - उर्वशी प्रणय - कथा की। इसी मिथुन को दिनकर ने वर्तमान युग के उद्दाम काम पक्ष से ले कर आध्यात्म तक पहुँचाने की कैटा की है।

शान्ति प्रधान भारतीय संस्कृति

राजा पुरुषवा का राज्य समस्त सुख-ऐश्वर्यों से परिपूर्ण शान्ति प्रधान राष्ट्र है। भारतीय संस्कृति में शान्ति प्रधान राज्य सर्वोत्कृष्ट कहा जाता रहा है। उर्वशी का ज. के प्रारम्भ में ही कवि ने सर्वत्र शान्ति का उद्घोष किया है। नटी का प्रारम्भिक कथन नाटक के प्रवेश काल में शान्ति पूर्ण वातावरण की सृष्टि है:-
शान्ति शान्ति सब ओर किन्तु, यह वन्यवर्णन ^{स्व} ~~सब~~ कैसा

त्यागमयी भारतीय संस्कृति

भारतीय संस्कृति का सञ्जल पक्ष है त्याग। भ्रष्ट भोग से त्याग की ओर उन्मुख भारतीय संस्कृति समाज का आधार रही है। गृहस्थ धर्म से सन्यास धर्म की प्राप्ति आश्रम चतुष्टय का काम्य है। उर्वशी एक पारिवारिक अधस्त गृहस्थ कथानक है। गार्हस्थ्य धर्म में दीक्षित महारानी औरानीरी उसका आदर्श है। वह त्याग में ही अपने स्वरूप की उदात्त महत्ता है। वह पति पश्यणा नारी है जो पातिव्रत धर्म निर्वह के लिये जीवन भर त्याग मयी रहती है। पहिले पति पुरुषवा की उपेक्षा से त्याग मयी और फिर पुरुषवा के सन्यास लेने पर वियोगिनी। बिना त्याग के शान्ति प्राप्त करना भी कठिन है। भारतीय संस्कृति के इतिहास में यह स्वर्णिम सत्य है कि बड़े राजा भी अतुल सम्पत्ति, वैभव और जीवन सुख त्याग कर आनन्द की छीज में विरक्त हो सन्यासी बन गये हैं। पुरुषवा ने इसी भोग से त्याग और त्याग से सन्यस्तत्व प्राप्त किया है।

मातृत्व प्रधान भारतीय संस्कृति

भारतीय संस्कृति मातृत्व प्रधान है। मातृत्व की महिमा में "जननि जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि मरीयसी" कह कर जननी का महत्त्व स्वर्ग से भी महत्तर है। मेनका ने मातृत्व का बहुत सुन्दर चित्र अंकित किया है:-

"गलती है हिम-रिला सत्य है देह गहन की छी कर
पर ही जाती वह ^{अलीश} अलीक कितनी पयासिनी हो कर"

इस सैद्धांतिक पक्ष की की व्यवहारिकता सुकन्या के जीवन में चरित्र में मिलती है जिस ने उर्करी पुत्र आयु का पालन पोषण किया है और इसी भाव का पर्यावसान औशीनरी ने आयु की पुत्र रूप में अपना कर लिया है। ज्ञातव्य है कि सुकन्या और औशीनरी दोनों ही सन्तति - विहीन धातु माँ और विमाता हैं। कुल वामा अपनी वेदना सह कर भी कुल - प्रतिष्ठा की रक्षा करती है --- औशीनरी इस का प्रतीक है। यहाँ तक कि उर्करी भी माँ बन कर सामान्या नारी के गौरव को क्षीण नहीं होने देती। आधुनिक के प्रति ऊँच में स्थायी सौन्दर्य नहीं, वह नारी आदर्श का भाव परमो अथवा माता ही में देखती है।

उर्करी में भारतीय संस्कृति का भौतिक स्वरूप

उर्करी एक सम्पन्नता की काव्य है। राज कों की सम्पन्नता सम्पदा युक्त होती है। समाज की निर्धनता, आर्थिक विपन्नता का इस काव्य में अभाव है। यद्यपि अतएव वर्ग संघर्ष, पूँजी वादी और साम्यवादी व्यवस्थाओं के वर्ग संघर्ष को अभिव्यक्ति देने वाले दिनकर ऊँच ने इस काव्य में उसका कोई चित्रण नहीं किया। अप्सरायें व्योम से वसुधा पर उतरती हैं तो उनके आभूषणों से "क्वचन क्वचन स्वन की भन्कार" सुनाई देती है। ये नृत्य आदि कलाओं से "रूम धम्म धम्म" की नृत्य ताल में मग्न हैं। चित्तीय अंक में राज कों का अभिजात्य है। महारानी औरीनरी राज रानी हैं अतः वे भी भौतिक सुखों में सम्पन्न हैं। उनकी मछियाँ या दासियाँ - ^{उपहारिक} ~~विशुद्ध~~ निभूणिका और मदानिका उनकी सेवा में लग्न हैं। कंकुकी भी औशीनरी को ^{उपहारिक} ~~मदानिका~~ सम्बोधन करता है। और सम्पूर्ण राजसंस्कृति नागरीय सुख - ऐश्वर्य से सम्पन्न है। "प्रतिष्ठान पुर में ध्रु का स्वर्गीय तैज हु जगता है।" तृतीय अंक में भी एक सामन्ती ऐश्वर्य का चित्रण मिलता है। "राज्य-सीमा दिन-दिन विस्तृत होती जाती है" और "इसी भाँति प्रत्येक सुखा, सुख, विजय सिद्धि" राजा पुस्तवा को अपने पूरे जीवन काल में प्राप्त हो रहे हैं। पग पग पर स्वर्ण, मणि, रत्न, सोना, चाँदी, सुनहरे, स्यन्दन, इन्द्र, आदि ऐसे शब्दों का प्रयोग है जिस से सम्पन्नता का ही बोध होता है --- राजा पुस्तवा अपने प्रेम के आदेश में सारी सम्पन्नता को उर्करी को भेंट कर देते हैं:-

"अपना समस्त मणि-रत्न-कोज चरणों पर लाकर देता हूँ।"

उर्करी बहुरंगी स्वप्न की मणि कुट्टिम प्रतिमा है। उर्करी को पुस्तवा सप्राप्ती का सम्बोधन करते हैं।

पंचम अंक भौतिक जीवन की चरम उपलब्धि के रूप में चित्रित किया गया है। राज - दरबार का ऐश्वर्य यहां पर दरबारी ढंग से ही प्रस्तुत है। राजा स्वप्न में भी क्षीर - मूत्र ले ~~भर~~ कर वह पादप का सिंघन कर रहे हैं। ये वरिष्ठ कुंआर पर चढ़ते हैं। उनके राज्य में आश्रम भी सुख - शान्ति पूर्ण हैं जहां कुंआर सार भूय निमग्न विचरण करते हैं, मयूर नृत्य करते हैं और मेघमन्द ध्वनि जल धाराओं में हो रही है। और उनका स्वप्न साकार हो कर प्रति फलित होगा।

आप प्रवृत्ति हो जायेंगे अपने वीर तनय को

राज - पाट, धन-धाम, शीघ्र अपना किर्रीट पहना कर।

राजा के जीवन में यदि भौतिक ऐश्वर्य था तो ये ब्राह्मण, ~~ऋषि~~^{अन्य}-मुनियों का पूर्ण आदर करते थे। ~~उन्हें~~ के लिये त्याग भी करते थे। राजा पुरुरवा महर्षि पत्नी सुकन्या के पदों में नमस्कार करते हैं। आश्रम-वारा अविवेक ही और अरण्य - कुल कुल यही तो राजा का कर्तव्य है। जब उसे अपने पुत्र आयु के जन्म और स्वप्न के पूर्ण आभास के स्वरूप - साम्य का प्रत्यक्ष होता है तो वह राजा भी हर्षोन्माद में राज कोष से मुक्त दान देने में संकोच नहीं करता:-

चार खोल दो कोष - भूत का, कह दो पौर-जनों से

जितना भी चाहें स्वर्ण जा कर ले जा सकते हैं।

उर्वशी के अन्तर्धान होने पर पुरुरवा के क्रोध में भी ऐश्वर्य भक्तता है। "रत्न साज की कनक - कन्दरा " वासी देव - निलय " स्वर्ण धूलि बन बन वसुन्धरा पर आज बरस " जायेगा। वही पुरुरवा एक क्षण में समस्त भौतिक ऐश्वर्य ~~उत्सर्जित~~ त्याग कर तपस्वी बनने के लिये सन्यासी बन गये हैं। अपना राज - मुकुट आयु के मस्तक पर सजा कर प्रजा जनों की हित कालना करते हैं--- प्रजातन्त्र की राजकीय शोभा है:-

सभा सब रादों। कालज आप, सब के सब कर्म निपुण हैं

ज्या करना पटु को निदेश, सम्योक्ति कर्तव्यों का

प्रजा - जनों से मात्र हमारा आशीर्वाद कइं मे।

जो हो, चन्द्र कांतिक जितना सुरम्य, सुखकर था

उसी भाँति वह सुखंद रहे, जागे भी प्रजा जनों को।

उ० ५/१४५

यह निवृत्ति परक चिन्तन - ऐश्वर्य से मुक्ति - योग है से भोग और भोग से योग यही चिति का परमानन्द भारतीय संस्कृति का एक चिरन्तन स्वरूप है।

उर्वशी में भारतीय संस्कृति का आध्यात्मिक स्वरूप -

उर्वशी एक कामाध्यात्मक काव्य है। पुरुरवा का सन्यासत्व भोग से योग को प्राप्त करने का संकल्प है और इस संकल्प की साधना आध्यात्म है। भारतीय संस्कृति में पुरुषार्थ चतुष्टय का बड़ा महत्व है। काम, अर्थ, धर्म, मोक्ष में काम अर्थ

और धर्म इस वसुधा पर ही रत रह कर सनुज सम्पन्न करता है और मोक्ष जीवन्मुक्ति है। जीवन अर्थात् संघर्ष। जीवन में चाना प्रकार की ईर्ष्यायें हैं और उनकी कामना ही मनुष्य को उसे के उपलब्ध करने के लिये फ्रेक प्रेरित करती है। पुरुषवा और उर्करी दोनों ही कामना तरंगों और काम - वहि से उद्देकित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि काम से आध्यात्म की ओर बढ़ने का प्रेरक-काव्य 'कामायनी' का प्रबल प्रयत्न प्रभाव कवि पर है। कामायनी कार ने जिस काम को आरिरी पात्र के रूप में चित्रित किया है दिनकर ने उसे बुद्धिद वादी तर्क - स्तर से विचारों की अभिव्यक्ति में गुम्फित कर काव्य में नाटकीय सम्वादों के रूप में चित्रित करने की चेष्टा की है। काम की व्याख्या में कवि ने उस स्वर को मुहरित किया है जो भारतीय संस्कृति की देन है:-

"तन का काम अमृत किन्तु यह मन का काम गरल है।"

जितने भी योगी, सन्यासी, तपस्वी, हुये हैं --- सम्भक्तः दिनकर की दृष्टि में विवामित्र, बूढ़, आदि रहे होंगे, वे सब काम के द्वारा छले छस गये। मनु भी काम से ही छला गया था। कवि दिनकर हैं राजा पुरुषवा तो रजसु के प्रतीक ही थे फिर भला वे काम का भोग क्यों न करते। एक स्थान पर दिनकर ने उर्करी की अन्तर्गम्य अन्तरंग सखी चित्र-लेखी से यह कहलाया है:-

नया बोध श्रीमन्त प्रेम का करते ही रहते हैं

नित्य नई सुन्दरताओं पर मरते ही रहते हैं।

परणीता और प्रणयनी दोनों ही काम-सहचरियाँ हैं। कवि दिनकर ने दोनों का अन्तर स्पष्ट किया है:-

सह धर्मिणी गेह में जाती कुल - पौष्प करने को

पति को नहीं नित्य नूतन मादकता से भरने को

किन्तु, पुरुष चाहता भीमना मधु के नये क्षणों में

नित्य चूमना एक पृथ्वी अभिसिञ्चित ओस कणों से

कुल की हो जो भी, रानी उर्करी हृदय की हो-गी

एक मात्र स्वामिनी नृपति के पूर्ण प्रणय की हो-गी।

अर्थात् कुलवामा का स्थान "जो भी हो" के स्तर का है और उर्करी नृपति की हृदयवरी, पूर्ण - प्रणयनी और एक मात्र स्वामिनी हो-गी। परकिया - प्रेम का यह स्वल्प साहित्य में अनादि काल से वर्णित है। यह भी "इस सुष्ठु युग के विलोत हृदय की कथा" है जो भोगे हुये सत्य से कम नहीं।

उर्करी में काम - कला के रूप भी चित्रित हैं। "किन्तु, जाह। यों नहीं, सनिक तो शिथिल करो बाहों को" अथवा "ना, यों नहीं" आदि सीत्कारों में कलाभिव्यक्ति तो हो गई है परन्तु काम की सांस्कृतिक मर्यादा का भी विनाश हुआ है इस से इनकार नहीं किया जा सकता है। "काम" भारतीय संस्कृति में गौपन - व्यापार है। कवि वर पन्त ने अपनी एक कविता में कहा है:-

"धिक् है मनुष्य। तुम स्वस्थ स्वच्छ निराल चूमन

अंकित कर सकते नहीं प्रिया के अधरों पर"

अथवा डी० एच० एस० लारेन्स की अप्रचलित कविताओं की ध्वनियाँ कवि के मन में गुँज रही हों, उन्हीं की यह अभिव्यक्ति है भारतीय सांस्कृतिक परिवेश में काम इतना नम्र नहीं।

इस काम तरंग से उठ कर कवि ने गीता के निष्काम काम, अनासक्ति योग और लालसा रहित काम के उच्च मिलय में जाने के लिये ऊर्ध्वगामी स्वर भँकृत किया है किन्तु उसका आधार भी हृदयस्थ भाव नहीं तर्क - शील बुद्धि का चिन्तन है। कभी कभी कवि बुद्धि के अस्तित्व को नकार कर रक्त की प्रबलता को सिद्ध करता है। यह सिद्ध करना ही बुद्धि - व्यापार है। अतः बुद्धि एक प्रेम का आवरण हटा नहीं पाती। अन्त में पुरुषवा प्रेम का आकर्षण तन के काम का परित्याग कर सन्यासी बन जाते हैं। उर्वशी—शापका या इस जग में परिस्थिति का ——— छोड़ कर चली जाती है और इस सौर निराशा में पुरुष अपनी तत्तनी को त्याग कर अन्यत्र चला जाता है या फिर आत्म हत्या कर लेता है। पुरुषवा भी औशीनरी को छोड़ कर सन्यासी बन जाता है। यही तो इस युग की मर्म - व्यथा है। पर सत्य यही है:-

जो त्रिया अन्त में जाती है
वह क्यों सब पर छा जाती है
क्यों नीति काम को मार गई
अप्सरा सती से हार गई
पर मैं क्या करूँ 'सती' नारी
जाती जब लिये प्रभा सारी
करतब वह यही दिखाती है
सब के ऊपर छा जाती है ।

दिनकर की यह स्वीकृति कितनी निरुल्ल है। भारतीय संस्कृति में सती नारी का अभी भी सम्मान है। "मातायें क्लेश उठाती हैं, उर्वशियाँ मौज मनाती हैं।" उर्वशी का ऐसा सामान्य स्वरूप आज समाज में करतब दिखाने और मौज मनाने मात्र का रह गया है। दिनकर ने इन सब से ऊपर उठ कर गीता के कर्म योग-निष्काम आध्यात्म का गीत गाया है।

~~~~~

उर्वशी में  
लौकिक और सामाजिक  
संस्थायें

दिनकर कृत गीति नाट्य उर्वशी में अलौकिक और लौकिक की व्यंजनात्मक विवेचना प्रस्तुत की गई है। जो उल्लेख अलौकिक है वह इस भू से परे देव लोक अर्थात् स्वर्ग लोक का विवेचन है। पृथ्वी पर भी लोक - व्यवहार और समाज संगठन की दृष्टि से परिवार और राज्य संस्थाओं का तथा विवाह और आश्रम व्यवस्था का चित्रण किया गया है। अप्सरायें और उर्वशी देवी पात्र हैं अतएव उन में स्वर्ग कल्पना करना और पुरुषवा, ओशीनरी, सुकन्या च्यवन अथवा दरबारी - जन जो धरती - सन्तति हैं उन का वर्णन तुलना और यथार्थ की दृष्टि से समीचीन है।

क: स्वर्ग लोक:-

सहज ही मानव मन में स्वर्ग की कल्पना सर्व सुख - कारी है। स्वर्ग में किसी को कोई भी कष्ट नहीं है और न कोई मरण शील है। स्वर्ग शब्द मात्र के उच्चारण से मन - बुद्धि जगत्तर कल्पना में खोज करने लगते हैं और अखि सहज ही आसमान की ओर उठ जरती हैं। यही गगन स्वर्ग लोक को अपने अन्तर में छिपाये है। दिनकर ने भी अप्सरा निवास को गगन के पार माना है। सूत्र धार ने इन सुषमाओं को अम्बर से भू पर उतारा है। गगन चारी अप्सरायें कभी कभी भू लोक में विहरण करने आती हैं।<sup>१</sup> भू लोक का मानव स्वर्ग को पूर्ण मान बैठा है। कवि का मन्तव्य है कि स्वर्ग भी अपूर्ण है। धरती भी अपूर्ण है।<sup>२</sup>

एक स्वाद है त्रिदिव - लोक में, एक स्वाद वसुधा पर  
कोन केष्ठ है कोन हीन, यह कहना बहुत कठिन है।

१:- उर्वशी: १/१

२:- वही:



भू लोक यद्यपि स्वर्ग से हेय ही हो-गा पर यथार्थ वही लगता है। स्वर्ग लोक न देखो न जाना एक स्वर्णिम कल्पना का रूप प्रतीत होता है।

स्वर्ग सन्नि लोक अमर है। उस में अमिट, स्निग्ध, छिन्न निर्धूम शिखी के समान काया वाले देवता निवास करते हैं। वह मर्त्य लोक की भाँति क्षणिक नहीं है। देवता १ गन्ध धायी हैं, वे व्यंजनों का भोग नहीं करते। मात्र श्रवणेन्द्रिय - सुख से ही वे तृप्त हो जाते हैं और नेत्रों से किसी रूप को निहार कर निहाल हो जाते हैं।<sup>१</sup> देवताओं का जीवन समीर - सौरभ से तृप्त हो कर घिर - काल तक चलता है। स्वर्ग लोक की अप्सराओं के लिये प्रेम भी मात्र एक झोड़ा है। मानव लोक की भाँति वह कोई निधि नहीं।<sup>२</sup> देव नित्य सर्वत्र शान्ति पूर्ण है। स्वर्ग समस्त सौभाग्य का निक्षेप है। उर्वशी, पर, इस स्वर्गिक सुख से सन्तुष्ट नहीं है। धरा पर जा कर मानव प्रेयसि बनने की कामना करने वाली उर्वशी स्वर्ग - सुख को स्वप्न - जाल से अधिक कुछ नहीं मानती ---- मिथ्या और भ्रम। स्वर्ग मात्र एक कल्पना - सुख से अधिक कुछ नहीं है।<sup>३</sup>

स्वर्ग में देव - वास है। ये देवता एक किन्तु किन्तु आवरण से आवृत्त रहते हैं। उर्वशी भी देवी है, वह अवैद कल्पना है। वह त्रिभुवन की अछूत आभा है, वही त्रिलोक सुन्दरी है।

वस्तुतः स्वर्ग और धरा कोई द्वैत नहीं है। यह केवल एक विचार - प्रकृतियाँ हैं जो ऐसा भेद मानती हैं। पर सत्य यही है कि धरा एक यथार्थ है और एक सुखद कल्पना।

**छः भूलोक:-**

भू - लोक प्रत्यक्ष है। सुख - दुःख, प्रेम - कृणा, ग्रहण - त्याग, स्वार्थ - परमार्थ न जाने कितने अनुकूल - प्रतिकूल, क्रिया - प्रतिक्रियाओं का यह बहुरंगा जीवन भू लोक में ही मिलता है। पारिवारिक जीवन <sup>की</sup> भू लोक में बड़ा महत्व है। परिवार समाज की रक्षा है। राज्य संस्था समाज संचालन की एक महत्वपूर्ण व्यवस्था है। वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था भी समाज की एक युगान्तरकारी <sup>व्यवस्था</sup> व्यवस्था ही है। इन सब को नियोजित करने के लिये विवाह संस्कार किया जाता है। अतः मुख्य रूप से लोक - व्यवहार में धरती पर इन संस्थाओं का अध्ययन आवश्यक है। उर्वशी काव्य में भी इन संस्थाओं का महत्वपूर्ण अध्ययन किया जा सकता है।

१:- उर्वशी: १/१०

२:- वही: १/१५

३:- वही: १/२०

भू लोक का प्रत्यक्षीकरण उर्वशी के प्रथम अंक में के प्रारम्भ से ही हो जाता है। समस्त नाटक को सूत्रधार प्रकृति के भूर्त - सौन्दर्य को लौकिक दृष्टि से प्रस्तुत करता है:-

सारी देह सनेट निविड आलिंगन में भरने को

गगन खोल कर बाहं विमुग्ध वसुधा पर पड़ा हुआ है।<sup>१</sup>

गगन का बाहं खोल खि विमुग्ध वसुधा पर पड़ा होना सृष्टि की रचना का सन्देश है। "वसुधा" शब्द का प्रयोग ही पौराणिक आख्यान की ओर खींच सकित करता है। और वसुधा में ही महाराज शान्तनु और गंगा के प्रणय - जीवन का आभास मिलने लगता है। ऐसी ही एक कथा पुरुरवा और उर्वशी की है जो भू लोक और देव लोक के प्रणय - व्यापार का आख्यान है बनी है।

अप्सराओं की  
दृष्टि में  
भू - लोक

कवि दिनकर ने सब से पहिले धरती और गगन के अन्तर को ही जीवन - विषय बनाया है। गगनांगन से उतरने वाली अप्सराओं को भू - लोक के पारिवर्तिक जीवन का अनुभव है। परिवार में ही समस्त जीवन के कद - मुद अनुभव उन्हें ज्ञात हैं। मृत्यु - लोक ही

यह धरती है और यहाँ पर सब कुछ क्षणिक है, मरण शील है किन्तु, धरती पर एक विशिष्ट आनन्द है जो देव लोक में भी नहीं है। मृत्यु - लोक वासी मनुष्य भी ही सौन्दर्य को क्षण भर के लिये भोगे पर उसका जीवन - भोग लालसा - युक्त उत्साह-पूर्ण और धृक्ता हुआ जीवन है। वह जीवन की जीवन्त बना कर जीता है, बिना किसी सीमा या प्रतिबन्ध के। एक क्षण की उन्माद तरंग पर तो देव लोक की अक्षरता को न्योछावर किया जा सकता है।<sup>१</sup> मेनका को मानवी की भावार्थ बनने का अनुभव है। वह तापसी विजयामित्र की सन्तान शकुन्तला की जन्मनी थी। वह पारिवारिक जीवन की मृदुता और कठोरता को जानती थी। रंभा की दृष्टि में राजा पुरुरवा बड़े वीर और सौन्दर्य शाली हैं। वे अमर देवताओं से भी अधिक स्वयं और शक्ति में भी अधिक बल शाली हैं।

जाया और जन्मी:-

प्रेम केवल धरती वासी ही जानते हैं। मनुष्य प्रणय की भावना के व्यभिक्त जीवन के समस्त सुख - वैभव को रयागने के लिये तैयार रहता है। प्रेम की व्याकुलता बतानी सीझ होती है कि मनुष्य निरन्तर पीड़ा भोगा करता है। प्रेम केवल मानव

१:- उर्वशी: १/११

लोक में ही सिद्ध है।<sup>1</sup> प्रेम से परिवार बनता है। मातृत्व परिवार का प्रथम चरण है। परिवार में ही अतीव सुख है या अतीव दुःख, परिवार में प्रेम की मादकता भी है और यातना भी, प्रणय का अवसान परिणय सेल में होता है और प्रतिफलन मातृत्व में। कैसा विचित्र संयोग है --- मातृत्व बोध भी प्रसव - पीड़ा से ही प्राप्त होता है। तन - यौवन का कसाव शिथिल होता है जाता है, और ममत्व में समस्त उत्साह तरंग केन्द्रित हो जाती है। और फिर धरती पर जीवन श्लेष - रोग, शोक, सन्ताप, विषाद, ना ना रूपों में प्रकट होते हैं और समस्त नारी - जीवन का यौवन सौन्दर्य जरा में परिवर्तित हो कर श्री - विहीन हो जाता है।<sup>2</sup> सहजन्त्या जिसने अभी ऊर्ध्व तक भू - लोक का स्वरूप नहीं अनुभव किया है वह इस "वसुधा" को सृष्टि कहती है, नरक बताती है और उसे रौरव - नरक की संज्ञा देती है।<sup>3</sup>

रूभा भी अभुक्त अप्सरा है। वह उन्मुक्त विहारिणी भी प्रेम को राक्षसी भूँ में मात्र समझती है। इस धरती के मनुष्य में इतना यौन - उत्ताप है कि वह अपने दाहक आलिंगन से यौवन को झूट कर रख देता है। वह अपने ताप - तप्त चुम्बन से नारी छवि को प्रभा होन बना देता है। यहाँ तक कि मनुष्य जीवन पर्यन्त उस सुन्दरता की ठठरी - नारी को चूमता - चूमता रहता है।<sup>4</sup> दिनकर का यह चित्रण कितना वीरस हो उठा है। रूप की ऐसी भयानक दुर्दशा के बाद मातृत्व की ओ शीतल - पवित्रता नारी जीवन की स सार्थकता को प्रकट करती है। मेनका ने मातृत्व सुख भोगा है, वह उसी भाव को बार बार स्मरण कर सदैव्य बौर गरिमा मय बनाती है:-

माँ बनते ही त्रिया कहाँ से कहाँ पहुँच जाती है  
मलती है हिम शिला सत्य है गहन देह की छी कर  
पर, हो जाती वह असोम क्तिनी पयस्विनी हो कर  
युवाजनन को देख शान्ति कैसी मन में जगती है  
स्पन्दती भी सही। मुझे तो वही त्रिया लगती है  
जो गोदी में लिये क्षीर मुख शिशु को छिला छेक रही हो,  
अथवा खड़ी प्रसन्न पुत्र का पलना भुजा रही हो।

उ० १/१९

१:- उर्वरी: १/१५

२:- वही: १/१६

३:- वही: १/१७

४:- वही: १/१७



परिवार में मातृत्व का इतना सुन्दर चित्र साहित्य में अन्यथा दुर्लभ है।

औशीनरी पुत्र - विहीन है। वह मातृत्व से वंचित है अतएव नारी जीवन की चरम अनुभूति उसे का प्रतिफलन उसे कदा प्राप्त हो सका है? उर्वशी को वह मातृत्व बख बौध है। महर्षि च्यवन के आश्रम में वह अपने पुत्र आयु को छोड़ आई है। उर्वशी को गर्व है कि वह मानव की माँ है:-

बेटी नहीं हुई तो क्या 'जब माँ तो हूँ मानव की'  
नहीं देखती रत्नमयी को कैला लाल दिया है।

उ० 4/112

अप्सरा उर्वशी मातृत्व भाव से अभिभूत हो वात्सल्य में डूबी रहती है:-

~~अप्सरा~~ - दुःख सन्तुष्ट भाव से कैसे कैसे ताक रहा है

सन्तान जन्म से पूर्व भी उर्वशी अपनी भावी सन्तान की कल्पना में निरन्तर सतरंग स्वप्न बुनती चली आई है। केवल वह बालक ही नहीं रहेगा भूम भी होगा, प्रजा वत्सल होगा --- वह प्रजा जनों की दीर्घायु का कारण होगा इस लिये उर्वशी ने उसका नाम करण भी "आयु" किया है:-

सब हो गा सुख पूर्ण, जगत में सब की आयु बढ़ेगी  
इसी लिये तो सखी। अभी से इसे आयु कहती हूँ।

उ० 4/114

कविवर दिनकर मातृत्व को विशेष बड़ा महत्व देते हैं। महत्व जन्म देने का नहीं पालन करने का है:-

केवल भ्रूण वहन, केवल प्रजनन मातृत्व नहीं है

माता वही <sup>पालती</sup> कहलैलै है जो शिशु को हृदय लगा कर।

औशीनरी एक सन्तान - विहीना नारी है। वह पति से उपेक्षित है किन्तु वह बड़ी साहसी है। नारी जीवन की व्यथा ही निसन्तान होना है। वह अपनी समस्त नारी भावना को समर्पित कर पुत्रेष्णा से चन्द्र आराधना करती है, समस्त उर्वशी को परोक्ष रूप से स्वीकार कर लेती है और और अन्त में सोलह वर्ष उपरास जब नारी में प्रजनन शक्ति क्षीण होने लगती है, आयु को वक्ष से लगा राज माता बन कर शान्ति प्राप्त करती है। अतएव औशीनरी केवल एक जाया मात्र बन कर रह गई। उसे यह मातृत्व - हीक्ता बराबर साक्षी रहती है:-

बिना सुटाये कौन हाय। आजीवन भरी रही ~~रूँ~~ हूँ  
फला न कोई राख, प्रकृति से जो भी अमृत मिला था  
तहर मारता रहा टहनियों में सुनी डालों में

उ० 5/147

जाया सुकम्पा भी जाया ही है। जननि का सुख तो उसे केवल सोलह वर्षों तक ही मिला है जब वह उर्वशी पुत्र आयु की <sup>पति</sup> मा। बनी थी। आयु बहुत नटखट था,

प्यार से वह उसे बड़ा धूर्त भी कहती है। उसे भी मातृत्व का अभाव साहसा है:-

जो भी करूं, दुष्ट मुझ को अपनी माँ क्यों मानेगा ?

किन्तु सुकन्या में माँ की समता भरी हुई है। औरंगीनरी में वह नाटकीय प्रतीत होती है, सुकन्या में स्वाभाविक और प्रवृत्ति जन्य। वह उर्कगी के इस पुत्र - विछोड़ का दुःख अनुभव करती है:-

कब तक तुम इस भाँति नित्य रिप कर बन में आओगी ?

सुत को हृदय लगा, क्षण भर, मन शीतल करने लेने ओ

और आयु, कुछ कह सकती हो, कब तक यहाँ रहे गा ?

हे भगवान! उर्कगी पर यह कैसी विषम पड़ी है।

इस छोटे से परिवार में एक पुत्र की तीग तीन मातायें हैं: उर्कगी, जननी है, सुकन्या धातु है और औरंगीनरी राज माता। आयु पुत्र है और पिता पुरुरवा परिव्राजक हो कर संन्यास ले चुके हैं।

उर्कगी का जीवन विषम है, संन्यास के विषम जीवन से पूर्ण है।

विवाह:-

उर्कगी काव्य में विवाह संस्था भी महत्वपूर्ण है। दिनकर जी ने विवाह को सदैव महत्व दिया है। प्रणय कामना है, विवाह एक संस्कार। संस्कार को दिनकर ने प्रणय की कामना

कामना तरंग के छह से ऊपर माना है। अपने काव्य-पत्र में उन्होंने ने स्त्री नारी की महत्ता छह छह स्वीकार की है। वे लिखते हैं:-

क्यों तूति काम को मार गई ।

अप्सरा स्त्री से हार गई।

अप्सरा उर्कगी है, स्त्री औरंगीनरी है। उर्कगी काव्य में दो ही नारियाँ हैं विवाहित हैं: औरंगीनरी और सुकन्या। उर्कगी यद्यपि पुरुरवा के पुत्र आयु की जननी है तथापि वह विवाह संबंध संस्कार से अनुबंधित नहीं है। उर्कगी जब प्रेयसि रूप में पुरुरवा के साथ गंधमादन पर विचार करती है तब औरंगीनरी की यह सुनिश्चित उक्ति पूर्ण सार्थक है:- " पति के बिना यो जिता का कोई अधिकार नहीं है।" इस एक पं में कालिदास के विक्रमोक्तियम् की स्रष्ट छंदः अनुदित है:-

प्रियवचन रत्नोऽपि योजिताम्

दयितजनानुयो रसाहते,

प्रविविध हृदयं न तद्विदाम

मणिरिव हू कृत्रिमराम्योजितः ।

राष्ट्र कवि मेघिनी शरण गुप्त ने भी अपने साकेत में सीता के द्वारा उर्मिला को उपदेश दिया था:-

मेरी यही महामति है

पति ही पत्नी की मति है ।

इस से स्पष्ट है कि पति - पत्नी को दाम्पत्य बन्धन में बांधने वाला जो सूत्र है वह विवाह ही है। पत्नी का पद और दायित्व दोनों ही बड़े हैं। प्रेयसी उर्वशी के प्रति पुरूरवा का आकर्षण जान कर औरंगिनरी की क्या दशा है? सपत्नी भाव तो पत्नी के लिये "जीते जी मरना है।" औरंगिनरी एक उपेक्षिता के स्वर में मात्र इतना ही सोच पाती है:-

" जो अलभ्य जो दूर उसी को अधिक चाहता मन है। "

औरंगिनरी का पति पुरूरवा अब उस से कितना दूर हो गया है। प्रेयसी उर्वशी राजा पुरूरवा की प्रणयनी बनी अंक रंगायी है तो भला औरंगिनरी को प्रेक्ष क्यों न हो। इसी क्षेप - क्रोध में वह उर्वशी को गणिका, प्रवचिका, स्वर्देशा आदि अपराध कह देती है:-

विवाहिता नारी को पति से प्राप्त सभी भौतिक सुख हैं फिर भला एक राजरानी को किस सुख की कमी हो सकती थी ' जो नहीं मिल पाया वह है उसका आन्तरिक सम्मान: +

सब कुछ है उपलब्ध, एक सुख वहीं मही मिलता है

तिस से नारी के अन्तर का मान - पदम खिलता है।

विवाहिता नारी सिवा धैर्य धारण करने के और कर भी क्या सकती है ' वह पति परित्यक्ता हो कर केवल 'व्यथाओं' का पृज रह जाती है। यह उर्वशी में पौराणिक गाथा हो सकती है पर यह आज का सत्य अक्षय है, कहे यही यथार्थ है। उर्वशी के प्रति अब औरंगिनरी जो भी हो वह इस सत्य को स्वीकारती है:-

"पगली! कौन व्यथा है जिस को नारी नहीं सहेंगी "

नारी की सब से बड़ी व्यथा है उसकी मातृत्व - विहीन होना। औरंगिनरी निसन्तान है और राजा पुरूरवा भी सन्देह भेज रहे हैं कि औरंगिनरी चन्द्राराधना करती रहे और स्वयं वे भी पितृ की वृद्धि के लिये साधना कर रहे हैं। बड़ी पटुता से कही गई बात मात्र इतना कहता है:-

हां। जनोंकी साधना है

अपारा के संग रमना ही की आराधना है।

वैवाहिक जीवन में छल - छद्म बड़ा दुर्लभ है दुःख दायी होता है।

यह निराशा पूर्ण दृष्टि, प्रणय और परिणय का अक्षय असंगत स्वल्प और जीवन के प्रेम और बन्धन की परिभाषा विवाह संस्था द्वारा ही सम्भव है जो हमकी व्याख्या है।

छद्म आशा वादी आदर्श विवाह का स्वल्प है सुकन्या और च्यवन का वैवाहिक जीवन। सुकन्या को कदाचित्त यह परचाताप नहीं है कि राज पुत्री हो कर भी उसे वृद्ध च्यवन रुचि का वरण करना पड़ा था। वह अपने भक्त महर्षि च्यवन के प्रति गर्विली है:-



किन्तु चिन्तिते। मुझ को अपने महर्षि भर्ता पर  
स्नान नहीं, निस्सीम मर्त्य है।

उ० 4/100

भारतीय नारी के वैवाहिक जीवन का एक ही आदर्श है:-

मेरी तो जानन्द - धाम केवल महर्षि भर्ता है / और  
गृहणी के तो परम देव आराध्य एक होते हैं  
जिस से मिलता छोटे भोग, योग भी वही हमें देता है  
क्या कुछ मिला नहीं मुझ को दयिता महर्षि की उ० कर।

उ० 4/102

इस वैवाहिक उत्कर्ष के लिये महर्षि च्यवन ने समाधि दूने पर स्वयं वरदा प्रस्ताव किया है। वह महर्षि की तपोवीर्य च्युति नहीं, सिद्धि थी। इस से स्पष्ट है कि समाज में नारी को ही यह स्वतंत्रता नहीं थी कि वह स्वयंवर करे। पुरुष भी वैवाहिक प्रस्ताव करता था और उस के अनेक प्रमाण भी पुराणों में हैं। उनका वैवाहिक जीवन स्वर्गिक आनन्द से पूर्ण था। सुकन्या ने ऐसे महर्षि से विवाह किया था जिन का जीवन तपः सिद्ध था। विवाह का सम्बन्ध, पद और अवस्था की अपेक्षा गुण - धर्मों पर आधारित थी। राज कुमारी सुकन्या का वरण करने की इच्छा वाले रत रत राज कुमार भी लौट गये होंगे। सुकन्या केवल दारुणतम तपः-धर्म धरण करने वाले ऋषि की ज्योति आभा पर भ्रम है। उसके समक्ष राज मुकुट भी भी क्षीण है।

वैवाहिक जीवन की उपलब्धि है सन्तति। भाग्य की विडम्बना ऐसी है कि न तो औरीनरी को और न ही सुकन्या को ही मातृत्व प्राप्त है। पर दोनों ही उत्कृष्टी - पुत्र आयु से पुत्र वन्ती हैं। सुकन्या ने आयु का पालन पोषण सोलह वर्षों तक किया है। उसका मातृत्व भी धन्य है।

राज्य संस्था:-

सम्पूर्ण उत्कृष्टी का व्यव राज - परिवार की कटना है। राजा पुरुषा इस गीति नाट्य का नायक है। और नायिका है उत्कृष्टी। राज परिवार परिवार की परिणीता है औरीनरी। औरीनरी

इस लिये उपेक्षित है कि राजा पुरुषा उत्कृष्टी के प्रणय - पार में जाबद्ध है। राजा सर्वोपरि है। राजा को शोभन है कि वह एक से अधिक अथवा अनेक से अपने प्रणय अथवा परिणय सम्बन्ध बनाये रखे। इसे अन्य प्रकार से भी कहा सकते हैं कि बहु - पत्नी प्रथा अथवा एकाधिक प्रिया प्रचलन उस समाज में था। चित्र लेखी बहुत स्पष्ट कहती है:-

एक घाट पर किस राजा का रहता बंधा प्रणय है।  
नया बौद्ध श्रीमन्त प्रेम का करते ही रहते हैं।

और

किन्तु पूरा चाहता भीगना मधु के नये क्षणों से  
नित्य चूमना एक पृष्ठ अभिसिद्धि ओस - कणों से।

ऐसे में एक सहज प्रश्न है --- "कूल वामा क्या करे किन्तु जब यह विपत्ति आ जाये।"  
अर्थात् यह कवि को स्वीकार्य है कि परकीया - प्रेम पत्नी को विपत्ति में डाले बिना  
नहीं छोड़ेहमक। छोड़ता।

राजा खैवर्य का स्वामी है। राजा पुरखा के प्रतिष्ठानपुर राज्य में कोई  
अव्यवस्था नहीं है। रत्न कोष की भी कमी नहीं है। वैभव - सम्पन्न राज्य में  
कहीं कोई युद्ध - विग्रह नहीं है। राज्य सुख समृद्धि, एवम्य पूर्ण है और उसकी  
सीमायें स्वतः बढ़ रही हैं अर्थात् अन्य छोटे छोटे राजा गण प्रतिष्ठानपुर की आधीना  
जाधीनता स्वीकार कर लेते हैं। अतः राजा पुरखा ने किसी पड़ोसी राज्य पर  
आक्रमण नहीं किया अपितु देवेन्द्र बन्द की सहायता ही की है। इसका यह अर्थ भी  
नहीं कि राजा वीर नहीं होतेहमक थे। राजा पुरखा स्वयं उत्कीर्ण के अन्तर्धान होने  
पर बन्द के विरुद्ध युद्ध का नकारा जमाने को छ तत्पर हैं। देख्य कैसी से तो  
उन्होंने उत्कीर्ण को का मोहन किया ही था। राजा नाम - मात्र के नहीं होतेहमक  
थे अतः वे युद्ध के समय योद्धा, नीति के समय नीतिज्ञ और विलास के समय  
विलासी भी होते ह थे।

राज्य संचालन मंत्री - परिषद की सलाह से होता था। महामात्य पर राज्य  
का उत्तर दायित्व होता था कि वह रत्न कोष भी देखें और दान - दक्षिणा की  
भी व्यवस्था करें।

राज्य में नीतिज्ञ, गणितज्ञ, ज्योतिषी आदि भी होते थे जो राज्य को  
वर्तमान - भूत - भविष्य से सजग करते रहते थे। विद्यमना ने पुरखा को प्रवर्त्तन  
के प्रवर्त्तन योग्य बना कर सन्यास को ओर हँसित किया है।

राज - व्यवस्था में धर्म का महत्व पूर्ण स्थान था। तपस्वियों, मुनियों,  
हृषियों और आचार्यों का स्थान था। स्त्रियों के छ प्रति राजा आदर भाव रखते  
थे। स्वयं राजा पुरखा सुकन्या के आगमन पर उन्हें सादर लाने जावेला देते हैं:-

"सती सुकन्या। कीर्ति मयी भामिनी महर्षि च्यवन की

सादर लाओ उन्हें।।.....

और

इला पुत्र में पुरुषदों में नमस्कार करता हूँ "

राजा का दायित्व था कि आक्रम और अरण्य कूल सब कुल क्षेम से पूर्ण और सुरक्षित  
रहें। वह निरन्तर उनकी छीज सकता था:-

आक्रम - वास अविधन, कुल तो है अरण्य - गुल्फ में '

उ० ५/१३३

राजाओं को की वृद्धि और युवराज की चिन्ता अक्सर सताती थी पर  
अक्सर पर मृगणा कर लेने पर वे राज - मुकुट की लिप्ता भी त्याग देते थे। हृषक

राजाओं में राज - भोग की कामना यही होती थी कि युवराज को वह राज-पद दे कर मुक्त हो जायें।

राजा सभा में युवराज को राज पद देने की घोषणा के साथ साथ यह भी घोषणा करते हैं कि उनका धर्म अब केवल प्रजा पालन है। वं स्वयं यती बन कर जन-कल्याण की कामना हेतु केवल आशीर्वाद देते रहें-गे।

महाभात्म और अन्य मंत्री जन प्रजा हित में राजा पुरुषा के सन्यासी होने पर राज माता औरानरी का ही जय-घोष करते हैं। यह जय - घोष भी राज्य सम्पदा का परिचायक है और सिद्ध करता है कि नारियों का राज्य संचालन में बड़ा हाथ होता था।

आश्व संस्था :-

आश्व संस्था और उस का समादर किसी भी राज्य का सम्मान होता था। सहस्रिर्महर्षि च्यवन का आश्वन तीर्थ उसी प्रकार था जैसे कालिदास ने शकुन्तलम् और विक्रमोर्करीयम् में चित्रित किया है।

महर्षि च्यवन अपनी तपस्या से प्रभा - प्रजावान् थे। कौप रील तो सभी हरि होते हैं परन्तु कौप के साथ सदाय होना च्यवन हरि के अनुरूप हो था। राजा शयति की पुत्री सुकन्या ने तपस्या रत अवस्था में उनकी आँखों की पलक खींची थी --- सम्भक्तः उन्हे झोझ करना चाहिये था किन्तु उस सुगील सुकन्या को देख कर वे यही कह सके थे:-

हरि प्रसन्न यदि नहीं सिद्धि बन कर तुम क्यों अरह हो।

कितना तेजस्य है इस प्रेम सिद्धि सोपान में । यही प्रेम उर्वशी पुरुषा में लक्ष्मण आदेर्ग का - जेल से वासना प्रदीप्त हो गया है और यही प्रेम च्यवन - सुकन्या में पवित्र रीतलता एवं ओमलता से परिव्याप्त हो कर अन्य लोगों के लिये आदर्श बन गया है। परिचय पढ़ने कड़ में भी हरि - तुल्य वाणी की गम्भीरता मोहक है:-

सौम्ये। हो कल्याण, कहाँ से इस वन में आरह हो ?

सुर - कुल की शुचि प्रभा या कि मानव - कुल की तन्यो हो ?

और स्वयं विवाह - प्रस्ताव कर बैठते हैं क्यों कि वे इसे तपस्युच्युति नहीं मानते। नारियों पर महर्षि की की श्रद्धा और शिशुओं पर निःछल वात्सल्य। उन का विश्वास है:-

शुभे। सदा विशु के स्वरूप में शिवर ही आते हैं।

आश्व संस्थायें सुन्दर विधा केन्द्र होती हैं थीं। इन संस्थाओं में निःशुल्क अध्ययन, अध्यापन, शास्त्र और शास्त्र का प्रशिक्षण होता था। वात्सल्य के इस



अदभुत प्राणिम में शिशुओं का पालन - पोषण होता था और शिक्षा के उपराक्त यह न्यास यथा समय वापिस सौंप दिया जाता था। विद्यार्थियों को उर्म - बर्म यज्ञादिक क्रियाओं से दीक्षित किया जाता था। उर्वीणी - पूर्व आयु के साथ भी यही हुआ।:-

अथ यद्वत्

रास्त्र शास्त्र निष्ठात्, अंग में बली, दिग्भास्त्रि मन से  
जत्र अपना यह आयु पूर्ण कैगौर क्क प्राप्ता करेलेगा  
पहुंता दूंगी इसे ले जाकर राज - भवन में ।

उ० ४/१२३

इस प्रकार परिवार, विवाह, राज्य और आश्रम संस्थाओं के कारण ही समाज की समृद्धि पूर्ण संरचना हो सकी थी। आज के युग के लिये भी कवि का यही सन्देश है कि पारिवारिक शुचिता बनी रहती तो गृहस्थाश्रम छत्र धर्म के द्वारा हम भारतीय कौटुम्बिक व्यवस्था को बनाये रखेंगे। इसी से जुड़ी है विवाह संस्था। राज्य का उद्देश्य धन - धाम - पुंजो निको नहीं प्रजा - पालन होना चाहिये और आश्रम संस्था तन और मन, रास्त्र और शास्त्र से समन्वित मानव समाज का शृंगार क बने।

~~~~~

उर्वशी में ऐश्वर्या

मानव जीवन में कुछ दृष्टांतें सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक होती हैं। जिस प्रकार प्रकार पुरुषार्थों में काम, अर्थ और धर्म का महत्त्व है उसी प्रकार मानव मन में सन्तति, वित्त और ख्याति के प्रति भी जिगीजा भाव रहता है। मनुष्य सन्तति में जीवित रहता है जिसे "सेल्फ प्रोपेगेशन" कहते हैं। इसी एक वृत्ति से परिवार और जीवन रसमय बनता है। शास्त्रीय भाषा में इसी को पुत्रेष्णा कहते हैं। सामाजिक जीवन में वित्त आवश्यक है। जीवन को उपलब्धियाँ वित्त संगति से सम्भव हैं अतएव वित्तैष्णा और ख्याति के लिये अथवा लोक-दृष्टि में आत्म स्वरूप स्थापित करने के लिये ना ना उपस्य से --- दान, दक्षिणा, से, विद्यानुराग से अथवा पण्य से --- मनुष्य प्रयत्नशील रहा है। यही लोकेष्णा है। यही यथार्थ जीवन में आर्क्षों की निर्मिति है।

उर्वशी काव्य में जहाँ कामाक्षि प्रेम - स्वरूप का विषय वर्णन है वहीं पर पुत्रेष्णा का भी एक महत्वपूर्ण स्थान है। राजा पुरुषोत्तम भले ही अप्सरा उर्वशी के स्पाकर्षण में राज्य व और परिवार भूल गये हों किन्तु, उन्हें ऐल की के व उत्तराधि-धिकारी की निरन्तर चिन्ता बनी रहती है। अप्सरा प्रेम में जोशीनरी के प्रति छद्म करते हुये भी व उन्हीं व ने सहारा लिया व तो ऐल की के उत्तराधिकारी का ही। वे यह भूल गये कि किसी भी निःसन्तान नारी को पुत्र हीना कह कर कितनी गहरी चोट पहुँचाई जा सकती है चाहे वह राज रानी हो या सामान्या। उर्वशी से उन्हीं ने सम्पूर्ण काव्य में एक शब्द भी यह नहीं कहा कि वे उस से सन्तति - दान चाहते हैं। उन के अवचेतन में पुत्रेष्णा भाव है जब वे जोशीनरी के पास सन्देश भेजते हैं:-

प्रतिष्ठान पुर में भु का स्वर्गीय तेज जगता है
एक की धर बिना, किन्तु, सब - सुना लगता है
पुत्र। पुत्र। अपने गृह में क्या दीपक नहीं जलेगा
देवि दिव्य यह ऐल की क्या आने नहीं जलेगा

करती रहें प्रार्थना, झुटि हो नहीं धर्म साधन में

जहाँ रहूँ मैं भी रत हूँ हरिवर के आराधन में ।

राजा पुरुरवा एक ओर ऐल का के का धर ष के अभाव में रानी औरीनरी के को प्रवीध करते हैं और दूसरी ओर अपने प्रेम - प्रसंग को अथवा उर्की संग अपने प्रेम - विहार को गोपन रखने के लिये " मैं भी रत हूँ हरिवर के आराधन में " का छल - छद्म करने में नहीं चुकते। "पुत्र। पुत्र।" का सम्बोधन उनके अवचेतन में पुत्रेष्णा भी हो सकती है अथवा भाव - विह्वलता का मिथ्या प्रदर्शन जिस से वे औरीनरी के विश्वास पात्र पति बने रह सकें।

पुत्र - प्रेम का दूसरा स्वरूप चतुर्थ अंक में, उर्की का अपने पुत्र के प्रति, वात्सल्य भाव का चरमोत्कर्ष है। उर्की ने अपने पुत्र का प्रसव भी च्यवनाश्रम में किया है और प्रसवोपरान्त पालन - पोषण के लिये उसे सुकन्या के पास छोड़ कर अपने प्रियतम पुरुरवा के पास लौट गई। ऐसे भी अप्सरायें सन्ततियों के जन्म तो देती हैं उनका पालन पोषण नहीं करतीं। उर्की ने भी वही किया। किन्तु उसे मानव की माता होने का गर्व है। बच्चों के प्रति माता को स्नेहाकर्षण होता है उसी से प्रतिबन्धित उर्की अपने पुत्र आयु को हृदय से लगाती है। वह पुत्र पिता के समान ही तेजस्वी हो-गा और मरता के समान पुण्यवान। बच्चे को बार बार चुमकारने का निर्देश दे कर कवि ने अप्सरा का अपने पुत्र के प्रति वात्सल्य दिखा कर इस पुष्टि पुत्रेष्णा से उसे परितुष्ट कर दिया है। दूसरी ओर सुकन्या ने भी उर्की के गोद से बालक को ले कर उसके पालन - पोषण का संकल्प किया है एवं बाल-सुलभ चैष्टाओं की अनेक कल्पनायें की हैं।

पाँचवें अंक में सुकन्या आयु के प्रवेश से काव्य में नये आयाम प्रकट होने लगते हैं। सुकन्या आयु को आदेश देती है कि माता उर्की और पिता पुरुरवा को वह प्रणाम करे और इसके साथ ही उर्की भरत - शाप से ग्रसित हो पीड़ा - व्याकुल हो कर शनैः शनैः मंच से हटने लगती है और पुरुरवा पुत्र - प्रेम से उन्मादी होकर उद्धोष करने लगता है। पुत्रेष्णा को साकार होते देख कर पुरुरवा में जिस क्रैतना का स्फूर्ण हम देखते हैं वह उसके अवचेतन में बार बार बनी रहती थी परन्तु आयु-जन्म ज्ञात न होने के कारण वह भी मन में कहीं निराश रहता हो-गा। राजा में उसी पुत्र - प्रेम का उत्स फूट पड़ा है।

"पुत्र। सुख देवि। मैं पुत्रवान हूँ" मानों अपने इस सौभाग्य पर भी उसे सख्त विश्वास नहीं हो रहा है। इस हर्षातिरेक का एक कारण यह भी है कि स्वर्ग पुरुरवा पुनामक नरक की यातना भोगने से मुक्त हो गया है। उसे जागृत अस्मिन् भी है----- "ऐल का के महा मंच पर नया सूर्य निकला है।"

लेकिन गंध मादन पर्वत के विहार काल में पुरुरवा के मुख से एक बार भी पुत्र-
कामना या संतति - इच्छा की भावना प्रगट नहीं हुई। उर्वशी तो अप्सरा थी ही
काम के मोद उसकी ढूँढ़ा थी लेकिन पुरुरवा तो ऐल वंश हेतु आराधन करने गये थे^४।

वित्त ऐजणा और लोक ऐजणा के विषय में कूल इतना कहा छयछ जा सकता है
कि यह राज वंश का अभिजात्य प्रणय - काव्य है अतएव वित्तकी और से राजा
निरिचन्त है, बलिक, पुत्र - जन्म के अवसर पर तो इर्ष विह्वल है:-

द्वार छील दो कोष - भवन का, कह दो पौर जन्मों से
जितना भी चाहैं स्वर्ण जा कर ले जा सकते हैं।

उ० ५/१३४

इस से स्पष्ट प्रतीत होता है आयु उन की प्रथम सन्तति थी तथापि पुत्र प्राप्ति के
प्रति उनकी भी आशा क्षीण हो चुकी थी। पुत्र आयु के लिये "अक्षुत - सरी", प्राणों
के आलोक" जैसे सम्बोधन शब्दों का प्रयोग उनके वात्सल्य - उत्साह का ही
द्योतक है।

राजा पुरुरवा को लाल में ख्याति मिली थी। वे न केवल धरणी के ही
सुरवीर थे अपितु देवासुर संग्राम में भी उन्होंने ने देवताओं का पक्ष ले कर युद्ध किया
था। राज्य में सब प्रकार की श्रीवृद्धि थी और वे धर्माचरण कर तपस्वियों,
ऋषियों, मुनियों का सम्मान सत्कार करते थे। अतः उन्हें सिद्धि भी प्राप्त थी।
उर्वशी काव्य में यह सन्तति सम्पन्नता, वित्त सम्पन्नता और लोक सिद्धि
पुरुरवा की समस्त ईजणाओं की परिपूर्ति करती है।

~~~~~

## अध्याय सात उर्वशी में काव्यकार की जीवन दृष्टि

काव्यकार की मानसिक मनोभूमि

दार्शनिक विनकर

( ईश्वर, जीव, जगत, माया और साधना का विवेचन )

सत्त्व, रजस् और तमस् का बोध

पात्रों का मनोविज्ञान

—राम परक सिद्धान्त और कामाध्यात्म

—स्वप्न सिद्धान्त

—भूल का सिद्धान्त

जीवन दर्शन ( अ )

—प्रवृत्ति और निवृत्ति परक दर्शन

—राग और विराग परक दर्शन

—ईश्वरवादी और अनीश्वरवादी दर्शन

—तर्क-भावना प्रधान दर्शन

—पुरुषार्थ चतुष्टय का निरूपण

जीवन दर्शन ( आ )

—निरतिवाद

—आदर्शवाद

—यथार्थवाद

—स्वातन्त्र्यवाद

—सौन्दर्यवाद

—अहंवाद

—चमत्कारवाद

उर्वशी में  
काव्यकार की जीवन दृष्टि

00000

काव्यकार की मानसिक मनोभूमि

कविवर दिनकर के समक्ष वर्तमान युग का विलोल हृदय थाजिसे वे ऐसे काव्य में चित्रित करना चाहते थे जिस में नारी - जीवन - विषयक भोग्या, जाया और जननी का विचार किया जा सके। उनकी मनो दशा जानने के लिये "मृत्तिङ्गितक" में संकलित उनकी कविता " उर्वशी काव्य की समाप्ति", का अध्ययन अपेक्षित है। अपने भयकारी रोग के दिनों में उर्वशी लिखी गई जिस में दिनकर के आत्म चरित्र से ले कर जीवन - चिन्तन की स्वीकारोक्ति है :-

मैं ही पृथ्वी राजा था  
हाँ, तब से अब कुछ ताजा था

... ..

उर्वशी माद करके वह सुख  
हंस पड़ी सामने करके मुख  
जब त्रिया करे ऐसा तब नर  
हुमे गा कैसे नहीं अधर

... ..

फिर क्या था 'सब खून ग ये भेद  
हो उठा विभासित काम कैवेद।

इस पूरी कविता को पढ़ने से ज्ञात हो गा कि कवि के जीवन में जहाँ कहीं भी जो घुमन है या कि जो नैराश्य है उसे कविता की भूमि में लवलवा दिया है।

कवि के समक्ष जय रंजित प्रसाद की कामायनी का कामाध्यत्म है। मनु और शूद्रा, मनु और बड़ा और मनु - बड़ा-शूद्रा-मानव के चित्र में गुपित सब कथाएँ हैं



जो नैसर्गिक काम से प्रारम्भ हुई और जिस का अखण्ड आनन्द में पदार्थिज्ञान हुआ है। 1936 से 1961 तक के पच्चीस वर्षों में कामायनी का पर्याप्त अध्ययन - अध्यापन हुआ था और छायावाद काव्य की वह एक प्रतिष्ठित कृति के रूप में स्थापित हो चुकी थी। दिनकर जी तब पुरुषार्थ और हुंकार के कवि जाने जाते थे जो छिन्न कवि सम्मेलनों में अपने स्वर - माधुर्य से प्रतिष्ठित हो चुके थे। किन्तु उनके मन में अथवा अवचेतन में यह भाव बराबर बना रहा हो गा कि वे भी ऐसी ही कृति के को साहित्य जगत में दें जो क कामायनी के समान ही प्रतिष्ठा प्राप्त कर सके। दिनकर के मन का यह उत्पीड़न उर्करी - भूमिका में उनके कथन से ही अधिक अभिव्यक्त है:-

"मनु और इडा को सन्तान की इच्छा (काम) हुई,  
उन्होंने ने वशिष्ठ ऋषि से यह करवाया।"

और

"इस दृष्टि से मनु और इडा तथा पुरुषा और  
उर्करी, ये दोनों ही कथाएँ एक ही विषय को  
व्यंजित करती हैं। सृष्टि विकास की जिस प्रक्रिया के  
वर्तव्य पक्ष का प्रतीक मनु और इडा का आख्यान है  
उसी प्रक्रिया का भावना पक्ष पुरुषा और उर्करी  
की कथा में कहा गया है।"

अर्थात् दिनकर प्रसाद की "कामायनी" का ही विस्तार कर उर्करी लिख रहे थे। किञ्चित् गहराई से देखते देखें तो एक पुरुष मनु और पुरुषा, दो महिलाएँ इडा - इडा और औशीनरी - उर्करी का काम पात्र रूप में और काम भावना रूप में मानव मनु - पुत्र, इडा पोषित; आयुः पुरुषा - पुत्र सुकन्या पोषित मनु की इडा के प्रति अधिकार भावना और पुरुषा का उर्करी - संग गंधमादन विहार लगभग समान कथा - सूत्र हैं। जब शंकर प्रसाद के रहस्य सर्ग की इच्छा, ज्ञान, क्रिया - जन्ति शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध की सुषुप्त पुरुषियों का गांभीर्य मादकता की लहर की ऊँचाई अंगड़ाई में सन्निहित हो कर प्रभाव की री है और दिनकर की भी "उर्करी" का रसना, प्राण का त्वक तथा श्रोत्र की प्रतीक है और पुरुषा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द से मिलने वाले सुखों से उद्बलित मनुष्यी" किन्तु, जहाँ कामायनी मानव समाज के क्रमिक विकास और वर्णम धर्म के जन्म दे कर मनवन्तर का बोध कराती है वहाँ उर्करी विभिन्न चिन्ताओं के तर्क - जन्ति ज्ञान का सास्त्रार्थ प्रतीत होती है। यह बहुत स्पष्ट लगने लगता है कि दिनकर कामायनी के प्रभाव को चाह कर भी दूर नहीं कर सके थे। यहाँ तक कि कहीं कहीं शब्दावलि भी "प्रसाद" की ही है। दिनकर की इस मानसिक मनोभूमि को नकारा नहीं जा सकता।

दूसरी मानसिकता थी दिनकर पर वर्तमान अंग्रेजी चिन्तकों का प्रभाव, जिसमें डी० एच० लारेन्स और वर्टेण्ड रसल प्रमुख हैं। लारेन्स की काम विषयक कवितायें जो निरन्तर अप्रचलित रही हैं, उन का अनुवाद कर दिनकर ने लारेन्स के प्रभाव को स्वीकृति दे कर एक आध कविता में यह भी कह दिया है कि वे लारेन्सेस कुछ अधिक जानते हैं। "नहीं मिस्टर लारेन्स नहीं" ऐसी ही कविता है। नकारना भी तो स्वीकारोक्ति का एक प्रकार है। दिनकर वर्तमान के कवि हैं। वे वर्तमान से घृणा ग्रहण कर पुराण इतिहास में समानान्तरता ढूँढ कर अपनी रचना करते हैं। का काम का त्याग, ग्रहण अथवा संतुलन का प्रश्न अनादिकाल से चला आ रहा है। उर्वशी में उसी काम का वर्तमान स्वर है। दिनकर व्यन्द के कवि हैं अतः पुरुरवा भी वही व्यन्द है जो सामाजिक मर्यादा और मनुष्य की मूल ब्रह्म प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति में निहित है। पौराणिक पात्र तो निमित्त मात्र हैं। उर्वशी के तीसरे अंक में पुरुरवा और उर्वशी की पात्रता कम है दिनकर की विचार श्रृंखला की कड़ियों की प्रतीकात्मकता अधिक है। उर्वशी उन्मुक्त प्रेम-धारा का अनवरत प्रवाह है। नारी का चित्रण पत्नी, स्वच्छन्द प्रेमिका और आधुनिका के रूप में किया गया है जो निश्चय ही लारेन्स के विचारों के स्वरूप है। स्वच्छन्द प्रेम विवाहित प्रेम से अधिक मोहक होता है इस लिये उर्वशी औरशिनरी से अधिक आकर्षक है परन्तु दिनकर की मान्यता बनी है --- "जो त्रिया अन्त में आती है वह सब परे क्यों छा जाती है।" और अन्त में औरशिनरी ही बचती है। उस मानसिक स्थिति में भारतीय संस्कार और आधुनिक पारवात्य जीवन दर्शन का संगम ही दिनकर उर्वशी में चित्रित करने का प्रयास करते रहे हैं।

#### दार्शनिक दिनकर

दिनकर उस अर्थ में दार्शनिक नहीं हैं जिस अर्थ में हम "फिलॉसफर" शब्द का प्रयोग करते हैं। उन्हें हम एक आधुनिक विचारक कह सकते हैं। उन पर अंग्रेजी साहित्यकारों और दार्शनिकों का प्रभाव है, सही है, किन्तु, संस्कार का प्रभाव का भी उनके मानसिक और बौद्धिक व्यक्तित्व के निर्माण में हाथ है। दिनकर यदि लारेन्स और रसल से प्रभावित हैं तो निश्चय ही तुलसी, गीता, कालिदास, रवीन्द्र अरविन्द से भी उनका बौद्धिक निर्माण पूजा है। भारतीय चिन्तक और मनीषी स

सदा ही जीव - जगत् - माया ईश्वर अद्वैतवाद अद्वैतवाद आदि का चिन्तन करता है। उर्कशी में दिनकर ने इनका जो भी स्वरूप प्रस्तुत किया है उनका आधार भारतीय दर्शन ही है यद्यपि कथन सौन्दर्य अथवा बौद्धिक चमत्कार या शब्द-विन्यास से उस छेखछा में न्यापन लाने का उनका सदा प्रयास रहा है।

ईश्वर चिन्तन:-

उर्कशी काव्य में एकेश्वरवाद के दर्शन होते हैं।

" एकोडहं द्वितीयो नास्ति " को कवि ने अन्य - पुरुष सर्वनाम से प्रस्तुत किया है "जिस की इच्छा का प्रसार झूल घाताल गगन है" उस

चिन्मयी शक्ति के ही अगणित सक्ता सोम आदि कन्दुक झूँझा करते हैं। वह एक सर्व शक्तिमान अनेक नाम - रूप धर कर इस जगत् में व्याप्त है और अन्त में वही आनन्द स्वरूप है। यह चराचर जगत् उस एक ब्रह्म की रचना है, उसी की सृष्टि है, --- "यह सब उनकी कृपा सृष्टि जिन की निगूढ़ रचना है।", समस्त प्राणी - लोक उसी ब्रह्म से संचालित है। जगत् में जो नर - नारी भेद है वह भी प्रतीक है ईश्वरीय सत्ता के:-

वह निरग्न आकाश जहीकी निर्विकल्प सुखमा में  
न तो पुरुष मे पुरुष, न तुम नारी केवल नारी हो  
दोनों हैं प्रतिमान किसी एक ही मूल सत्ता के।

उ० ३/

दिनकर शैव मत्तावलम्बी हैं और शिव के अलग उपासक हैं। पुराणों में शिव शिवा के अनेक आख्यान हैं। दिनकर प्रत्येक पुरुष में शिव और प्रत्येक प्रणयनी में नारी में शिवा को देखते हैं:-

वहाँ जहाँ कैलाश प्रान्त में शिव प्रत्येक पुरुष है  
और शक्ति दायिनी शिवा प्रत्येक प्रणयनी नारी ।

उ० ३/६०

दिनकर में दोनों ही साकार और निराकार ईश्वर - स्वरूप के दर्शन होते हैं। कछा परमात्मा की साकारता तो एक प्रतीक है, छेखे है तो वह निराकार ही, अक्षर-ब्रह्म। सुर ने जिसे " रूप रेखा गुण गाति पुनर्गति बिनु " जान कर सगुण लीला पद गाने छानों की बात कही थी वही दिनकर ने भी स्वीकारी है:-

यह अल्प आत्मा - तरंग अपिनि उसके घरणों पर  
निराकार जो जाग रहा है सारे आकाशों में ।

अद्वैत के स्वरूप और निरूप की कवि ने स्वीकार किया है और इस अद्वैत सत्ता में न तो समय की कोई सीमा है और न ही दिशाओं की। उर्कशी और पुरुषवा दोनों ने



ही भूत - भविष्य वर्तमान की सीमाओं को, तीनों लोकों को अपने अन्तर्मन के प्रासाद में ही देखा है:-

महा शून्य के अन्तर - ग्रह में उस अद्वैत भवन में

जहाँ पहुँच दिवकाल एक है, कोहभेद नहीं है।

दिनकर के विचार में प्रकृति और परमेश्वर की सत्ता अभिन्न है। दोनों ही एक ही न तो प्रतियोगी हैं और न पृथक्। प्रकृति में परमेश्वर और परमेश्वर में प्रकृति एक रस ही कर समायी हुई है:-

ईश्वरीय जगत् अभिन्न नहीं है, इस गोचर जगती से

इसी अपावन में अदृश्य वह पावन लगा हुआ है।

उ० ३/७३

ईश्वर, शान्ति भी नहीं है। ईश्वर एक अनुभूति है। पुरुष और नारी के रूप में ही हम ईश्वर और प्रकृति को एकात्म भाव से जानते हैं। दिनकर का "अर्धनारीश्वर" में अगाध विश्वास है। इस लिये जितने दिनकर के मत में प्रकृति और परमेश्वर एक ही सत्ता हैं, भिन्न नहीं:-

मोह मात्र ही नहीं, सभी ऐसे विचार बन्धन हैं

जो सिखलाते हैं मनुष्य को, प्रकृति और परमेश्वर

दो हैं, जो भी प्रकृत हुआ, वह दूर हुआ ईश्वर से

ईश्वर का जो हुआ, उसे फिर प्रकृति नहीं पायेगी।

माया:-

प्रकृति और परमेश्वर की अभिन्न सत्ता प्रकट रूप में एक

प्रतीत नहीं होती। परमेश्वर अदृश्य है, प्रकृति दृश्य-

जगत् उस दृश्य जगत् को ही हमारा बुद्धि उस अदृश्य विराट

से प्रकट करती है और दिखा करती है कि हम परमेश्वर को

प्रकृति से पृथक् और ऊपर स्वीकार करें। यही माया है। माया बुद्धि-जनित है। "शुद्ध बुद्धि

की निर्मितियाँ निष्प्राण हुआ करती हैं।" तो क्या बुद्धि निरान्त भ्रम है 'बुद्धि

बुद्धिद तर्क - शीत है --- एक साथ दो दो पक्ष सिद्ध करती है। जहाँ द्वैत भाव

है वहीं प्रकृति की एक रूपता छिपित प्रतीत होती है वह चाहे श्वेत हो या श्याम।

द्वैत मन की विचारणा है। जैसे ही मन में द्वैत भाव मिटा, माया वहाँ टिक नहीं

पाती। दिनकर ने उसी मत का पोजन किया है:-

प्रकृति नहीं, माया है नाम भ्रमिन् उस धी का

बीचों बीच सर्प-सी जिस की जिह्वा पटी हुई है।

प्रकृति का अस्तित्व शून्य है। प्रकृति की परिवर्तनशीलता को देख कर उसे माया

कहना मूजा है। परिवर्तन प्रकृति की सहज प्राण धारा है। अतएव जो दृश्यमान जगत्

जगत् है उसे माया समझना प्रकृति की एक रूपता को छिपित कर के देना मात्र है:-

मन की कृति यह चैत, प्रकृति में सद्यमुच चैत नहीं है  
जब तक प्रकृति विभक्त पड़ी है तब तक नयाम छण्डों में  
किस तभी तक माया का मिथ्या प्रवाह लगता है।

"ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या" की सार्थकता को दिनकर ने चैत में माना है। सत्य सदा  
एक होता है और मिथ्या ना ना नाम रूप धारी। जब हम इन ना ना नाम-रूपों  
को मन से निरोद्ध कर देते हैं तब एक ब्रह्म ही हमें गोचर होता है और "सर्व  
छत्विन्द ब्रह्म" की अवधारणा ही सत्य लगती है। विधि - निषेध तो जगत् का  
बौद्ध संस्त कार्य व्यापार है। लोभ, तृष्णा, राग, - विराग आदि आकृष्य बुद्धि  
जन्ति है। यह भ्रम ही तो हमें स्थिर नहीं रहने देता। पुरुरवा भी इन आकर्षणों  
में उर्वी जाया छींचा जा रहा है। वह माया को ग्राम्य-रूपा के रूप में निम्नतर  
भाव मान कर उर्वी को "मायाविता" शब्द से सम्बोधित भी करता है:-

मायाविता। वहबन्द मुकुल है महा सिन्धु का तट है।

कहाँ उच्च वह शिखर, काल का जिस पर अभी विलस था  
और कहाँ यह तृणा ग्राम्य नीचे आवर बहने की  
पर्वत की आसुरी शक्ति है <sup>अतुल</sup> अमूल्य आलोक में  
प्रान्त स्वयं या जान <sup>कर</sup> मुझ को प्रमा रही हो।

उ० ३/७३

जीव:-

कबीर ने भी माया को महाठगनी कहा है। क्या उर्वी भी  
पुरुरवा के लिये महाठगनी है? अन्यथा पुरुरवा उसे मायाविति  
क्यों कहता है? यह विचारणीय है। अथवा आज भी हम  
नारी को माया का प्रतीक मान कर उसकी उपेक्षा करने में

नहीं झुके चुके? नारी रंगों का कोलाहल है, पृथ्वी का मोह है, फूलों की  
उत्फुल्लता है या नयी दीप्ति है? अथवा पुरुष एक कछल - कनक - पर्वत से काटी  
गई प्रतिमा है जिस का स्वरूप असुरों से क्ली और सुरों से मनोरम है, जिस की बाँहों  
का आलिंगन पुलक - विच्छल, और प्रसन्न मुर्छा से आनन्दित करने वाला है।<sup>२</sup> पि  
फिर इस सब माया मुक्ति का उपाय क्या है? दिनकर ने माया मुक्ति के लिये गीता  
का आश्रय ले कर पलासक्ति हीन निष्काम - कर्म - धारा का अकाम आनन्द ही  
एक अनुकूल मार्ग बताया है। गीता में लिखा है:-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचान

मा कर्मफल हेतुर्भूमा ते संगोऽक्षयकर्मणि "

दिनकर ने उर्वी में इसी भाव को माया है:-

१:- उर्वी: ३/७१

२:- वही: ३/७२

यह अकाम आनन्द भाग सन्तुष्ट भान्त उस जन का  
जिस के सम्मुख फलासक्तिमय कोई दृश्य नहीं है  
जो अविरत तन्मय निर्लज्ज से एकाकार प्रकृति से  
बहता रहता मुदित, पूर्ण, निष्काम कर्म धारा में।

उ० ३/७४

सुख भौतिक है, सुख की छीज में बुद्धिद चिन्ताकूल है, दुःख की आरंका भ्याकूल  
बनाये हुये है। मनुष्य मुद है, वह प्रकृति और चेतन में भेद करता है। वह भूल जाता  
है कि वही प्रकृति है, वही चेतना है, और वही आत्मा का स्वर है।<sup>१</sup> वही  
कारण है कि चैत भाव मनुजकृत और चैतन्यात्मक है।

प्रकृति की साधना करना हरदराधना है। कर्म - पूजा ही साधन है। काम-  
धर्म का पालन करना पुरुष है, मन की लालसा से उत्पन्न काम पाप व कलात्कार  
को जन्म देता है। इसी लिये कवि कहता है "तन का काम अमृत किन्तु यह मन का  
काम गरल है।" प्रश्न है मन का काम गरल है सही है किन्तु तन का काम भी क्या  
अमृत है? इसी लिये निष्काम - मन आनन्द युक्त है। उर्वशी जो केवल तन सुख,  
चुम्बन - परिरम्भन - सुख भोगने के लिये धरती पर आई थी वह गीता - ज्ञान की  
उपदेशक बन गई ---- एक व्यवस्थान पूर्ण वैचित्र्य है।

सद् बुद्धि से परे रह कर मनुष्य स्नायविक हस्तेजना और रक्त की कलवत्ता  
को स्वीकार करने लगता है। मनुष्य जीवन में उह जन्ममय कोष से आनन्दमय कोष  
तक पांच क्रेणी है। जन्म मय कोष तन जन्तु सुख - आहार निद्रा भय भैरुन - तक  
सीमित है। रक्त की कलवत्ता उस अव्यय व पूर्ण सक्ति तक पहुँचने नहीं देती।<sup>१</sup>  
हम माध्वी किरणों के कोलाहल में छोये रहते हैं।<sup>२</sup> जब कि हमारा उद्देश्य  
आनन्द की अनुभूति है, शिव लोक में पहुँचना है।<sup>३</sup>

जगत:-

जीव की माया - भूमि जगत है। जगत की इस कर्म रंग स्थली  
में मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार ही फल प्राप्त करता है---

'कर्म प्रधान क्रिय करि राखी, जो जस करिहि सो तस फल  
चाखी।' इसी जगत की व्याख्या करते हुये प्रसाद ने

कामायनी में इसे "नीड बनोहर कृतियों, यह शिव कर्म - रंगस्थल है।" कहा है।

१:- उर्वशी: ३/७७

२:- वही: ३/७७

३:- वही: ३/७०



जारीबन के अनुसार "योग्यतामूलक" (Survival of the fittest) सिद्धान्त के अनुसार केवल सक्षम ही जीवन - भोग निरत रहते हैं। कवि दिनकर ने भी सुख दुःख को सुधा - गरल की छल्ले भाँति एकत्र माना है --- यही भूमि का नियम है:-

"सुख है जहाँ, वहाँ दुःख जातायन से गाँक रहा है।"

उ० ४/१२

उर्कगी को इस जगत में हानिप्रय जनित समस्त - सुख प्राप्त हैं फिर भी वह भया-  
ग्रान्त है। "पुत्र और पति नहीं" पुष्ट या केवल पति पाओगी" की शीघ्र-हानि  
निरन्तर उसे पीजित करती है।

जगत नाम्ना रूप रंग धारी है। राज सुख की भावक कष्ट तरंग से जीवन की  
विषम स्थिति तक का यहाँ योग है। यदि संसार कुछ भी है तो जाग्रम - कुटीर  
से लेकर राज प्रासाद तक के जीवन का संघर्ष है। पृथ्वी पर जीवन के सभी सुख  
उपलब्ध हैं। प्रणय - सुख तो एक देवता - तरंग है। दिन रोने में और रात कराँट  
बदलने में व्यतीत होती है। जानन्द तो निवृत्ति में है काम - तरंग की त्याग  
कर काम - धर्म में संलग्न होने में। पुनः कर्मफल इसी के अधीन है। कर्मफल भी एक  
जन्म में नहीं जन्मान्तरों तक प्रभावित करती है:-

और यहाँ जो कुछ करते हैं, उसकी गंध हवा में  
उड़ती उड़ती दूर जन्म जन्मान्तर तक जाती है।

उ० ३/१४

साधना:-

दिनकर ने उर्कगी में किसी साधना तंत्र का प्रतिपादन नहीं  
किया है। कथानक में बिखरे हुए प्रसंगों से अन्वय ही यह  
पता चलता है कि साधना के प्रति दिनकर में एक निष्ठा  
भाव है। दिनकर जानते हैं कि गार्हस्थ्य-धर्म में देवी -

देवताओं के पूजन उर्जन वन्दन का कार्य नारी के भाग में अधिक है क्योंकि परिवार  
के विकास और उसकी सुरक्षा के लिये देव - कु कृपा सनातन है। महारानी  
औरीनारी भी अपने पति पुरुषवा से उपेक्षित है अतः वह भी पूत आदि का पालन  
कर रही है:-

प्रिया/ की प्रीति हेतु रानी कोई पूत साध रही है  
सुना, आजकल चन्द्र - देवता को आराधन रही है।

उ० १/२५

चन्द्र - देवता की पूजा करना सती - साधिव्यों के लिये शास्त्र विहित है। पुरुषवा  
का की ही चन्द्र की है अतः की पूजा क और पति - पूजन करना औरीनारी के ही

१:- उर्कगी: १/१४

अनुसंधान है। वह प्रमदवन से पति पूजन कर जब राज प्रासाद में वापिस आई है तब वह अत्यन्त सन्तुष्ट थी। अपने दाम्पत्य जीवन पर उन्हें चन्द्रमा - रोहिणी के दाम्पत्य प्रेम जैसी विश्वास था किन्तु जो उर्वशी के आने पर और राजा पुरूरवा की प्रेयसी बनने पर टूट कर टूट कर बिखर गया है।

दिनकर का यज्ञादिक कर्म काण्ड पर भी विश्वास है। इसलिये राजा पुरूरवा ने महारानी औशीनरी के पास यह सूचना भिजवाई है:-

एक वर्ष पर्यन्त गन्ध मादन पर हम विचरेंगे

प्रत्यागत हो नैमिषेय नामक शुभ यज्ञ करेंगे।

उ० २/३।

और इसी यज्ञ की शुभ सम्पन्नता कुल वन्तिता क्षपरिणीता औशीनरी के योग के बिना पूरी नहीं हो गी। इस यज्ञ, - धर्म के लिये औशीनरी का सहयोग आवश्यक है अतः उसे जीवित भी रहना है। वर्तमान में सप्तमी व्रज के कारण अनेक आत्म-उत्थार्य भी हो रही हैं या कुल - विच्छेद हो रहे हैं, दिनकर सम्भवतः इस दृष्टि से ही इसी दिशा में संकेत कर रहे हैं।

महाराज पुरूरवा द्वारा भेजे गये मन्देश में एक आदेशात्मक श्वर भी है और 'एल वर' के आगे बढ़ाने के लिये कुलदीपक के प्राप्त करने की <sup>चाह</sup> ~~प्रार्थना~~ भी। इस लिये उन का आदेश है:-

करती छूटे रहें प्रार्थना, ब्रुटि हो नहीं धर्म साधन में

जहाँ रहूँ, मैं भी रत हूँ श्वर के आराधन में।

उ० २/३९

संतप्त और विवश कुल वामा औशीनरी क्या करे? वह तो मन मार कर इतना ही कह सकती है:-

----- हाँ, अनोखी साधना है

आमरा के संग रहना ही की आराधना है।

पुत्र पाने के लिये विहरा करें वे कूज - धन में

और मैं आराधना करती रहूँ मुने भवन में।

"सुने भवन" की ध्वजना बड़ी मार्मिक है।

स यह सत्य है कि उर्वशी के तृतीय अंक में अनासक्ति योग की चर्चा की गई है। उर्वशी तो पुरूरवा के पास काम - तृष्णा को तृप्त करने आई थी न कि उस योगी पुरूरवा के पास आई जो "तन से गुम को कैसे हुये ह अपने दृढ़ आर्त्तमन में, मन से किन्तु विष्मय देर तुम कहाँ चले जाते हो।" यह योग साधना - स्रष्टा तन्त्र - शास्त्र से विनिर्मुक्त है। इसी अंक में राजा पुरूरवा उर्वशी को गीता का उपदेश भी देता है क्योंकि वह स्वयं उस का पालन करता है:-

"निद्रा योगश्च - जागृति का क्षण है और उदग्र प्रणय की एकाग्रतात्मक समाधि, काल के इसी गस्त के नीचे भूता है उस पथिक समय का अतिक्रमण करते हैं योगी अन्धे अपार योग में, इस प्रणयी आलिंगन में।"

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है:-

"या निद्रा सर्वं हि भूतानां तस्यां जागृति संयमी  
सस्यां जागृति भूतानि सा निद्रा परमतो मुनेः"

श्रीमद् भागवत गीता: 2/69

इस साधना प्रक्रिया को प्रत्यक्ष प्राप्त किया है महर्षि च्यवन ने। वह सुकन्या को प्राप्त करने में अपनी तपस्या की च्युति नहीं सिद्ध मानते हैं। यह हरि का प्रसाद है। च्यवन और सुकन्या का रिश्ता - सिद्ध जीवन भारतीय गार्हस्थ्य और नारी जीवन का चरम आदर्श है।

राजा पुरुषोत्तम तो मात्र एक साधन हैं। पुरुषोत्तम की प्रवृत्ति का कुछ कुछ प्रकोप दिया जा रहा है। उसे सन्तुष्ट होना ही है। सन्यास में कामना नहीं प्रार्थना है। सांसारिकता से कुछ प्रथम अहं ब्रह्मात्मिक का निन्द्यसिद्धि है।

कुछ एक स्थलों पर कवि दिनकर ने सर्वज्या भक्त का भी प्रतिपादन किया है। अन्ततः पुरुषोत्तम भी सन्तुष्ट हो कर अरण्य वासी होते हैं। भोग से योग, योग से भोग यही जीवन का क्रम है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय



उर्वशी में  
सत्य, रजस और तमस  
का बोध

0000000

मन्त्रार्थ तंत्र है व अनुसार सत्य, रजस और तमस अलग जादया शक्ति की तीन गुण शक्तियाँ हैं। सत्य देवी का यह स्वरूप है उस जो अछूट आनन्द दायी है और जो जगत की स्थिति और अनस्थिति दोनों का ही कारण है।<sup>1</sup> सत्य वह प्रभाव शक्ति है जो ज्ञाना को निष्ठ करती है, रजस आकर्षण - विकर्षण की क्रिया है जो और तमस एक क्रिया होना है जो तमस पदार्थ में सूक्ष्म स्था शक्ति है।<sup>2</sup> उर्वशी में रजस और सत्य की प्रसंगानुसूता सुष्टि मुद्रित की गयी है। इन तीन गुणों में केवल रजस में ही यह शक्ति है जो है कि वह त्रिगुण - संश्लेष से पृथक् हो कर प्रवर्धन क्रिया को समग्र गुण - शक्तियों द्वारा चम्प देती है। उर्वशी मुक्तः सभी रजस गुण का कायक है।

सत्यः -

अछूट आनन्द की उपलब्धि ही जीवन का उद्देश्य है जिस की प्राप्ति हैं लिये मानव निरन्तर प्रयास रत रहता है। यह अछूट आनन्द अनासक्ति, योग और किङ्काम आनन्द से उपलब्ध हो सकता है। कवि दिग्गज ने पुरुषार्थ - उर्वशी के रजस भाव में भी इस अछूट सत्य सत्य की विस्तृत मर्ही किया है। मानव-जीवन का चरम उद्देश्य उस पुरुषार्थ के समान है जो उस से उत्पन्न हो कर भी उस से निर्मित है:-

पुरुषार्थ के सपूरा मुक्ति - उस ही जिस का जीवन है  
पर, तब भी रहता अतिष्ठ जो सतित और कर्म से ।

उ० ३/४३

यह ही एक उपमा है। बातें तो यह है कि पानी पर सब चीजें, किन्तु, पानी का धारा नहीं लगे।<sup>3</sup> यही अनासक्ति है। हम रहता - जगत में ही रहते हैं पर चञ्चलों के जालीला न हो कर रहना ही अनासक्ति है। अनासक्ति प्रणय की भी शक्ति कर देती है:-

१. तंत्र आसन पृ-१८

२. अष्टा पृ-१६

३. उर्वशी शक्ति (ज)

नहीं स्तर बच्चाओं तक ही अनासक्ति सीमित है

उस का विविध स्तर प्रणय की भी परिचय करता है। <sup>4</sup>

पुत्रवा के बाद वलय में आकर्षित उर्ध्वी अनुभव करती है कि पुत्रवा मन से कहीं दूरस्थ लोक में विचरण करने का सङ्घात है। तत्र शास्त्र हैं भी तो यही कहता है। समागम में तीन रहने पर भी समागम - सुख को अनुभवत न करना ही साधना है। राजा पुत्रवा इस स्तरव की जानती हैं। यही स्तरव उन्हें सामान्य - मानव से ऊपर उठा देता है:-

और तब सदा

न जाने, ध्यान की जाता कहां व पर

सत्य ही, रहता नहीं यह ज्ञान

सुख कीकता, सुख या कामिनी की।

आरती की ज्योति को भुज में समेटे

में तुम्हारी और अलक देखता एकान्त मन से

स्व के उद्गम अगम का भेद गुंता हूँ।

उ० ३/४९

जीवन का स्तरव ऊर्ध्व गामी ज्ञेयता में निहित है। समस्त संघर्ष तो सामान्य मानवों की गति है, किन्तु, जो अन्तरज्ञेयता चाही है उन्हें तो पिरा कीध और डाल - गति से भी जाने ज्ञेयता के स्व में मिलना है:-

महा शुभ्य का डाल हमारे मन का भी उद्गम है

कल्पी है ज्ञेयता कात के आदि मूल की ही कर।

उ० ३/५५

यस अनासक्ति अलक अथवा अनासक्ति का मोह न रह कर काम करना ही निष्काम अलम्ब है की प्रतिष्ठा है।

पुत्रवा स्तरव - स्वस्थ मिलता है औरानरी में। उस में कहीं भी राग-विषाद नहीं। अपने प्रति राजा पुत्रवा की परिणीता होने पर भी उर्ध्वीकता का जीवन व्यतीत करने वाली नारी जो उठी पूर मन में जीम पर लहर नहीं, फिर भी <sup>पियरम</sup> प्रियम के पक्ष में सर्वत्र पूर बिजाती रही, <sup>2</sup> यह औरानरी समग्र जन मानस की कला का केन्द्र बन गई है। सुकन्या में आर्या नारी जीवन के अर्थव्य की सुखिता है अतः यह भी स्तरव की प्रतीक कपी हुई है।

१:- उर्ध्वी भूमिका: ३/४३

२:- उर्ध्वी: २/३९

रखत:-

सामुंर्य उर्दी की काम रखत का काम है। रखत आकर्म  
भी है और निकलना भी। आकर्म सोन्दर्य के प्रति, नारी  
के प्रति और काम भाव के प्रति, जितना मनुष्य और कुछ  
कुछ वाणी है। आकाश से उतरती हुई अप्सराओं का  
सोन्दर्य है जैसे "तन पर भीने हुए वसन हैं किरणों की जाली के" और उन जाली  
दार क वस्त्रों में तन - सोन्दर्य का जोड़ना जितना असौकर है। इन अप्सराओं  
के मुख पर भी पराग ज्यों से मला गया और रंग लुगीला है। असा वस्त्रों अप्सराओं  
में तो उर्दी की भी होना आ। उस सोन्दर्य के प्रति असा लोग आकर्षित न हो पा।  
क उर्दी की तो देव लोक की सोन्दर्य - भी है:-

जली लिये तो सखी उर्दी का मन्दन मन की  
सुरपुर की कोसुरी, कलिल कामना चन्द्र के मन की।  
रति की मूर्ति, रमा की प्रतिमा, लूना किचनमन पर की  
लिखु की प्राणेश्वरी, आरती - रिखा काम के कर की।

उ० १/१३

ऐसी नर से न ले कर चन्द्र की कामना केन्द्र उर्दी मूल आकर्म का जिस  
और लय ली उर्दी का प्रणव म्वाकुन है, तन से जमी, स्वप्न के दुर्धों में मन से न  
जोड़ लोनी की लज्जा के तन के अर्थ - नीलित नमन अधिक आकर्षक लगते हैं। कि  
दिनकर ने सोन्दर्य - प्रकृत कलिल काम के जिस लय की कामना की है वह कितना  
मादक, कोमल और उमसाही है। कामना के स्वर की भी उर्दी ने भावना की  
प्राकृतता में खलिल बना दिया है:-

कनक - रंग में नर की रंग - देती अनुराग लगी उस  
देती मुक्त उर्दी और - मधु साव लय लगी ठके में  
कुछ से देती लीक कनक - लज्जा की लय लगी में।

उ० १/१५

अर - मधु, और कनक - लज्जा की साधारणता क्या हमें काम - विभोर नहीं कर  
देती ' उर्दी का काम - अर्थ - कुछ - भी-या सामान्य नारी लय गर्व है, अप्सरा  
लोक की सुन्दरी रीत नहीं रह गई। जिस काम की अर्थ साधनी लज्जा चाहती है  
उर्दी, अप्सराओं की दृष्टि में वह काम राधा पुरुषों की "मधु के मधे लज्जा" के  
उठ में भीन कर जोड़ लगी से अभिलिखित नियम की एक मुख्य धृष्टता चाहता है।  
वह पुरुषों की उर्दी का एक सुन्दरतम लज्जा किन लज्जा चाहता है विलीनता  
जोशीनारी का प्रति भी है जैसे भी वह लज्जा लिरम्बुत नहीं करता। उर्दी लज्जा  
लिखित - साधनी है, वह साव नारी नहीं करे, सोन्दर्य की कामना है:-

११- उर्दी : १/२२

१२- उर्दी : २/११





समस्त समस्त विषय की व्याख्या - कामना जीवन में रहने के लिए मनुष्य की  
प्रतिष्ठा है। उर्ध्वी के जन्म में यही वीर्य वर्णन है जो कामना की प्रतिस्थापना है।

वरस गया पीयूष, देवि। यह भी है धर्म त्रियाळा.  
अटक गयी हो तरी मनुज की किसी व्याट अवस्था में  
तो दिगुनी की शक्ति लगा गरी फिर उसे चला दे  
और लुप्त हो जाय पुनः आप प्रकाश हलचल से।

समस्त भाव उर्ध्वी में नहीं है। राजा दुर्गता की यदि प्रीति जाता भी है तो  
यह क्षण भर के लिये जिस में वीर्य भाव है अतः यह भी समस्त की कोटि में नहीं  
जाता। यह एक सार्विक वीर भाव है जो प्रतीत होता है।

उर्ध्वी मुक्तः राजा भाव का राज्य है। सर्व के धाम - विनाय में सार्विक  
की कहीं यदि भक्त मिलती है तो यह राजा - मण्डल में ही समाधि पूर्व है।

-----

उर्दू में  
बातों का मनोविधान

उर्दू में प्रमुख बातें दो ही हैं। पुरुषता और उर्दूगी। औरीनरीय भी इन बातों में। और सुकन्ना तथा चकन सम्बन्धित मर हैं। उर्दूगी का अर्थ का समग्र अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उर्दूगी एक काम - सुविधा नारी है। वह न तो मनु-पुरुषी का स्थान ले पाती है, --- वह मनुषी सम्मान भी नहीं चाहती, और न ही हो सकती है। इतराज से ही उसका स्व नारी में परवर्तित अपहरा रूप है अतः वह वह कभी भी सामान्यता का सा प्रभाव नहीं रखती। धरती पर जाना और पुनः को साक्षात् व्याख्या करना स्व-भोग और ऐच्छिक भोग के अतिरिक्त वह कुछ चाहती भी नहीं। मातृत्व उसके लिये सार्वभौम भाव है और मातृत्व भाव ही स्वल्प उसे कुछ समय के लिये मानवी जैसा बना देता है। पुरुषता पुरुषत्व का प्रतीक है। इसमें लीन्यर्य के प्रति आकर्षण की मानवी स्वाभाविकता है, लीन्यर्य करने की क्षमता है और अपनी दुर्बलता पर विजय पाने का संकल्प भी है। वह अपनी उद्दिष्ट परिलक्षिता महारानी औरीनरी कीर्तनी के लिये इच्छा कर सकता है पर विरहकार नहीं कर सकता। उर्दूगी तो राजा पुरुषता के पास काम - विजयताका आर्ष है। "तो तो मैं का वह नहीं" एव में बड़ी विजय भाव की झलक है। औरीनरी की दूसरी विजयता है। वह अपने प्रति पुरुषता की स्वाभिमन्यता पर निर्भर नहीं रह सकती क्योंकि वह उसे "अनुचित के रूप में निम्नता कर" नहीं रह सकती, वह पुनः नहीं बन सकती। बली लिये जीवन भर सपरन्वी-जैव का जैव जीवन के लिये वह विजय है। वह राजा पुरुषता की उद्म - भावा भी समझती है पर जैव जैव के दीपक के लिये वह सब कुछ जान्ती हुई भी और प्रतिरोध के लिये उद्यत रहने पर भी दृढ़ है। उसके मन में जो कुछ उठती है उसे जीवन पर न माने के लिये विजय है। दिनकर की पुरुषी - नारी का सम्मान करते हैं और नारी सम्मान सम्पूर्ण आदर-मता हैं। यही सुकन्ना का स्व है। सुकन्ना में ही मातृत्व की पूर्ण प्रतिष्ठा है। या वह उन्हें कि दिनकर ने मातृत्व भाव के प्रति अदृष्ट नृपता है।

दिनकर ने नारी में ज्ञाना और ज्ञानी का भाव दोनों ही देखे हैं। काम से आध्यात्मिक की जीवन यात्रा जन्मी की शक्तों में भुषित है। ज्ञाना में प्रेम, काम, सत्यता, कामना, साधना, कैलि, रति सभी मूल मानस भाव हैं। इन मानस



का पर्यायनाम कर्मनी में होता है और वहीं से कारण, अनात्मिका, निष्कामता आत्मन्, रक्षण, कायि अनेक उदात्त भाव विकसित होती हैं। राजा पुरुषा की परिणीता औरीमरी है अतएव पुरुषा की रति - सुख की उमी नहीं थी। इसी लिये उर्कती के साहित्य में समान्य सुख के अतिरिक्त पुरुषा अनात्मिक और निष्काम आत्मन् को मात्र देखिक - सुख से ऊपर प्रतिष्ठित कर सकने में सफल हुये हैं। उर्कती का प्रमुख विषय भी काम से आध्यात्म की उपनिष्ठा है।

उर्कती में  
काम परक सिद्धान्त  
का  
आध्यात्म

महर्षि चारुदायन ने अपने काम सूत्र में काम की कारण - तंतुका मन से अधिष्ठित शीत, रक्त, पित्त, रसना एवं प्राण प्राण नामक हिन्दुओं की सात स्वर्ग, स्व, रस, एवं गन्ध को समीक्षित कर - विश्वों की अनुरूप प्रकृति से काम माना है।<sup>1</sup> दिनकर ने भी काम का आधार वन्ही हिन्दुओं

जन्तु जातनाओं को स्वीकार किया है। उर्कती में काम और आध्यात्म की असम अलग विषय हैं जो उ काम से आध्यात्म तक पहुँचने वाली क्रिया से संयोजित हैं। काम के विविध स्वरों को कवि ने स्वीकार करते हुये आध्यात्म के सिद्धान्त की नवीन प्रतिष्ठा की है। इस काम सिद्धान्त में सांख्यिक चिन्तन साक्षात् तत्त्व विविध तंत्र साधना, चर्मीकात का सहज - सिद्धान्त कायि प्रेरणा स्वरूप सम्मिलित हैं सत्त्व की पारंपार्य चिन्तक एक चर्मीकात रसत और कवि - उपनिषासकार की० पंच० सांख्य द्वारा प्रतिपादित सांख्यिक तंत्र चिन्तन और प्रति क्रिया वाली - हिंदु-विचारों के प्रसूततर में नव्य काम मनोविकास द्वारा प्रमुख चिन्तन भी सम्मिलित है। उर्कती की काम चिन्तक रचना प्रजापति में यह प्रमुख तत्त्व है।

भारतीय मनीषा ने पुरुषार्थ के विषय को एक महत्त्व सुख के समान माना है। "धर्म" इसकी पट्ट है "अर्थ" इसकी साक्षात् और "काम" इसका फल है। मूल तथित इस सुख की रक्षा करने से ही राजा उस फल का भागी हो सकता है। सिद्धार्थ का काम के अधीन होती है। चिन्तक सुख की वन्हा रहने वाले राजा की काम - लेखन करना आदिने किन्तु आकार निष्ठा और प्रेम्ण का अधिक लेखन की निमित्त है।<sup>2</sup> दिनकर केकड ने उर्कती में केवल काम - चिन्तन की ही किया है के सो भी केवल भारतीय दर्शन की सीमा में नहीं। काम - लेखन और काम - साधन की

1:- चरुदायन:- श्रीमद्विष्णु विष्णु प्रजापति ना नास्तिदुर्कतेन मन मोक्षिदात्मना

1:-

केकु रवेतु विष्णुसाधुद्वारा: प्रकृति: काम:। काम -सूत्र 1/2

2:- अमरिषि विष्णुद्वारा:- अ 224/15-42 राज धर्म कर्म भाग ।

चिन्तन प्रक्रियायें भी व्यक्तियों का चिन्तन करती रही हैं कि यह काम - निश्चय चान्द निवृत्ति प्रक्षेप हो कर अनायासिक होता गया और काम - साधन की प्रवृत्ति परक सामाजिक चरित प्रवृत्ति जाती है।

वर्तमान युग की काम - चिन्तन चिन्तन ने मनोवैज्ञानिक धारातत पर काम-सुख की हेतु नहीं माना है। भारतीय तंत्र साधना में भी सामाजिक और काम-सुख तथा योग अधिष्ठाता की मान्यता मिलती रही है। योग सुख की तो प्रवृत्ति-लीन सुख के समान बताया गया है। ऐसी ही कतिपय विचार धाराओं ने काम की नव्य व्याख्या की गई है। सुतंत्र के चिन्तन में कहा गया है कि यह एक मानवीय स्थितियों तक से बड़े एक योग है क्योंकि कि यह योग और योग अथवा भुक्ति और मुक्ति दोनों का संगम है।<sup>1</sup> दिनकर ने उत्तरी में इसकी व्याख्या की है:-

योग - योग का मत उपसरा की अवस्था प्रीति है  
मृत्यु के तो परम देव आराध्य एक होते हैं  
धिल से निश्चय योग, योग भी हमें लक्ष्य देता है।

ड० ४/१०२

काम चिन्तन:-

दिनकर ने भक्तानुयायी हैं। अर्ध मारीवर में उनका अनाथ चिन्तन है। सुष्टि का विकास ही शिव और शिव का संगम है। अर्ध मारीवर विवेक रक्ति है और परिपूरक है। जीव एक जगत् में काम से अपनी साधना प्रारम्भ करता है। काम भीरु है

किन्तु यह योग भी है। सांख्यिक सामाजिक में काम के माध्यम से ही मुक्ति का विधान है। काम मनुष्य को पाप में भी उल्लस सकता है और पुण्य - सिद्धि तक भी उठा सकता है। मनुष्य में " सभी सविद्य - तन्मि, समस्त क्रियायें, और योग शिव - शक्ति स्वरूप हैं। वैदिक विज्ञान के स्तर पर सुष्टि - रचना के प्रयोगों का संगम स्थल, योग - मीथोसने।<sup>2</sup> दिनकर ने इसी को लक्ष्य कर कहा है:-

काम धर्म, काम ही पाप है, काम किसी मानव को  
उच्च लोक से गिरा योग पर्यु चन्दु बना देता है  
और किसी मन में असीम सुख का लोभ बना कर  
पर्युषा देता उसे किरण - लेखिका अति उच्च स्थिति पर।

ड० ३/८०

साक्षात् तन्मि में माया - पाप में आकृष्ट जीव पर्यु उल्लस गया है। यह जीव एक समस्त संगम से उल्लस है तन्मि चन्द्रियों का उदात्तकरण कर अक्षय्य आनन्द प्राप्त करता है। उस स्थिति में वह प्रत्येक दृष्टि में शिव और प्रत्येक मारी में शक्ति देखता है। सभी आनन्द स्थिति है साक्षात् प्राप्त है। माया आकृष्ट जीव एक योग समर्पण में अति प्राप्ति करता है, अन्तर्गत प्रवृत्ति में ही लक्ष्य योग परम अक्षय्य का लोभ होता है इसलिये

1- Tantra Asan, Ajit Mukerji. Page 15.

It is a Yogic practice of transcending the human condition. Tantra itself is unique for being a synthesis of Bhoga and Yoga, enjoyment and liberation."

2- Ibid Page 35.

समय का अतिश्रम आवश्यक है:-

जहाँ जहाँ केसारा प्रान्त में, विश्व प्रत्येक युद्ध है

और शक्ति वाणिज्य विश्व प्रत्येक युद्धवर्ती नारी ।

काम के सम्बन्ध में रस-विशिष्टता प्रभावकारी होती है। समय का अतिश्रम तो योगी करता ही है। काम के योगी भी समय का अतिश्रम करता है:-

..... काम के योगी गस्त के योगी

धूम्र के रस-विशिष्ट समय का अतिश्रम करते हैं

योगी की अपार योग में योगी जातिगम में । ४० ३/६४

इस समस्त काम - इस आधार में नारी कामोद्दीप्त करने में अपनी मुख्य भूमिका करती है। रस - तरंग, योग - साक्षात् और काम - युवा के साक्षात् युवा के अर्थ और योग्यता पर अभिप्राय कर योग - रस बना देती है। मदनिष्ठा का योगीमयी जो योगी है सम्बन्ध में यह प्रतीति है:-

सर्वोन्मिष्ट नर का शक्ति तब और काम कामी का

माम शक्ति का, माम, सर्वोन्मिष्ट, जे अभिप्राय का

सब भद्र करते हैं, सब ही, प्रसन्न के भावों का

युवा भी यदा नहीं जाता नारी के उद्देश्य नर । ४० २/३३

इस सम्बन्ध कामादेव में मे वृत्तवत् जैसे अर्ध धात्री केवली की भी वराहूत कर विधीय वृद्धि काही वृत्तवत् अपने चिन्तन में अभी भी के सम्बन्ध विमलता को पाकर, आनन्द सीधर - वृद्धि के आवेग में त्य - धर्म की सुधा - वाम करने की साक्षात्कृत होता है। अभी वृद्धि के वेग में रस के भोजन की तार कीन्ता सम्बन्ध है, अभी त्य की आराधना करने की कामना करता है और अभी इसे अस्वीकार कर निरर्थक बना देता है। अभी अपनी नारी की मनोवृत्ति के प्रति जादूट होती अभी किसी काम जोड़ की आत्मिकी आत्मिकी की धार से इसे महसूसी है। अभी अपने पालनेज अर्ध में आदर्शों के शील पर सम्बन्ध बनाने का रस करता है जो अभी धार्मिकों के अर्ध अर्धि हृय हृय की तरफ व्य पर शीन रख कर वरना पावता हैऔर अभी इस वीर्य वही प्रार्थना के योग माना जाता है। यह काम इसे विमली स्थितियों की विधाओं से हो रहे है।

काम बहुत आवश्यक है, मार्ग भीमिक है, सर्व कालिक है। उद्योगी उद्योगिक सम्पूर्ण सौन्दर्य की प्रतिमान है जो लोक से उस साक्षीस्तर है। वैदिक युगों में विश्व उद्योगी की उद्योग का रस मान नर वैराग्यम् । और केवरी ने विमल - आनन्द की आवश्यकता प्रदान की जो अर्ध विमल के भी उद्योगी आवश्यकता में इस प्रत्यक्ष युद्ध के उद्योगीकरण की देता है:-



अब भी तो हम बीछ रही निकलकर जायि जवा - तो  
 हम बलि - तो जो अरणी से अभी अभी फूटी हो  
 हम हम को देखती हैम - तो जिस की हम रजसा पर  
 क्यों कात के मरती या कि हंगरी का दाग नहीं है।

30 3/94

हम लिये यह उरुकी मात्र पूरणा दिया नहीं है जिस दिया है।

दिनकर पर लारें और रक्त के आम सम्बन्धी चिन्तन का भी प्रभाव है।  
 उरुकी के प्रानों में मानों लारें ही जोरता है। लारें का का है कि रक्त का  
 मानसता ही कोरे जीवितवाद से अधिक प्रभाव शक्ति है। पूरणा का चिन्ता जीवन की  
 पूर्णता की ईमानदारी और सम्बन्धता से सम्बन्धित है।

दिनकर पर यह प्रभाव स्पष्ट है:-

रक्त जीवित से जीवित नहीं है और जीवित मानवी भी  
 जीवित मानवी किन्तु मानवी तो अनुभव करता है  
 निररी जीवित की निरचितता किन्तु मानवी पूजा करता है।

लारें, मानवी स्थायित्व, समुच्च कर्तार सभी रक्त मानवी हैं। उरुकी में सभी रक्त  
 की मात्रा का प्रतिपादन है:-

यह रक्त की मात्रा को, किन्तु करो हम किन्तु का  
 यह मात्रा यह किन्तु मानवी को अभी न भरता है।

लारें ने जीवित का विरोध कर काम की मान्यता दी है। आज के हम में  
 काम का मान्यता है। समुच्च हम में ही रक्त है। आज का काम मानवी हम  
 हम - काम का मान्यता है और हम-काम का सम्बन्ध। लारें हमें यह जीवित से  
 देखते हैं। दिनकर का भी यही स्वर है:-

"हम का काम, समुच्च किन्तु, यह हम का काम मान है"

"क्यों कि हम का क्या अवस्था" यह हम तो समुच्च प्रकृति का; हम का काम  
 हम का काम मान है:-

हम हम की मान्यता काम से सम्बन्ध हमें यह पर  
 चिन्तन में भी हमें यह हमें की स्मृति हमें चिन्तता है  
 चिन्तन का चिन्तन किन्तु किन्तु - हम में अवस्था हमें हमें  
 मान्यता हमें नहीं, तो मान्यता है, हम से, हम से भी।

रक्त जीवित मानवी चिन्तक है। यह मान्यता है और यह मानवी मान्यता का  
 मान्यता भी। मान्यता - हमें समुच्च हमें - हमें मानवी होता है। यह मानवी हमें  
 हमें पर हम में मान्यता होता है। हमें भी। मानवी क्या है:-

प्रोवा का हम का हमें हमें मानवी।

11 - Arvasi. R.N. Tagore.

12 - D.H. Lawrence: My great religion is the belief in the blood, the flesh, the  
 lower than intellect. I want men and women to be able to think  
 sex fully, completely, honestly and clearly. (Sex & Love)

श्रीका में कुल्ले कुल्ले पर प्रीति नहीं लगती है

जो सब पर बहुत गर्व धारणी कीकी वह लगती है।

और अन्त्य के प्रति निरन्तर आकर्षण बना रहता है। " जो अन्त्य, जो सुर उसी को अधिक आकर्षता मन है।" दिनकर रत्न के बहुत समीप हैं। रत्न में नारी-पुरुष के सम्बन्धों को केवल अर्थ-भूमि पर देखा है जो पुरुष को अत्यन्त रख कर ही अपनी उद्देश्य - पूर्ति करता है:-

प्रियतम जो रख सके नियमितता जो अन्त के रत्न में

पुरुष को कुछ से रहता है, उस प्रेमका के का में।

रत्न उपयोगिता कायी चिन्तक हैं। क्या यह सत्ता उचित है कि नारी पुरुष के पूर्ण समर्पण न करे? क्या वैवाहिक जीवन की सम्पत्ता मोचन - व्यापारी में निहित है? भारतीय समाज में तो नर - नारी परस्पर सहाय, सद्भाव, विकास और एकामन रूप में रह कर ही जीवन सार्थक करते हैं। केवल काम नहीं, --- काम से आश्वासन तक नर - नारी का जीवन - विकास है। नारी और रत्न केवल मोहितक पक्ष की उदात्तता तक सीमित हैं, उनके आन्तरिक पक्ष पर उनकी दृष्टि नहीं जाती।

#### आश्वासन चिन्तन:-

भारतीय चिन्तन वस्तुतः का अन्त आदिमक अन्त्य है, चाहे वह काम अन्य भी साधनाओं से प्राप्त हो या कि सपना या तन्त्रिक

तक निवेश - निवृत्ति है। दिनकर ने उक्ति १

में न तो ही काम के माध्यम से काम की जाना है और न ही निवृत्ति है। दिनकर पर ही संसारका प्रभाव से वे काम - प्रयत्न थे, जो बुद्धि - सर्व समर्पित रहे किन्तु उनकी आत्मा अन्त्य - एक निष्कामता, अनासक्ति और निर्भिष्ट आर्य भाव-से ही प्रेरित रही है। यह सत्य है कि अर्थ नारीद्वारा स्वयं उनकी आत्मा का केन्द्र रहा है तथापि तब - अन्य सार्वभौमिक कुछ ही उनका उद्देश्य नहीं रहा होता। नारी के रत्न निष्कामता के मानने पर ही उनका मन लगी है:-

देखता वह है सचित्त क्यों वह सीधर सचित्त की जाया में

आशीर्वाद के सोचान लगे हैं रचना सीधर, जाया में ।

अर्थात् रचना, सीधर और जाया केवल साधन हैं साध्य नहीं। सर्व योगी पुरुष अन्त्य: एक निष्कामता की ही स्वीकार करता है। भारतीय आश्वासन में सर्व ध्यान योग से ज्ञान - योग तक की जाया है। सर्व योग गीता समर्पित है, यह ज्ञान निर्भिष्टाद रूप से उक्ति में व्याप्त है। " कर्मयोगाधिकारले या शैलु कवाचनः " का प्रति रूप उक्ति में व्यक्त हुआ है:-

सर्वार्थ में धिरत, धिरत पर उनके परिणामों से

तदा मानने हुए सर्व ही कुछ है मान किया है।

वासिका - विरक्त मनुष्य जब राम - विराम दोनों से ही समभाव हो जाते हैं वे योगी बनते हैं। विवेकहीन मनुष्य उर्म जनित कल का भी रक्षण कर लेता - वरम से मुक्त हो कर निरापद हो जाते हैं। मनः कामनाओं के रक्षणों विरक्त प्रस होते हैं। उर्वरि कर भी यही कहता है:-

वसासिका वृत्ति कर देती क्यों समस्त स कर्मों को  
इसी भाँति वह काम कुर्य भी वृत्ति और वसिष्ठ है।

ह० ३/

उर्वरि स्वयं भीता - भान की ताता बन कर उपवेश करने लगती है। निष्काम कामन्द का भोग विधि - निष्काम - मुक्त - बन हो करते हैं। आरमा की वसात् चर्चन और सुख व श्रौत की और प्रयास पूर्ण वर्जन निष्कामता नहीं है। मन की सख शास्त्रि वन्दियों का शोधन और कामनाओं का इन्मन होना ही निष्काम मोक्ष - विरक्तों की उपसक्ति है:-

विधि निष्काम से मुक्त, न तो वीरिज सवेष्ट वर्जन से  
न तो प्रान को बन सवेष्ट, वरक्त उम और भगवै  
विश विर से जीवन में सुख - धारा पूटा करती है।  
जब वन्दियाँ और मन पैरी सख शास्त्र मुता में  
वासायन होते, विरक्त से वसिष्ठ वेडे होती हैं  
सभी विरक्त निष्काम मोक्ष की स्वयं उतर जाती है।

ह० ३/

यह सखशाधना समाप्त के लिये एक में है। देवी कालीजी के उडीवास की मख साधना का मंत्र दिया है:-

" विरक्त रक्ती से तुम प्रेम करते हो उस पर अपना अधिकार  
न समझो। " ।

"सख " शब्द का अर्थ ही है जो प्रकृत है, जो रक्तः रक्त है। उर्वरि में इस सख शब्द का प्रयोग भी हम से हम उः स्थानों में हुआ है:-

- १:- मुक्त सभी को सुख माचना से वस में करते हैं  
विधि निष्काम से परे, हट कर सभी कामनाओं से। ३/१०
- २:- यह आवास नहीं दिखता, जब मनुष्य जीवन लेता है  
कुर्यास कुर्यास प्रकृति का सुख हीति जीवन की ३/११
- ३:- उर्वरि नहीं मिली मर - मारी उस सुखार्जन से  
पैरे ही वीरिजों वसायिज का मित जाती हैं। ३/१२
- ४:- विरक्त सभी क्या कोई साधना में जा सक्ता है  
विना सुख पकाप्रकृति है, मात्र वरि कर सन की ३/१३
- ५:- जब सख रीति प्रकृति, सख सख वस भी वली जाये है  
जीसायन की सुख, शास्त्र कामन्द सभी धारा में ३/१४



६:- मन के माया मोह बन्ध को छुड़ा मुख्य पहलक है ३/४४  
 "वाग्वैज सुख भाव" का भीता में भी उल्लेख है। इसी से निष्काम काम-मूर्त  
 प्राप्त होता है। । मन की परिधि से निष्कल कर काम यदि मन के केन्द्र में जा कर  
 उसी मन - छुड़ के शिखे जग्रा रहे अथवा जाग्रत चिन्तन की तो वह वागवाचर की  
 और प्रेरित करता है। भीता की की क्षमि में उल्लाही कर करता है:-

इसी शिखे निष्काम काम - छुड़ वह स्वर्गीय सुख है  
 अपने में भी नहीं स्वल्प जिज्ञा पर अधिकार किसी का।

उ० ३/४२

प्रकृति नित्य ही आनन्द स्वस्था है। उस प्रकृति से साधारण्य कर एक रूप हीकर  
 भौतिक अस्तित्व की भूल जाती है। उस अनस्तित्व के अस्तित्व में मिल कर एक  
 अव्यक्त स्थिति होती है तब कोई मायावश नही रहता।:-

प्रकृति नित्य आनन्द मयी है, जब भी भूल स्वर्ग की  
 हम निगम के किसी रूप मारी, पर या पूर्णों से  
 एक लाभ हो कर जो जाते हैं समाधि निस्तन में  
 सुख जाता है अन्त, और मनु की अपने लगती है  
 देहिक मन की छोड़, उहाँ धम और प्रकृत जाते हैं  
 मानो मायावश, एक क्षण मन से उतर गया हो।

उ० ३/४२

पुरुष का स्वयं अव्यक्त बाकी है जिसे "सबकुछ ही जीवन कर जाति - अन्त सुख  
 नहीं सुखा।" है।

अव्यक्तावस्था की प्राप्ति ही मुक्ति है। सभी काम से काश्चारण्य की वाता ४  
 है। उल्लाही में, काम से काश्चारण्य होना, गौहर - भोग से गौरीत चीन तक जाने  
 की प्रक्रिया है। दिनकर के ही शब्दों में "बानी पर ४ छाती, पर बानी का काम  
 न लगे।" काम - अन्त में हम रहें पर काम हम पर शासन न करे। इसी शिखे कि  
 दिनकर ने दो काम - चिह्न दिये हैं। उल्लाही काज में पुरुषवा ने जिसे उल्लाही पाँच  
 मारी की चीन से जाना जो मदर्षि स्वयं ने सुकन्या में चीन है। प्रथम मुष्टिध  
 की काम किया ४। अन्त में पुरुषवा ने उल्लाही की निशान - सुन्दरी कर कर तब  
 ही ही मान्यता की है --- "हम निशान सुन्दरी अन्त वाभा अन्त निमुक्त की।"

\*\*\*\*\*

### उत्पत्ति में स्वप्न सिद्धान्त

अग्नि - पुराण के दो ही उन्नीसवें अध्याय में एक और अगुम स्वप्नों का विचार किया गया है।<sup>1</sup> इस पुराण में स्वप्न की व्यापकता अथवा व्यापकता की कोई व्याख्या नहीं है। अतएव स्वप्न के मनःस्थितिगत प्रसङ्ग में स्वप्न सिद्धि विषय में विचार वर्जित किया है। अतएव मन ही वह अगुम वास्तवों की सम्पूर्ण स्वप्न में होती है जो मनुष्य को अनेक जन्म - रोगों में बधाती है अथवा उनका कारण बनती है। मनुष्य के जीवन में वास्तवों की स्थिति है और सभी कीदृश स्थिति सम्भव नहीं है। प्रसङ्ग में स्वप्न - स्वप्न वास्तवों को प्रमुखा की है और जीवनिक प्रत्येक क्षेत्र में होने वाली मानसिक दुरिच्छाओं का कारण भी वही है। स्वप्न-वर्णित वास्तवों को माना है। चित्त वास्तवों को हम चेतन - जगत् में वृद्ध पूर्ण होता नहीं देखते है अपने ही प्रत्यक्ष रूप में चेतन मन की द्वारा है अवरोध उपस्थित कर पती मनः स्थिति उत्पन्न कर देखती है जो वास्तविक, अर्थात् अथवा भावित्वात्क को सज्जी है। यही वास्तवों में स्वप्न में पूर्ण होती प्रतीत होती है।<sup>2</sup>

उत्पत्ति में स्वप्न पुरुषों की मनःस्थिति का विवेक करने पर बात होती है कि पुरुषों के मन में 'देव की के रूप - दीपक' की वाक्या प्रारम्भ से ही कभी शुरू है। निम्नस्वप्न होने केवल नारी की ही सीमा नहीं है, पुरुष की भी है। उत्पत्ति के विच्छेदिक अंश में पुरुषों ने महारानी कीर्तिनारी की आराधना के लिये प्रेरित किया है ताकि वह देव की का 'रूप - दीपक' प्राप्त हो सके। वे स्वयं भी आधुनिक में निम्न हैं। यही ही वह भाव एक चेतना की किन्तु पुरुषों के अवचेतन मन में यह वाक्या बड़ी दृढ़ होती है। यह अवचेतन मन का विचार एक समय चेतना में स्वप्न मन कर जाता है जब कि उत्पत्ति के पार्श्वों और अन्तिम अंश में अपने सभासदों के उत्पत्ति सम्यक् विवेचना व्योमिति सिद्ध से अपने स्वप्न का एक वाक्या जाती है।

1:- अग्नि पुराण: 30 29, अध्याय अंक: 49/530, पृष्ठ 959

2:- 'देव की के रूप - दीपक' की वाक्या प्रारम्भ से ही कभी शुरू है।

पुराण उत्पत्ति में पुरुषों के वृद्धि एवं वृद्धि एवं वह स्वप्न की वाक्या स्वप्न मानती है।  
उत्पत्ति उत्पत्ति में ही पुरुषों की वाक्या स्वप्न का है चित्त प्रवृत्ति उत्पत्ति की

उत्पत्ति में स्वप्न की उत्पत्ति वह वाक्य है आरोग्य से प्रारम्भ होती है जहाँ महाराज पुलका ने प्रतिष्ठानपुर में उत्पत्ति होती देखी है, पूजा एवं वह वाक्य का आरोग्य कर रहे हैं। तब महाराज भी क्षीर है उस वाक्य का विविध कर रहे हैं। वे तब वरिष्ठ हुंजर पर आरोग्य की ओर प्रस्थान कर रहे हैं और फिर वे देखाते हैं। वह हुंजर भी उनके तब स्वप्न कर नहीं बना जाता है। वे भटकी हुंजे स्वप्नमात्रम बहुत बहुत गये हैं। यहाँ उन्होंने के कृष्णसार सुग्री को देखा है, जो भरने की छ - १५५, मधुर और एक क्षीर कर सौमी प्रस्थापन करता हुआ कातक और फिर उनका निराधार वागु मंज में उड़ता जाति कतिपय पत्नी अस्मत्त्व के नामों हैं जो उनकी वस्त्रि कृष्णिक अस्मत्त्व का नाम की भी और भीत कर जाती हैं।-

जिन्ना पुराण में सुप्त स्वप्नों की उत्पत्ति की गई है। पूजा का वर्णन उत्पत्ति एवं वाक्य का नामा गया है। पुष्पों में भी वह - पूजा पुष्प है। पुलका भी इसी वह वाक्य का वर्णन करते हैं और जो क्षीर से तीक्ष्ण हैं।:-

देखा । मारे प्रतिष्ठानपुर में उन कर जाता है  
तोम वहाँ से एक मध्य वह-वाक्य से आते हैं  
और राय कर जो तात्परी, यहाँ वाक्य प्रणिम में  
तीक्ष्ण रहे हैं वही प्रीति विविधता कातुरता से  
में भी विविध क्षीर वह, देखा, उत्पत्ति का नाम है।

उ० २/१२८

क्षीर उत्पत्ति होता है, जिन्ना पुराण में वही पुष्प वाक्यादि की सुप्त नामा गया है। प्रणिम में "वय - सुप्त वाक्य उत्पत्ति मयनों की" वर्णित है। पुराण का मे वाक्य पर देखा सु- काताया है। उत्पत्ति का मे भी महाराज पुलका की वाक्य पर की आरोग्य किया है:-

तब देखा, मैं वही हुंजा मदक वरिष्ठहुंजर पर  
प्रतिष्ठानपुर से वाक्य उत्पत्ति में बहुत गया है।

उ० २/१२९

प्रकृति तब तत्त्विकमान है जिस में "अवर्णित विविधता तोम अवर्णित सुप्त वस्तुमंज का कर दी गई रहे हैं। वह विराट प्रकृति की उत्पत्ति का कारण है। वह तब भी वह विराट का एक भीत है। वह विराट पुलका के अन्तर्मन में उत्पत्ति है। वह वह स्वप्न वही विराट तत्त्विक का वर्णन कर सुप्त होता है:-

मानो, मैं वही वीर्य मयाका अवर तोर - मयाका का  
मया वाकियों की जिस में कोई वस्तुमान नहीं है ।

उ० २/१२८

"मयाका" वाक्य जिस वही पुलका की पुष्पिका का उत्पत्ति करता है।

पुराण का मे पुष्पों पर वही वही वही का वाक्य की सुप्त स्वप्न नामा है। उत्पत्ति का मे भी पुलका की वाक्य स्वप्नमात्रम के निम्न प्रकृति वर्णित की



अधुना का दर्शन कराया है:-

जा दृष्टा में यहाँ यहाँ पर अधुना जाती है  
अधुना ५२ है यहाँ, पुनः ही अधुना धारा भी।

उ० १/१२९

सर्वोपरि तब मैं पाँचों अंश में प्रारम्भ में जिन गुण स्वयं चिन्तों की गमना की है  
उस में मध्य छट - पादप - सम्पत्ति का प्रतीक है, अर्द्ध क्षीर छट में निधन,  
पेचबंद का, बायीं पर दृष्टा र तब मोग का, जानन में दृष्टता, क्षीर मज्ज में  
दृष्टता, यथाकी होना, अधुना का व दर्शन करना, अधुना ५२ की देखना,  
कुछ कुण्ठाग्र मग और मधुरों का दर्शन, छट में यत्न भरने की क्षमि, पुनः ही  
परिप्रायक होने की क्षीर क्षिति करते हैं। प्रत्यक्षा माजो दूधे क्षीर-कर-गोभी  
जातक उसके आगत अन्तः मधुरों की पय पुष्टता, परिपुष्टि तब-व्यङ्ग, कुछ पुनः  
धुना में क्षीर अन्तःक्षय कायन की भावना पुनः ही अधुना की पुनः ही यत्न  
अधुना है जिस में तब अपने रावधुना का दर्शन करना चाहता है:-

मैं ही देखता कि दृष्टा का तेज अन्तः रता था।  
उ० - वरुण परिपुष्ट, मध्य दृष्टा पुनः पुनः पुनः  
अन्तःक्षय अन्तः, प्रगत क्षिति मधुर मगना का  
दृष्टा - विभाजित उद्यम रोग की भावना स्वयं क्षिति की।  
उ० री। पदपुष्टता तब आगत अन्तः मधुरों की  
प्राण विद्यन की उठे दौड़ कर उठे छट तेज की ।

उ० १/१३०

पवित्र दृष्टा में दृष्टता अपने ही पुन की प्रति स्थापना करता है। अपना ही पुन में  
होती "उद्यम रोग की स्वयं - क्षिति" से दृष्टता और क्षीर अन्तः ही नहीं तब  
सकती। तब लोग अपनी सम्पत्ति की स्वयं ही देखने की कामना करते हैं। फिर  
उठे "छट तेज की प्राणों की विद्यनता" पुनः ही का ही क्षिति है जो पुनः ही  
अन्तःक्षय में प्राणों की विद्यनता करी है।

पुनः ही में अधोत्पादक मधुर भी वही स्वयं - मग से दृष्टा दृष्टा है।  
पुनः ही की मग है कि तब यदि निम्नस्तर तब ही "दृष्टा नामक मग का मग  
की मग। तब मग भी पुन - कामना का मग आगत स्वयं क्षिति है। आपु के क्षीर  
स्वयं मग क्षीर देख कर व "दृष्टा मग की भावना प्रसारना से अपने ही पुन  
जान सम्पुष्ट होती है --- अन्तः कामना की प्रति में अन्तःक्षय से पुनः ही  
क्षिति नामक मग और क्षिति मग - पुन क्षिति है उठे क्षिति में आगत, तब  
मग - क्षीरक्षय आदि अन्तः मधुरों से संयुक्त किया है:-

पुन । देख । मैं पुन नाम दृष्टा तब अन्तः क्षिति है ।

अन्तः क्षिति है क्षिति भी जानता दृष्टा नाम मग से ।

यही पुनः ही की क्षिति है। तब अन्तःक्षय में है क्षीर क्षिति है, अन्तःक्षय

मनाते हैं और हमने हमें विवश है कि कि उनकी सेवा को सम्भाल रहने की  
आवश्यकता है। हमने यह सोच भी है कि राय को की मर्यादा की अनुमति मागत  
सर्वोत्तम से किन्हीं सुविधाओं को ले ली है। यह सुविधा - हमारा हमारे अधिकार को  
की अनुमति मागत की सुविधा की है:-

हैल को का दीप देति यह वह इच्छा हुआ था ।

और राय ने लिखा रहा इस को क्यों निन्दितता से

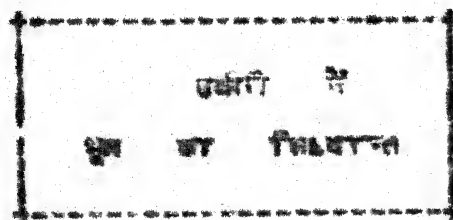
काय । सोचने से मेरा किन्हीं सुविधा हुआ है।

पृष्ठ 5/139

हैल को कीस तबान किन्हीं दिनकर को ने गिलाये हैं जो सुभाषा के मय, जामोद,  
कामोद, और हरिद्वारक भाव के प्रतीक है।

=====

हैल को कीस तबान किन्हीं दिनकर को ने गिलाये हैं जो सुभाषा के मय, जामोद,  
कामोद, और हरिद्वारक भाव के प्रतीक है।



स्मृति का कारण भूमि है।<sup>1</sup> जैसे कार की आवृत्ति स्मरण की सहायी बतलाती है। अनालयक जैसे और अनुसंधानीय विचार भूमि को जन्म देते हैं। मनोविज्ञानियों ने स्मरण और भूमि के क्षेत्र में भूमि को स्मरण की ही प्रक्रिया माना है। अनालयक को भूमिमानवपरपूर्ण विचार को स्मरण माना है।

उत्कृष्टी में भूमि का प्रथम अवस्थागत रूप है परन्तु नाटकीय दृष्टि से यह बहुत महत्वपूर्ण है। सब के पहले व उत्कृष्टी के विज्ञानीय ऋषि में जीवनीमयी महाराज भूमिका के अर्थात् प्रणय - प्रथम से उत्कृष्टी के स्तनी निरास की कुटी है कि यह समस्त नारी जाति को सामान्य रूप से मैथिली भाषा मुक्त की "जाति में दूध और आँखों में पानी की क्षति में निरास भन से उबलती है:-

दुई दई जलताओ नहीं

मन की खयाल नहीं

नारी । उठे की दूध मन में जीभ पर लाओ नहीं।

उ० 2/39

मन की खयाल की जीभ पर न लाने का भाव है खयाल की भूमि काय लभ उरणा, भूमि जाना। और फिर की नहीं तक जीवनीमयी दली भूमि में पड़ी रही। उ० न तो महाराज भूमिका की ही उत्कृष्टी से स्मरण होती है और न ही उत्कृष्टी की नारी सुलभ भावना से उत्कृष्टी स्मरण करती है। उत्कृष्टी मातृत्व भाव से नारी मन की जानती है; उत्कृष्टी प्रकल्प पीड़ा परभावती है, पूर - प्रेम जानती है किन्तु उसे यह कार भी यह क्षण नहीं होता कि जीवनीमयी - विभाता की लगी---उत्कृष्टी के साथ ऐसा व्यवहार करेगी। उत्कृष्टी ने केवल अपने विशुद्ध पूर का पीका भाव देखा है इसे प्रेम - स्नेह दिया है, उत्कृष्टी काय सब भी रावणचर्य में पूर की भूमि पर या भूमिका का कारण नहीं भी उसे विमोचित दिखे हुए है या।



आयु को ले कर बलि करने सुकन्या राज दरबार में उपस्थित हुई है। इसे देख कर  
 उरुगी अन्तर्धान हो चुकी है। दूसरा उरुगी को खर्च न पा कर उन्निवृत्त है। इस  
 अवसर उरुगी के दो पुत्रों का जन्म हुआ है कि देवी उरुगी अब गर्भवती हैं है  
 प्रसंग में स्पष्ट किया गया है। बन्धु त लोक में लगे लगे उरुगी के अवसर पर उरुगी  
 के पुत्र के "पुत्रोत्सव" के स्थान पर "पुत्रोत्सव" निकल गया और नाट्य-दीप  
 छोड़े होने होने के कारण आचार्य भरत मुनि ने इसे शाप दे दिया कि आज:-  
 "पुत्र और बलि नहीं, पुत्र या केवल बलि पाओगे।" उरुगी उस शाप को सीधे  
 क्यों तक भुली रहीं। इसे शाप का मरण तब हुआ जब वह आयु को माँ बनो। ए  
 देव की का मंत्र मातृव बन्धु का रक्षणीय विचार और फिर आयु जन्म के बाद  
 बन्धु की तक आयु का विस्तार अवसर के लिये तो उपयुक्त हो सकता है मानवी  
 के लिये नहीं। उरुगी में बन्धु मातृव भाव पाँचों ओर में नाटकीय कोरल के प्रकार है  
 हुआ है। यह मातृव का स्थान - सम्बन्ध सुनो ही वह उरुगीने जगती है।  
 उरुगीने पुत्र पाने की उम्मीद से - विमुक्त होने की भाव के कारण है। इस सम्बन्ध  
 की वह बन्धु दीप क्यों है भुली हुई थी यही प्रत्यक्ष हो रहा है। जार जार वह  
 अवाभा दासी से बानी बान्नी है। अब बुराया ने मानविकता का लक्ष्य को सीधे  
 का वर्णन किया तो उरुगी की निश्चित हो गया कि वह बलि - विमुक्त हो पायगी।  
 यह उरुगीने अवसर के निमित्त तक ही जाती है।:-

सुकिन्नाह । दुमाय । जगतीने दानि और पानि दे।

उमड़- प्राण ले, क्यों कष्ट में जगता अन्ध क गयी है।

उ० / १-१२०

आयु को ले कर बलि करने सुकन्या राज दरबार में उपस्थित हुई है। इसे देख कर  
 उरुगी अन्तर्धान हो चुकी है। दूसरा उरुगी को खर्च न पा कर उन्निवृत्त है। इस  
 अवसर पर सुकन्या ने दूसरा को बताया है कि देवी उरुगी अब गर्भवती हैं है  
 क्योंकि वह शाप प्रसिद्ध अवसर थी। भरत मुनि आचार्य साधित --- पुत्र और बलि  
 नहीं, पुत्र या बलि पाओगी। उरुगी अब तक लगे लोक जा चुकी उसे है। इन १६  
 क्यों तक वह भरत - शाप को भुली रहीं। भरत ने आश्रित उसे शाप दिया था---

भूत गर्व निधु कम लीन छोड़े स्वरूप चिन्तन में  
 जा, वृ प्रेमली भूमि पर उगी मर्या मान्य की  
 विष्णु न हों मैं तुम्हें सुख, सब सुख मुझ मारी है  
 पुत्र और बलि नहीं, पुत्र या केवल बलि पाओगी  
 तो भी सब तक ही, जिस क्षण तक नहीं देह पाने का  
 अवकाशिणी। तेरा बलि पुत्र ले उपपन्न समय की।

उ० १/१३७

और यही पुत्र उरुगी की पुत्र - विमुक्त कर गयी।

प्रोष्ठ और पुत्र प्राण: कार्य - कारण होने लगे हैं। उरुगी के अन्तर्धान होने पर  
 दूसरा को प्रोष्ठ का गया है। वे अपने प्रेम को बल प्रचार सहसा समाप्त नहीं दे

मिले हैं। अगर उन्हीं में लोक चली गई है तो दूसरा देश लोक में भी विस्तार  
कीजिए करने के लिये उद्यत है। इसी प्रसंग में उन्होंने 'देवासुर संग्राम' का स्मरण  
किया है जिसे देवता भुज गये हैं:-

भुज गये देवता । कैल साजुता शक्ति अदुर्लभ की

विश्वनी आर उन्हीं रण में मैं ने जय दिखवाई है।

दुस्तरका का प्रौढ मान्यता है। देव लोक पर उसका छा नहीं है। जो आचार्य  
माहि ह नेपथ्य हस्ति के अपने देव - विरोधी विचार को भी भुजना पड़ा और वह  
परिप्राजक हो गया। वह नेपथ्य हस्ति दुस्तरका के अवैतन मन की ही हस्ति है।  
वह तब प्रसन्न आर है और तब उत्तर देता है।

"दुस्तरका का प्रेम रक्ता के लक्षण, रक्त गुण के में दिक्का  
देवता की आराधना और कला भी भुज गया। दुस्तरका  
कहा वह लक्ष्मी के नि वह वह ही दुस्तराधिक दुस्तर है'  
वह दुस्तरका के भक्तिव्य कामना जाता आ तो गया उसे  
'किया। कला मनोह " ही कलाही गई थी' वह यह  
दुस्तरका आ अवसराना का। जहां प्रेम कामना नहीं, प्रार्थना,  
निष्ठिद्वयान्न है।"

इस भुज की स्वीकार कर ही मकाराका दुस्तरका परिप्राजक बन गये थे।

00000000

.....

### उत्पत्ति में जीवन उत्पत्ति

"किन्तु उस प्रेरणा पर तो मैं ने कुछ कहा ही नहीं जिस ने आज सर्व तक प्रसिद्ध यह काव्य युग से लिखवा लिया । अकथनीय विषय ।" । यह कथन १९५१ में कवि ने स्वीकार किया है अर्थात् उत्पत्ति का रचना काल १९५३ से माना जाय। १९५६ में संस्कृति के चार अध्याय दिनकर की इतिहास संस्कृति विश्वक कृति का प्रथम प्रकाशन हुआ है। इस आज ही पुस्तक की पुस्तक रचना में भी कवि की पर्याप्त समय लगा ही गा। यह कहना भी असंभव न होगा कि संस्कृति के चार अध्याय की विचार सूझता का काव्य रूप उत्पत्ति के दर्शन - पक्ष में व्याप्त है जिसे स्वयं दिनकर ने स्वीकार किया है "साथ ही, यह रचना प्रेरणा उस पुस्तक में व्याप्त है।" ।

प्रश्न है कि यह विचार सूझता किन किन स्तरों और धर्म - सम्प्रदायों से प्रभावित है। इस के लिये हमें दिनकर द्वारा उत्पत्ति में प्रतिपादित सिद्धान्तों की विभिन्न स्तरों और धर्म - सम्प्रदायों के परिश्रेष्ठ में देखना ही गा। बौद्ध धर्म में साधना ब्रह्मदत्ति, साक्षात् मत्ता, सर्व साधना आदि ऐसे स्तर हैं जिन का दिनकर पर पर्याप्त प्रभाव है और ये प्रभाव कुछ संस्कृति के चार अध्याय कृति से काव्य स्तर धारण कर उत्पत्ति में अभिव्यक्त हुए हैं।

प्रकृति और निष्कृति  
का जीवन उत्पत्ति

:-

वैदिक धर्म प्रकृति परक है। वैदिक धर्म में प्रकृति की उपासना है और इसे ही अष्टाद प्रथम की अभिव्यक्ति कहा गया है। वैदिक जायों में

ज्वा, चन्द्र, जल, सूर्य, अग्नि के प्रति वैदिक भाव था। ये स्वर्ग में आत्मा के निवास और अष्टाद आनन्द के छिद्र प्रति आरम्भ थे। वैदिक धर्म में प्रकृति के साथ सखीय और वैदिक स्वल्प थे। प्रकृति प्रत्येक शक्ति के रूप में थी। समुद्र की प्रकृति से पैदा ही शक्ति की वाचना करता था यही उस की वैदिक उपासना थी।

॥:- उत्पत्ति प्रसिद्धा "क"



ऐहिक धर्म का उत्तर काल उपनिषदों में अभिव्यक्त है। उपनिषद विचार प्रकृति का वैदिक विस्तार है। वेद - धर्म में यज्ञादि की प्रतिष्ठा थी, उपनिषदों में वैचारिक प्रमुखता ने तर्क संगत बुद्धि की प्रमुखता दी। यज्ञादि से मनोवाक्यादे पूर्ण होती है। उत्कृष्टी का अर्थ में भी वैमिश्रित यज्ञ द्वारा दृष्ट-प्राप्ति का प्रस्ताव दूरवा द्वारा किया गया है:-

एक यज्ञं पर्यन्तं गन्धमादनं परं इमं विश्वं मे  
प्रदायन्तं तं वैमिश्रितं नामकं शुभं यज्ञं कर्तुं मे।

302/31

उपनिषद काल में निवृत्ति का उदय होने लगा। निवृत्ति का प्रचार ब्रह्म और जैन मतों द्वारा किया गया। यह एक सत्य है कि निवृत्ति की ओर लक्ष्य मनुष्य अभी उन्मुख होता है जब वह प्रवृत्ति से ऊपर उठता है और प्रवृत्ति की ओर अभी बढ़ता है जब वह वह निवृत्ति मार्ग में समतोल नहीं पाता। बौद्ध जैन धर्म दोनों ने ही आत्मा की सफरता को स्वीकार/ किया है। सामाजिक और वृद्धाश्रम जीवन के परिवर्तन और सम्पन्न भिक्षुओं के जीवन की मोक्ष मार्ग ज्ञान में बौद्ध और जैन धर्म निवृत्ति प्रधान दर्शन का विकास करते रहे। श्रीमद्भागवत गीता प्रवृत्ति और निवृत्ति का समन्वित स्वरूप था जिस में वैदिक कर्म काण्ड, उपनिषदीय चिन्तन, बौद्ध और जैन धर्म की सन्निकटता प्रतिबिम्बित थी।

गीता का ज्ञान मार्ग सांख्य - दर्शन पर आधारित है जिस में ज्ञान की निर्वर्ण का साधन है, बौद्ध और जैन धर्म भी ज्ञान के समर्थक हैं। गीता का कर्म योग वैदिक कर्म काण्ड - यज्ञादिक क्रियाओं हैं, बौद्धों में लक्ष्मी अनुष्ठान तपस्या और ध्यान समर्पण। बौद्धों और जैनों में गृह - त्याग, समाज - त्याग, भोग - विरत अरण्यों, वैश्यों विहारों में सन्वासियों, श्रमणों का जीवन व्यतीत करने की मोक्ष - तिष्ठि कहा। उत्कृष्टी में जीवन की प्रवृत्ति का पूर्ण भोग कर दूरवा को जब और कोई राह न दृष्ट सही तो निर्वर्ण शुद्ध यह सन्वासी हो गया। ज्ञान यह है कि निवृत्ति के उद्भावक गौतम बुद्ध राजकुमार सिद्धार्थ देवीर और जैन धर्म के प्रवर्तक महावीर स्वामी भी। मगध - राजकुमार वर्तमान है। उत्कृष्टी का अर्थ में दूरवा को प्रवृत्त्यापीन से परिवर्तक बनाया जाना सिद्धार्थ और महावीर की परिवर्तक परिस्थिति में एक और राजा दूरवा को दीक्षा करने की विधि है। अरण्यवास की वह दूरवा के लिये रीति है।

महाराज । मैं भार-मुक्त वह कामन की जाता हूँ।

यहाँ तक तो बौद्ध और जैन धर्म हिन्दू इस धर्म का ही अंग बन कर परिपूरक बने रहे। निरुक्ति को भी हिन्दू जन जीवन में कोई पृथक विचार नहीं माना है।

समाज में चार पुरुषार्थों की अवधारणा में चौथा पुरुषार्थ मोक्ष तो एक उपलब्धि है। तब तीन के विचार में धर्म महत्त्वपूर्ण नैतिक सदाचार का आधार था। उस से ही काम और अर्थ सिद्ध हो सकती थी। किन्तु, बुद्ध इस का विपरीत ही। बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय में बुद्ध भिक्षु के साथ भिक्षु भी दीक्षित होने लगे और फिर यौवनाचार बढ़ गया। यह निर्वर्ण्य स्वच्छन्दता बुद्ध भिक्षु भिक्षुणियों को नैतिक व काम - भावना की दृष्टि भी जिसे आचरण मिलता था हाजिर था। अनन्त काल से यह समझा जाता रहा है कि यहाँ कामिनी - कामन एकत्र हुये कि मनुष्य की उद्दरण यात्रा अवलंब ही जाती है और वह रत्ने: रत्ने: नीचे जाने लगता है। शाक्त धर्म वैदिक धर्म के समान ही प्राचीन है।

“संश्रय के अनुसार दृष्टि का उद्भव और विकसन शिव और शक्ति के संयोग से होता है। शाक्त मत तब से प्रभावित था।

वार्त्तिक चिन्तन दृष्टि से शाक्त धर्म भी अत्यन्त घादी है। इसका नाम शिव-शक्ति एवं इसका स्वभाव सत्-चित्-आनन्द है। शाक्त धर्म में माया भी शिव-शक्ति का ही गुण मानी जाती है जो शक्ति के अक्षैतवाद में नहीं है।

शक्ति शक्ति के कारण ही मारी में आदि तत्व की मातृ शक्ति की अवधारणा कर उसे सम्मान व ऊँचा का पुरुष भाव दिया गया। शाक्त तब में जीव की स्थिति पर, और व दिव्य में उत्तरोत्तर केनी ऊँच है। तब साधना में कामाचार का प्राधान्य होने से वह उसकी धारा की साधना बन गया। कामाचारियों का विश्वास है जो जीव मनुष्य को नीचे गिराती है वही उसे ऊपर उठाती है।” 2

उपरोक्त चार विमर्श में भी यही जो का - प्रतीक में कहा है:-

काम धर्म काम ही पाप है, काम किसी मानव को उच्च तक ले गिरा, हीन पर उच्च बना देता है और किसी मन में अतीव सुख का सुख बना कर पहुँचा देता उसे किन्तु तेजस्व अति उच्च विमर्श पर।

ड० ३/८०

निकृति मूलक साधनाओं का इतिहास, एक प्रकार से, मनुष्य की वेदनाओं का इतिहास है। व्यवहार में देखा यह गया है कि मनुष्य ने अपने धर्माचार्यों के कथन - कागिनी - निरत रहने के उपदेश को नहीं माना है। कथन से भाग कर मनुष्य कागिनी में उतर गया और कागिनी से भाग कर कीर्ति में। नर नारी का समागम धर्म की आड़ में दुराचारों को जन्म देने लगा। प्रेम में यह समागम भी मनुष्य को डगर डठा देता है। यथा तत्र में मान्य है।

“सुख साधना में युद्धता का वातावरण उत्पन्न हो जाता है।”

इसका कारण रहस्यात्मक भी हो सकता है और काम - प्रकृत युग्म की अज्ञानता भी। नारी का सहयोग तब साधना में मुख्य समाज तंत्र से ही आया था। सङ्ग्राम का एक सन्तुलन दक्षी रहता जो में सहजमान बना लेकिन वह सहजमान बौद्धों के संन्यास की अपेक्षा वैष्णव धर्म की आकांक्षाओं में विकसित हुआ। चण्डी दास और चिन्मायति की रचनाओं में सहज मत का व्यवहारिक प्रयोग है। अन्य शिल्पों में भी सहज समागम को मूर्तियों में उलकीकृत किया गया जो मन्दिर के बाहरी प्राङ्गण पर भी और मन्दिर के अन्दर भी प्रतिष्ठा महादेव विधि की। सहजमान में प्रजा और उपाय नर - नारी के प्रतीक रूप में मानी गई है। प्रजा निकृति और उपाय प्रयुक्ति है। अर्थात् प्रजा और उपाय, निकृति और प्रयुक्ति, जब एक-दूसरे को जाते हैं तब विविध प्राप्त होती है। यह नर - नारी का अद्वैत समागम के द्वारा भौतिक अतिक्रमण अजयित बनती है। यह प्रतीकात्मक ही नहीं सुख है। दिनकर ने इस सहज मत को उत्तरी में कम से कम उः ध्यान पर लिखा है और भौतिक अतिक्रमण की इच्छा में “सर्वोत्कृष्ट अतिक्रमण” के प्रतीक भाव में व्याख्या की है:-

तन का अतिक्रमण, पानि वन की सुरम्य नदियों के,  
वातावरण से भाँक देना उस अद्वैत चरित की  
जहाँ मूर्ति की सीमा, सुने वन में बिना रही है।”

उ० ३/११

1:-

सुखे भाग है, सबसे बड़े बसकी धारा में  
जिन लोको, जिन सुख नदियों में अभी पुन आया है।

उ० ३/१३



सुखम का प्रयोग जोहद तन्त्र का मुख्यवाद ही है। इस तन्त्र के अतिश्रमण का कारण भी स्वयं है। विनकर कहते हैं:-

अतिश्रमण इस लिये, पार कर इस सुख सेलुड को  
उद्भासित हो सके भूतरो-पर जग की जाभा है।

उ० ३/४०

और अतिश्रमण फिर विमोह नहीं है। यह प्रतीपाय युत नर - नारी का देव-  
धर्म है पार अन्तरात्मा तक उठ जाना है:-

यह अतिश्रान्तिवि विमोह नहीं आलिंगित नर - नारी का  
देव धर्म है पार अन्तरात्मा तक उठ जाना है।

उ० ३/४०

और इस देव धर्म की अतिश्रान्ति से ही प्रेम - प्रवर्तित मायी जाती है, यही  
केलाना प्रान्त है जहाँ नर - नारी विद्व - विद्या जग कर एक रूप हो जाते हैं।  
इस की सामन्तीय भाजा में काम और योग का एकीकरण कर सकते हैं। काम-सुख  
विन्दु <sup>प्राप्त</sup> से प्राप्त है, योगी यही विन्दु को निश्चल कर सदाकार में स्थापित  
करते हैं और उद्दीप्ता कहलाते हैं। यही महासुख है। इसी भाव को विनकर ने  
लिखा है:-

निद्रा योग कामुति का धर्म है और उदग्र प्रणय की  
एकाग्रमिह समाधि, काम के यही गत के नीचे  
भूता के इस वरिष्ठ, समय का अतिश्रमण करते हैं  
योगी यही अपार योग में, प्रणयी आलिंगन में

यही निद्रुति और प्रवृत्ति काया योग और काम का संघोक्त उज्ज्वली है।

राम और विराम :-

उज्ज्वली राम - विराम का काव्य है। राम -  
विराम का प्रयोग विनकर ने मुक्ति के सम्बन्ध  
में किया है। राम द्वारा मुक्ति का

विरोध योगी करता है और विराम को विनकर का मन स्वीकार नहीं करता है।  
योग में जो निवृत्ति प्रधानता है उसमें राम के लिये स्थान नहीं। राम ही यही  
अंश कामिनी और कीर्ति की लोड है। एक ही लोड पर दूसरे की बल्लूने की चाह  
है या काम तन्त्र में उसे माया कहा जाय। योगी के लिये माया एक धर्म है। माया  
एक अन्धम है। "माया है नाम प्रमित उस ही का, सीधों सीध सप सी पिकाही  
विस्था यही दुर्ल है।" माया प्रवृत्ति और वृत्त में विभेद करती है। यह वृत्ति का  
सर्व माय है। प्रवृत्ति में हीने जाने सीधे सीधत पुनारमक है केवल मन ने प्रवृत्ति में ही  
जीत भाव देता है। प्रवृत्ति और पराधेयता में जीत देना मोह है।

विराग की मन स्वीकार नहीं करता। विराग बन्धन जन्म है, जन्म किया गया एक निर्माण है। योग की चित्तवृत्तियों की निरीक्ष क कहा गया है। चित्त वृत्तियाँ ही कामाकर्षण से संबंधित हैं। काम एक पुनर्जात है जो मन सामान्य में एक भाव है। दिमकर ने योगी महर्षि श्वेताचल में काम की वृत्ति का कर सुझाया है साथ पुण्य की भी वृत्ति की प्रशंसा और पुण्य की सिद्धि माना है। यह काम सदा है, काम ऊर्ध्वगामी भी है, किन्तु काम की सहायता जब जाता - प्रयोग प्रत्यक्ष होती है तब ही वह काम हो जाता है।

दिमकर मानते हैं कि राग - विराग दोनों ही उचित हैं। राग और विराग दोनों ही निरर्थक - प्रोदी हैं। राग जेतना का संकोचन है, विराग अभीष्ट कुछ हैतु का प्रयोग है। दोनों ही विजय हैं। राग विराग दोनों से मुक्त जेतना आनन्द - भोग करता है। सभी मुक्ति है।

राग - विराग हुए दोनों, दोनों निरर्थक प्रोदी हैं  
एक जेतना को अकुल संकोचन सिखताता है  
और दूसरा प्रिय अभीष्ट कुछ की अभिष्ट विराग में  
कहता है जो सचित भावना को प्रसरित होने की  
दोनों विजय राग विराग के दोनों ही वांछ हैं।

उ० ३/७९

श्रीधर वादी /  
अमीरवार वादी भाव

:-

दिमकर आस्तिक कवि हैं। श्रीधर के अस्तित्व पर उन्हें अगाध प्रभाव है। और जीवन पर्यन्त सीधे चल रहे जाते कवि तो आस्थावादी

हो गए हैं। अपने अन्तिम समय में भी दिमकर ने जो भीत लिखे थे वे अममान सिद्धांत की सेवा में निवेदन किये गये थे। दिमकर सीधे सामर की यात्रा कर क-क एक घूमे थे और जब लौट कर अपने आराध्य के संस्मरण में।<sup>2</sup>

इसमें भी दिमकर ने वैदिक ईश परेश्वरवाद के अर्थों का का प्रतिपादन किया है।<sup>3</sup> एक प्रथमवर्षीयोंनात्मिक प्रथम सर्व जगत् मिला, सर्व समस्त प्रथम यज्ञोक्तं ब्रह्माणि की ६ मीन-गुण ही उर्वरी काज में सर्व प्रकाश है। सभी ६ वनियों की प्रतिकृति उर्वरी के पर्वों में पूरे रही है। इस के अतिरिक्त भी अन्य पुरुष सर्वनाम का प्रयोग कर कवि ने तब से पहिले श्रीधररथ की

1:- Home is the sailor home from sea  
And hunter's home from the hill - Stevenson.

2:- उर्वरी: पृ० ३/७४:- सर्व जगत्, देव आरम्भ, देव हीनामति है  
इसके पद पर लिखे प्रकृति सुन, मैं श्रीधर कहता हूँ।

बोध दर्शनी के सुतीय अंश में पुरुषता के अर्थ में किया है:-

यस निरुप आकाश, यदा की निर्विकल्प बुद्ध्या मे  
न तौ पुरुष मे पुरुष न तुम केव नारी ही  
दोनों के प्रतिपाद्य विमो एक ही मूल सरता है।

उ० ३/११

यस 'एक ही मूल सरता है' यह प्रथम विद्वत्तीयोनात्मिक का विन्दो व्यापारण है।

अन्तर्कार ने नर - नारी का द्वैता विचार भी उसी संस्कार के अन्तर्गत  
अद्वय धरणी पर माना है जिस की वरदा माः से ही प्रथमावस्था मति स्वीत बना  
गुप्त रहा है। अगणित सखिता सोम प्रह मन्त्र आदि की लक्ष्य यह मति शक्ति  
पुरुष की नारी की और और नारी की पुरुष की ओर ओर उल्लेखित करती है  
यह कन्दुक द्वैता का आकाशिक करती है। यह निराकार प्रथम साकार रूप में प्रथम  
प्रकृत - व्यापक है। सर्व सखित प्रथम का प्रतिपादन वही आकाश सादी की  
विश्रुत-कर्मि है:-

विश्रुती वरदा का प्रसार मूल, वास्तव मूल है  
दोः रहे नम में अन्तर्गत कन्दुक जिस की लीला के  
अगणित सखिता - सोम अपरिमित प्रह उद्भवम बन कर  
नारी बन जो सर्व पुरुष की उल्लेखित करता है  
और अन्तर्गत पुरुष का मति बन बुद्ध बुद्ध नारी का।

उ० ३/१७

दर्शनी इस सत्य की नहीं जान सकती क्योंकि यह अभी तक पृथ्वी - सुख की  
आकाश में विद्यमान है। उसके पास उस दिव्य लोभ्यता की देखने की दृष्टि की  
कदा हीनो कविनों ने कहा है:

देखें उसे न देखें अनदेखे अन्तर्गत ।

किन्तु, यह उस दिव्य आकाश की माधुरी से अभिन्न है। यह सर्व में उद्भासित  
उस दिव्य प्रलय - माधुर्य का अनुभव करने लगती है जहाँ निराकार में आकार  
रूप पाते हैं:-

जला का रहा अर्थ सत्य का सचनों की आकाश में,  
निराकार में आकारों की पृथ्वी रूप रही है।  
यह ऐसी माधुरी '.....

..... उई क्या कह कर यह मविमा की'

उ० ३/७०

इस संस्कार की मविमा अवर्णनीय है, सुशोभित धूमि का सुन्दर जिसे महाकवि सुरदास  
ने अविद्या मीत प्रह कहा है, उसे ही दिव्य ने अपने विचार से प्रस्तुत किया है,  
सत्य नहीं है, यह धूमि का स्वाद अमोघर सुख है।

निराकार - साकार, अन्तर्गत के अन्त - बोध में दिव्य कोई निर्विकल्पक  
स्वर नहीं है सत्य। जला सभी मूल कविनों ने किया है यही दिव्य ने भी। अन्त



जैसे कि अर्थ की ओर, साकार में निराकार की ओर। जिसका का  
परिणाम - जिसका उपा। इसमें मैं जा सकता हूँ तो उसी पुरुषा में। इसीलिए तो  
साकार की आधारता का ही प्रभाव करने का यह प्रकृति और परमेश्वर के अन्तर्गत में  
स्वीकार किया है:-

आत्म मही, अनुकूल, जिसे संसार हम सब करते हैं  
तब प्रकृति का नहीं, न जगत् प्रसिद्धि की प्रति हम है।

३०/३ - ७३

प्रकृति और परमेश्वर का ही अन्तर है:-

सांसारिक हम जिसमें नहीं हैं, हम ही साकार अन्तर्गत में,  
इसी आधार में अन्तर्गत यह वास्तव बना हुआ है।

३० ३/७३

जिसका साधन दर्शन है कार्य - कारण साधनों की आवश्यकता होती है, गीता के  
योग - दर्शन, समाधि, प्रकाश साधन की भी विवेचना करते हैं और अन्त में  
सबसे बड़ा आधार अन्तर्गत की आवश्यकता है:-

संसार ही हम सबों की प्रकृति और साकार में  
हम सबों का आभास देता है हम सबों की रचना है  
यह आभास नहीं दिखता जब मनुज जान लेता है  
अध्यात्म अनुभव प्रकृति का, सबसे होती जीवन की  
की ही प्रकृति और प्रकृति एक ही कोई भेद नहीं है।

३० ३/७३

जिसका के अन्त में निर्यात ही अन्तरगत का <sup>अन्त</sup> होता है। समस्त साधना में  
अन्तर्गत ही है और प्रकृति ही अन्तर्गत है। जिस प्रकार प्रकृति निर्यात प्रकाशमान  
है, अन्तर्गत ही है उसी प्रकार मनुज भी <sup>प्रकृति</sup> प्रकृति की सब प्राण में लय लय  
है और अन्तर्गत ही है लय प्रकाश ही करता है:-

जब तक ही प्रकृति, तब तक हम भी करते जायेंगे  
गीतामय की लय, साधन, आत्मन्य नयी आकाश में।

३० ३/७३

जिसका है प्रथम कार्य अन्तर्गत निर्यात है साधन विवेचन की गीता के  
अन्तर्गत स्वीकार किया है। अन्तर्गत ही है साधन साधन प्रकाश और साधन की  
निर्यात की लय किया है। जिसका अन्तर्गत ही है अन्तर्गत और

शरणागति कहते हैं:-

सरय त्वात्, केवल आत्मार्पण, केवल शरणागति से  
उसके वह पर जिसे प्रकृति तुम में ईश्वर कहता है।

४० / ३ - ४३

यही सत्य है, यही वास्तव है।

सुखी मन्त्रों में परमात्मा का प्रेमिका रूप में ईश - भाव से दर्शन किया है।  
वे ईश्वर को अपनी मायका मानते हैं। जाया बाकी कर्मों में भी प्रेमिका की  
पुत्रिणी सम्बोधन किये हैं। विनम्र के भी मानस पर कहीं ऐसी ही एक प्रतिजवाब  
दिखाई देती है। :-

यह रहस्यमय रूप कहीं विदुष्य में और नहीं है  
दुर - विनम्र - सम्बंध - जोड़ में अथवा गुरुगुरु भवन में  
तुम जैसे सब कहीं, भला, इस भाँति समझ सकती हो  
ऐसे मन में अन्य और सर्वोपर्य प्रणम जैसे हैं।

४० ३/४७

जो यह ईश्वर की साकार है, निराकार है, अकाल आनन्द है, अनासक्ति है, प्रकृति  
है, परमेश्वर है, ज्योत या अज्योत है। किसी भी नाम रोंडा से हम उसे विद्वान्ति  
कई पर निर्गुण को प्र सपुन स्वल्प के माध्यम से ही हम जानते हैं।

००००००००००००००००

\*\*\*\*\*

### उत्पत्ति: तर्क - भावना प्रधान - कर्म

दिनभर खण्ड के कवि हैं। खण्ड तर्क - प्रधान होता है। मन - बुद्धि के बीच के खण्ड उपस्थित होता है। खण्ड के भी दो प्रकार हैं— आत्म परक खण्ड और अन्य परक खण्ड। नीति नाट्य में आत्म खण्ड के लिये कम स्थान होता है क्योंकि कि नाट्य में आत्मोत्साह अनिवार्य है तथापि नीति - प्रधान होने के कारण इसमें आत्मोत्साह के लिये भी पर्याप्त स्थान होता है। उत्पत्ति में दोनों प्रकार का खण्ड है अर्थात् नाट्य में तर्क - प्रधान तर्क प्रधान होता है। जिस स्थान पर खण्ड कर्म है वहाँ आत्म परक तर्क है और वहाँ नाट्योत्साह है तर्क पर आत्मोत्साह - अन्य तर्क है।

उत्पत्ति में वस्तुतः तर्क में आत्म परक तर्क द्वारा बुद्धिमान ने ऐसे विषय प्रस्तुत किये हैं किन पर आत्म - विचार सम्भव हो सकता है। वस्तुतः विषय है कि मर्यद कर्म तर्क लोक में पूर्णतः सम्भव है पर तर्क - लोक भी पूर्णतः प्रत्यक्ष नहीं है। दूसरा विषय है प्रेम का। बुद्धि पर प्रेम की सादृश्यता सम्भव है प्रेम में है या कि निर्विघ्न प्रेम में। देव लोक और मर्यद लोक का प्रेम किन किन आधाराओं में समान है, प्रेम के अन्तर्गत हीम है या विषय है। क्या एक ही आत्मना मनुष्य को देखकर देखती है या कि इसे मूर्खता केवल क्षणिक बनाती है। यह आत्म - परक खण्ड कवि का है या बुद्धिमान का? इसका सम्बन्ध ही तो है उत्पत्ति अन्तर्गत है।

अप्यार्या तर्क के अन्तर्गत पर उत्तर पर तर्क - मर्यद, - मनुष्य लोक, देवताओं और मनुष्यों की मूल प्रवृत्तियों में भेद, अस्मिन् विषय सुख और दुःख, नर के मारामय कर्मों की वृत्ति, अमरत्व की परिभाषा, मर्यद - लोक के जीवनका जीवन मर्यद या कि निर्विघ्नता आदि कुछ ऐसे विषय हैं किनपर रम्या, वैभवा और सहज्यमानाग्नी अप्यार्या तर्क - विचार उत्पत्ति हैं। जो ही ऐसे निर्विघ्नः कुछ नहीं कर पाती हैं, वह भी नहीं सकती हैं। वे प्रेम की भाव में व्याप्त समायोज्य हैं। प्रतीति का उत्पत्ति का नाम का जाता है जो प्रतिष्ठानपुर के राजा पुरुरवा के जीवन और तर्क - पूर्ण तर्क पर आत्मता है। पुनः एक बार अप्यार्या आत्मोत्साह पर अपने बहुत जीवन पर विचार करने लगती हैं। इन का काम - प्रतीति, वस्तुओं की संज्ञाओं और वस्तुओं के अन्तर्गत मूर्खता सुख जीवन नाम तो कुछ नहीं है। उत्पत्ति के प्रेमपूर्ण में परिदेवता है, आत्मता है और अन्तर्गत का भीम की साक्षता है। जीवन ही के विषय में मातृत्व का आनन्द है। यह ही जीवन में सुख की सम्भवता है। यही मातृत्व जीवन का आनन्द है।



उत्तरी भी ही देवेन्द्र बन्दू के आगम - मित्र की अपनारा ही पर अब वह राजा  
पुलक्या की कामिनी ही बन कर जीना चाहती है। इसी भयान पर मर्य -  
लोक की एक और समस्या प्रस्तुत की गई है। समस्या है नारीत्व की परम्परा  
की रक्षणी - परकीया की या नैतिक पारिवारिक प्रेम की अथवा वर्तमान  
समाज के उन्मुखित बदलाव प्रेम की। क्या संघर्ष में हम इसे कह सकते हैं विवाहित  
राजा पुलक्या के एक परम्परागत होते हुए भी उत्तरी के साथ समय करने की या कि  
परिपूर्णा जोशीमरी में उत्तरी के कारण उपस्थित हुए अस्वामी-जैसे और हर्षा माय  
की। दिनकर ने मुक्ति तिलक में कहा है कि लोटा या धरतर दिया है: १

माता में पला उठाती है, उत्तरीया जीव उठाती है,।

यह वर्तमान का आधार है और क्यों नीति जान को छत्र छत्र,

मार गई, अपनारा लती से छार गई

सांस्कृतिक मर्य का लीन-वर्ग है।

उत्तरी के विपरीत लोक में नारीत्व की विपदा और समस्या का अध्य-  
य है। इस विपरीत शक्ति गुप्त के प्रभावित दिनकर मानते हैं कि एक पति की  
परम्परा की गति है। उत्तरी में भी यही स्तर है: -

पति के सिवा लीनता का कोई आधार नहीं है।

नारी की समस्या यहाँ भौतिक क्षेत्र का भीम नहीं है प्रत्युत मानसिक शांति  
की कामना है, एक पुत्र - प्राप्ति की इच्छा है। उत्तरी के अस्वामी भाव से उपस्थित  
जोशीमरी में नारीत्व के स्वाभिमान और विपदा का अध्य-वर्गीय है। यह  
जोम प्रत्या है जिसे नारी नहीं सहन करती। 'नारी में अपने पति के प्रति उस  
भाव को क्या संज्ञा दी जाये यहाँ पति परकीया प्रेम में सर्वत्र विस्तृत कर रहे हैं'  
और यह भी कहता है कि उसकी परम्परा पुत्र प्राप्ति के लिये आराधना रत रहे,  
यह कैसी प्रवृत्ति है? निरुणित आरम - परक लक्ष से पुत्र के मन का विवेक  
करती है तथा नारी के प्रेम अनु माय से पुत्र की कोपित करने की आकांक्षा  
करती है। मर्यादा उसे केवल सांस्कृतिक पक्ष से देखती है: -

प्रियतम की रत्न लक्ष निरुणित जो अक्षि के रत्न में

पुत्र लक्ष से रत्न से रत्न है उस प्रमदा के का में ।

४० २/३३

जोशीमरी आरम - रत्नाक्ष में ही दुःखी है। यह अपने आप अपना विवेक कर  
उस निरुणित पर पहुँचती है कि उसने एक आदर्श भारतीय परिणीता परम्परा के नाते  
राजा पुलक्या पति पर सब कुछ आकांक्षा कर दिया था। इसे जीवन के समय

१:- उत्तरी: २/२०

२:- यही २/३१, ३२

नीतिज्ञ कुछ प्राप्त है फिर भी उसका अन्तर्द्वेष रिक्त है:-

तब कुछ है उपलब्ध, एक कुछ वही नहीं मिलता है  
जिस से नारी के अन्तर का नाम - पद्म छिपता है।

ड० २/३६

यह नारी की कथा है। यही उसकी स्था है। दूसरा चरित्र की सम्पत्ति, उसका पीर, डेम में सम्पूर्ण भाव और विपरित्यक्तों में नारी - अंत में आप्त विनम्रता के साथ साथ उसकी प्रकृति और निर्दोषता भी उपचार के परे है। जीर्णमयी नारी भारतीय परिवार की अनेकानेक शोभ प्रसिद्ध और पतियों के अधिकतमनीय चरित्र की प्रतिनिधि है। उसकी निष्ठा राजरानी होकर भी कितनी सामान्य है:-

अवसर है तब की, मगर, नारी बहुत अलक्ष्य है।

ड० २/३९

यह तो भी युक्त की है आश्रित के कुछ की भागी नहीं बन सकी और मैथिलीय यज्ञ द्वारा पुनर्जाती की प्रतिष्ठा बन कर जाहों में पाली भी नहीं कहा सकी।

उत्तरी का सुतीय अंतर्द्वेष और भावना का अन्तर्द्वेष है। दूसरा अन्तर्द्वेष - लक्ष का नायक है और उत्तरी भीम - भावना की नायिका। इन दोनों का समागम भी दो श्रान्तों पर है --- तब है परिवर्तन में नीतिज्ञ संदर्भ का कुछ और भी की अनासक्ति में अनासक्ति का आरम्भ अन्तर्द्वेष, लक्ष प्रसिद्ध नीतिज्ञ विनम्रता के साथ विनम्रता विनम्रता और प्रकृति - परिवर्तन की एक स्था की है उत्तरीय भावनात्मक प्रकृति के आरम्भ - विनम्रता की उत्तरीयानी संदर्भ, लक्ष से विनम्र - विनम्र की उपलब्धि, तब है आश्चर्य तब का संदर्भ और आश्चर्य संदर्भ की साक्षात् साक्षात् का जोर, उस अंत का पूरा भाव है।

उत्तरी ने यह समझ है कि दूसरा अन्तर्द्वेष चरित्र है और यही उसकी सम्पत्ति है। भावनात्मक स्तर पर उसे यह है कि उसने अपने राज्य प्रसार में अंत अन्त सम्पत्ति सिद्ध में लक्ष - प्रयोग नहीं किया है अपितु राज्य की सम्पत्ति समुचित उसे स्था की प्राप्त होती रही है। उसकी आरम्भ स्वीकृति है कि यह भावना - चरित्र का नायक है। यह अन्तर्द्वेष के अन्तर्द्वेष अर्थात् भावना और सामान्य स्था भाव के बीच प्रकृतिगत कर अर्थात् आरम्भ अन्तर्द्वेष स्था कर देना ही जीवन प्रकृति करता है जिसे विनम्र उत्तरी की प्रकृति में कहते हैं:-

पानी पर पानी पर पानी का नाम न ली।

उत्तरी: उ प्रकृति: ड० ३

पुण्डरीक सूक्ष्म सदाजीवन आत्मज्ञानपूर्ण जगत् में अनात्मज्ञान की अवधारणा है और यही जीवन में प्रलय की पुण्डरीक सदाजीवन ही निम्न कमाती है। पुण्डरीक रूप के इस मय निर्माण की ओर आकृष्ट होता है और रूप - सौन्दर्य की भावना की आशक्ति में आशक्ति का चिह्न निरूपित करता है। यह भावनात्मकता से उत्तर तर्क से तथ्य की सीधे सीधे धारणा से जानना आता है। बार बार यह भावना रूप के आकर्षण से मोहित होता है और उसी की बार बार अन्तःस्थिति से प्रभावित हो कर अन्तः आध्यात्म सौन्दर्य के समीप पहुँचता है। यह आकर्षण चिह्न ही तर्क - भावना का चिह्न है। उसके लम्बे सम्भावनों में कहीं अन्तर्गत नाटक बार सौन्दर्यपर के चिरन्तन सत्य - धर्मों का चिह्न ही स्थापित है, तो कहीं नीचे का 'एतान् वादन्त' के सिद्धान्त की शृंखला है। एक ओर काम प्रयोग योग - चित्तैक्य प्राप्ति के लक्ष्य सिद्धान्त का प्रतिपादन है तो दूसरी ओर भीता के अनात्मज्ञान योग की चित्त वृत्ति निरोधनो व्याख्या है। कहीं भीता के सार्व भौतिक - सर्व आत्मिक सत्यों में चिरन्तना - सीता है तो कहीं छपराही के भविष्यों में अमर्यु राक्षसों में उत्कीर्ण की गई भारी प्रथिमाओं का सार्व स्थायी जीवन है। इन के काम से अन्तर्गत निर्मित मन के काम की जगत् कर दिग्दर्शक में वर्तमान युग की मानसिक मनोवृत्ति को चिह्नित किया है। सभी के साथ प्रकृति और परमेश्वर के अन्तर्गत को सभी व्यक्तियों के क्रेतु बताते हुए जगत् में राजसी जीवन के प्रकृति परक योग धारणी जीवन - जगत् पर महर्षि ज्ञान के निरूपित परक योग जगत् की परम सिद्ध सिद्धि प्रदान की है।

और उत्कीर्ण की जगत् काम युग - चित्त के लिये धूमि पर राजा पुण्डरीक की एक भावना सभी सभी भीता - भाव ही उपदेशिका बन कर योग सिद्धि की ही प्रतीक बन गई है। यह आत्म - सुखी बन कर राम - चिरान्त दोनों की ही अमर्यु बताती है और आत्म दर्शन में ही चिरान्त जगत् का सौन्दर्य देने से नहीं रुकती। अन्त में यह स्वीकार करती है कि वेद - भाव एक आशक्ति पर है। यह तो जगत् प्रकृति की ही काम के ही चिरन्तन भारी है, यह चिह्न ही सुन्दरी है, चिरन्तन व्यापिनी है।

अध्यात्मिक चरित्रों में ही राम - चिरान्त, तर्क - भावना के फल पर जगत् युग है। अमर्यु एक में चिरान्त का अनुप्राण है और अनुप्राण का देखाया। महर्षि ज्ञान सदाजीवन करने वाले योगी हैं जिन्होंने ने अपनी कृपावश्या में सुकृष्ण से परिचित कर उसे ही ही प्रकृति ही सिद्धि माना है। दूसरी ओर राजा पुण्डरीक तर्क - सुख सम्पन्न होते हुए ही चिरान्तोन्मुख हो गये हैं। अमर्यु एक में अपारा स्वीकृति का मानवी रूप है। यह चिह्न ही स्वीकार किया जा चुका है कि



अपसरायें सन्ततियों का पालन कर्वा करती हैं उन्हें जन्म दे कर दे अन्य किसी को सौंप देती हैं। उर्दगी भी उर्दगी - पुत्र जायु का पालन सुकम्पा द्वारा किया गया है किन्तु जो मामूली - मातृत्व भाव और ममता है वह उर्दगी अपसरा में दृष्टरूप है। यह दिगंबर के मन का उदारता भाव है जहाँ से मातृत्व को विशेष महत्त्व मिले है। जेता में जन्मद का सुख ही मातृत्व है। वह प्रलय में नहीं भी तर्क के लिये स्थान नहीं है। उर्दगी का यौवनोत्कृष्ट जेता स्वयं जब जन्म ही पर्याप्तता में परिचित होकर है ही गया है। जाया उर्दगी तर्क सीता जी, जन्म ही उर्दगी ममता की भावना है।

प्राचिन और नाटकीय काल का जेता राजा पुत्रका का स्वयं - पल नियति के रूप में बलीकृत है जो कर उनके परिग्रहक रूप की सुचना देता है। यहाँ भी जेता की भावना के बलीकृत राजा पुत्रका उर्दगी के नियोग में राष्ट्र प्रतिभा का जेता जेता स्वयं में भी बिना ही सीता करने पर उद्यत है जिस का पर्याप्तताम सम्पादन के निमित्त भाव में ही जाता है। नियति के नियोग के प्रति के निमित्त समर्थन का परिग्रहक ही जाता है। अनेकता औसीनरी को अब तक अध्याहार में बड़ी ही परिस्थितियों से समझता करने जाती विज्ञा मारी जी, जिसे मन में निरन्तर अपने सम्पादन की निरन्तरता मालती रहती है।

जन्म न कोई सीता, प्रकृति है भी अतः मिला था वह में उर्दगी जन्मद की सीता निरन्तर ज्योति है मारी औसीनरी सीता ही जन्म ही ज्योति को सीता कर राज रानी के जन्म पर राज माता भाव की जन्म होती है। औसीनरी को उर्दगी जन्म प्रसीकृत, परमात्मा, जन्म ज्योति और जन्म सुखता के सीता में मारी जेता प्रदान की जेता ही जन्म कर समझ मारी जाति को प्रिया नहीं, जेता जन्म सीता जन्म ही माता है। जन्म समझ अधिकारों का समर्थन कर मारी जन्मता का स्वयं जन्म है।

वह प्रजा उर्दगी जन्म में प्रथम और द्वितीय जेता में लक्षित समझाओं की प्रकृति है, सुनीय जेता में सुनि और मन का सीता जन्म - विज्ञान के पद पर प्रकृत विज्ञा गया है और जेता सीता प्राचिन जेता में भावना का स्वयं ज्योति है जो जन्म में निमित्त पूर्ण सीता में पर्याप्तता है।

00000000000000

0000000000

## उत्तरा में

पुरुषार्थ का निम्न

=====

पुरुषार्थ को चिन्ता कहा गया है। काम अर्थ और धर्म के प्रिय में अर्थ और धर्म का सम्बन्ध रहस्यमय है। काम और धर्म का सामान्य ज्ञान है। काम और अर्थ की कोटि धर्म से नीचे है। धर्म का स्तर नैतिक और आदिकर्म है। अर्थव्यवस्था में काम और अर्थ प्रत्यक्ष जीवन की अनुभूति है। और धर्म प्रत्यक्ष धर्म प्रवृत्ति की ओर उन्मुख है। धर्माचरण में स्व की निम्नता रानि रानि बढ़ती है और सम्मान तक पहुँच जाती है। काम दुःख की चक तुरित है। मार्ग की भावना से उत्पन्न धृति की मीठा काम कहलाती है। काम को आनन्द देने वाला व्यक्ति सभी परमार्थ की ओर नहीं देखता। यह भी सत्य है कि काम मार्गस्थ धर्म का भी मूल भाव नहीं है। मार्गस्थ धर्म का आधार काम नहीं है, उसमें दानम भाव निहित है। काम का अन्तिम धर्म बिना अन्त आनन्द की अनुभूति नहीं हो सकती, सभी निश्चित की प्राप्ति है। कामावली में भी मनु के काम के अन्तिम के उपरान्त ही ज्ञान प्राप्त कर कर्म ही ज्ञान है और सभी धर्म की भी सभी भावना है।

सर्वत्र मार्गस्थ जीवन मनुष्य के आध्यात्मिक विकास की एक आवश्यक शक्ति है। जीवन में दानम; स्वार्थ और स परमार्थ का सामन्त,  $\frac{1}{2}$  का धर्म और महान का सम्बन्ध प्रत्यक्ष - धर्म में ही होता है। जीवन की सुखमय बनाने के लिए काम, एक अर्थ और धर्म का सामन्त होना अनिवार्य होना चाहिये। धर्म की स्थापना अर्थ तथा काम के ऊपर होती है। धर्म - भावना के अभाव में मनुष्य अर्थ - लोभ और परमार्थ आपस करने लगता है। अतः धर्म की अर्थ और काम के ऊपर एक केवलता रखनी पड़ती है। ग्रीक साहित्य में भी वीरा, धर्म और एलेजीड का चिन्तन भारतीय पुराणों में वर्णित स काम, अर्थ और धर्म के सामान्यता है। जिस समय वैदिक ने एलेजीड की मूल - केवलता लिख की उसी समय Hera

और *Attney* उसकी और राह बन गई। ठीक यही बात हमारे दूरान ग्रन्थों में प्राप्त है जो बुनानी दूरान - कथाओं से कहीं अधिक प्राचीन है। धर्म, अर्थ और काम जीवन दूरान और जीवन संहिता के रूप में स्वीकार किये गये हैं और धर्म की महत्ता काम और अर्थ से बहुत समझी गई है। जब धर्म की बहुत जान कर दूसरा व्यक्ति उसका काम और अर्थ से अधिक समझकर हुआ तो अर्थ ने दूसरा की राह दिया कि वह "जोश" आकर मर जाये गा और काम ने राह दिया कि वह सितल - मामिनी के योग - इस काम में उद्योगी है सिद्धत विद्योगी जीवन व्यतीत करे गा। दूसरा की प्रथम तथा दूसरी दूसराओं के परस्पर संघर्ष का परिणाम है।

धर्म के नैतिक मूल्यों के विकास में उत्पत्ती का रोल है। अर्थ के विकास में भी राज्य - सम्पत्ति और वैश्य - वैश्य दूसरा के राज्य में वर्गीकृत है। जिस पर कवि कोई टिप्पणी नहीं करता। समझा और समाधान कवि की दृष्टि में केवल काम सीमा में रहता है। उत्पत्ती काय का प्रथम भी काम - समझा की ले कर हुआ है जहाँ काम का वैश्व धरातल और मानव विज्ञान तथा मंदिर और मादक है। और यहाँ से जोका उदात्तीकरण कर कवि आता उसे आध्यात्म तक ले जाने की चेष्टा की गयी है।

उत्पत्ती की बुद्धि में दिनकर जी ने "काम" की विभूति स्थापना कर डाली है। उत्पत्ती काय का धरातल काम - आधारित क्यों है, इस विषय का भी यहाँ से कर कवि ने काम - महत्ता की तरह से सिद्ध कर देखा प्रोत्साहित किया है। दिनकर का यह काल विचार पूर्ण है कि :-

"धर्म का जन्म आत्मा के धरातल पर होता है, किन्तु  
साधुधर्मता उसकी तक है जब वह यहाँ धरातल पर आकर  
हमारे आचरणों को प्रभावित करे।"

इसी प्रकार बुद्धि, सोन्यकीय और प्रेम का जन्म वैश्व धरातल पर होता है और उनकी भी साधुधर्मता होगी है जब से जब उठ कर आत्मा के धरातल का स्पर्श करते हैं। यहाँ पर भी प्रेम तथा काम की आत्मा के सोन्यधर्म तक उदात्त करने की बात कही गई है।

कवि का विश्वास है कि काम की भिराकार भूमिधर्म दूसरा और मारी के भीतर से जन्म लेती हैं। सोन्यधर्म के निदिशतात्म पर पहुँचना की काम की पूर्णता है। बहुत कविता मौलिक से परे भौतिकीतर सोन्यधर्म का स्वीकृति है, फिजिकल को साध कर मेटाफिजिकल होजाती है। प्रेम का जन्म भूमि में होता है। प्रेम की

1:- उत्पत्ती: पृष्ठ 61 *Anand Maudir Annual 1949.*

2:- उत्पत्ती: बुद्धि का





एक प्रकार उर्कती और केवल उर्कती काम की व्याख्याता की हुई है।  
 पुरुषा, जीनीवरी, सुकन्या, समस्तकादि पात्र काम की इस लक्ष्मी का ही  
 कामते हुए भी नीति के मार्ग की जीत नहीं लेती। सम्प्रति: विमलर भी अपनी  
 हीजावस्था में काम पर नीति की विजय की स्वीकारते हैं। उर्कता उर्कती के  
 विजय में काम की समझौता:-

क्यों नीति काम की मार न  
 अपना ली ले बार नहीं।

श्रीत तिलक ने

000000000000

.....

### उत्कृष्टी में नियतिवाद

कार्य की निश्चयता से उत्पन्न निश्चयता, परचाताप, आत्म आत्मि व आत्म प्रवर्धना मनुष्य की नियतिवादी बना देती है। नियति का तत्त्वार्थ मान्य की विवर्धना से है जहाँ मनुष्य की उत्पत्ति एक सुन्दर मनोवृत्ति की रचना करती है। किन्तु ज्ञानार्थ और धर्मार्थ - जगत् का प्रत्येक दृष्ट प्रकार संशोद्धित होता रहता है जिस से सभी चीजों में पूर्ण नहीं होती। उसका परिणाम यह होता है कि मनुष्य अपने आप की रक्त - रीत्य ज्ञान और भाव्य सिद्धि के द्वारा संशोद्धित मान्यता है। यही नियतिवाद है।

उत्कृष्टी का मनुष्य में नियति का एक महत्वपूर्ण स्थान है। ज्ञानार्थों के रूप में भी और धर्म के रूप में भी। अतएव नियतिवादी ज्ञानार्थों को पूर्ण नहीं करता है और उत्पत्ति के निश्चयता से उनका प्रतिफलन होने लगता है तो नियति की प्रवर्धना होती है। मनुष्य की जीवन सीमा के बारे में प्रभाव करने वाली ज्ञानार्थ के अनेक रूप उत्कृष्टी में दृष्ट-मान्य हैं। उत्कृष्टी के प्रथम अंक में स्वयं उत्कृष्टी नियति के कारणवश से स्वयं से प्रेरित हो कर महाराज दृष्टवा की भावना अपने में मर्त्यमुक्ति करती है। ज्ञानी कि वह सब कहती है:-

----- " यदि आज ज्ञान का अंक नहीं पाई गी  
तो रातीर की लोह पवन में निश्चय मिल जाई गी।

उ० अंक 1/20

यस संकल्प के साथ ही उस में नियति का भी स्वर मिल जाता है:-

भला चाहती हो मेरा तो जगत् पर जाने हो  
मेरे जित जो भी संशित हो मान्य मुझे जाने हो।

उ० 1/20

एक और संकल्प की दृष्टता है जो आत्म निश्चय की प्रतीक है तो दूसरी और प्राप्ति की अनिश्चयता भी है जो मान्य - सिद्धि के अन्तर्गत नियति के है। उत्कृष्टी के जीवन में उस स्वर पर प्राप्ति की अनिश्चयता है। जीवन में अनिश्चय दृष्ट मिले या नहीं, उत्कृष्टी उसकी उत्पत्ति में मान्य है और उस अनिश्चय के प्रति



आशावादिता से बरी है। मरुर्ध का यह भाव भी उर्वरी का भाव्य है:-  
 ओम देवता है जो यों त्रिष त्रिष कर खेल रहा है  
 प्राणी में तब की अन्य माधुरी उल्लिखित रहा है।  
 जिस का अन्तम प्राण में मेरे यह प्रमोद भरता है  
 उस से बहुत भिन्न हो कर जीने को जी करता है।

उ० १/२।

जिस सेवा उर्वरी के केवल समय के त्वर में त्वर देती है:-

"सुविधा ठीक है, जहाँ, समय जिस को उपयुक्त लगावे"  
 यह समय ही अनिश्चित तत्त्व है जो नियति काद का प्रमुख अंग है।

नियति का सीधा प्रभाव जीसीमरी पर परिलक्षित होता है। जीसीमरी एक दुःखी मारी है जो पति के विमुख होने पर और अप्सरा के साथ रहने के कारण दुःखी और बेवसा - कातर है। जीसीमरी मुख्यतः अपने कारण प्रपीड़न से मन बदलाने का प्रयास करती है और ले किन्तु सपरानी - जीवन की जगहा की मारी के लिये बहुत बड़ी पीड़ा है। तब जो असाधित पटना भाव्य वह विद्रुप है, व्यंग्य है। निराशा की उस सीमा पर जीसीमरी खड़ी है जहाँ मरण ही एक स मात्र उपाय है। सपरानी - जीवन की विरहान पीड़ा से तो मरण की एक द्वार की पीड़ा कहीं अच्छी है। तब पर जीसीमरी की हीन धर्मा पर दया दिखाती है उस की परिचारिका मिथुनिता। रात्र रात्री पर दया/क्या उस की यथाचित नहीं करती? किन्तु मिथुनिता कहने से नहीं बूझती ----- जीसीमरी के लिये जो भाव्य होना है यही उर्वरी के त्रिष सीमाव्य है:-

पर देती है कुप भाव्य की बल गणिका के त्वर

करत रहा है महाराज का सारा प्रेम समझ कर

यही कारण है कि महाराज की वीर्य कुले भी जीसीमरी भाव्य जीव के कारण अप्सरा उर्वरी से त्रिष - प्राप्ति की वीर्य में बार बर। उर्वरी के अन्तम जीसीमरी रात्री का पति पुरुषवा हो, उस से अधिक निराशा और क्या हो सकती है जी? वह मिथुनी भाति कुछ जोडा करी, पति के लुह में ही कुछ मान कर रहने वाली रात्री जीसीमरी एक सामान्य से भी हैम हो कर रह गई है।

और अन्त में जीसीमरी का भाव्य हुआ गीत उसकी पराक्रम और निराशा का गीत है, उसकी विवशता और असाध्य अवस्था का गीत है। जीसीमरी समस्त मारी जाति की विवशता को भाव्य - जीवन की वह वह सकती है, यही एक विवशता है:-

विवशता है सब की, मगर, मारी की बहुत अवस्था है।



पुरुषवा तो मयिक्तकता का चिह्नोना है, हर बार उसे मयिक्तक के नये नये रूप -  
देव देवों को मिलते हैं फिर प्रभु जब उस अनुमोदी मयिक्तक से क्यों उठे। उस  
प्रारम्भ को पुरुषवा ने अपने स्वप्न में खीर - वासव आधु के देव में देखा है।

पुरुषवा का जो स्वप्न है उर्ध्वी का यही आधार है जो मूर्तमान ज्ञानता की  
मार्गित प्रकृता प्रकट होना चाहता है। उर्ध्वी विद्यमानता द्वारा विवेचिता  
स्वप्न - वह इसी ज्ञान कर भक्त शीघ्र का ही स्वरूप कर अभ्यन्तर में खली जा रही  
है। इस ज्ञान को क्या जाननी पौंडर शान्त किया जा सकता है। पुरुषवा  
विश्वी शीघ्र की उन्मत्ता तक नहीं कर सकता। उर्ध्वी के इस वाक्य क्षण में भी  
वह गैर मादम वक्त के विचार की मादमता से रोमांचित होने में आनन्द का  
अनुभव करना चाहता है। यही तो नियति का धर्म है जो एक के स्वीकार में दूसरे  
को आनन्द भाव विभोर किये है। यही सब क्षण है जब उर्ध्वी - पुरुषवा का प्रकट  
स्वीकार - आनन्द विरोधित हो कर एक निवर्तितक मयिक्तक में परिवर्तित हो  
जाता है।

सुख्या का प्रकट नियति संवाचित है। ऐसे सम्भार क्षण में जब उर्ध्वी  
प्रारम्भ से मयिक्तकता है और पुरुषवा अपनी उर्ध्वी के साधित - साधित मन से  
अभ्यन्तर है, सुख्या का उर्ध्वी - पुन आधु मयिक्तक प्रकट एक नियति ही है। इस  
प्रकार अज्ञानक सुख्या का प्रकट भी ही उर्ध्वी के तिले पुन - मयिक्तक के आनन्द के  
स्थान पर मन और विम्वता होता है, तथापि सुख्या अपने आनन्द की समर्थ  
में विलिप्त स्वप्न के आदेश का, कि आधु को उर्ध्वी विन उ विन गुरु जाना है, ही  
प्रतिपादन करता है।

जवा: "आधु को विन - गुरु जान ही मन करना है

जवा: आज ही, विन रहते - रहते मयिक्तकता ही जा

ऐसे भी ही, इस दुमार को निवृत्त लक्ष्यिता - माता है "

तो से उर्ध्व, अज्ञानता ही, वैसे, सुयोग नहीं जा

पूर्ण सुख्या का या वक्तो और रोक रहने का।

HO 5/133

"मैव - ६यमि " भी नियति का एक प्रकट अंग है। यो रूप गर्भ में  
उन्मत्ता पुरुषवा देवों को भी सुनीती है कर पुरुष का आह्वान करता है। परन्तु  
उसे यही मैव ६यमि उन्मत्ता रीकती है। स यह "मैव ६यमि " पुरुषवा का ही  
अन्तर्गम है:-

में प्रारम्भ, चन्द्रकल का तीव्र प्रताप होता है

धीरे रता है धीरे ही प्राणी के ज्ञान ज्ञान है।

HO 5/141



यह प्रारम्भ ६०० दिनों तक, मुँहकी रक्ती से ठीक उसी प्रकार जैसे  
रोजगारीयों के नाटकों में *Rate* प्रकाश पाय कम कर जा जाता है।

उसी गीति नाट्य की समाप्ति निमित्त के ही प्रकाश बाधों काारा पूर्व है।  
जो औद्योगिकी दूसरे अंश में ही समाप्त प्राय की गई थी वह पुनर्जीवित हो उठी  
है। दूसरा अंश ही इसे मूल गया है, किन्तु, वह यह अन्तर्गत प्रेममयी अनुभूति  
केस से अपने प्रति की मंगल कामना की करती है:-

देख! किन्तु, मैं तुम्हें तुम्हारे कंठ भी प्रियतम की ।  
और अपने आप को वह कतमानी की कहती रही। जो सर्वथा निर्विषय रही थी  
वही अन्त तक जीवित - प्रतापित भी रही:-

मैं अन्त, निर्दोष, विचारों वह क्यों नहीं दिये मैं  
जहाँ किसी ने जोर धुँ जा मिरा किसी के तिर पर।

उ० १/१५।

औद्योगिकी का चरित्र मानों निमित्त - निश्चित है। दूसरे अंश में दूसरा -  
उसी का संयोग उसकी निमित्त अन्त और वह अनुचित में विनीत करी रही।  
अन्तिम चरण में भी वह निमित्त अपने प्रति का उसे साहचर्य मिला तो दूसरा उसे  
ही क्या समस्त राय केवल परिवर्तन कर परिवर्तित हो गये। विचारों से कठिन  
परिपूर्ण औद्योगिकी आत्म प्रवर्धन और परमात्मा की कहती रही, उसी में उसका  
चरित्र महान्तर ही गया है। चरित्र की यही उज्ज्वलता निमित्त निश्चित  
हो कर हमारे मन आरम्भ के और अन्तिम निमित्त की जाती है।

0000000000000000

.....

## उ र्ध्व रा के में आदर्श य त व

\*\*\*\*\*

• दिगंबर के आचार्य - धर्म का आधार भारतीय संस्कृति में प्रादुर्भूत है। आचार्य हैं जिसका अर्थ है वैदिक धर्म, निवृत्ति-प्रवृत्ति धर्म और गीता के सार्वभौमिक धर्म से गठित हुआ है। उर्ध्व रा के में सम्यक् वैदिक धर्म और धर्म का उल्लेख नहीं है तथापि आचार्य के "विश्वमोक्षीयम्" के प्रभाव की अस्वीकार नहीं किया जा सकता। सभी प्रकार कूट - धर्म की निवृत्ति परक साधनाओं की सम्भावनाओं का उल्लेख समास धर्म की प्रवृत्ति परक मूल साधनाओं में ही की जा चुका है। सिद्धार्थ के राघव-मातृ, वरनी-परिवार के मोक्ष का परिचय कर दित कूटधर्म की प्राप्ति के लिए राघव पुरुष भी करते हैं। उर्ध्व रा के अन्तर्गत होने पर उनकी उर्ध्व रा - प्रेमात्मिक धर्म परिवर्तन बना देती है। इन दोनों की विचार धाराओं के मूल में हीमद सम्यग्दर्शिता का एक धर्म है जो सम्यक् अनात्मिक की ही जीवन का मूल - मर्म मानता है। मोक्ष का निष्कारण धर्म - धर्म-भाव, अनात्मिक योग, और स्वयं - विवेकी भारतीय संस्कृति का मूल मर्म है। गीता के समस्त उपदेशों के उपरान्त विवेक की ही सर्वोपरि स्थिति का भी एक उपदेश है --- समभाव, समरता अथवा निर्वेद निर्मित बुद्धि कोण। कवि दिगंबर ने "प्रभाव" की भाँति अपने पुरुषों की मनु की स्थिति में परिवर्तन बनाया है। काम - प्रपीड़ित की तो पुरुषों की है और मनु की है, है, पर मनु काम - जयी है, पुरुषों काम से जाता। मनु में शक्ति की उपस्थिति ही पुरुषों में शक्ति की शक्ति का प्रभाव। किन्तु, दोनों की ही आधार धर्म निष्कारण अनात्मिक ही है --- सभी आचार्य का निष्कर्ष कवि दिगंबर ने उर्ध्व रा के सम्यक् सुखीय धर्म में किया है। दिगंबर के इस सांस्कृतिक और पारिवारिक आचार्य की गीता के सम्यक् में अध्ययन करना आवश्यक है। उल्लेखनीय है कि यह समस्त गीता का मर्म और आचार्य का मर्म तथा सांस्कृतिक आचार्य उर्ध्व रा के सुखीय धर्म के पुरुषों और उर्ध्व रा के सम्यक् सम्यक् सम्यक् में केवल गीता की व्याख्या के रूप में रहे भी हैं। पुरुषों का सांस्कृतिक आचार्य की





पुरुषवा निष्काम कर्म का अनुगामी है। भोग के कार्य से प्रतीक्षित फलना विहीन व्यसनावात्मक बुद्धि का समर्थ नहीं। बार बार पुरुषवा विवक्षा प्रसन्न होता है। एक और रूप की आराधना का सांस्कृतिक आधार पर सिरका करता है और दूसरी और बुद्धि - जिज्ञा के अन्तर्गत के तर्क से उसी आराधना का सांस्कृतिक समर्थन। साक्षात्कारों और ज्ञानाओं के अन्तर्गत में पुरुषवा धरम और अन्तर के अन्तर को जानने वाले उन विद्वानों में प्रसन्न है जो पुरुष के उद्धार के लक्ष्य में समस्त भौतिक सुखों को त्याग कर भी अन्तर्गत है। उसे "आविष्कृत देवता" पर "बल जाति की कक्षा" पर धर है। जिसे नीलो के नाम में *Elan vital* कहा गया है। इसी वही *Elan vital* के तर्क से अपनी काम तुला की तुल्य के लिये बार बार पुरुषवा को आमन्त्रित करती है और हर बार पुरुषवा उस प्रणय पुरुष तक पहुँच कर निष्काम कर्म की परिधि को स्पष्ट करने लगता है। इसी बार बार "रक्त बुद्धि से अधिष्ठित होती है" कह कर पुरुषवा के रक्त की भाषा पढ़ने पर विज्ञा करती है। परन्तु पुरुषवा का तर्क है कि वह रक्त की भाषा "उस अवस्था तक पूर्ण सचिता तक" उहाँ पहुँचने देती है। नारी के प्रेम के प्रत्यक्ष से हमर उठ कर तन के उदरगत के बार पुरुषवा अन्त-विज्ञा की भाषा चाहता है जिसे कवि विनोद कहते हैं:- "पानी पर पानी, विन्दु, पानी का दाग नहीं लगे।" यही गीता के निष्काम कर्म का उद्देश्य है:-

योगसूत्र: कुरु कर्माणि संन्यस्य स्वप्नसंशयं ध्याय ॥

सिद्धय निर्विघ्नो सगो हृत्कल समर्थ योग उच्यते ॥

गीता: 2/48

गीता के "योगसूत्र" को कवि विनोद ने छन्द दिया है। "योगसूत्र" कोन है? गीता का कथन है:-

या निरोग सर्वकृतानां तस्यां जागर्ति संवमी

यस्यां जाग्रति सुतामि ना निरा पश्यतो मुने: ।

गीता: 2/49

कवि विनोद इसी श्लोक को आदर्श के रूप में रखी का रवों तक देते हैं:-

निरा योग जाग्रति का रूप है और उदग्र प्रणय की

पराधमिक समाधि, काश के हसी गस्त के नीचे

मुना के रक्त - पथिक समय का अतिश्रमण करते हैं

योगी वहीं उपार योग में, प्रणवी जातिगम में ।

समस्त-मयी उदार शीतल जल फैलाती है। उच्यते: 2/54

१:- उच्यते बुद्धिः पुरुषः च

क्योंकि पुरुषवा जानता है कि "कहीं समापन नहीं, उदय गानी जीवन की गति का।"। गेरे में भी ज्ञान सत्य की प्राप्ति में मिथ्या ज्ञान का वही सम्बन्ध स्थापित किया है जो सुस्पष्ट का/जागृतावस्था से है।<sup>2</sup> और यह दिखा 7 जोध काल संग सत्य की कृष्ण के विराट कलेवर में विद्यमान है 3- अहमेवाशय, काली" जिसे विविध दिनकर में गाया है:-

महाकृष्ण के अर्वाग्रह में हम उद्भूत भवन में  
जहाँ पहुँचे हैं दयकाल यह है, कोई भेद नहीं है।"

उ० ३/६६

यही सिद्धांत, यही अन्तर्दृष्टि और यही धर्म पुरुषवा उर्ध्वी की पदार्था जाग्रता है। यह भी उल्लेख की गई प्रकृति है कि कवि पर जय शंकर प्रसाद की कामायनी का स्वर प्रभाव है जो उसे एक आम्बोहित किये है। कामायनी काल में उस एकात्मिक सत्ता के प्रभुत्व को गीतकार किया है जो समस्त ब्रह्माण्ड का संकलन करती है:-

प्रिय देव सखिता का पूजा, होम यस्त रंजन पदमान  
दख जायद सब धुन रहे हैं जिस के रासन में कामान।

जागी मरी

उर्ध्वी कार भी वही विराट प्रकृति को उर्ध्वीकार करता है जिन्की सत्ता भूतल पातालसे गगन तक परिव्याप्त है:-

जिहवी वज्रा का प्रहार भूतल , पाताल गगन है  
दोड़ रहे नभ में अमल उन्मुक्त जिहवी लीला है  
अग्नित सखिता होम , स्वीरमिति ग्रह उर्ध्वीज यम कर ।

उर्ध्वी: ३/६७

गीता में भी यही भाव प्रथम पुरुष: में अभिव्यक्त हुआ है:-

अव्ययमा युगायेव सर्वभूताश्रयि ततः ।

अव्ययिष्य मर्त्यं च भूतानामन्त यत्न च॥

1:- The good is yet to be.

2:- Error stand in the same relation to truth as sleeping to waking  
Goethe

और उर्वरिणी भी इस वैदिक संभ्रमण से ऊपर उठ कर जिस अंगीकार करता तक उठ गई है उसे कवि विनम्र कहते हैं:-

रोम रोम में कुल सरणि, कीर्णल उर्वरिणी पर  
बढ़ी हुई आकाश - और मैं कहाँ उड़ी जाती हूँ।

उ० ३/-६९

और दूसरा प्रतिष्ठा उसे समस्त धरातल से उठा कर अन्तर्देशना वाली बनाते चले जा रहे हैं। उनकी अन्तर्देशना अन्तर्देश की रचना कर मनोमय कोरों के ऊपर ऊँच गाँधी संभ्रमण करती जाती है --- " बड़े बड़े हम देव छोड़ कर मन में बहुरं रहते हैं। " कहाँ पर " किन्हीं के बीच रूप को ऊपर छोड़ रहा है। और यह जीविक काम - कुछ ही समाधि कुछ ही निश्चय विचार है। यही ही कवि के कामाख्याम कहा है जो " गहन मुख्य होव " के दर्शन कराता है। यही मनोविश्रुति में अक्षय कामन्द की कलाकृत अन्तर्देशना हीन निश्चयता उपलब्ध कहना कवि का आकाश है। गीता में अन्तर्देशना से विस्तृत रहना ही निश्चय काम - धारा कहा गया है:-

अन्तर्देशनाधिकार तो मा फलेन, उदात्त !  
मा अन्तर्देशना हेतु ईर्ष्या से संतो, सब उदात्त ॥

गीता २/४९

इस काम धारा में सम्पूर्ण काम करते हुए भी काम से निश्चय रह का ही काम - कामन्द का मोन करते हैं ही ही जीवन के चरम रूप शक्ति की उपलब्ध करते हैं  
निश्चय कामाख्याम: अन्तर्देशनाधिकारिणि नि: लुब्ध: ।  
उक्त निर्ममो निरहंकार: स शान्तिमधिगच्छति ॥

गीता: २/७१

उपनिषद् भी यही कहते हैं:-

मनोविश्रुतिविहीनो श्रेयसिदुःखं च सुखं ववाह ॥  
अनुबन्ध कामाख्याम सुखं, शान्तिवर्जितम् ॥

और यह विनम्र उपलब्धता माव को ही अपनी चरम शक्ति का रूप बना कर कहते हैं:- उर्वरिणी का उद्यम है कि:-

यह अक्षय कामन्द नाम सम्पूर्ण - शान्त हम उन का  
विशेष सम्पूर्ण अन्तर्देशनाम कोरों को नवी है,  
और अधिराज सम्पूर्ण निश्चय से यदाकार प्रकृति से,  
अक्षय रक्षा सुख, पूर्ण, निश्चयान अक्षय धारा में  
संशयों में निश्चय, विश्वास, पर, उसके परिणामों के  
सदा मान्यो हूँ, यहाँ को कुछ है माव किया है  
इस निश्चय के अक्षय काम है, काम सम्पूर्ण धारा  
काम सम्पूर्ण कामन्द, काम ही वह सम्पूर्ण अक्षय का। उ० ३/७६



यह अनाम कामन्द मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार आदि सभी मनोव्यक्तियों के ऊपर है। यही काम है। आश्चर्य यह है कि यही कामोन्मत्तादिनी उर्ध्वी जो वास्तव है तत्त्वज्ञान की अनन्तता की ओर जाता - काम की उपदेष्टा बन गई। नीला की मानव केना वादी भूमि हो यही है कि यही की कृष्ण में अर्जुन की केना वादी सब उपदेष्टा है - का स्वयं प्रदान किया था यही दिनकर ने उर्ध्वी की नीला - चरित्रक नायिका बना कर प्रदान किया है। यही उर्ध्वी उर्ध्वी संसार की परिवर्तन शीलता की सुक्ति का रहस्य व्यक्त होती है "परिवर्तन प्रक्रिया प्रकृति की सबसे प्राण धारा है।" नीला में यह "परिवर्तन शील संसार" "जाति की अनुमति" से मोक्षदा है।

कवि सर दिनकर ने काम के जादू स्वयं की प्रण करने का लीला दिया है काम - दमन, काम - चिकित्सा, और काम तन्मयता की तीन ही कामोद्भूत हैं। हमारा जादू है काम का तन्मयता करें काम की तात्काली भोग से ऊपर उठायें। गुरु देव रवीन्द्र ने भी अपनी उर्ध्वी की वाक्या में "कामना की तात्काली उर्ध्वी वाचिक" की बात कही है। काम तन्मयता है तात्काली, काम - दमन और काम चिकित्सा के ही रूपों का नाम है। यही लिये कवि दिनकर मन में निहित काम केन्द्रों, धर्मिक शास्त्रों और चिकित्सकों की विषय मुख्य मानते हैं और नीला में इसे भवे कर्म - प्रिया की कर्म निवेदन करते हैं। नीला कार कहता है:-

निर्जल गुरु कर्मरत कर्म न्यायो व्यवहारः ।

शरीरवाधापि च ते न प्रतिकार्येवार्थः ३७ ।।

नीला: ३/७

कवि सर दिनकर ने इसे तीन स्थितियों में ---- धर्म, - धर्म - तन्मयता की उर्ध्वी में कहा है:- उर्ध्वी का चक्र है:-

काम धर्म, काम ही प्रथम है काम के किसी मानव की उच्च लोक से नीला कीम रस - प्रणु बना देता है और किसी मन में अतीत सुखों की सुखा बना कर पहुँचा देता इसे चरण - दीप्ति कवि उच्च विद्वत् पर ।

उ० ३/७०

यही उर्ध्वी मन के काम की बहुत सुख व्यक्त करता है यही कि काम की चिकित्सा और दमन मन की सुक्ति करता है:-

"तन का काम बहुत किन्तु यह मन का काम नहीं है"

और अन्त में उर्ध्वी का ही निर्धारण करता है:-

वैज्ञानिक सुक्ति कर देती है यही समस्त कर्मों की इसी नीति यह काम सुख के ही सुक्ति और ललित है।

उ० ३/७१

यही लिये निरुद्ध कर्म काम - सुख का स्वर्गीय सुख है।



सुझाया है तब मैं विनकर ने नारियों की स्वेच्छाविधि प्रवृत्ति की वेश माना है। वर्तमान युग में बड़े बड़े नगरों की उन्मूलित सभ्यता में स्वेच्छावत सभी नारियों के लिये विनकर की मान्यता है कि सुवर्णी अर्ध के वासन से बहुत कोर नारी अर्ध है ही नहीं:-

एक नारिणी में क्या जानूँ तबहिं विविध भोगों का,

मेरे तो आनन्द - भोग केवल मर्दिन भरता है

योग - भोग का मेरा अपसरा की अन्ध प्रीति है

सुवर्णी के तो वरम देव आराध्य एक होते हैं

जिस से मिलता भोग, योग की वही उमें देता है

क्या कुछ मिला नहीं मुझ को विविध मर्दिन की कम कर

विह्वल विह्वल हृदये में, जाने लोग प्रमोद मगर है

किन्तु एक लक्ष से कम नारी उमर जिता देने में

जो प्रकृत, भोग, साप्ति मग्न है, वह क्या सभी जिनेगी

मये मये वृत्तों पर जिस हृदये किन्तु जाती की

पारंपारिक सभ्यता में जाने जाने किन्तु मये विविध और ललाट की क्या मान्यता कम भी स्वीकार कर लेता है नारी के क्या कई प्रयत्न होते हैं जो विभिन्न वृत्तों की एक एक लक्ष कानिनी सभी रचना चाहती है 'क्या वृत्त भी जिना नारी का प्रयत्न होते केवल लक्ष के लक्षरे कीमा चाहता है' ये है मौलिक प्रयत्न है जो हम नई सभ्यता के लक्षरे नगरी जीवन में मये मये वृत्तों में प्रकट हो मये हैं जिन्हें हम स्वेच्छा, मर्दिन अन्ध आधुनिकता की संज्ञा देते हैं। आज की हीटल-संस्कृति, पारंपारिक से प्राक्त आधुनिक व्याख्यायिका, राजनीतिक और सभी क्षेत्रों में नारी - लक्ष - स्वेच्छा अपसरा एक प्राप्ति का निरन्तर प्रयास किन्तु मेरे मार्गमध्य अर्ध हीनता - विहीनता की कर किन्तु भिन्न की रहा है। विनकर ने सभी प्रयत्न की मुक्ति - ललाट की विविध 'उत्तरी काव्य की समाप्ति पर' में उठाया है :-

उत्तरी भर की प्राचीन कथा

पर वह युग की ही विरह कथा

जिन्तु प्रयत्न की है

उत्तरी लक्ष सभी लक्ष की है।

अर्थात् उत्तरी की लक्ष लक्षार्थें सभी युग की लक्षार्थें हैं जो युग - लक्ष -



मजिदगढ़ की व प्रवीणता करती है और जिन्हा यह निराकरण नहीं कर पाता।  
 यही समायाये युवकों की ही नहीं हैं --- युवता की भी नहीं है-----  
 युवतियों की भी हैं, उर्वरियों की भी है, उन उर्वरियों की है जो मासुर्य और  
 परमौर्य का, सुहाय्य धर्म का साया और जन्मी का उपवास करती है:-

मासाये योता उठाती हैं

उर्वरियाँ मोह मनाती हैं (मुक्ति सिलक से)

इसके विरुद्ध विनकर की आवाज़ है। सुकन्या योवन की क्षम्यगुत्ता पर उद्योग  
 करती है:-

पर, ये विन अचिर, योनों के भुज सिद्धु जाये-गे,  
 छूटे-गी अक्षिमा कपोलों के प्रपुन्य पुलों की  
 और यह पर जो तरन योवन की लहराती है  
 पीछे समस्त छोटू जाय में जा कर जो जाये गी।  
 सब फिर अस्मिन् राएन कहां इस लोभागी मारी की '  
 योवन का सम्भायेगा यह सब दिव दिने लगे गी '

उ० 4/103

योवन के यत्नीत योने की मारी का लन - लोभ्य किन्ती की पुन्य की आकर्षि  
 करने में असमर्थ है। य० यी० माडीनर ने करने यह निबन्ध में लिखा है कि मारी  
 की लन्य धर्म की अवस्था में जन्म ले कर लोभ धर्म की आशु में मर जाना चाहिये।  
 अर्थात् योवन की आशु पुन लन्य धर्म है जब कि मारी की योना वृद्धा है और,  
 कहीं और अधिक वर्षों तक। विनकर की सुकन्या के हाथों में इस प्रीति,  
 विवाह विरुद्ध मारी - मुक्ति आन्दोलन की ललक व्यवधारिणी स्त्रीणी  
 युवतियों की आवाजी है:-

कली लिये कली हूँ, जब तक उरा मरा उपवन है,  
 किन्ती यह के संग बांध लो तार निजिज योवन की,  
 न लो यह दिव सब हो-गा यह योनि, म्यान लोनों पर  
 लन भर लो की किन्ती पुन्य की मुक्ति नहीं विरमे-गी।  
 बाहर हो-गा विन निवेदन, भीतर प्रान लोनों-गे  
 अन्तर के देखा मुक्ति योवन ललक लारी में ।

उ० 4/104

दिनकर ने उस सार्वभौमिक सत्य की ओर इंगित किया है जहाँ नारी जीवन का कोई त्यागित्व नहीं है:-

पर, जीवन है मात्र क्षणिक चलना इस मर्त्य सुवन में  
मे उसका अवलम्ब मानवी कब तक की सकती है।

उ० ४/१०४

सुकन्या ने इसी के साथ सार्वभौमिक धर्म की महिमा भी बताई है जिसे युवा मन एक अस्मिता कह कर उकारना चाहता है। विवाहित जीवन में भी तो सौन्दर्य विगलित होता तब क्या नारी सौन्दर्य का भ्राम्योन्मत्त नहीं रहेगी? दिनकर उत्तर देते हैं:-

----- इस मर्त्य योजनाओं के  
जीवन का आनन्द - डोज डेवल मधु पूर्ण हृदय है।  
हृदय नहीं त्यागता हमें जीवन के सच देने पर,  
न तो जीर्णता के जाने पर हृदय जीर्ण होता है  
यक दूसरे के घर में हम ऐसे बस जाते हैं  
वो प्रसून एक ही वृक्ष पर जैसे छिले हूँ।  
फिर रह जाता है कहां पर विविध धर्म पावन का  
यक संग हम युवा, संग ही संग कुछ पोते हैं।

उ० ४/१०४

और इस शाश्वत सत्य का कोई उत्तर नहीं है। सार्वभौमिक आत्मिकता में बसा जाता है सब ही जीवन में विवाह संस्था की सार्थकता है।

एक दूसरा पक्ष भी है। विवाह संस्था में दायमत्य - धन और दूध ही हो जाता है जब जाया जननी बन जाती है, जब मातृत्व पद नारीत्व की सफल करता है ----- "मां बनते ही गिया कहां से कहां पहुँच जाती है।" "नारी ही वह महा सेतु है जिस पर अद्वय से चल कर, नये मनुष्य नव प्राण हृदय बन भी जाते रहते हैं।" और दिनकर ने पुनः से अधिक महत्वपूर्ण नारी जीवन को बताया है:-

सच पूछो तो, प्रजा - सुविष्ट में क्या है आनन्द पुरुष का  
यह तो नारी ही है जो सब यज्ञ पूजा करती है।  
सत्य भार सवती अंग, सन्तति अंग जननी है  
और वही हिन्दु की है जाती मन के उच्च मिलाप में,  
जहाँ निरापद, सुख का है श्राव के भूले ० का।

क्यों कि नारी का विकास - समस्त मानवता का विकास है:-

सुखें । सदा रिशु के स्वरूप में खिलती ही जाती हैं।<sup>११</sup>

नारी एक धर्म की व्यापकता मातृत्व से भी बड़ी है चाहे वह सुकन्या हो, चाहे दुर्लरी और चाहे औरगीनरी। नारी का मन मातृत्व भाव में सर्व देवीय है, सार्वकालिक है, सनातन है:-

केवल भूषा - पवन केवल प्रजनन मातृत्व नहीं है

माता यही है पालनी है जो रिशु को हृदय लगा कर।

उ० ४/११७

क्या यहीदा की ही सब लोग कृष्ण की माँ नहीं कहते ? क्या हम जननी देवकी को भी किसी दयोदार पर स्मरण करते हैं ? दिनकर का मातृत्व - पटल बहुत बड़ा है, बहुत व्यापक है। यही उनका आदर्श है जो मातृत्व को महत्ता दिये हुये है।

दुर्लरी की रचना सब प्रारम्भ हुई थी जब दिनकर लग भग ४५ वर्ष के थे। यह उनकी प्रौढ़ावस्था थी। तब तक कामायनी हिन्दी साहित्य में अपना बख्शाई स्थान बना चुकी थी। श्रद्धा भी औरगीनरी की भाँति बड़ा - दुर्लरीस आध्यात्मिक थी। प्रसाद जी ने नारी के प्रति अपनी भावना को वैदिक ध्वनि में स्वर मिला कर कहा है:-

"यस्य नारियस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र दधेता "

जो प्रसाद ने चित्रित किया है:-

नारी तुम केवल श्रद्धा ही, विकास रक्त नगरगतल में ।

पौयुज झोल सी बहा करी जीवन के सुन्दर समस्त में ।

यही भाव दिनकर के महर्षि च्यवन का है पर दिनकर चाह कर भी उसकी भावना को शब्द रूप नहीं दे सके हैं --- सुकन्या अपने प्रति च्यवन की नारी भाव को स्वर्य कहती है:-

नारी को पर्याय कहा कर तब: सिद्धिद भूमा का

सचमुच प्रिया जाति को शत्रु सङ्केत में अदृष्ट मान दिया है

किन्तु नारियों पर सचमुच, उनकी अपार श्रद्धा है।

यह स्वर्य दिनकर की प्रौढ़ावस्था का जीवन के भोगे हुये सत्य पर आधारित एक निष्कर्ष है या कि फिर <sup>एक निष्कर्ष</sup> ~~यही~~ नारियों की पुनर्जागरित --- जो एक शाश्वत



सत्य है, विवाद हीन।

उर्दू में मार्क्स धर्म का आदर्श पाँचवें अंक में प्रतिष्ठित हुआ है। उर्दू के अन्तर्धान होने से व्याख्या-व्याकुल पुरुष अपने भग्न मनसे से समस्त नारीत्व की ऐसीही अवमानना करता है जैसे प्रसाद के "जांघ" में है।

छलना थी तब भी मेरी, उस में विश्वास छँसखा बना था

उस माया की छूया में कुछ सच्चा स्वयं बना था ।

जांघ का नायक तो प्रारम्भ से ही अकेला था, उर्दू का नायक अब अकेला रह गया है।

पुरुष ने क्या सोचा था "त्रिया। हाथ छलना मनोज्ञ है" पुरुष तो प्रेम की सीधा परिभाषा भी नहीं जानता --- प्रेम करने वाली नारी

" जहाँ त्रिया कामिनी नहीं, जाया तेषरम विभा की,

जहाँ प्रेम कामना नहीं, प्रार्थना निदिध्यासन है।"

उ० ५/१४४

पुरुष परिग्राहक बन गये। उर्दू अन्तर्धान हो गई। वही दूसरे अंक में की चम्पू आराधना करने वाली औरीमरी जिसे बिना प्रसव के मातृत्व पद मिला है, जिसे अपने नारीत्व की अपूर्णता पर छिन्नता है पर जिसे राजमाता के पद छह का दायित्व निर्वह करना है। वह तो "बिना सुटाये कोण हाथ। जीवन में भरी रही है। कि किन्तु, फला न कोई शस्य" कहना ही उसे दुःख है। वह तो केवल त्रिया है, न भीड़ नारी है, अमागिनी है, उपेक्षित है, अशुभ है, उत्तमांगी है, अकस्मात् ही के कान्त पुरुष के मन में मरी हुई है, आत्म प्रवचन है परन्तु, वह जानती है भारतीय देवत्व का स्वर:-

"नारी त्रिया नहीं, वह केवल क्षमा शान्ति करुणा है"

उ० ५/१५६

और मानवता के निष्कट नर नहीं है, नारी है --- एक ही गृहस्थ नारी।

यस गृहस्थ नारी, मातृत्व पूर्ण है औरीमरी ने अपनी द्विगुनी के की शक्ति से लगा कर आयु को अपने सब व्यास से जगा लिया। यही वीर्य गृहस्थ धर्म का आदर्श है जहाँ माँ-बेटे, नर-नारी, शक्ति-मत्नी के व्यापक ऋण पूर्ण सम्बन्धों की चिरन्तनता है।

दिनकर की उर्दू में यही सांस्कृतिक और पारिवारिक आदर्श विहित व्याप्त हैं।

=====

### उर्दू में यथार्थवाद

उर्दू में यथार्थवाद की अभिव्यक्ति कवि के उर्दू विषयक पत्र में उन्मिश्रित है।  
 मुक्ति - सिलसिले में संग्रहीत यह काव्य - पत्र कवि का आरम्भ विस्तृत रूप है। कवि  
 का कथन है:-

" मैं ही पुराना राजा था " उसके समान केवल एक ही सत्य था,  
 एक ही यथार्थ था:-

उसने भर को प्राचीन कहा  
 पर इस कविता की मर्म - व्याख्या  
 आज के विज्ञान युग की है  
 सब की सब दलील सत्य की है ।

सम्पूर्ण उर्दू काव्य आधुनिक जीवन के यथार्थ की मर्म व्याख्या है और सम्पूर्ण पुरातन  
 काल केवल एक आधार पर ही प्रतीक और चिह्नों से वर्तमान का सत्य प्रस्तुत किया गया है।

वर्तमान जीवन के केवल नारी चरित्र का ही चित्रण कवि ने किया है। अप्सरा  
 और नारी में अन्तर है। अप्सरा बहुत प्रेम की अल्पता का मर्म है और नृत्य नारी  
 केवल पारिवारिक - सामाजिक परिस्थितियों में आनन्द, सुख, दुःख, दुःखता आदि से  
 प्रसन्न अथवा शोक मग्नता है। कवि ने अप्सरा के प्रतीक से स्त्रीत्व, स्वच्छन्द  
 निवृत्ति नारी की देखा है और सुकन्या और वीरगिरी में परम्परा और मातृत्व भाव  
 के वर्णन किये हैं। सुकन्या के यथार्थ पर चोट कर कवि दुःख की पुरिष्ठ को व्यक्त करता है:-

एक घाट पर जिस राजा का रजत बंधा प्रणय है  
 गया सोय बीमरु प्रेम का करते ही रहते हैं।

किन्तु, दुःख वास्ता भीमता मनु के नये धर्मों से

निरय प्रकृत एक दुःख अभिव्यक्ति और कर्मों से ।

यही दुःख - पुरिष्ठ समाज में निरय की देखा है जो निरकृति है जिस से निरय नये  
 उत्पादकत्व से रहे हैं। परन्तु से अतिरिक्त प्रत्येक नारी अथवा प्रेयसी "रति की पुरिष्ठ  
 रमा की प्रतिमा" ही समझी है। किन्तु रमा पारिवर्तियों में सौन्दर्य का मापन  
 मातृत्व से करती है:-

जगती है चिनरिखा सत्य है देव मनुष्य की ही कर  
पर हो जाती वह असीम कितनी परमेश्वरी की कर  
सुखा जनम को देव वाग्नि कैसी मन में जगती है  
एव गी भी गी। सुख तो वही प्रिया लगती है। ४० १/१९

आप की महानगरीय संस्कृति में न जाने कितनी उर्ध्वरेखा' मित्र्य प्रति प्रेम का स्वाग  
रहाती रहती हैं उनके मातृत्व से किमुष्मा है --- कवि का मति है:-

परिने नी केंचुकी क्षीर से क्षम क्षम गीली गीली  
मेव लगाने की मनुष्य से देव की भी दीली।

वही की गार्हस्थ धर्म में दीक्षित करने के लिये कवि ने छोटे अंक में सुकन्या द्वारा  
चित्र लेखा की उपदेष्टा किया है:-

वही लिये कलती हूँ जब तक परा भरा उपवन है  
कितनी पक्ष के लीन जाति तो सार निश्चित जीवन का

वही नहीं सुकन्या विवाहिता मारी हो जीवन में जन्म प्राप्ति करने के स्वर्गिक आनन्द  
रमान की महत्ता, लक्ष्योपेय की मानना पर पूरा एक सुकन्या वर्णित कर देती है। वही  
नीति है --- जीवन का आधार है।

कवि ने सुकन्या द्वारा तिरस्कृत परमी के रूप की औरगीमरी में वर्णित किया है तो  
सुकन्या के रूप में सुकन्या का आधार भी प्रस्तुत किया है। कवि ने निम्नान्तान मारी की  
कुछा की औरगीमरी के चरित्र में व्यक्त किया है जो अन्त तक अपनी सुधि से सम्मान न  
प्राप्त कर सकी और लिये उर्ध्वरेखा प्रेम की ही अपना पूरा मानना पड़ा। किन्तु वही कवि  
ने न्याय धरातल पर देखा है:-

जो किया अन्त में जाती है  
जब वही सब पर हो जाती है  
जहाँ नीति काम की मार गई  
अन्तरा जाती है दार गई। मुक्ति तिलक

जब तक मारी अन्त का आधार है। उर्ध्वरेखा केवल काम का प्रतीक है परन्तु कवि काम के  
अतिरिक्त अन्त काम के सम्मान में आध्यात्म का जनि करना चाहता है। जब तक  
पारिवारिक - जीवन का आधार है।

दुसरी और राजनीतिक जीवन का आधार है। सुकन्या ने प्रतिष्ठानपुर के राज्य  
विस्तार के लिये कभी भी पड़ोसी राजा का मुकुट को नीचा नहीं किया है। भारत  
देश की भी वही नीति है। भारत ने कभी भी ऐसा प्रयास नहीं किया है कि पड़ोसी  
राज्यताम जैसे अपने ही अंग और पड़ोसी देश को कोई अन्तर दिया हो कि उस में  
राज्य विस्था की तु की आ लके।

नहीं बढ़ाये कभी पड़ोस पर है स्वाधीन मुकुट पर  
न तो दिया सीमा कभी पर की लक्ष्मी परने की। ४० ३/४३

सुकन्या के चरित्र में स्वाध्यात्म का आधार है।

००००००००००००००



### उर्दू में स्वातंत्र्यवाद

उर्दू में एक स्वतंत्र - भाव व्यक्त काव्य है। कवि दिनकर ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि उर्दू - काव्यमान के जो कथाति प्राप्त तैलक हुये हैं उनमें, कवि कुल कुल काव्यशास्त्र, अमीर खमीर और खोमी अरविन्द के समान यह स्वयं एक सिद्ध उक्ति कवि नहीं हैं किन्तु, उनके अध्ययन पर स्वतंत्र भाव से कवि ने उर्दू में काव्य में वर्तमान की समस्याओं के प्रथम उठाये हैं।

उर्दू के प्रथम में कवि ने स्वतंत्र रूप से कतिपय मौलिक उद्भावनाएँ की हैं। दिनकर के काव्य कला में मारी के विभिन्न रूपों की विविध रचा की गई है। उर्दू के प्रथम अंक में सवयन्ता, रम्भा, मेनका, जम्हराओं के माध्यम से जाधुनियाओं की आलोचना और मातृत्व की प्रतिष्ठा स्थापित की गई है। दूसरे अंक में निम्नलिखित और मधुमिता ने मारीय चरित्रों के विषय में मारी की सिद्ध की प्रस्तुत किया है। चौथे अंक और पाँचवें अंक में सुन्दरा के माध्यम से सुवर्ण जीवन और ओसीमरी के माध्यम से परमा के केवल अर्थ की व्याख्या की है। उर्दू के केवल एक ऐतिहासिक कथानक नहीं है, वह ली - मुक्त के परस्पर आकर्षण, मनःस्थिति एवं जीवन भावों की अभिव्यक्ति भी है। काव्यशास्त्र से प्राप्त तिरस्कर्णी विद्या अथवा भक्त रीति की भी कवि ने अपने हृदय से प्रस्तुत किया है। तिरस्कर्णी विद्या से अन्तर होना तो वह युग में विचलनीय नहीं है और भक्त शास्त्र भी उर्दू के द्वारा स्वीकार्य है। अतएव पाठक में स्वाभाविकता कमी रहती है।

दिनकर ने प्रसङ्ग के स्वयं सिद्धांत की वैधानिकता का आधार से कर सुलझाई के स्वयं की साकारता से ही आयु से मिलन कराया है। इसमें काव्यशास्त्रीय ऐक्यीय रङ्गमत्ता में मुद्रिका और चित्रमोक्षीय में संगमनीय मणि का आन्ध्र नहीं किया गया जोलितिव चारा स्वयं फल, आयु का राज्याभिषेक, सुलभा का सन्धान, बीरो की भविष्य वाणिज्यों के युग में विचलनीय प्रतीत होते हैं।

दिनकर को ने प्रेम की उन्मत्ता, उदात्ता एवं स्वाभाविकता की अभिव्यक्ति दीया पौराणिक तीन रक्तों से उर्दू का प्रेम प्रकट नहीं होता अपितु उसकी काव्यभिरावा की पूर्ति से स्वेरिणी - भाव अक्षिप्त व्यक्त होता है। दिनकर ने यह विचारण स्वीकार नहीं किया है कि " विषयों की मैत्री स्थाप नहीं होती, उनका वृद्धय कलाओं से भी पूर्वगता है।" मारी-स्वातंत्र्य के युग में इसके प्रति ऐसा भाव रहना सर्वथा अनुचित है। फिर उर्दू के उः आठ युगों का उल्लेख उर्दू में नहीं किया है। परिवार उन्मत्ता

सोचना में यह एक योगदान है। केवल एक पुत्र सीधु के टूटने से इसका मुगी होना सम्भव है। नीति नाट्य का यह भी एक उद्देश्य है।

परम्परा से प्राप्त कथानक में ऊँच का स्वाधीनता स्वातंत्र्यभाव एक अभिनय काव्य - कौशल की ओर इंगित करता है।

००००००००००००

## उत्पत्ति में प्रकृतिकारण

सौन्दर्य के विकास में सातों तारों का भूमिका है:

"हमारे सभी सम्पत्तिकाव्यवस्थित तारों में सम्पत्तिकाव्यवस्था"

और गोति नाट्य में सौन्दर्य विधान को ही प्रमुखता होती है। तर्कही हम समझें  
गोति नाट्यों में मुख्यतः दो ही वर्तमान विधानों का विचार में लिये गये हैं। स्वयं  
हमारी हमारा सौन्दर्य का पूर्वीयुक्त सुनिश्चित स्वरूप है जो साधारण, मौखिक और मानसिक  
सौन्दर्य में अभिव्यक्त है। विचार में तर्कही का संज्ञान ही सौन्दर्य के आधार पर किया  
है। यह सौन्दर्य तारों के सौन्दर्य और विधान के सौन्दर्य के अतिरिक्त ही किन्तु  
साधारण के सौन्दर्य को धृष्ट करता है वह अभिव्यक्ति है। प्रकृति का सौन्दर्य, स्व  
विचारिक, भाव सौन्दर्य, सुनिश्चित स्वरूप, तैल विचार की संज्ञा, और यहाँ सौन्दर्य की  
व्यवस्था कतिपय के सम्पत्तिकाव्यवस्था के सौन्दर्य को अभिव्यक्ति है। सौन्दर्य विधान पर प्रकाश की यह  
निष्कर्ष प्रत्यक्ष किन्तु यहाँ के संधारि कतिपय का सौन्दर्य - प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है।

### १:- प्रकृति सौन्दर्य

तर्कही भाष्य में प्रकृति एक साधारण सौन्दर्य है। साधारण की स्वीकृति साधारण  
साधारण में सुधार और कतिपय विविध भाष्य में दीर्घतः साधारण साधारण के कृति की  
साधारण स्वरूप ही है। तर्कही भाष्य के कतिपय साधारण की साधारण में ही सभी विचार  
Silver नामक कतिपय में स्वीकृति साधारण साधारण साधारण का साधारण की विचार किया है  
किन्तु साधारण विचारता का स्वरूप विचार की साधारण स्वरूप है:-

साधारण के स्वरूप विचार विचारों में भाष्य की  
साधारण की स्वरूप विचार विचारों में भाष्य की



सभी बाँधनों के मुहुर में प्रकृति अपना ही शीतल रूप देकर स्वयं को ही भूल जाती है।

साहित्य के इस नुहू वातावरण सुकन के लिये हम से सुन्दर अलंकरण और क्या हो पाए:-

साहित्य साहित्य सब ओर मेहू बानी खिन्नुका - मुकुट में

प्रकृति देव अपनी ही शोभा, अपने को भूल गई को।

उ० १/६

सुन्दर सुन्दर फूलों की माध के बराने में ध्यात प्रकृति के प्रस्तुत किया गया है।

तारों की गलियों में सुनना एक अलंकार प्रयोग है--- यह सुन्दर लय है:-

सुन्दर बाँध की लहरें फुली

तारों की गलियों में फुली

फुली गलन बिंदोरे पर, किरणों के तार कटाओ री।

उ० १/६

प्रकृति का शीतल रूप विचलीय अंक के अलंकार भाग --- सुन्दर वातावरण में है। मनुष्य मादक पदार्थ का नाम ही इस मादक है यदि वह सदा की प्रकृति के हलकी मादक है, तबही - सुन्दर के सुनी धूमन को सब पर्याप्त विचार का भाग ही न हो सके --- यह लय प्रभाव की कामाक्षी से विचलीय मिलता जुलता प्रतीत है। विमलर बने तबही तारों के विचलीय ललितप्रम में सब कर प्रयोग करते हैं:-

लम्बे लम्बे सीढ़ी प्रीति अम्बर की ओर उठाये

एक चरण पर ही लपटो-मे हैं ध्यान लगाये

और फिर प्रकृति का रूप सभी सुन्दर आरी वातावरण है:-

दूर दूर सब जिसे सुने फुलों के मन्दन जन हैं हैं

जहाँ देखिये सदा सदा सदा के सुख भजन हैं

विचली पर विमलरति और नौसे भवनों का पानी

जोनों बीच प्रकृति लोको है ओढ़ निचोली जीनी।

उ० २/३०

प्रकृति भव्य अपने शीतल से सभी को अपनी ओर आकृष्ट करती रहती है। तबही तो मनुष्य मादक के वचलीय शीतल में सुन्दर की शोभा की भूल जाती है। तब ही यही कि दूरदूर में भी सदा सदा प्राकृतिक शीतल है। हम यह विचलीय भी नहीं जानती --- यह भव्य अपने लघु विराट रूप में प्रकृति शोभा के परिपूर्ण है:-

यह भरती, यह भजन, कुली से भरी बरी लटकी यह

के प्रलय के फूल लय में लघु मादक आयें है

लल लल लल लल ललितलल यह लय ही लाली से

लालों पर विचली-विचली लाला लल लल-विचली की







मुक्तिपट पर इतनाक रक्षा के लक्ष्य और अर्थों पर  
रक्षण की मुद्राओं को देखते-देखते निश्चित है कि अन्तिम में  
रक्त-पाती, भोजन की समस्याओं का संकलन एकत्र कर  
कर निम्न कृष्ण का आशय मुक्ति के लिए प्रकट हो।

50 3/36

या विषय विस्तृतता साधिका सम्पूर्ण ज्ञाना या केन्द्र ज्ञानो मुक्त है :-

मा कोई तपती कुम्भमा डेली लाग रही है  
कुम्भ मेले पर विभिन्न धर्म विद्वान की अलग-अलग से  
सिद्ध की और कुम्भमा मेले किता कला कला कर ।

FO 3-30

हमारी प्रकृत दिनकर ने मूर्तियों के अर्थों के महान के आधार पर कतिपय नायिकाओं के नाम पर रिया दिया है। काम - सुन में केवल चार प्रकार की नायिकाओं का ही वर्णन है दिनकर अर्थात् हम यह समझें अवधार और स्व का --- पद्मिनी ---- पद्म के सुवास ने मौकड़ थी, रीतिनी और चिन्मी अपने स्व और तीक्ष्ण प्रभाव रीति मौकड़ ने प्रभावित करती थी, रीतिनी की गति और मृदला उनके नाम करने का कारण कारण थी पर दिनकर ने जो ही अंग अभ ने नायिकाओं उकेरी है:- उमंगी क्या है:-

५. श्री काशीजी के अमल, समोही काट काट  
में श्री निदिखातनन्ता, मुष्टिमयमा  
मंदिर जोरना, काम सुनिता मारी  
प्रसादजन्य कर श्री ,

ਸੀਧ ਸਮ ਕੀ ਪਾਸਤ ਕਮਲੀ ਹੈ । ੩੦ ੩/੯੨

यदि हमकर यह कमा न भी कराते तो जहाँ के लीनय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।  
किन्तु, सम्भलतः हमकर के जहाँ भन में इसे लीनय न किया हो ना।

4: री विपत्ति

उत्पत्ति का प्रयोग में ही चित्तों व तैज चित्तों में पाद जाने वाली तरङ्गता और स्थिरता का अभाव भी नहीं है। पुरुषा - उत्पत्ति का निजम ऐसा अनुभूत कीर्तन संगत है जहाँ कवि ने अभिव्यक्त प्रयोग किये हैं। जैसे उत्पत्ति के निजम से पुरुषा का प्रथम निवेदन रीति की भावना से भर गया है ---- तब धारायें तब अधिष्ठत समझती ही कर करती लगी हैं, उत्पत्ति कर अधिष्ठत हुए चित्तों लगे हैं और सीतल परिधायी में मल्ल कीर्तित छिन्न पड़ी है। उत्पत्ति का वाचक - वाचक संग भाग्य की नीली भीली तरंगों से

आन्दोलित जीवन केन - मरुत गुह हो रहा है। उन्की एक विचारमग्न अवस्था है:- ---  
एक जगह कृति है:-

मैं जग-जगना का मधुमय, उच्छन्न प्रीति  
रेखाओं में जीवन का जंगों के जगार  
भीमता तरंगित दर्शना, भीमता जग  
तन की प्रकाशित रंगों में लिये उलझती है।

50 3/92

जग समस्त रंग - उतावृत्ति में एक विविध सारथ्य भी है, मधुमय माधुर्य भी है और  
कर्म - धर्म की विमला सुविधा भी:-

दूर दूरों में रहित जीवन पर, दूर दूरों में तन कर  
जग के लिये मृगाल की निरर्थक तैल रस में  
जोड़े हुए - लीन की लाली अपनी ही विविधता की  
जगता है निरर्थक, भीम तारे तन गुह लगे हैं  
प्रीति-मग्न - उच्छन्न-मग्न का जगता - हृदय पर  
दमक रही कर्म - धर्म विमला सुविधा के जगता पर  
रहती है जगों का कोई जगता तन रहा है -----

50 3/92

प्रकृति के तन ही जगती है, सापता रंग गुह - जगती रंग जीते और कर्म मरुत  
विमला और गुह रंग प्रकृति के जगता से उन्की है जगों की साधना है। उन्की जगता  
प्रकृति मरुत लयने रंगों के विमला जीवन में जीवनीय है।

### 9: मातृ जीवन

उन्की में मातृ जीवन है विमलों, जगताओं एवं प्रकृति उपकरणों के उपकरण है।  
विमलों के अवस्था में जगता के जगता - जगता तन तन गुह है, मरुतों की जीत गुह  
है, जीवन-साधना में जगता जीवन - जीवन का जीवन साधना है, जगता तन तन गुह  
जगता में जीत है जगता तन तन है उच्छन्न विविध साधनाओं की जगता की है।  
साधना गुह प्रकृति के जगता में जीवन - जीवन का विमला जगता गुह गुह गुह का

तब हमें है:-

जोर हुआ है वह जगह सारे कोशिश करने का  
की उठता मजबूत अविश्व या मज के प्राचीन पर  
मुझों का सोच, दुख है मज मज उठने के  
हामी उठ गति से जोतिविहार करती है।

उ० ३/५४

राजा दुखवा या तब में ही उमे: भवनों को जेदम सीखा है आम्होसित  
ही उठे है:-

एक तब कोमल गीतों से भरी दूध कीली का  
तभी है मज निपट, नयी भवार उमड़ पड़ती है।

उ० ३/५४

मजदूर, मज प्रेम के प्रेम तब से पुनर्जित हो कर भीत होता ही है।

६: महा सोचों की विराट बनना

दिनकर ने उठती है मज-सोचों की उठना जेदम की मजों में ही है ---

१. प्रकृति की विराट कला में या २. उठती है विराट - सुन्दरी स्वयं में।

प्रकृति का सोचों कीली और आकार के गिना में प्रतीत होता है --- प्रतीक  
कारण मीति का कवि ने उठती और पुनर्जित के मज की उठती का मज के प्रारम्भ  
में ही करके ही मज का है:-

हामी दैव मज निपट, जालिम में मज की  
मज की मज कर मज, विपुल मज पर मज दूना है।

उ० १/५

दैव मज, जालिम करना और विपुल निपट में मज के मजारे दूने मजारे का  
मानवीकरण का विराट बनना का ही उदाहरण है।

दिनकर ने उठती है सोचों में मजमज मज की मज मज विराट सुन्दरी  
की उठना की है, जालिम ने मजों के सोचों में भी मजों का मज मज है  
और मज मज प्रमाण में भी विपुल - सुन्दरी का मज प्रमाण दिया है। दिनकर का  
मज मजों का प्रमाण मज है मज मजों ने विराट सुन्दरी की विपुल - सुन्दरी



बर्दाश उसे ले रहा है:-

सुख मिठाई - सुन्दरी अगर कामा अछूत प्रियुषण की

सभी दुनों से, सभी दिशाओं से फल का आहं की।

३० ३/९४

विमल सोनवर्ष के हवातल तंग लव फिजों के उद्भुत चित्र - कवि हैं। उनकी  
अभि व्यक्त में हाव जाहार प्रवण करते करते हैं और हाव में चलता है उनका विचार  
तब जिस के प्रायः तबलव प्रियण और विचार अभि व्यक्त दोनों की में व्यक्तियोग  
को बिना नहीं रहता।

=====

४१४

## उत्पत्ति में अर्द्धराज

=====

विनकर अर्द्धराजी कवि है, अपने जीवन में भी वह अर्द्धराजी रहे हैं। जिस नीला ज्ञान में अर्द्ध का सिरोरुज हर मनुष्य की परमेश्वर की रत्न में जाने का, आत्मार्पण करने का सन्देश है, जिस का सत्य ही सत्य की सत्ता का स्थान है, उसी को विनकर की में तो अपने जीवन में छोड़ सके हैं और न ही उसे अपने काव्य में अपने सत्य चरित्र को हटा पाये हैं। अर्द्धराजी काव्य में भी वह अर्द्धराजी स्वर पुकारता, अर्द्धराजी और औलीमारी के चरित्र में व्याप्त हैं।

### पुलका का अर्द्ध

पुलका के अर्द्ध को हमारे १. वीर्य के अर्द्ध, २. चिन्तन के अर्द्ध और ३. रसायन के अर्द्ध के रूप में देखा जा सकता है।

१:- वीर्य का अर्द्ध:-

वीर्य के अर्द्ध में पुलका की भाषा की व्यक्ति जाचक है, अपने ही साम्राज्य और प्रजासत्ता राज परिवार में राज मणिकी को सम्मान देने लगे भी हमारे प्रति प्रत्यक्ष का अन्वय पुलका के व्यक्तित्व में अर्द्धराजी स्वर की भक्ति उत्पन्न करता है। अर्द्धराजी के रूप में मनुष्य सामान्य चिन्तन करने के लिये अपनी परमात्मा के उस और निष्ठाचरण को हम उसकी सम्पन्नता ही नहीं के जो किसी प्रकार का निर्विकल स्वीकार नहीं करता। यह पुलका अपने वीर्य अर्द्ध में नारी की विस्तार पीन समझता है:-

उसकी रश्मि प्राप्ति, छुट्टि ही नहीं अर्द्ध साधन में  
जहाँ रश्मि में भी तब हूँ अन्तर के आराधन में।

उ० २/३९

राजा पुलका प्रति मेव हर ही यह सब समझे है, औलीमारी के सम्मुख जा कर करने में हमका अर्द्ध जीवन में जाता था। उसका सत्य स्वर राज मणिकी औलीमारी की साम्राज्य सम्पन्नता मनी अन्तर में सुनाई देता है:-

अन्तर के सत्य रचना की ही आराधना है।      उ० २/३९

मिस्तर का अर्थ:-

उद्योगी के सुतीय अंक में दूकनवा के बहुत स्वी अर्थ हैं। एक मिस्तर का अर्थ है। उद्योगी मिस्तर का दूकनवा तथा उत्तम दूकनवा सन्नाम ; में और 'उन' से व्यक्त करता है। 'अब से हम पुन मिस्ते' यह भी

आधुनिक में यही मिस्तराचक अर्थ - स्वर सुनाई देता है। यह स्थान पर के अपने अस्तिरक को ही सम्बोधित करते हैं:-

में मनुष्य । उ नाम्ना वायु मेरे भीतर बसती है।

और फिर उनी का सामान्यीकरण है कि दूकन वा उनी तम के रोगतम को स्वीकार करता है।

दिनकर पीरुन के अवस्था की उचित हैं। सुतीय अंक में उनका अपना परिम ही दूकनवा में प्रतिष्ठित है। यथा है। जीवन की कतनी विविधताओं को वे मेरे दृष्टे हैं कि उनका अवस्था की स्वर अपनी ही बात कहता है:-

जीन है अंधा, उसे में भी नहीं पहचानता हूँ  
पर, जीवन के किनारे की में जो चल रही है  
उस दुसा, उस वेदना को जानता हूँ ।

उ० ३/४३

और दूसरी ही रस हममें विद्यमान भाव भी जानूँ को जाता है --- स्व की आराधना का नाम आर्तिम है या नहीं --- दोनों ही सत्य या दोनों ही मिथ्या 'हरी उदासीन में कि उलका मेरे जानना चाहता है। यही दूकनवा भी चाहता है। जीवन भर कि दिनकर विद्यमान प्रसन्न रहे --- स्वयं और परिवार, स्वयं और समाज, स्वयं और कर्माणि, स्वयं और विश्व सिद्धि में निरन्तर संलग्न रह व्यक्तिगत रूप में रोमांटिक ही या और रोमांटिक मन विद्यमान प्रसन्न अर्थ में अन्तिम की स्थिति में रहता है --- उनी मनुष्य विद्यमानत्वमा में सम्पूर्ण और उनी उनी की वास्तविकता के पूर्ण परिचित यह मानी स्वयं से कहता है:-

जो मनुष्य जारी। यहाँ मनुष्यता काया है  
कुनि पर उठती ,  
उत्तमक कर्तुं कर्तुं, कृत्य के  
यस अस्त सौम्यता का प्रसार कर ली ।

उ० ३/४७

यह विद्यमान प्रसन्न कि या व्यक्ति स्निह या मायक दूकनवा अपने पीरुन पर पार्थिव को ही आवश्यक नहीं होता। मायक दूकनवा की नहीं यह पार्थिव दिग्गजर की है जो



उन दिनों अपनी ख्याति और सम्मान के रिश्ते पर रहे हों-ने जीव जो अब लकी है---  
( विनकर पुरखा के सम्मान की स्व मान व पीछे व्यक्ति है ):-

यह विनाश/का, वैदिक/की मेरी भुजायें  
सूर्य के आलोक से दीपित, सम्पुन्न भाव  
मेरे प्राण का सागर अलग उल्लास उल्लास है।  
तामने टिकी नदी कमराय बरस ओली है,  
कायता है कुआनी मारे समय का ज्ञान,  
मेरी जाँच में माता, बरस, गहराय का ज्ञान है।

उ० ३/३०

यह विनकर की का व्यक्तिगत है। संस्कारों के उपरान्त सम्पत्ता और सिद्धि है -  
विद्वान् की भावना और साधन होने का अभिमान जिस में अब भाव न भर है ना। फिर  
कायना के साथ कामिनी का अभिमान पुरखा अपनी साधनीतिव - आधिक विषय के  
साथ रोमान्टिक विषय का भी उद्घोष करे तो यह उल्लास अब भी है:-

मर्ये मानव की विषय का सूर्य हूँ मैं,  
उत्पत्ति अपने समय का सूर्य हूँ मैं।  
और तमके भाव पर पायल जगाता हूँ,  
आवलों के शक्ति पर सम्मान जगाता हूँ।

उ० ३/३०

उहाँ विनकर का अब निम्नलिखित का साधनीतिव अब और उहाँ यह राष्ट्रीय सम्मान। तब  
विनकर उस राष्ट्रीय सम्मान के साधन में किसी राजा पुरखा से छट कर नहीं है और  
औरमनों का नया कोष किसी यह छट कर छटा उहाँ रहता है। पुरखा को अपने  
पीछे पर, जल-विषय पर जगता विद्यालय है कि वैद्य-विषय के लिये की उनकी लक्ष्यता  
की अभिमान की जाती है। यदि उसी वैद्यीय साधन से उत्पत्ति अद्भुत हो गई है तो पीछे  
का अद्भुत उस सम्मान की लक्ष्य न कर उ लक्ष्य भी लेना चाहता है। ठीक ऐसे ही  
जैसे वह सामान्य जगत् में विद्यालय छात्र में यह लक्ष्य के लिये निरन्तर कुछ छोटी रहे हैं  
और आप के पुन में जगतायें लक्ष्य हो जाती हैं। विनकर की पुरख मर्यदा है:-

साजों मेरा जगत्, सजाओ जगत् अपनी सम्मान को  
लक्ष्य नहीं, जगत्, तब-पुर मुझे जगत् जाना है।  
और विद्यालय है साधनीतिव जिस की अधिक प्रकाश है।

उ० ३/३०

पुरखा का अब जगत् की सीमा के पार देखों की जगत् जगत् की नहीं अपनी प्राण  
प्रिया की जीव जानने के लिये कुछ भी करने की तरफ है। अपने सम्मान अस्तानों का  
भी सम्मान करना पुरखा की भाव है --- क्या वह पुन में पुन के कारण जगत् लेने  
की जगतायें नहीं होती?

तुम मने देखा, मेरा हाथों अमित अमरों की  
 कितनी बार हमने में मे रण जब कितना है  
 पर हम बार लख बन कर जब में उन पर दूँ मा  
 जाता है आश्रय दाह विरहों का का स्मरण रहे मा,  
 और मान में मे सब भी उकी उकी चली हो  
 देवी की अमरा नहीं, सब मेरी प्राण प्रिया है।

उ० २/१३९

सामान्य मी में भी रती का, विद्याहीनता विद्यागुरु से जोई जाता नहीं रहता  
 और वही भी अपनी वरनी के लिये हमने विद्या से भी विद्या कर लेता है। किन्तु  
 हम प्रेम में जो उकी परिणीत भी नहीं है, केवल प्रेमवती है और हम प्रकार के  
 विद्या भारत के महा नगरों या राजधानी नगर में जाये दिन होती रहती हैं और  
 दिनकर का उचित भी मानता है कि यह उकी - आश्रय हमने भर को प्राचीन कहा  
 है, मन्त्र: यह वही तुम की मर्म-बीजा है। वही के विरह हमने तुम मन का  
 वक्षीय है:-

उही वक्षीय पदम सुख है, सब की वीर ज्यों है,  
 हमका प्रिय सखाद सख्य से केर ठाम निरता है  
 मात रने किन को किंकर भी प्राण नहीं प्यारे की ।

येही जैसे किसी क्षणवत की पुत्री के लिये बीजा का दण्ड में समाप्त युक्त का अपने  
 साक्ष्यों सहित प्रमाण की। प्रेम और सुख ही अन्त - पुत्र सुख भी नहीं मान्य।

विष्णु की सामान्य सब सुख है अतः हम में पुत्र सुखों के ही प्रति  
 जयप्रिय लोचन का। प्रयोगों पर ही किंकर लोचन होता ही है। सन्तानों के पुत्र अन्त  
 अन्त की विद्यातः अपने उद्धार की प्रेरणा/माना कहा है। पुत्रवा निःसन्तान  
 है, उकी से उत्पन्न आशु का अन्त यह और हमने पुत्रत्व का प्रमाण है, पुत्री  
 और हमें पुत्रत्व से मोक्ष साधक भी है ---- यह एक प्रेम ही हमने उत्साह, आनन्द,  
 और आनन्द मोक्ष की भावना भर देता है। किन्तु प्रमाण सन्तान में पुत्र अन्त की सदा  
 आश्रय/मान - सन्तान से जाना जाता रहा है। वर्तमान और की - निर्यात  
 का अर्थ पुत्रवा का ही नहीं समस्त पुत्रों का चरित्र है:-

पुत्र : वीर्य : में पुत्र मान दूँ। यह अन्त मेरा है  
 अन्त पुत्र है मेरा भी नीला पुत्र मान भर है ।

उ० २/१३४

पुत्रवा की आश्रय है कि अपने पौत्र के परिणाम पर और सन्तान है अपने मोक्ष पर।

जो देश हमारे का मुख्य प्रधान समाज में जड़ा सम्मान होता है:-

जो देश है महा मंद पर नया सूर्य निकला है  
 पुन प्राप्ति का जगमगात अनुभव, अज्ञात, उत्सव है  
 पुन । ओ कोई सम्मान रखी गैरी सजा को,  
 न तो, सर्व से अभी विजल - विक्षिप्त हुआ जाता है।

उ० २/१३४

और विजयमान यह है कि आयु परिणीत का पुन नहीं है, यह औरत सम्मान है।  
 आय के समाज में भी अब ऐसी सम्मानों को लीडर कर उनका भाग देना  
 चाहता है।

२: चिंतन का अर्थ:-

चिंतन के रूप में पुनरा या  
 विचार की धारणा में जो भी है  
 वह उसका अपना नहीं है। यह  
 धारणा में रोसावीयर, भगवती चरण  
 वर्मा, "प्रसाद", "पन्ना",

मुक्तिदाता जैसे कवियों का तर्कालो और गीता जैसे महत् ग्रंथ का दार्शनिक प्रभाव है।  
 रोसावीयर का कथन है:-

*poets philosophers and lunatics are of  
 the category same.*

अ विचार अर्थ

तो विचार में जो "कवि प्रेम की चरम सीमा है" कहा है।  
 "कवि प्रेम की चरम सीमा है" भगवती चरण वर्मा की चिन्ता  
 का कथन यह विस्तार है "वास्तव के कोड़े"। पुन प्रेम करना  
 क्या जानो "भगवती प्रेम प्रथम लीला में" यह में पुनरा-  
 रंजिता के प्रथम दृष्टि प्रेम की भाव है। 'वर्तमान पुन के  
 समस्तता कवि प्रसाद के शब्द - वास्तविक - यह जो है रहीं  
 रखे हुए हैं। "कवि सम्मान नहीं कर्तव्य की जीवन की  
 मति का" यह में पति की है समस्त संसार और कर्तव्य की  
 संसार जैसे विचारों की धारणा है। "विचारों की धारणा रक्षा के  
 सारे क आकारों में" जो यह में मुक्तिदाता के "अविचार का

१:- उक्ति : कि ३ पुन ३०



कस

(अ) गीता -  
 धर्म -  
 अर्थ

का चलना बड़ा अतिरिक्त " जैसे यह भी प्रतीत होता है।  
 हम सभी धर्मियों ने विश्व की स्थिति से क्या - व्यवहार के  
 अनुभव की विद्या है। राजा पुत्रवा उद्योग के लक्ष्य अपने साम-  
 धर्म के अर्थ को अभिव्यक्त करने से नहीं चुकते। निष्कामिपत्त  
 की दुर्लभ अनात्मिका योग है। अनाम आनन्द की व्याख्या  
 अनात्मिका में ही है जहाँ कोई पलायन की आकांक्षा लोभ  
 नहीं रहती। पुत्रवा वास्तविक भाषा में दुर्लभ की अनात्मिका  
 का बोध भी कराता है --- पुत्र पुत्र नहीं है और न मारी  
 मारी ---- पुत्रवा का रहस्य विस्तृत करता है:-

यह निरुद्ध आकारी, जहाँ की निर्दिष्टता सुख में  
 न तो पुत्र में पुत्र, न तुम मारी केवल मारी की।  
 दोनों में प्रतिमान किसी एक ही मूल मरता है  
 देह-धुंध से परे, नहीं जो मर गया मारी है।

उ० ३/११

संसार में देह या मन के द्वारा जाना हुआ अनुभव स्थिर नहीं  
 है, सब का सब अटक - अनुमान - सदा सगता है। २  
 सब मायाकरण की उता २२ देहा जाय तो अदृष्ट मधु छात्रि मय  
 सौन्दर्य पूर्ण आरमा है। यह अन्तरात्मा देह अर्थ से परे है। ३  
 यही उसी विस्तार में केसरा प्रान्त है --- विश्व - विश्व ---  
 है, अनात्म आनन्द है, वीर्य अर्थ है। अन्त में यही पुत्रवा  
 दुर्लभ का एक ही गीता भी लिखाता है:-

सर्वधर्माभ्यस्तित्वात्पुण्यं मामेकं कारणं ब्रह्म  
 सर्वं तद्वत् सर्वं पाप्मं चो माभ्यस्तित्वात्मा मायुधः

गीता : १८/६६

दुर्लभ का भी यही करता है:-

सर्व, सदा केवल आनन्द, केवल अस्मिता है  
 उसके यह पर, जिसे प्रकृति तुम में अंतर करता है।

उ० ३/१३

१:- ११० मा० मुक्ति बोध:- अविद्या --- "यह सत्य अर्थ के प्रति ।

२:- दुर्लभ: अ० ३ पु० ११

३:- यही ६०

इसे पुरुषवा का या दिमडर का नाम - अर्ध ही कहा जा स  
 सकता है जिस ने उर्खी केसी कामनी को गीताभूत के कर  
 कामना - यही कहा दिया है।

### ३ रथान का अर्ध

पुरुषवा रथान वृत्ति प्रधान नायक है।  
 उत्तमै रायतव का ऐश्वर्य है तो सन्धासतव का  
 रथान भी है। यह परिग्रहणा वृत्ति भी  
 राजसु भाव का मनोवैज्ञानिक सत्य है। लौकिक

प्रेम के जगत् में जिसे हम पुरुषवा प्रार्थना नहीं कर पाते हमारी वृत्तिस्था उसे परलौकिक  
 जगत् में छोड़ती है --- सुर, लुम्बी, मरुती, मेरुता जैसे भक्त गिरौमणि इसी  
 लौकिक से परलौकिक जगत् की ओर गये हैं। दिमडर भी भी जिसे लोभे - चाँदी की  
 छद्मान नदी के सरोवर और सानों तक खार कूटते रहे, पद का उन्मोचन नहीं कर  
 सके तो उन्हे परिग्रहणा बीना ही था --- वे उर्खी तिल्लि के भाव उत्तार के उच्च ही  
 नहीं उतर गये कवि थे। यह परिग्रहणा पुरुषवा भी रथाना जाता है कि कामना -  
 कामना में ही राय तिल्लि कर आयु को प्रतिष्ठान पुर का राजा बना कर, राय - व  
 पाट छोड़ निमोही बन कर या भगवत् ही कर बना गया है। इस जाने में भी अपना  
 अर्ध भाव यह रथान नहीं सका। राय - पाट छोड़ तो वह भी अपने अर्ध से:-

यह लो, अपने पूर्ण मान फिर पर से बने हटा कर  
 ऐस की का मुकुट आयु के सत्तल पर धारता हूँ।  
 लो, पूरा ही गया राज्य अमिके । कुवा पूज्य की ।  
 ऐस - की अर्धः नये सहाद आयु की जब की ।  
 महाराज । मैं भार मुक्त अब कामना की जाता हूँ।

यह अर्ध नहीं तो और क्या है ' क्या पुरुषवा परिग्रहणा लो, यदि उर्खी रायभवन  
 में होती ' क्या पुरुषवा ने यह बार भी लौलीमरी की याद की जिसे वे चन्द्राराम  
 करने के लिये लौल्य वर्ष पूर्व प्रेति - आवेति कर आये थे ' यह परिग्रहणा उनके  
 पतारा मन का अर्ध ही थी।

### उर्खी का अर्ध

उर्खी कड़ी मर्त्योति मारी है। राय पुरुषवा पर लौल्य ही जाने पर उसका  
 जम्हरा लव सामान्य में लवल गया है और मर्त्योति में वह एक प्रणयनी मारी है  
 लव में राय की भावार्थ बन कर रथाना आवती है। किन्तु, लो-प्रेम में वह सामान्य  
 ही है --- उन कर मान रथाना उरती है:५

यदि आज कामना का भी नहीं पाठ भी  
 तो लौली की छोड़ वल में निरल्य मिल पाठ भी।

यह उड़ते हुए स्वप्न की बाधों में फँसना चाहती है। पुरुषों की अविश्वस्य भुजाओं में जा कर वह स्वयं को काँटों में लपेट लेना चाहती है, इसी लिये उसने स्वयं स्वयं को काँटों में लपेटा है। इस लिये पुरुषों को उससे प्रति कृतज्ञ होना चाहिये। पुरुषों का अर्थ है कि क्षीय क्या प्रेम की भीड़ में है। इस लिये वह न ही अचरम की ओर न ही चिन्ताओं की उचित समझता है। फिर भी वह अपने ही हँसी की लयों को मानता है। इस से अन्तर्गत प्रेम की सज्जन की वह भुक्तता रहे। इसी यदि प्रेमोत्सुक होगी तो स्वयं को कर जायगी। किन्तु, इसी के लिये यही विवशता बन गई। इसका अर्थ है कि यदि पुरुषों सचमुच जानाकारी हो तो हमें कर सकता है जो क्षमियों में निहित है।

तो तो मैं जा गई, किन्तु वह ऐसा ही जाना है

अचरम से ही अन्तर्गत की ओर निज जाओगे।

पर क्या उसका अर्थ प्रतीति नहीं हुआ वह वह पुरुषों के मुख से अनासक्ति की बात सुनती है। पुरुषों ने क्या उसके लीन्य का अन्तर्गत नहीं किया। वह तो प्रेम सुख सुखने जाई थी, काम - प्रीति का अन्तर्गत करने जाई थी और फिर यह किसी अनासक्ति के लिये वह यन्त्र में लगी कि उसका अर्थ तो तब के लीन्य का निहित में निहित है जो अविश्वस्य हो रहा है अनासक्ति यौन में :-

तब तो मुख की लगे लगे अपने लगे जातिगत में

मन से, किन्तु, विवश हो कर तुम कहाँ लगे जाते हो।

पृष्ठ 3/44

यही विवशता है --- काम तब में नहीं मन में होता है और फिर पुरुषों उस काम - सुखोत्सुक इसी का अन्तर्गत नहीं पाता है, केवल उसके लीन्य सुनता है :-

अन्तर्गत कर लीन्य प्रीति का अर्थों की अर्थों में

मुझे देखो तुम कहाँ तुम जा कर ली जाते हो।

यह तो इसी के लीन्य का अन्तर्गत है। इसी लीन्य सदन नहीं करता। उसे ऐसा प्रतीति होने लगता है यानी वह सुखी मारी नहीं कोई प्राप्ति की निर्वैयर्थ्य कविता है :-

और अभी वह भाव, मोह में पड़ी हुई में है,

सुखी मारी नहीं, प्राप्ति की लीन्य कविता है।

पुरुषों की यदि अपने लीन्य पर सतमा गई वैयर्थ्य सुखोत्सुकों की लीन्य पर सतमाया जा सकता है तो वह लीन्य-अविश्वस्य किसी दिन का है। इसी यही जानना चाहती है --- इस का वह लीन्य उत्तर भी जानती है। पुरुषों का अर्थ उसी



सामने है ही किताब।

"तु पुरख तनी तक गलब रहा जब तक भीतर सब बैठाकर"

अपने यौवन का अपमान उर्खी नहीं भवन करती:-

तुम जाये मुक्ति का अन्त, शरीर का तु इतना ध्यान न कर  
जो तुझे जीवित से बचाती है, उस ज्ञान का अपमान न कर।

उ० ३/३३

उर्खी ही जाती अन्त प्यार से सोलते हुए शीघ्र ही ज्ञान के निमित्त ही स्वर्ग  
लौक छोड़ कर सर्व जीव में आई थी और सर्व पुरख ने उस अन्तर उर्खी के उस  
भाव की किञ्चित् चिन्ता ही नहीं कि जहाँ वह अपेक्षा करती थी:-

मैं हूँ अन्त की साथ - तपः मधुसूयी मन्त्र पीने आई

निर्जित स्वर्ग की छोड़ भूमि की ज्ञान में जीने आयी।

पर पुरख ने इसे दिया भोग --- अनासीत योग। उर्खी अपने स्व-सौन्दर्य के  
सामोह्य पर अभिमान करती हुई भीते भिन्न-भिन्न पुरख को प्यार कर धारण्य  
भरी दया करती है:-

आ मेरे प्यारे सुनि। ज्ञान : अन्तःतर में मज्जित कर है

हर तुं की मन की लवणवादी, कुली से मज्जित कर है

रस मही मेघ माला बन कर मैं तुझे तेर का जादू की

कुली की हाँव तले अपने अर्थों की कुली चित्त की।

उ० ३/३४

सब उर्खी समझी का आई ही है।

चिन्ता उर्खी का आई

उर्खी काम-अना-वारीक अन्तर है।

उसका अन्तर सब चीज की समाप्त नहीं

होता। उसी पुरख की रिक्त होती है

कि रक्त की भाव सुद्ध से अधिक

प्रभाव वाली है। रक्त चिन्तालीय है

सुद्ध चिन्ता है। अन्तः रक्त चिन्ता भावना सत्य है। पुरख भी रक्त की भावों  
के ही बंधु कर, उसके साथ यौवन-सुख भोगने हेतु रक्त कर उसके स्व-भाव के उपाय  
रक्षा-प्रवर्धन, अन्त - रक्त का मिलन और परस्पर रक्त सुख की भावना ही एक  
भावना अन्य सत्य है जिसे यौद्धिक सर्व सभी सिद्ध नहीं कर सकता।

रक्त सुद्ध से अधिक कमी है और अधिक ज्ञानी भी

सुद्ध सीखी किन्तु शीघ्र ही अनुभव करता है।

बहुते रक्त की भाजा की खिजात करो इस लिपि का

यह भाजा यह लिपि मान्य की कभी न भ्रमायेगी --- आवि ।

यह ऐसा प्रतीत होता है जैसे मिलन की "रव" अपने स्व-भाजन से "पदम" को भी प्रभावित कर उसे आमन्त्रण दे रही हो अथवा "वीमल" अपने साथ-साथ पुष्प से चतुर्मुख को रिक्त रिक्त कर अपने समीप रहना चाहती है।

उत्पत्ति पुनः बनना समझ लगी कि पुरुष नारी के तन का अतिश्रम को और यही इसे अभीष्ट है। इसके अर्थ की पूर्ति भी इसी में है। अतः यह पुरुषवा की प्रोत्साहित करती है और काम-कला-विचारों की भाँति पुरुषवा की काम-सुख प्राप्ति की शिक्षा भी देती है:-

पर मैं जाग्रत नहीं, जहाँ भी रही भूमि वा नम में,  
जहाँ तन इसी भाँति मेरा झरोखा रहने की  
कले राखे तन इसी झरोखाँति, उरु एहिँकृतपीठ का निर्माण की  
और जानते रही लहर-पूट को उठोर पुष्प में  
किन्तु जब यों नहीं लज्जित तो सिद्धि करी जाहों की  
निष्पत्ति का करो, यद्यपि, इस यथु निष्पत्ति से भी  
समाप्त है शक्ति और आमन्त्रण यह वाक्य है।

इसके साथ ही काम-क्रिया का वाक्य प्रदाती है उत्पत्ति ---- "मा, त यों नहीं"  
किसी अन्य प्रकार से समझ किया जाय' इस काम-कला-क्रिया के उपरान्त यही उत्पत्ति  
पुरुषवा की सम्पूर्ण नीति काय है तो भी नहीं चुकती।

उत्पत्ति शरीर की परिभाषा की "आव्य माय" कहती है जो नर - नारी की  
देहों में परस्पर मिलनोत्सव संवरण करता है। उत्पत्ति प्रकृति और शरीर को एक ही  
सत्ता के दो नाम-अर्थों से जाना जाने वाला भाव कहती है। उन में कोई भेद है ही  
नहीं ---

शरीरीय तन भिन्न नहीं है इस मोरर जगती में

यही अवाचन में अदृश्य नर रावण बना हुआ है।

प्रकृति पुरुषवा द्वारा परिभाषित माया नहीं है। माया विविधता वाली सर्पिणी  
जो अर्थ-वर्धन सिद्धांती है --- यही सृष्टि है। पुरुषवा द्वारा परिभाषित अनात्मिका  
उत्पत्ति की अनात्मिका -सुप्त - द्वारा प्रवाहिनी सत्य प्राकृतिक क्रिया है। उत्पत्ति  
प्रकृति सत्ता की सर्वोपरि मानती है, यही शरीररस है और यही समुद्र में तर्पण प्राण  
है। शरीररस प्रकृति की सत्य प्राण द्वारा है। और जिसे पुरुषवा तन का अतिश्रम

कहता है वह खतना छातक नहीं है जिसका सामाजिक स्वरूपकार---तम प्रकृति का मात्र साधन है, साध्य नहीं। जलपथ साध्य की प्राप्ति में साधन का मुख्य ही जिक्र है:-

तम का काम अमूल सिन्धु वह मन का काम करता है।

तम ही मांस पैरियों का केन्द्र है। मांस पैरियाँ क्या आनन्द भोग करती हैं और मनोवैज्ञानिक क्राइड, युंग आदि की तो मान्यता है कि ही है ---- कि मन ही काम का भोग करता है:-

मांस पैरियाँ नहीं जानती आनन्दों के रस की  
उसे जानती स्नायु, भोगता उसे हमारा मन है।

उ० ३/६१

उत्पत्ति अपने आनन्दायन की चित्तमूर्त नहीं कर पाती --- यही उसका अर्थ है मान है। बार बार वह पुनरावृत्ति का दाय दिलाती है कि वह इन जोड़ों के ही नहीं--- लोचन अर्ध में कर मारी अपने ही किली अपहरा से कम नहीं मानती:-

मैं मान्य नहीं देखी हूँ, देवों के आनन्द पर  
नया वह भिन्नमिल रहता आनन्दन बड़ा होता है।

उ० ३/६७

और यह रहस्य यह भी है जो धार्मिक भाषा में व्यक्त किया जा सकता है ---- इसी १३३ पर पुनरावृत्ति के समस्त बीजा कम गया है। उसे आभास ही माल है कि जिस के रूप-सौन्दर्य-लोचन भोग के लिये वह आकुल स्वाकुल या वह मात्र यह चुकती जाया ही बदधमि वह जाया भी उसके उद्वृत्ति स्पर्शों की मणि बुद्धिम प्रसिद्धा थी। उत्पत्ति गीता की भाषा में "वासांसि जीर्णानि यथा विहाय" के देव भाव की केवल प्राप्ति कहती है जिस ही को ब्रह्मका साधनों में नहीं है ही जा सकती:-

"पर यथा जीर्णं यथा बहू"

प्राप्ति यह देव - पाद ।"

और उत्पत्ति स्वयं क्या है 'म तो वह सिन्धु - सुता है और न भजन - ज्ञाता, नाम-भोग हीन, उद्वृत्ति केवल सौन्दर्य - केतना की तरंग, तम - हीन--- भाव यह जायदी अपहरा। वह कामना <sup>जि</sup> केवल की मुक्ति सिद्धा है अनवरत है, दुर्निवार है और वही देव कात से परे चिरन्तन मारी है:-

मैं देव कात से परे चिरन्तन मारी हूँ  
मैं आनन्दानि लोचन की नित्य नवीन प्रभा  
स्वयं अमर मैं चिर-मुक्ती सुनकारी हूँ।

उ० ३/७३



उत्कृष्टी के वस्ती जब भाव के नीचे वह अनासक्त योगी पुरुषवा वस्तु है। उत्कृष्टी का जब अपने मूल स्व को अभी त्याग न करने के कारण अपने ही मान-सुख सदा मित्र सहचर पुरुषवा को भी शिखा देने के लिये सदा तत्पर रहा है।

### औसीमरी का जब

परिणीता औसीमरी का कोई जब है ही नहीं। प्रत्येक भारतीय जनना अपना सर्वस्व अपने वस्ति को ही समर्पित कर अपना जीभान्य मानती है। दिनकर, भिक्षुकी दारण मुक्त से प्रभावित से, उनके उत्थान निकट भी थे। मुक्त जी ने साहेब में जीता से ही वस्ती आदर्श को प्रस्तुत करवाया है:-

मेरी यही महात्मा है

वस्ति ही वस्ती की गति है।

और दिनकर की औसीमरी भी पुरुषवा ही अपना सर्वस्व सर्वस्व कर जीभान्य-जती बनी है। उत्कृष्टी का उसके सुखी - दाम्पत्य में प्रवेश एक विडम्बना है यही उस है जब को जाग्रत करता है, निद्राग्रत करता है।

औसीमरी का जब एक सामान्यता का जब है। जो रक्त मान भी अपने वस्ति का प्रेम होने के लिये तैय्यार नहीं:-

जरी कोन है कृत्य जिसे मैं अब तक कर न सकी हूँ

कोन पुरुष है जिसे प्रणम प्रेमी पर धर न सकी हूँ

मह दुष्ट है उपलब्ध, एक सुख अभी नहीं मिलता है

जिस से नारी के अन्तर का मान - पदम खिलता है।

दिनकर और जहाँ में जाँघ लिये भिराणार डिम्ब - आज औसीमरी एक निरिक्त मा व्यक्त करता है:-

वस्ति के सिद्धांतों का कोई आधार नहीं है।

तो क्या वह मान लिया जाये कि औसीमरी ने नारीत्व का भी जब नहीं है।

औसीमरी यदि एक सामान्यता ही है तो उसके जब पर पड़ती हुई छोटी-की यदि वह आत्मा ही सदा कर लेती है तो मानवी नहीं देवी ही जाती है। पर वह एक

मानवी के समान ही वह अपने स जोश की संवरण न का एक साथ उठती है जिये  
 जिसने अवशब्द कह जातकी है:---- इसे चाहे जोश करें चाहे हमारा घर कल आया  
 के परिश्रम में है यह मैथिली ही। और उठती है जिये गणिका, अन्न, वापिनी,  
 प्रवीणता, आश्रिणी आदि अब शब्द प्रयुक्त कर जोशीवरी ने अपना अर्थ जागृत रखा है।

दिनकर के काव्य में वास्तुतः "मानवी, मानवी और देवी तीनों की प्रकार के प्रेम  
 में मानवी प्रेम का चित्रण बहुत ही विस्तृत एवं सम्यक् है। ऐसा प्रतीत होता है कि  
 कवि प्रेम के मध्य मादम की सुरभि सुनों में पिघार कर चुका है और मरकत सौन्दर्य  
 का रसास्वादन सर्वतः ने चुका है, "अथवा यत्ना वास्तविक किन्तु, उद्दाम  
 और मादक वर्णन असंभव था।" इसी प्रेम में जागृत अर्थ की दिनकर ने पुनरा, उठती  
 और जोशीवरी में खंडित कर देता है अपने जीवन में हसी अर्थ के अनुभव  
 में उठती में अर्थ प्राप्त सर्वत व्याप्त है।

-----

१:- उद्योगी: २/३२

२:- प्रो० विमल कुमार शर्मा--- महाकवि दिनकर: उद्योगी तथा अन्य कृतियाँ

पृ० २३४

## उर्वशी में समतकार संघीयता

:.....

समतकार, संयोग और अतिमानवीयता ऐसे तत्व हैं जो उर्वशी काव्य के संघीयता एवं संगठन में विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन तत्वों में पारिभाषिक रूप से अन्तर प्रतीत होता है, कथा प्रवाह में इसकी प्रतीति नहीं होती।

### समतकार

समतकार एक ऐसी स्थिति है जब नाटककार समस्त कथा-सूत्र प्रारम्भ या निमित्त के कारणों में इस आशा से सौंध देता है कि कवि-न्याय को सहे या नायक के सम्बन्धित पर आधारित न बहूँ। समस्त छानाये मानो प्रारम्भ के अधीन हो कर उचित होती हैं किन्तु, प्रत्यक्षतः अनुभव यही होता है कि समतकार सुष्ठु से प्रकाश की जा मनो छोट कर कवि-न्याय से तादात्म्य कर जानन्द अनुभव करती है। उर्वशी के पाँचवें अंक में मैथिल्य ६ वीं प्रारम्भ संघातित हो है। इसका ही समतकार काव्य है समतकार है।

### संयोग

संयोग नाटककार द्वारा प्रकृत छाना इन की ऐसी व्यवहारना है जो प्रेक्षक के लिये अतुल्यारित है यद्यपि नाटककार ने इसे पूर्व संघीयक किया है। संयोग - संघीयता से कवि - न्याय, छाना इन, संघर्ष आदि सभी कार्य-व्यापारों में सहायता मिलती है।

### अतिमानवीयता

अतिमानवीयता सामान्य मनुष्य की क्षमताओं से परे क्षमता - प्रकृत क्षमताओं का संघीयता है। उर्वशी में स्वप्न-कृष्ण की यथाशक्ती, महर्षि प्यथन का वृद्धावस्था ७ से युवा हो कर विवाह कर सुकन्या सक्ति सुवत्स के साथ साथ दानि क्षमार्थन करना ऐसे प्रसंग हैं जो अतिमानवीय करे जा सकते हैं।



### अप्सराओं के अवतरण का चमत्कार

उर्वशी का प्रारम्भ ही उस चमत्कारी छटना से प्रारम्भ होता है जहाँ आकाश मार्ग से सप्तर्षि और नक्षत्रों की ध्वनि करती हुई रश्मी, मेनका, सहजम्भा, चित्र लेखा आदि अप्सरायें देव लोक से भू लोक पर उतरती हुई चित्रित की गई हैं। मर्त्य लोक में सामान्य रूप से एक ही मान्यता है कि किसी ने अप्सरायें देखी तो हैं नहीं, अतएव वे पक्ष धारिणी हैं, हवा में उड़ सकती हैं, अपूर्व सुन्दरी हैं, और अक्षय यौवना हैं। उनका धरणि पर अवतरण चमत्कार ही है। और इन सब में सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी उर्वशी भी है, जिसे दैत्य केरा से मुक्त करा कर राजा पुरुरवा ने अपनी प्रणयनी बनाया है। अप्सरा उर्वशी भू लोक में राजा पुरुरवा की नायिका बन कर मानवी व्यवहार भी करती है और आयु की बन्ध धात्री भी बनती है --- वह प्रणयनी भी है और प्रसविनी भी। अप्सरा का यह व्यवहार ही एक चमत्कार है। ये परियाँ अमृत-प्रेम की शीघ्र प्रतिमायें हैं, काम के मन की कामना हैं और पृथ्वीय भुक्ति मन-मोहिनी हैं। ये सभी परियाँ एक साथ तीन तों लम्बे लम्बे गायन कर मंच पर एक स्वरिणी - परिकेता की रचना का उद्घोष करती हैं। कवि ने उर्वशी काव्य का समर्पण ही "अप्सरा लोक के कवि पंथ को" किया है। ये परियाँ स्वर्ग और भू लोक के आनन्द और कष्टों की बिम्ब चर्चा करती हैं, देवता और मनुजों के मूलभूत अन्तर को स्पष्ट कर दिखाव करती हैं और कभी प्रेम और विवाह जैसे सांसारिक विषयों के गुण-दोष का विवेचन करती हैं। प्रेक्षक उनके अतुलनीय - अमानवीय सौन्दर्य और यौवन आकर्षण के प्रति इतना मुग्ध होता है कि वह अपनी स्थिति को पूरी तरह समझे हुये भी उस से अभिभूत हो जाता है। इसी वार्ता में उर्वशी - सन्दर्भ आता है जिस का दैत्य केरा से राजा पुरुरवा ने मोचन किया है। :-

और उन्हीं गर वीर नृपति के पौरुष से भुज बल से  
मुक्त हुई उर्वशी हमारी उस दिन काल - कबल से।

उ० १/१२

देवांगना को दैत्य से मुक्त किया मानव ने---- इसी चमत्कारी छटना से उर्वशी काव्य का प्रारम्भ किया गया है।

### उर्वशी का लोप

दूसरा चमत्कार है काव्य के पाँचवें अंक में सुकन्या और आयु के प्रेता के उपरान्त उर्वशी का अक्षय होना। यह प्रारम्भ है कि भक्त शाप के परिणाम स्वल्प उर्वशी एक

साध पति और पुत्र दोनों का ही सुख प्राप्त नहीं कर सकती थी:-

किन्तु, न होने तुझे सुलभ सब सुख गृहस्थ नारी के  
पुत्र और पति नहीं पुत्र या केवल पति पाजोगी।

उ० २/१३७

भारत शाप को दाँवें अतिमानवीयता की संज्ञा दें अध्या सङ्गठें उसके प्रतिफलन रूप में  
सुकन्या और आयु के प्रवेश को संयोग कहें, किन्तु, उर्वशी के अदृश्य होने में चमत्कार  
अदृश्य ही कहना ही होगा। राजा और सभा सदों के बीच से अभ्यागतों के जाने पर  
उर्वशी में मातृत्व भाव उमड़ कर उठा फिर छूट कर रह गया और उर्वशी भी अदृश्य हो  
छई। गई। इसे कुल मिला कर देव योग संयोजित चमत्कार ही कहना अधिक संगत है।

उर्वशी का सर्वाधिक ज्ञान - जिसका पूर्ण अपूर्व सुन्दर तृतीय अंश केवल एक रात में  
ही समाप्त हो गया। अश्विमार के दिन - रात व्यतीत होने में एक वर्ष के समय का  
कोई भाग तक उर्वशी - पुरुषवा को नहीं हुआ। किन्तु, उस एक रात में ससहस्रसमस्त  
ज्ञान-विज्ञान उनके सम्मिलित हुआ था। पुरुषवा भी उस मिलन को केवल संयोग मानने के  
लिये तैय्यार नहीं है:-

पर दिगन्त - आपिनी धिन्द्रका मुक्त विधरने वाली  
व्योम छोड़ कर सिमट गई जो मेरे भुज पाशों में  
रस की कादिभिन्नी विचरती हुई अनन्त गगन में  
अवसाव आकर प्रसन्न जो मुझ पर बरस गई है  
सो केवल संयोग मात्र है 'या इस गुरु मिलन के पीछे  
जन्म जन्म की कोई लीला छिपी हुई है।

उ० ३/९९

उर्वशी का अदृश्य होना, पुरुषवा के क्रोध का कारण बना। यह देव जयी सम्राट् को  
अपने ही मित्र हन्त को ललकारने के लिये उद्द्यत हो जाता है। विडम्बना किन्ती  
बड़ी है, जिसे पुत्र पाने की अपूर्व लालसा थी, जो पुं नामक नरक से त्राण पा चुका  
था, जिस आयु के वात्सल्य में पुरुषवा को वर्गातिरिक्त का हृदय उन्माद हो गया था  
वही जन्मी उर्वशी के लिये जो उसकी प्राण प्रिया थी अपने ही मित्र हन्त के विप्लव  
युद्ध के लिये सन्नद्ध है।

पुरुषवाका सुख उन्माद-प्रताप उसी क्षण रुक गया जब नेपथ्य से प्रारब्ध की ध्वनि  
उसके कानों में पड़ी। नेपथ्य से आने वाली ध्वनि पुरुषवा के अन्तर्मन की ही ध्वनि है  
प्रारब्धने स्वयं को एक पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है:-

"मैं प्रारब्ध चन्द्रकुल का, सौख्य प्रताप तेरा हूँ  
बोस रहा हूँ तेरे प्राणी केवम अलस से।

उ० २/१४१

कवि का अन्तर्भाव ही एक अमरकारी - सुभाष की मुक्ति करता है प्रतीत होता है।  
 इसका योगी मन इसकी विधि है --- अब इसे उल्टी की भी मानना नहीं रह गई।  
 अब दुलरा रात्रि उस अंगी नहीं है, यह शायद उस अन्तर्भाव की योगी है, उसने जान लिया  
 है उल्टी मान जाया और जन्म नहीं भी, यह कामिनी भी नहीं थी, मारी की  
 नहीं थी, प्रेम भी नहीं थी।:-

उहाँ विद्या कामिनी नहीं, छाया है परम प्रिया की  
 उहाँ प्रेम है कामना नहीं प्राप्ति निर्विघ्नता है।

उ० २/१४४

यही प्रारम्भ दुलरा की उसकी निष्काम - अनादित की प्रिया की पूर्ण करता है:-  
 सोच रहा कवि अन्तर्भाव 'विष्णु, बाहर उस अन्तर्भाव की  
 कोई उत्तर नहीं। मनः में रही बात कहता हूँ  
 दुलरा हीर कर देल, वही पर हुंजी नहीं बड़ी है।

उ० २/१४४

निर्वाण रात्रि दुलरा समस्त राज - पाद बाध की दीप के अन्तर्भाव की जाता  
 है। इसे ही हम अमरकारी परिवर्तन करें हैं। रात्रि के अन्तर्भाव का च च यही अन्तर्भाव  
 साहित्य का, च यही अन्तर्भाव था:-

येन अन्तर्भाव भये लड़ा जाय की चय हो।  
 महाप्रायः मैं भार - दुलरा अब काम की जाता हूँ।

दुलरा के अन्तर्भाव की ही यह अमरकारी समीपन अन्तर्भाव की भंग की जाता है।

-----

424

426



## उपसंहार

उवंशी में वर्तमान का स्वर  
उवंशी में प्रतिबिम्बित कवि का व्यक्तित्व  
अध्ययन-ग्रंथ-सूची  
संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी  
पत्र एवं पत्रिकायें

## उ प सी द ा र

उत्कर्ष में वर्तमान का स्वर

उत्कर्ष में प्रतिपिम्बित उच्च का व्यक्तिस्वर

### उर्दूगी में वर्तमान का स्वर

उर्दूगी ऐतिहासिक - पौराणिक आख्यान की अनुमातन भीमोत्सा है। कवि स्वयं इसे "कहने भर को प्राचीन कथा" कहता है। कहने भर के लिये उर्दूगी का कथानक प्राचीन के सांस्कृतिकता यह है कि यह कथा सर्वज्ञ मन्वीन विचारों और भावनाओं की उदभासक है। आज के जन जीवन में नारी का क्या अस्तित्व है। वह खुशों कातेजों, विधवा-विधवालयों में कैसा जीवन - आचरण सीख रही है? समाज में इसकी क्या स्थिति है? मित्र प्रीति के लगावों में नारी के अवमान भरे जीवन के अतिरिक्त और है ही क्या? नारी स्वयं में जितनी असहाय है, विवश है, इसका कोई मापन नहीं है। पतिधर्मों से तिरस्कार का नारी धर्म मध्यम से पात्र न से तो समाज में क्या हो-गा आज के युग में पारंपारिक सम्प्रदाय की सेवा श्रमा, विद्यापद, वृद्धि, गहन अध्ययन का जीवन और जीवन आकांक्षाओं की अविच्छेदनी सुविधा यन्त्रों का स्वरूप है मेमका, रम्भा, लवणम्भा चित्र लेखा और उर्दूगी। आज जितनी रम्भाओं और उर्वरिकां महा नगरों में, नगरों और उप नगरों में पुरुषों को रिभा कर अपनी काम सुआ सुप्त करती हैं। नारी स्वातंत्र्य के नाम पर जो अनाचार छन्द समाज रचना है वह संस्कृति नहीं है। नगर उर्दूगी, देव दासियां, गणिकायें अब समाज में जल-मर्त्य बन गई हैं। चित्र लेखा कहती है:-

जब तक धिल्ले फूल, वायु से कर सुगन्ध फैलती है

जितनी उर्दूगी में नारी में मोरच मारी रहे-गा। ८० ४/११९

मातृत्व भी आज के युग में उदास है। प्रजनन मात्र मातृत्व नहीं है। उर्दूगी जननी है, सुस्थिता छोत्री और और और और और राजमाता। एक आयु की तीन मातायें हैं। समाज में एक नैतिक अनुशासन देना ही लक्ष्य है। आज समाज में उर्दूगी छोत्री सुधारक अभिजात्य धर्मिय पुरुषों नारी के दैव व्यापार को ही अपना पोस्व बनाए हुए हैं। केनेन्द्र जो है एक स्थान पर कहा है नीति से प्रभु रह कर राजनीति भी एक पालक है। आज की राजनीति भी पुरुषों की भाँति स्थान की राजनीति नहीं रह गई है। दिनकर परिवार और राष्ट्र में मर्दा है लोका रहे हैं और उर्दूगी में यही पारिवारिक निष्ठा और राष्ट्र धर्म का प्रतिपादन मिलता है। जीवन जैसे धर्मियों का सम्मान आज के चिन्तक को भी मिलना चाहिये। कवि का उद्देश्य है वर्तमान के स्वर को सुनें जाना:-



जब भी जतीत में जाता हूँ  
 बुद्धों को नहीं जिलाता हूँ  
 पीछे हट कर पैछता बाण  
 जिस से कषित हो वर्तमान  
 छिडर हो वो भग्नशेष  
 पर कहीं बचा हो स्नेह रोष  
 तो जा एत को ले जाता हूँ  
 निज युग का दिया जलाता हूँ

वर्तमान का अर्थ मैं दिनकर जो ने निज युग का ही दीप जलाया है।

००००००००००००

### उर्दूगी में प्रतिबिम्बित कवि का व्यक्तित्व

कवि दिनकर का व्यक्तित्व उर्दूगी में सुंदर हुआ है। अन्य काव्यों में कवि सदास्थ भाव से अपनी विचार धारा प्रस्तुत कर भका है किन्तु, उर्दूगी में वह अपने को काव्य से भिन्न नहीं रख सका है। दिनकर का सम्पूर्ण जीवन संघर्ष और विवशता ग्रस्त रहा है। उन्होंने भी अपने परिवार को जीवने के लिये अपनी चिन्ता तक नहीं की। यदि यह कहा जाय कि रसदन्ती में अपनी पत्नीदकी उपेक्षा कर कवि ने कविता-जाया से अनुराग किया वही भाव जौशनी के व्यक्तित्व में उभर गया है। फिर बदलते हुए परिवेश, विकास, पति की सामाजिक प्रतिष्ठा को ग्राम दधु भला क्या जानें कवि ने अभावों के जीवन में कोई सोने चँदो की छान तो उसे ला कर दी न थी। पर अद्वायन वर्ण की अवस्था में उर्दूगी में भी कवि ने नैतिकता का स्वर पहचानने लगा था। कवि ने मुस्लिम सत्तक की उर्दूगी विषयक कविता में स्वीकार किया:-

मैं ही पुरुरवा राजा था  
हां तब सबसे कुछ ताज़ा था  
था उसे खिलाता केवल कुत्ता  
खु में पीता था सोम अमृत  
उर्दूगी याद कर के वह सुरत  
ईस पड़ी सामने करके मुँह  
जब किया डरे ऐसा, तब नर  
बूमे गा कैसे नहीं 'अक्षर'

कवि को सारे रहस्यों का भेद काम देव में मिला। कवि ने फिर काम प्रणीति को कहा हो गा:-

जो प्रणय लिपि, जाहल छुति है  
यह उसी काम युग की कृति है।

संसार का किना बड़ा सत्य है जो भारतीय नारी के लिए बलम है:-

पर बाय बड़ी रोती रहती  
दायित्व सभी जोती रहती  
माताई कैसा ठठाली है  
हर्षरिधा मौज मनाली है।

कवि का सदा स्म है ' वह स्वयं कहता है — उर्दूगी अपने समय का सूर्य है मैं दिनकर स्वयं युग के सूर्य थे। पर विवशता वहाँ भी न गई:-

कवि ने फिर जामना कहा :-

मैं पुरैदा हूँ या कि च्यवन  
जःखा मेरा नवयुग का मन  
सहचर हेपरी बदाम्या का  
या बोलीनरी मुठन्या का ।

डर्की, डर्की न होती यदि वह काव्य विमलर का भोगा हुआ सत्य न होता ।

००००००००००००



संस्कृत ग्रंथ सूची

संस्कृत

अग्नि पुराण  
 काव्य प्रकाश  
 काम सूत्र  
 कथा संपद  
 धर्मशास्त्र  
 मातृका शास्त्र  
 पद्म पुराण  
 अथर्व पुराण  
 मत्स्य पुराण  
 महा भास्त्र  
 भृगु वेद  
 रघुवंश  
 रामायण  
 विष्णुसहस्रनाम  
 रत्नप्रदा ब्राह्मण  
 स्कन्द पुराण  
 साहित्य दर्पण  
 श्रीमद् भागवत पुराण  
 श्रीमद् भागवत गीता

# वि व न द ी

|                                      |     |     |     |                         |
|--------------------------------------|-----|-----|-----|-------------------------|
| दिनकर के समस्त ग्रन्थ                | ... | ... | ... | काव्य और गद्य           |
| क्रिदामित्र और दो भावनादय            | ... | ... | ... | उदय शंकर भट्ट           |
| आगेक वन वन्दनी व अन्य छोटी गीति नादय | ... | ... | ... | उदय शंकर भट्ट           |
| तमसा                                 | ... | ... | ... | जानकी बल्लभ शास्त्री    |
| पाशाणी                               | ... | ... | ... | जानकी बल्लभ शास्त्री    |
| दिम शिखर                             | ... | ... | ... | सुमित्रा नन्दन पंत      |
| सौख्य                                | ... | ... | ... | सुमित्रा नन्दन पंत      |
| सृष्टि की साध                        | ... | ... | ... | सिद्ध नाथ कुमार         |
| अंधा युग                             | ... | ... | ... | धर्म वीर भारती          |
| धामा                                 | ... | ... | ... | महा देवी वर्मा          |
| साकेत                                | ... | ... | ... | मैथिली शरण गुप्त        |
| उर्वरी                               | ... | ... | ... | जय शंकर प्रसाद          |
| स कामाक्षी                           | ... | ... | ... | जय शंकर प्रसाद          |
| उर्वरी                               | ... | ... | ... | रवीन्द्र नाथ टैगोर      |
| शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त 1,2   | ... | ... | ... | डा० गोविन्द त्रिगुणायत  |
| भारतीय साहित्य शास्त्र               | ... | ... | ... | डा० बलदेव उपाध्याय      |
| हिन्दी साहित्य का इतिहास             | ... | ... | ... | आचार्य राम चन्द्र शुक्ल |
| पुराण विमर्श                         | ... | ... | ... | डा० बलदेव उपाध्याय      |
| आधुनिक हिन्दी नाटक                   | ... | ... | ... | डा० नगेन्द्र            |
| हिन्दी एकाकी शिल्प विधि का विकास     | ... | ... | ... | डा० सिद्ध नाथ कुमार     |
| हिन्दी नाटक: उद्भव और विकास          | ... | ... | ... | डा० दाराज औभा           |
| हिन्दी नाटक                          | ... | ... | ... | डा० बच्चन सिंह          |
| हिन्दी नाटक के सिद्धान्त और नाटक कार | ... | ... | ... | डा० महेन्द्र            |
| काव्य के रूप                         | ... | ... | ... | गुलाब राय               |
| सिद्धान्त और अध्ययन                  | ... | ... | ... | गुलाब राय               |

साहित्य लोचन ... ..  
विचार और चिन्तन ... ..  
गीति नादय ... ..  
उदय शंकर भट्ट: व्यक्ति और साहित्य का  
दिनकर की उनकी तथा उनकी अन्य कृतियाँ  
राष्ट्र कवि दिनकर व उनकी काव्य साधना  
दिनकर के पत्र ... ..  
समर्थ धारी सिंह दिनकर ... ..  
पुनः कारण दिनकर ... ..  
दिनकर ... ..  
दिनकर: एक नमूनात्मक ... ..  
उपलब्ध और सीमा ... ..  
उत्कर्ष: संवेदना और शिल्प ... ..  
उत्कर्ष: दो निबन्ध ... ..  
अतीत के गर्त में ... ..  
रुग्णोद कथा  
एक शून्य अन्त के एक प्रति ... ..  
चारु चन्द्र बन्धोपाध्याय को लिखा गया  
उत्कर्ष विषयक पत्र ... ..  
स्व० श्री पी० के० चटर्जी, प्रधानाचार्य,  
विपिन बिहारी इण्टर कॉलेज, झांसी  
के सौजन्य से प्राप्त  
दिनकर का अनुवाद काव्य ... ..  
भारतीय हिन्दी परिषद औरंगाबाद  
में दिया गया भाजक --- 1984

रयाम सुन्दर दास  
डा० नगेन्द्र  
डा० कृष्ण सिंहल  
डा० मन मोहन गौतम  
डा० विमल कुमार जैन  
डा० प्रताप चन्द्र जायसवाल  
पुष्पफार  
मन्मथ नाथ गुप्त  
सावित्री सिंह  
स० सावित्री सिंह  
डा० विजेन्द्र नारायण सिंह  
डा० विजेन्द्र नारायण  
डा० टीका राम शर्मा  
डा० राम० चित्तास शर्मा  
भगवती चरण शर्मा  
ग० मा० मुक्ति बोध  
रवीन्द्र नाथ टैगोर  
जवाहर लाल नेहरू



प ि ष क ा र्थ

|                           |        |              |
|---------------------------|--------|--------------|
| हिन्दुस्तान साप्ताहिक     | ...    | पूतार्ह 1873 |
|                           |        | मई 1974      |
| दिनमान                    | ... .. | मई 1974      |
| धर्म युग                  |        |              |
| टाइम्स आफ इण्डिया         |        |              |
| इलस्ट्रेटेड वीकली         |        |              |
| सारिका --- मित्र विज्ञापक |        |              |
| कादम्बिनी                 |        |              |

# LIST OF BOOKS CONSULTED

---

1. Abercrombie 20th Century English Essays
2. A.C. Rickett A History of English Literature
3. A. Nicoll British Drama
4. Ajit Mukharjee Tantra Asana
5. Anubindo Ghosh The Hero and the Nymph  
Collected Poems
6. B.R. Yadeva A Critical Study Of The Sources Of Kalidas
7. Benedeto Croce Aesthetics.
8. Cheire Book of Numbers
9. D.D. Keshabi Myth and Reality
10. Das Gupta History Of Sanskrit Literature
11. D.H. Lawrence Song and Lovers
12. Govt. of India Publication Indian Drama
13. H.D.F. Kille Greek Tragedy
14. H.G. Brooks On Poetry in Drama
15. H.H. Wilson Theatre of the Hindus.
16. Havlock Ellice Psychology of Sex (Hindi Translation by  
Manmath Nath Gupta.)
17. Keith Keith The Sanskrit Drama
18. Kumbhan Raja A History of Sanskrit Literature.
19. Herman. L. Munn Psychology
20. Rabindranath Tagore Urvashi in Chitrangda

- |     |                      |                                                                                      |
|-----|----------------------|--------------------------------------------------------------------------------------|
| 21. | Reynold Peacock      | The Art of Drama                                                                     |
| 22. | Shakespeare          | Antony and Cleopatra<br>Macbeth<br>Twelfth Night<br>Venus and Adonis (Poetry)        |
| 23. | T.S.Eliot.           | Selected Prose.                                                                      |
| 24. | T.G.Mainker          | Kalidas and his Art.                                                                 |
| 25. | Vidya Bhavan, Bombay | Vedic India                                                                          |
| 26. | Winternitz           | Cultural History of<br>India (Vol 1 & 2)                                             |
| 27. | DINKAR               | VOICE OF HIMALAYA<br>English translation of the poems of<br>Rameshwar Singh 'Dinkar' |
-